

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186398

UNIVERSAL
LIBRARY

ॐ

रसतरंगिणी भाषा

सचित्र



लेखकः—

‘रसेन्द्रसार संग्रह’, ‘योगरत्नाकर’, ‘गदनिग्रह’,

‘वसवराजीयम्’ ‘शिशुपालवध’ आदि ग्रन्थों के

प्रामाणिक अनुवादकर्ता ।

राजवैद्य कविराज श्री विद्याधर जी विद्यालंकार

आयुर्वेद शास्त्री, मिषगाचार्य,

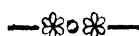
सोलन



प्रकाशक—

जगत पुस्तक भंडार

दरीबा कलां, देहली ।



प्रथम संस्करण]

विक्रमाब्द २००७

[मूल्य ८) रुपए

प्रकाशक:—

श्री लक्ष्मीचन्द तायला

अध्यक्ष :- जगत पुस्तक भंडार

दरीबा कलां, देहली ।

सूचना

श्री कविराज नरेन्द्रनाथ मित्र जी की आज्ञानुसार

देवज्ञ रत्न श्री पं० जीवानन्द शर्मा के सुपुत्र श्री पं० सदानन्दजी

शास्त्री विरचित रसतरंगिणी ग्रन्थ का प्रामाणिक

भाषानुवाद यही है । इसके सर्वाधिकार प्रकाशक

ने अपने पास सुरक्षित रखे हैं । कोई इस

अनुवाद को पूरा या अंश रूप में

बिना हमारी आज्ञाके न छापे ।

अन्यथा राज्यनियमानु-

सार दंडनीय होगा ।

“प्रकाशक”

卐

मुद्रक:—

श्री नन्दकिशोर जी त्यागी

त्यागी फाइन आर्ट प्रेस,

कटड़ा खुशहालराय, देहली ।

अनुवादक का समर्पण



इस रसतरङ्गिणी के अनुवाद को पूज्य पिता श्री राजाराम जी वर्मा टैलिग्राफ मास्टर पटियाला निवासी की दिवंगत आत्मा को सादर भेंट करता हूं। जिनकी कृपा और सर्व प्रकार की शिक्षा दीक्षा से मैं इस अनुवाद करने के योग्य हुआ हूं।

आशिषाकांक्षी

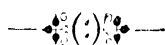
पुत्र

विद्याधर विद्यालंकार

सोलन



अनुवादक का वक्तव्य



यह रसतरङ्गिणी नाम की पुस्तक श्रीमान् दैवज्ञरत्न पंडित जीवानन्द शर्मा जी के सुपुत्र पंडित सदानन्द शर्मा जी ने रची है। गढ़वाल प्रान्त में श्री नगर के पास खोला ग्राम के आप निवासी थे। आप की उपजाति बिल्डियाल थी। आप ब्राह्मणवर्ण में थे। आपके भाई पंडित आंधरानन्द जो शास्त्री लाहौर में संस्कृत अध्यापन तथा वैदिक अनुमन्थान का कार्य करते रहे हैं। पं० सदानन्द जी आयुर्वेद पढ़ने के लिये श्री कविराज नरेन्द्र नाथ जी मित्र के पास लाहौर आये थे। वे उनमें वहीं विद्याध्ययन करते थे। पं० सदानन्द जी श्लोक बनाने में सिद्धहस्त थे। श्री कविराज जीने इन्हें प्रेरणा को कि वे संस्कृत श्लोकों में आयुर्वेद का रसशास्त्र नये पुराने ढंग को मिलाकर लिखें। पं० सदानन्द जी ने उसी समय “तथास्तु” क्लृप्तर लिखना स्वीकार किया। वे प्रति दिन अपने श्लोक बना २ कर उन्हें सुनाते थे और पुराने तथा नये ढंग के सभी रसग्रन्थों का सार यथामति श्लोकों में बद्ध करते जाते थे। श्री पं० जयदेव जी विद्यालंकार स्नातक गुरुकुल कांगड़ी, जो उन्हीं दिनों श्री कविराज मित्र जी से पढ़ते थे, उनको अंग्रेजी पुस्तकों से (Chemistry) रसायन की

वातें हिन्दी में समझाकर लिखा दिये करते थे। श्लोकों को शोधन तबतक करना होता था जब तक पूरा २ अभिप्राय उनमें न समाजाय ।

मैं उन जाड़ों में जब लाहौर गया और श्री मित्रा जी के यहां गया तो रसतरङ्गिणी लिखी जा रही थी। उसे सुनने के लिये मैं प्रतिदिन वहां जाता था। मित्रा जी के आदेश से मैं भी जहां २ उचित होता था संशोधन करने की सम्मति देता रहता था। पं० सदानन्द जी जब श्री मित्रा जी से तर्कवितर्क करके मेरी बात को ग्रह्य समझते थे तो उसे नोट करके दूसरे दिन श्लोकों में अथित कर दिया करते थे। इस प्रकार यह ग्रन्थरत्न संशोधित हो २ कर बढ़ता गया और रसतरङ्गिणी के रूप में श्री मित्रा जी ने इसे एकदिन प्रकाशित कर दिया। पं० सदानन्द शर्मा एक योग्य सुपात्र गुरुभक्त शिष्य थे जो रसतरङ्गिणी लिख कर अपना नाम अमर कर गये हैं और साथ ही अपने पूज्य गुरुवर श्री नरेन्द्रनाथ जी मित्र का नाम भी अमर कर गये हैं। दुःख यही है कि वे पूरी युवावस्था में ही संसार को छोड़ गये। इस विषय में श्री मित्र जी सदा शोक प्रकट किया करते थे।

इस रसतरङ्गिणी में जहां रसशास्त्रों का सार भरा हुआ है वहां पाठकों को काव्य का आनन्द भी प्राप्त होता है। सुन्दर मधुर ललित शब्दों में तथा छन्दों में यह श्लोकबद्ध की गयी है। इस पुस्तक को पढ़ने से जहां वैयों का रसज्ञान और

चिकित्सा कौशल बढ़ेगा वहां विद्यार्थियों को भी इसे पढ़ने से बहुत लाभ होगा। वे नये २ नामों से डाक्टरी में प्रचलित द्रव्य अपनी आयुर्वेदीय पद्धति से बना सकेंगे। इस पुस्तक को श्री मित्रा जी की आज्ञा से हिन्दी भाषा में मैंने अनुवाद करके सरल तथा सुबोध बनाने की चेष्टा की है। आशा है पाठक पूरा २ लाभ उठाने का यत्न करेंगे।

अनुवादक
विद्याधर विद्यालंकार
सोलन

स्वर्गवासी

कविराज श्री नरेन्द्रनाथ जी मित्र का परिचय

मित्रवंश बंगाल में प्रसिद्ध है। तीन पीढ़ियों से मित्रवंश के लोग लाहौर में बस रहे हैं। इन का अपना मकान है और बाटिका है। मकान पुरानी तहसील, शहदमिठ्ठा बाजार के पास है तथा बाटिका बादामी बाग के पास है। इसी मित्र वंश में हमारे कविराज नरेन्द्रनाथ जी मित्र का जन्म हुआ था। आपके पिता श्री चन्द्रनाथ मित्र पंजाब यूनिवर्सिटी के असिस्टेंट रजिस्ट्रार थे। आप के ५ भाई तथा तीन बहनें थी। मझली बहन का विवाह प्रसिद्ध ब्राह्म समाज के नेता श्री अविनाश चन्द्र मजूमदार के साथ हुआ था। अब इन दोनों का स्वर्गवास हो चुका है। उनकी एकमात्र

मन्तान श्री हेमप्रभा मजूमदार जो इन्स्पैक्ट्रस आफ स्कूलज हैं, जिनकी कोठी सोलन पर्वत पर है। श्री मित्र जी संभले भाई थे।

श्री नरेन्द्रनाथ जी मित्र ने बाल्य काल में बंगला के साथ अंग्रेजी तथा संस्कृत विद्या का भी अच्छा अभ्यास किया था। आपने स्वर्गवासी श्री कविराज अमृतलाल जी से वैद्यक विद्या पढ़ी थी। आप अपने गुरु जी की कई बार प्रशंसा किया करते थे। एकबार उनकी प्रशंसा करते हुए आपने हमें एक घटना सुनायी थी जो हम वैद्यों की जान कारी के लिये नीचे लिखने हैं—

“श्री कविराज अमृत लाल जी के सामने एक दक्षिणी वैद्य ने इन्दौर के एक ७० वर्ष के बूढ़े राजकुमार को मुश्रुत में लिखा हुआ “विडङ्गकल्प” का प्रयोग कराया था। उस राजकुमार को ६ मास के बाद पुनर्युवत्व प्राप्त हुआ था। उसके नवयौवन के साथ २ सारे बाल काले निकल आये थे, तथा सारे दांत नये निकले थे। श्री अमृतलाल जी भी उस विधि को जानते थे और प्रयोग करा सकते थे।

श्री नरेन्द्र नाथ जी मित्र ने लाहौर में अपने मकान की बैठक में आयुर्वेद चिकित्सा आरम्भ की। आपने साथ २ शिष्यों को पढ़ाने का, औषधज्ञान कराने का तथा प्रयोग

मिथ्याने का भी आरम्भ किया। पंजाब में अनेक पुराने वैद्य श्री नरेन्द्र नाथ जी मित्र से आयुर्वेद विद्या सीखकर चिकित्सा कर रहे हैं तथा मित्र जी का शिष्य कहाने में गौरव अनुभव करते हैं। कई गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के स्नातक भी विद्या समाप्त करके श्री मित्रा जी से आयुर्वेद पढ़ते रहे हैं। उनमें स्नातक वासुदेव जी कानपुर वाले, श्री जयदेव जी विद्यालंकार चरक के हिन्दी अनुवादकर्त्ता प्रसिद्ध ही हैं। शोक है कि दोनों सुयोग्य विद्वान् स्नातकों का देहान्त हो चुका है। इस लेख का लेखक भी स्नातक है जो मित्राजी का शिष्य है और सदा उन्हें अपने हृदय में श्रद्धा तथा मान्य देता आया है। मित्रा जी के सुयोग्य शिष्यों में से पं० सदानन्द जी धिल्लिडयाल गढ़वाल निवासी विशेष उल्लेखनीय हैं जिन्होंने कि मित्रा जी की शिक्षा क रसतरङ्गिणी पुस्तक में श्लोकबद्ध कर दिया है। शोक है कि श्री मित्र जी के सन्मुख ही पहले स्नातक वासुदेव जी का स्वर्गवास हुआ, फिर पं० सदानन्द जी का, इससे मित्र जी को बहुत दुःख हुआ था। उनकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी। वे शिष्यों को ही निःशुल्क पढ़ाते थे तथा उन्हें अपना पुत्र समझते थे। बाद में श्री स्नातक जय देव जी ही उनके प्रिय शिष्य थे, जिन्होंने उनके पास रहकर आयुर्वेदाचार्य पास किया। परन्तु मित्रा जी का स्वास्थ्य धीरे २ बिगड़ रहा था। उन्होंने अपने एक भतीजे अमरकृष्ण मित्र को अपना उत्तराधिकारी बनाने के

लिये सोचा । वे उसे डाक्टरी वैद्यक दोनों पढ़ाना चाहते थे । गर्मियों में मित्रा जी सोलन आ जाते थे ।

मित्र जी का स्वर्गवास

सन १९३७ ई० में वे अपने उसी भतीजे को लेकर सोलन पधारे । अपने मकान को दूर समझकर उन्होंने नगर के पास ही एक मकान लिया । टाईफाइड (आन्त्र ज्वर) से भतीजा लाहौर से ही बीमार चला आता था । सोलन में भी वह रोगी ही था । उसकी चिकित्सा डा० ज्ञानचंद धवन ने अतियत्न से की परन्तु वह बालक बच न सका । उसके भौतिक शरीर को जब हम दाह करने ले गये थे तो मित्र जी को साथ नहीं जाने दिया गया था । उनका वहीं एक मात्र भतीजा, शिष्य, उत्तराधिकारी तथा पुत्र था । उस बालक में सज्जनता, सौम्यता, विद्या, सदाचारादि गुण कूट २ कर भरे हुए थे । उसके स्वर्गवास से मित्र जी को इतना धक्का लगा कि उनका स्वास्थ्य क्षण २ गिरता गया । उनकी मृत्यु से ठीक तीन दिन पहले मैं उनके दर्शन करने तथा आर्य मण्डली के साथ आर्य समाज सोलन के उत्सवार्थ भिक्षा के लिये गया । उस समय वे इतने क्षीण हो चुके थे कि २० कदम की दूरी से भी मैं उन्हें पहचान नहीं सका । उनकी गर्दन और पिण्डलियां सूखकर नाम मात्र की रह गयी थीं । सिर के बाल रुखे, खड़े हुए तथा ऐसे फीके थे कि मैं लिख नहीं सकता । मृत्यु वाले

के बाल ऐसी अवस्था को पहुंच जाते हैं, यह मैंने पहले पहल वही अनुभव किया। मुख अत्यन्त निस्तेज हो चुका था। लोगों के साथ मुझे देखते ही वे अन्दर चले गये। मैंने जाकर चरणस्पर्श किया और मुझे अपने हाथ से आशीर्वाद देकर उन्होंने अपने पास बिठा लिया। प्रति वर्ष के नियमानुसार (?) रुपया आर्य समाज को दक्षिणा देकर उन्होंने कहा कि शेष सब लोगों को जाने दें। आप मेरे पास बैठें। मैंने ऐसा ही किया। मैं और वे दोनों एक छोटे से कमरे में एक ही पलंग पर बैठ गये। हम दोनों कुछ लूण चुन रहे थे। बाद में मुझसे रहा न गया। मेरी आंखों में आंसू आ रहे थे। मैंने कहा, आप इतने क्षीण हो गये हैं कि आप पहचाने नहीं जाते। आप स्वयं बुद्धिमान हैं। शरीर की रक्षा करें। उस बालक की मृत्यु का आपको इतना शोक नहीं करना चाहिये। ईश्वर का विधान ऐसा ही था। आपने उसके बचाने में सब उपाय किये। परन्तु भावि प्रबल थी।

इस पर मित्र जी कहने लगे। “आपने जो कुछ कहा है ठीक है। मैं बहुत विचार करता हूं परन्तु ऐसा गतीत होता है, यह धक्का मर्यान्तिक है। शरीर का क्या है। एक दिन तो जाना ही है।” फिर कहने लगे “मैंने यहां से जाने का निश्चय किया है। मेरा प्रिय संबंधी एक डाटकर आ रहा है, मैं उसके साथ बिहार बंगाल या (मधुवनी) चला जाऊंगा।” यद्यपि मुझे उनके जाने से दुःख हुआ तो भी वे वहां जाकर स्वस्थ हो जावेंगे इस

निश्चय से मैं प्रसन्न भी हुआ। मैंने कहा, 'अवश्य जाइये। वहाँ जाने से स्थानीय बातें भूल जायेंगी।' इत्यादि बातों के बाद फिर कहने लगे।

“विद्याधर जी ? मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आप मेरे पास हो। मैं आपको इस लिये बहुत प्रेम करता हूँ कि आप सत्यवादी हो। कभी गुरुजनों से भी छल कपट नहीं करते हो औरों से भी मैंने आपकी सदा प्रशंसा की है। सच्चे आर्यसमाजी की स्फिरिट आपमें है। गुरुभाव से भी मैंने मांस खाने के पक्ष में कितनी बार आपको करना चाहा पर सन १९१६ से आज तक आप इस मांस भक्षण के सदा ही विरोधी रहे। गत जाड़े में भी दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज में जो ६ मास हड़ताल रही थी आप सदा उस के लिये मुझे अच्छी बातें कहते रहे। मैं डी०ए०वी० कालेज की छल कपट की बातों को आपसे अधिक जानता था इस लिये मैं अधिकारियों का पक्ष न लेकर विद्यार्थियों का पक्ष लेता था परन्तु आप गुरुकुल के स्नातक हो कर भी डी०ए०वी०के अधिकारियों का तथा उस संस्था का पक्ष करते रहे। तब मैं आपको तीन २ घण्टे उनके दोष समझाता था पर आपका यह अन्तिम वाक्य सदा मुझे चुप हो जाने पर मजबूर कर देता था —“बाबू जी? आप इन सब वैद्य समुदाय से ऊँचे हैं। आप क्यों इस झगड़े में पड़कर एक पक्ष का समर्थन करते हैं।

आपको कुछ दिन के लिये दूसरी संस्था का प्रिंसिपल बनाकर यदि डी० ए० बी० कालेज को तोड़ने का प्रयत्न किया जाता हो तो इतनी प्रसिद्ध डी.ए.बी.कालेज की आर्य संस्था तोड़ने वालों में आपका नाम भी लिया जायगा। क्या आप इस बात को पसंद करेंगे ? यह तो कलंक की बात होगी। आपको भगड़ों में पाटीं न बनकर इनके ऊपर सुलह कराने वाला बनना चाहिये। इसी में आपकी शोभा है, यही आपका कर्तव्य है। ये बातें आप जिस प्रेम और आग्रह से कहते थे मैं ऐसी अन्य 'शिष्यों' से नहीं सुनता था। पर आज मेरा मन सत्य का अनुभव कर रहा है कि आपका कथन सत्य और अवश्य ग्राह्य था। धीरे-२ मैंने दूसरी संस्था से संबंध तोड़ा और मैं यहां शीघ्र ही चला आया हूँ। ”

फिर कहने लगे, “इस शरीर का क्या भरोसा है। दो पुस्तकें मैंने अपनी ओर से छपवायीं थी। एक ‘चिकित्सा कलिका’ दूसरी ‘रसतरंगिणी’। ” “रसतरंगिणी” का हिन्दी अनुवाद प्रतिज्ञानुसार आपने करना होगा। ” मैंने कहा, “मैं उद्यत हूँ” पर श्री स्नातक जयदेव भी अच्छी तरह करलेंगे। वे आपके पास भी अधिक रहते हैं। ” मित्र जी कहने लगे, “जयदेव का शरीर अधिक रोगी रहता है। चरक की हिन्दी टीका से उसे अवकाश नहीं मिलता है। ” “रसतरंगिणी” इसी लिये मैंने सारी अथ से इति तक आपको स्वयं पढ़ायी थी। कोई बात ऐसी नहीं जो आपको न

समझा दी गई हो । आप हर प्रकार से योग्य हो, मेरी इच्छा है रसतरंगिणी का हिन्दी अनुवाद आप करो । संस्कृत टीका हो ही चुकी है । आप हिन्दी करने का समय निकालो ”।

मैंने कहा “मैं आपको वचन दे ही चुका हूँ, मैं रसतरंगिणी का हिन्दी अनुवाद कर दूँगा, पर अभी आप इतनी व्यग्रता क्यों प्रकट कर रहे हैं । मैं तो कह ही रहा हूँ कि अनुवाद करना मेरा धर्म हो चुका है । पहले भी आपने आज्ञा दी थी तो “रसेन्द्रसारसंग्रह” का अनुवाद किया था । फिर “योगत्नाकर” का किया । “गदनिग्रह” का भी कर ही लिया है । अब “रसतरंगिणी” कर डालूँगा । आप निश्चिन्त रहें ।

फिर मित्रजी सन्तुष्ट होकर कुछ क्षण थकावट से चुप हो गये । मैं भी चुप हो गया । थोड़ी देर के बाद कहने लगे । “लाहौर आओगे ना ?” मैंने कहा “जी हाँ” । कहने लगे, “वहाँ आते ही मिलना । हो सके तो थोड़ा समय मेरे पास प्रतिदिन आने का निकालना । कुछ आवश्यक कार्य हैं जो आपके हाथों कराने की इच्छा है” । मैंने कहा “बहुत अच्छा” । इस तरह दो घंटे के लगभग विविध अन्तिम वार्तालाप करके मैं आज्ञा लेकर चला आया । उनके दांतों में कुछ कष्ट था । जरा सा चलने से दांतों में दर्द होती थी । तीसरे दिन उनका प्रिय संबंधी डाक्टर भी उन्हें लेने के लिये आ गया था । उस दिन प्रातः ६ बजे के लगभग उन्होंने मांस का रस पिया । उसके बाद वे ऊपर अपने

कमरे में चले गये। आधे घण्टे के बाद उनके दांत में कण्ट हुआ। उन्होंने आवाज दी और सब ऊपर पहुंचे। उपाय करने पर भी वे न बच सके। वे शान्ति से परलोक सिधार गये।

अन्त समय में उनके पूज्य भाई नगेन्द्रनाथजी मित्र तथा अन्य भाई, सोलन के राजकीय सेवक तथा कर्मचारी, गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक धर्मदत्तजी आयुर्वेदालंकार सोलन वासी तथा मैं उनको कंधा देते हुए सोलन की श्मशान भूमि में सदा के लिये छोड़ आये। इतने महान रसवैद्य का इस प्रकार शान्त निरापद भूमि में शान्ति से अन्त हुआ। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दें। उनके पीछे उनकी धर्मपत्नी जी रह गयीं। परन्तु अब वे भी संसार में नहीं रहीं। एक वर्ष तक स्नातक जयदेव जी उनके औषधालय में निःशुल्क काम करते रहे। पर वे भी राजयक्ष्मा से स्वर्ग सिधार गये। अब मित्र जी का एक नौकर वहां उनके मित्र औषधालय लाहौर में काम करता है। पर भारत तथा पंजाब का इतना बड़ा औषधालय एक योग्य वैद्य के अभाव से सूना हो रहा है। शायद वैद्यों के पीछे उनके औषधालयों की यही दुर्दशा होती है इस लिये इस विद्या को अपने वंश में चलाते रहने की प्राचीन परिपाटी थी। अस्तु०

मित्रा जी की इच्छा पूर्ण करने के लिये मैं रसतरंगिणी का अनुवाद करने की सोच ही रहा था कि इसी बीच में एक घटना घटी। मुझे अकस्मान् हा भक्त लखाराम तनेजा महिला आयुर्वेद

विद्यालय निस्वत रोड लाहौर में प्रोफेसर बनकर, अन्यान्य आयुर्वेद के विषयों के साथ रसतरंगिणी भी दो वर्ष पढ़ानी पड़ी। छात्राणं हिन्दी में अर्थ भी लिखती जाती थीं। मैं भी घर में लिखकर उनको कार्पा दे देता था। इस प्रकार अथ से इति तक रसतरंगिणी का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया गया। पं० श्री धरानन्द जी श्री पं० सदानन्द जी के बड़े भाई हैं। वे मुझ से मिले। वे भी इसे छपवाना चाहते थे। पर अर्थाभाव से न छपवा सके। ला० मोतीलाल बनारसीदास जी भी संस्कृत के साथ इस मेरे हिन्दी अनुवाद को छपवाने के इच्छुक थे। मैं भी उन्हें देना चाहता था पर पाकिस्तान के कारण वे भी पंजाब से दूर काशी चले गये। इस कारण मैं अनुवाद को श्री लाला लक्ष्मी चंद जी तायला अध्यक्ष - जगत पुस्तक भंडार देहली के द्वारा छपवा रहा हूं। यद्यपि पं० सदानन्द जी ने संस्कृत में लिखी हुई रसतरंगिणी पुस्तक को श्री मित्र जी के गुरुचरणों में भेंट किया था। उन्होंने इसे स्वीकार कर छपवा दिया था। मित्राजी ने “पण्डित सदानन्द शास्त्रिणा धिरचिता” ये शब्द “रसतरंगिणी” के दोनों वार के एडिशनों पर छपवा रखे हैं। पं० सदानन्द जी ने कोई भी लिखित Copyright मित्रा जी को नहीं दिया था। इस विषय में जयदेव जी आयुर्वेदाचार्य से तथा श्रीधरानन्द जी से मैंने अच्छी प्रकार खोज करली थी तो भी मैं संस्कृत भाग को नहीं छपवाता। क्योंकि उसे कोई और भी छपवा सकते हैं। मैं तो हिन्दी अनुवाद को

ही छपवा रहा हूं जिससे एक तो ऋषि ऋण से उच्छ्रय हो सकूँ दूसरे गुरु जी से की हुई प्रतिज्ञा भी पूरी कर सकूँ ।’

अनुवाद की विशेषता

जिन्होंने “रसेन्द्रसारसंग्रह वा योगरत्नाकर” का मेरा भाषानुवाद देखा है, वे मेरे ढंग को जानते होंगे मैं प्रायः प्रत्येक शब्द का अनुवाद भाषा में करके श्लोक का संगत अर्थ किया करता हूँ । परन्तु रसतरंगिणी क्योंकि रस ग्रन्थ और एक विज्ञान का आधुनिक ढंग का ग्रन्थ है इस लिये श्लोक में कही बातों के अर्थ के अतिरिक्त मुझे कहीं २ अधिक विस्तार से भी लिखकर उन सब गुप्त बातों को खोलना पड़ा है जो गुरुजनों के हृदय में ही शिष्यों के लिये सुरक्षित पड़ी रहती थीं । जब इस ग्रन्थ को लोग पढ़ेंगे तथा व्यवहार में लाकर देखेंगे तो उन्हें सब बातें आप ही स्पष्ट पता लग जावेंगी कि हमने कितना खोलकर प्रत्येक बात को समझाया है तो भी “गुरु बिना गति नहीं” वाली बात यहां भी चरितार्थ होती है । कुछ कर्म गुरुदर्शित मार्ग से ही पता लगते हैं, लिखना चाहें भी तो वे शब्दों में बांधे नहीं जा सकते । उसके लिये गुरु के पास जाकर सीखना ही होगा ।

इस ग्रन्थ से आशा है हिन्दी भाषा के विज्ञान में एक नयी विज्ञान पुस्तक की वृद्धि होगी । नये और प्राचीन ढंग

के Chemists और रसवैद्य इसके अनुसार प्रयोग बनाकर लाभ उठायेंगे। इसमें जहां धातुशोधन, मारण तथा गुण वर्णन किये हैं वहां उत्तम २ योग भी ऐसे लिखे गये हैं जिनसे चिकित्सा कर्म में बड़ा यश प्राप्त हो सकता है। अपने अनुभव के तथा अन्य शास्त्रों के अनुभव किये हुए योग सब इसमें स्थान २ पर भरे पड़े हैं। पाठक इन से लाभ उठावें।

धन्यवाद

अन्त में मुझे लाला लक्ष्मी चन्द जी तायला अध्यक्ष जगत पुस्तक भंडार दिल्ली वासी का धन्यवाद करना है जिन्होंने इस उत्तम लाभदायक पुस्तक को हिन्दी भाषा में छपवाकर अपने धन का सदुपयोग किया है। परमेश्वर उन्हें आयुर्वेद की दुर्लभ पुस्तकों को छपवाकर जगत के कल्याण करने का अधिक से अधिक उत्साह देवे और उनको सब प्रकार से उन्नत सुखी और समृद्ध बनावे।

निवेदक

कविराज विशाधर विशालंकार

आयुर्वेद शास्त्री, भिषगाचार्य

मोलन

लेखक का समर्पण



गुणिगण के भूषण, परम विद्वान, शिष्यों को उत्तम प्रकार से शिक्षा देने में प्रसिद्ध कीर्ति वाले, प्रेम से परीक्षा करने वाले, दयालुता से निरीक्षण करने वाले, मधुर मनोहर मूर्ति वाले मित्र कुल में उत्पन्न, सज्जनों के सर्वस्व, वैद्यों से प्रशंसित बुद्धि वाले, रसशास्त्र में कही हुई पारं की शुद्धि की विधियों को अनेक बार परीक्षा करके जगत हित के लिये बतला देने वाले । हे श्रीमान् परम पूज्य आयुर्वेद सागर के सर्वोत्तम कर्णधार श्री गुरुवर्य कविराज नरेन्द्रनाथ मित्र महोदय जी ! आपके कर कमल युगल में यह रसतरङ्गिणी समर्पित की जाती है ।

तथाच—जो कुछ मैंने आपसे पहले पढ़ा है उसी को भला आपको फिर कैसे समर्पित करूं । तथापि विनय से नम्र होकर मैं उसे इस लघुनिबंध के रूप में आपके हृदय की प्रसन्नता के लिये प्रसन्नता पूर्वक क्यों न अर्पण करूं ॥

निवेदक

सदानन्द शर्मा घिल्डियाल



भूमिका



ऐ आयुर्वेद सागर के चतुर कर्णधारो ! रस शास्त्र रूपी समुद्र के पार पहुंचे हुआओ ! प्राणाचार्य शिरोमणियों ! आप सब श्रीमानों को यह पता ही है कि संस्कृतसाहित्य की गौरव की स्थान रस, काष्ठ तथा शस्त्र नाम की तीनों चिकित्साओं में से रसचिकित्सा की ही प्रधानता मानी गयी है ।

अत एव वृद्ध वैद्य ये कहते हैं—

“उत्तमो रसवैद्यस्तु मध्यमो मूलिकादिभिः ।

अधमः शस्त्र — दाहाभ्याम्” ॥

अर्थात्—रसोंद्वारा चिकित्सा करनेवाला रसवैद्य उत्तम, जड़ मूल से चिकित्सा करने वाला वैद्य मध्यम, शस्त्र तथा दाह से चिकित्सा करने वाला वैद्य अधम माना जाता है ।

और रसचिकित्सकों के चूड़ामणि श्री गोपालकृष्ण ने रसेन्द्रसार संग्रह नामक अपने संग्रह किये हुए रस ग्रन्थ के आरम्भ में इस रस चिकित्सा की प्रशंसा की है—जैसे कि—

“अल्पमात्रो पयोगित्वाद् रुचेरप्रसङ्गतः ।

क्षिप्रमारोग्यदायित्वादोषधेर्म्योधिकोरसः । रसेन्द्र सारे

अर्थात्—क्योंकि अत्यन्त थोड़ी मात्रा में प्रयोग किया जाता है, खाने में अरुचि उत्पन्न नहीं करता, शीघ्र ही आरोग्य

प्रदान कर देता है, इसलिये काण्ठ औषधों की अपेक्षा रस अधिक उत्तम है ॥ रसेन्द्रसार संग्रह ।

इतने से इस रसचिकित्सा की महिमा जानी जा सकती है कि यह आदिदेव महादेव ने एक लाख श्लोकों में निबन्ध संहिता रूप में सर्व प्रथम आविष्कृत की थी ।

तथा प्राप्य सुख के प्रधानभूत पुरुषार्थ चतुष्टय को उत्पन्न करने में इस रसचिकित्सा की कितनी उपादेयता है, यह विद्वान् वैद्यों को विचार लेना चाहिये ।

यह रसचिकित्सा पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) को उत्पन्न करने में कारणरूप है ऐसा सुप्रसिद्ध ही है, यह बात सभी वैद्य जानते हैं । क्यों कि बिना दाम लिये औषध देना, रोगियों को निरीक्षण करना आदि आर्त्त रोगियों की रक्षा करके, तथा सन्निपात आदि प्राणहारी रोगों में प्राणप्रद होने से नये जीवन का दान करके यह धर्म को उत्पन्न करती है । अति धनाढ्यों की चिकित्सा करने से यह अर्थ को उत्पन्न करती है । उचित रीति से उपार्जित किये हुए धन से काम को उत्पन्न करती है, यह बात सभी जानते हैं ।

आयुर्वेद के अंगभूत रस शास्त्र का मोक्ष देना भी फल है, यह बात रसाणव आदि प्राचीन आर्षग्रन्थों में प्राधान्य से लिखी है वहां इसे प्रधान रूप में मुक्ति का कारण का ह है । यद्यपि छहों दर्शनों में यह बात

नहीं कही गयी है। इसी लिये प्राचीन रसायनाचार्य (Chemists) रसायन शास्त्र का प्रधान प्रयोजन मोक्ष प्राप्ति का साधन बनना ही मानते रहे हैं। कहा भी है—

अर्थ—श्री देवी कहने लगी—“आपकी कृपा से मैंने सारा शास्त्र सुना और समझ लिया है। यदि मैं आपकी अनुग्रह की पात्र तथा यदि मैं आपकी बलभा हूँ।”

श्री भैरव कहने लगे—“हे सहा भागे ! हे पार्वति ! आप धन्य हैं। आपने भक्तों के हित के लिये बहुत उत्तम प्रश्न पूछा हैं ॥ हे देवि ! इस शरीर को अजर अमर बनाकर शिव के साथ तादात्म्य रूप में रहना ऐसी जो जीवन्मुक्ति है वह तो देवों को भी परम दुर्लभ है ॥ इस शरीर रूपी पिण्ड के गिर जाने से जो मोक्ष माना जाता है वह मोक्ष (शरीर से छूट जाना) तो निरर्थक है। क्योंकि पिण्ड (शरीर) के गिर जाने से (छूट जाने से) तो गधा भी मुक्त हो जाता है। छहों दर्शनोंमें भी पिण्ड के छूट जाने से ही मुक्ति मानी है। हथेली पर रखे हुए आंचले को जैसे हम सब ओर से प्रत्यक्ष कर सकते हैं, ऐसे वह (छह दर्शनों में कही हुई) मुक्ति प्रत्यक्ष फिर भी नहीं दीखती है ॥ हे देवि ! देवों के लिये भी यह पिण्ड (शरीर) धारण किये रखना दुर्लभ है, फिर धरती पर रहने वाले मनुष्यों के लिये शरीर धारण किये रहना परम दुर्लभ है ही ॥

इसलिये हे महादेवि ! इसी पिण्ड (शरीर) की रक्षा प्रयत्न से करनी चाहिये ॥....

इसीलिये जब तक हर अर्थात् शिव केबीज (वीर्य) रूप पारद (जन्म मरण से पार करने वाले) नामक रस (पारे) को मनुष्य सेवन नहीं करता तब तक उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है और वह पिण्ड (शरीर) को कैसे धारण कर सकता है ॥

(रसार्णव प्रथम पटल)

श्री मान् भगवद् गोविन्दपाद जी यों कहते हैं—

अर्थ—“ इस लिये धन, शरीर के भोग (अथवा शरीर तथा भोग) इनको अनित्य मानकर सदा ही मोक्ष प्राप्ति के लिये यत्न करते रहना चाहिये ॥ उस ब्रह्म के ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है । वह ज्ञान अभ्यास से प्राप्त होता है । वह अभ्यास स्थिर देह में प्राप्त होता है । वह स्थिर देह तब प्राप्त होती है जब आठ गुणों का ज्ञान प्राप्त करके उसका अभ्यास किया जाये । इसलिये उस मुक्ति को प्राप्त करके मनुष्य ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेता है । फिर उसे पुनर्जन्म, गर्भवास आदि दुःख भोगने नहीं पड़ते हैं ॥ इस रोग, बुढ़ापे तथा मृत्यु के दुःखों से भरे हुए, क्षण में नष्ट हो जाने वाले इस शरीर से वह सूक्ष्म ब्रह्म किसी प्रकार से भी उपासना नहीं किया जा सकता है ॥ और इसी शरीर में जिनको परमात्मा की प्राप्ति न हुई देह त्यागने के बाद उनको ब्रह्म क्या प्राप्त होगा, वह तो और भी दूर हो

जायेगा । इसलिये जो योगी जीवन्मुक्ति (जीते हुए ही मोक्ष) को प्राप्त करना चाहता हो उसे पहले अपने शरीर को दिव्य बनाना चाहिये (जिसमें व्याधि, जरा, मृत्यु न आ सकें) । पारे तथा गंधक के मेल से अनेक रसों के सेवन द्वारा पहले शरीर को दिव्य बनाना जानना चाहिये ॥”

रसहृदयतंत्र प्र० अ०

इस रसचिकित्सा के शास्त्रों को बनाने वाले बहुत से प्रसिद्ध देवता ऋषि तथा पुरुष हुए हैं जो रस चिकित्सा तथा रसशास्त्र के पूर्ण ज्ञानी तथा सिद्ध थे । इनका नाम रससिद्ध (Master of Chemistry) था । उन शास्त्रकारों के नाम यहां लिखे जाते हैं— श्रीशङ्कर, नन्दीश्वर, भैरव, ब्रह्म, विष्णु, दत्तात्रेय प्रभृति देवगण; अगस्त्य, कपिल, भालुकि, व्याडि, मत्तमाण्डव्य आदि महर्षि-गण, और चन्द्रसेन, लङ्केश, विशारद, भास्कर, सुरसेन, रत्न-कोश, स्वच्छन्दभैरव, मन्थानभैरव, काकचण्डीश्वर, नरवाहन, कापालिक, रसेन्द्रतिलक, सुरानन्द, यशोधन, गोमुख, नरेन्द्र, मैथिल, स्कन्द, भगवद्गोविन्दपाद आदि प्राचीन रससिद्ध लोग, तथा नागार्जुन, भैरवनाथ, सोम नाथ, सिद्धनाथ, आदिनाथ, चर्पटीनाथ, गोरक्षनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ आदि ।

रसतन्त्रों के नाम—रसेन्द्रसंहिता, दत्तात्रेयसंहिता, अगस्त्य-संहिता, नासत्यसंहिता, गोरक्षसंहिता, रुद्रयामलतन्त्र, महारसा-

यनतन्त्र, कामधेनुतन्त्र, दत्तात्रेयतन्त्र, सिद्धलक्ष्मीश्वरतन्त्र, लम्पटतन्त्र, स्वच्छन्दभैरवतन्त्र, मन्त्रानभैरवतन्त्र, काकचण्डी-श्वरतन्त्र, हरीश्वरतन्त्र, महादेवतन्त्र, नागार्जुनतन्त्र, बालतन्त्र, चन्द्रमेनसिद्धान्त, लङ्केशसिद्धान्त, कपिलसिद्धान्त, ब्रह्मसिद्धान्त, रसरत्नाकर, रसरत्नप्रदीप, रसपारिजातप्रभृति असंख्य रसग्रन्थ थे जिनका अब नाम मात्र ही सुना जाता है ॥

हाय ! जिस रस विद्या (रसायन Chemistry) के आज से एक सहस्रवर्ष पूर्व भारत में अनगिनत आचार्य थे, असंख्य ग्रन्थ प्रसिद्ध थे तथा व्यवहार में आते थे, उसी विद्या के ग्रन्थ आज उंगलियों पर गिने जाने वाले रह गये हैं जो हम को प्राप्त हो सकते हैं, यह कितने दुःख का विषय है । रसतन्त्र के आचार्य तो कहीं नाम मात्र को भी नहीं दिखाई दे रहे हैं । प्राप्त होने वाले रसग्रन्थ कठिन हैं और उन्हें समझने वाले भी रसवैद्य बहुत कम रह गये हैं । जो कोई अपने को इस विद्या के पण्डित मानकर रसवैद्य कहाते भी हैं वे भी इस रसशास्त्र की विद्या को अपना पैतृक धन मान कर देश जाति आदि के भेद से अपने मनमें ईर्ष्या द्वेष भरकर अपने उन शिष्यों को भी नहीं सिखाते हैं जोकि उनके अनन्यभक्त रहते हुए अनेक वर्ष तक सेवा करके विद्या पढ़ चुकते हैं । वे तो उस कहावत को सच्चा करके दिखा रहे हैं जिसके अनुसार हल्दी की गांठ लेकर चूहा पंसारी बन बैठा था ।

इसके अतिरिक्त आजकल के कुछ वैद्य जो प्राचीन आचार्यों के रचे हुए रस ग्रन्थों को अपने घर से वा कहीं बाहर से प्राप्त कर लेते हैं वे तो उन ग्रन्थों को सूर्यदेव तक को भी नहीं दिखाते प्रेस में प्रकाशनार्थ तो क्यों देने लगे ।

हाय ! जिस आयुर्वेद शास्त्र का विविध देशों से आये हुए ऋषि, महर्षि, सिद्ध, आचार्यों लोगों ने बड़े २ सम्मेलन करके प्रथम समय में प्रादुर्भाव किया था । जिन सम्मेलनों में सम्मिलित होने वाले ऋषियों, सिद्धों तथा आचार्यों ने समस्त विश्व की मंगलकामना से अपने अनुभव में आये हुए आयुर्वेद के सम्पूर्णतत्त्वों को पूर्ण रूप से सभा में कहकर आयुर्वेद के कल्पतरु को प्रतिदिन उत्तरोत्तर अत्यन्त पुष्ट किया था, उसी की अब कैसी दुरवस्था है यह बात भारत के वैद्यों के लिये बड़े अपमान की है ।

इस दशा को देखकर श्रीमान गुरुवर्य कविराज नरेन्द्रनाथ जी मित्र महोदय ने मुझे आज्ञा दी कि मैं अपने गुरु जी के अनुभव किये हुए इस शास्त्र के रहस्यों को पद्यों में बांधकर ग्रन्थ रूप में भारत के वैद्यों के करकमलों में समर्पित करूं ।

ऐसे दुष्कर कर्म में मैं मन्दबुद्धि यद्यपि अशक्त था तो भी मैंने गुरुजी के आदेश को शिरोधार्य करके यह प्रयत्न किया है । सो यदि यह मेरा प्रयत्न भारतीय वैद्यों को कुछ भा उपकार कर सका तो मैं अपने परिश्रम को सकल मानूंगा ।

इस ग्रन्थ में पारे के अपने अनुभव किये हुए आठ संस्कार ही कहे गये हैं, अपने अनुभव में न आये हुए सभी (१८) संस्कार वर्णन नहीं किये हैं। इस रसतरंगिणी में कहीं तो पूर्वाचार्यों की कहीं हुई रसपद्धति ही के अनुसार वर्णन किया गया है परन्तु कहीं २ पर नव्य रसायन तंत्र (Chemistry) में कहे हुए सिद्धान्त भी मैंने माने हैं, जैसे कि—

“गन्धाश्म गैरिकाशीस कांची ताल शिलाञ्जनम् ।

कंकुष्ठं चेत्युपरसाश्चाष्टौ पारदकर्मणि ॥ ”

इस वर्णन में पूर्वाचार्यों ने गन्धक, गेरु, कसीस, फिटकरी, हड़ताल, मनशिला, अंजन तथा कंकुष्ठ ये आठ उपरस माने हैं। इनमें से गेरु, कसीस, अंजन तथा कंकुष्ठ इन चारों के मध्य में गेरु में लोहे के अंश की विशेषता होने के कारण, कसीस के रूपांतर हुए २ लोहांश के तत्त्व से युक्त होने के कारण, इस ग्रन्थ में इन्हें उपधातुओं में गिना गया है। अंजन को सीसक आदि धातुओं के अंशों से मिश्रित होने के कारण मिश्रक धातुओं में ही गिना गया है। कंकुष्ठ को एक विशेष बनौषध होने के कारण इस ग्रन्थ में नहीं गिना गया है।

“कम्पिल्लश्चपलो गौरीपाषाणो नवसादरः ।

कपर्दो बन्हिजारश्च गिरिसिन्दूर हिंगुलौ ॥

मृदारशृंगमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृताः ।

रससिद्धिकराः प्रोक्ता नागार्जुनपुरःसरैः ॥”

अर्थात्—रससिद्धि करने में ये आठ पदार्थ साधारण रस कहाते हैं १-कमीला, २-चपल, ३-गौरीपाषाण, ४-नौसादर, ५-कपर्द (कौड़ी), ६-बन्हिजार (अम्बर), ७-गिरिसिन्दूर, ८-मुर्दासंख, ९-हिंगुल ।

इन श्लोकों द्वारा नागार्जुन आदि रससिद्धों ने साधारण रस कह कर पढ़े हुए कमीला नौसादर कपर्द बन्हिजार गिरिसिन्दूर मृदारशृंग इन के बीचमें कम्पिल्ल (कमीला) तो वनौषधि होने के कारण हमने साधारण रसों में नहीं गिना, उसे तो पुस्तक में भी स्थान नहीं दिया, क्योंकि वह निघंटु ग्रन्थों का ही विषय है, वे ही उसे लिख सकते हैं । नवसार क्योंकि एक विशेष प्रकार का चार है, इस लिये उसे विशेष चारों में ही गिना है (लिखा है) । कपर्द को मरे हुए विशेष जल जन्तु (कौड़ी) की हड्डी होने के कारण जान्तव (जन्तु संबंधी) पदार्थों में पृथक् गिना दिया है । बन्हिजार (अम्बर) यद्यपि जन्तु विशेष से उत्पन्न होता है पर क्योंकि रसौषधों में उसका प्रयोग नहीं होता इसलिये इस पुस्तक में उसका वर्णन नहीं किया गया । गिर सिन्दूर तथा मृदारशृंग को सीसाधातु से युक्त होने के कारण उपधातुओं में गिना गया है ।

“ताभ्यंचविसला तुत्थंकांस्यं पित्तलकं तथा ।

सिन्दूरं शैलनिर्यासः स्मृताः सप्तोपधातवः ॥”

इस श्लोक में उपधातुओं में पढ़ी हुई कांस्य, पित्तल, तथा शिलाजीत के मध्य में कांसी तो ताम्रतथा वंग के अंश से मिश्रित होने के कारण, पित्तल यशद के अंश से संमिश्रित होने के कारण, और शिलाजीत लोहादि धातुओं से मिश्रित होने के कारण मिश्रक धातुओं में हमने पढ़ी है।

कहीं पर रसतन्त्रों में न पढ़ी हुई मृगशृंग, समुद्रफेन आदि का भी शोधन मारणादि विधान होने के कारण बराटक (कौड़ी) आदि पदार्थों की समता के कारण से इन्हें भी जान्तव पदार्थों में ही पढ़ना हमने उचित समझा है। तथा प्राचीन रस - शास्त्रों में सामान्यता से पढ़े हुए विष तथा उपविषों का उन २ रसों में प्रधान अंग होने के कारण और सूक्ष्म रूप से उनका ज्ञान आवश्यक कर्त्तव्य होने के कारण पृथक् रूप में ही हमने उनको गिना है तथा उनका सविस्तर गुण वर्णन भी किया है।

कहीं पर प्राचीन रसतन्त्रों में नाममात्र को भी जिनका वर्णन नहीं किया गया था परन्तु नव्य रसायन शास्त्र (Chemistry) में जो प्रसिद्ध हैं ऐसे निम्बूकाम्ल, टङ्कणाम्ल, सोरकाम्लीयरजत, आरनल्लीय कसीसकद्रव वा, गन्धकाम्लीय यशद आदि अत्युपयोगी विषयों का भी इस रसतरंगिणी में

सन्निवेश किया है।

और उन २ स्थानों पर रस, उपरस, धातु उपधातु आदि के अवश्य जानने योग्य स्वयं अनुभव किये हुए, शास्त्रों से सम्मत मात्रा भेद, गुण, तथा पूर्व के आचार्यों द्वारा न कहे हुए विशिष्ट गुण, तुरन्त व्याधि को हरने वाले शास्त्रों में देखे हुए आमयिक प्रयोग भी बिना कपट के स्पष्ट लिख दिये हैं। इस पुस्तक में कहे हुए रस, उपरस आदियों की शोधन तथा मारणादि की सब विधियों प्रायः स्वयं अनुभव की हुई हैं, तथा सुख पूर्वक सिद्ध हो जाने वाली ही हैं। इन सबको भी यहां विस्तार पूर्वक ऐसे लिख दिया है जिससे कि सुकुमार बुद्धि वाले भी शास्त्र के रहस्य को समझ सकें तथा शास्त्रोक्त क्रियाओं को अनायास ही सिद्ध कर सकें।

इस ग्रन्थ के निर्माण करने में श्रीमान गुरुवर्य कविराज नरेन्द्रनाथ जी मित्र ने जो मेरी सहायता की थी, उस उपकार के भार को सदा ही सादर सावधान चित्त से उठा रहा हूं। और जो मेरे परम मित्र विद्यालंकार पदवी से भूषित श्रीजयदेव वर्मा महोदय ने प्रूफों के संशोधनादि कर्मों द्वारा मेरी सहायता की है, उसे भी कृतज्ञतापूर्वक अभिनन्दन करता हूं।

अन्त में—“अक्षरों के जोड़ने (Compose करने में, अथवा अज्ञान में, अथवा प्रमाद में (लापरवाही में) कोई शब्द इधर

उधर लिखकर भूल हो गई हो, तो सज्जन लोग उसका दयापूर्वक उचित संशोधन करले। जहां कहीं पुरुष होने के कारण मुझ से भूल हो गयी हो, उसे कृपा करके अपनी युक्ति द्वारा संपुष्ट करते हुए मुझे सूचित करें, जिससे कि द्वितीय बार छपवाते समय उन सब भूलों को शुद्ध करा दिया जाये।”

यह निवेदन करता हूँ—

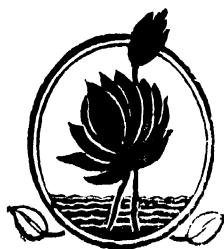
वैद्यों का सेवक

सदानंद शर्मा

घिल्डियाल

मेषार्क दिन ?

विक्रमाब्द १९८१



ॐ

रसतरङ्गिणी भाषा

अथ रसशाला विज्ञान नामक प्रथम तरङ्ग ।

जो अपने पुत्र गणेश जी के मुख को प्रेम से चूम रही हैं, जो देवरूपी कदंबवृक्षों के पोषण करने के लिये मेघमाला रूप हैं अथवा देवों की प्रधाना हैं, जिनमें दया के रस की तरंगें उठती रहती हैं, जो दानवों के समूहों को नाश करने वाली हैं, जो पापों को दूर करने वाली हैं, जिनको देवता नमस्कार कर रहे हैं, ऐसी महादेव जी की पत्नी पार्वती जी, मेरे हृदय में स्थिर होकर सदा बसती रहे ॥१॥ ज्योतिष शास्त्र रूपी महा-समुद्र के सारे भेद को मल्लाह के समान जानने वाले तथा उसके पार पहुँचे हुए अपने पिता जीवानन्द जी को तथा अपनी माता सरस्वती देवी जी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥ कहाँ तो मैं मन्दबुद्धि वाला सदानन्द, और कहाँ इतना बड़ा रस शास्त्र ? इस रस शास्त्र में तो निर्मल बुद्धि वाले विद्वानों की भी बुद्धि मन्द पड़ जाती है । यद्यपि यह बात सत्य है, तो भी मैं यत्न करता हूँ । मुझे आशा है कि मेरा प्रयत्न मेरे गुरु नरेन्द्रनाथ मित्र की कृपा से अवश्य सफल हो जायगा । अर्थात् मैं रसतरङ्गिणी पुस्तक सफलता से लिख सकूँगा ॥३॥ जो मैंने गुरु जी के समीप तीन वर्ष तक रह कर रसशास्त्र की गूढ़ बातों को यत्नपूर्वक जाना है, और उसके अनुसार कर्म करके उनका प्रत्यक्ष किया है, उन सब अपने अनुभव किये हुए विषयों को मैं सरल और मधुर पद्यों में, इस तरंगिणी में लिखने लगा हूँ ॥४॥ जो लोग प्राचीन, दुर्ज्ञेय, रसशास्त्रों को समझने में

कष्ट अनुभव करते हैं, जो लोग सन्देह उत्पन्न करने वाली, अति कष्टदायिनी रस पकाने की क्रियाओं में हतबुद्धि हो जाते हैं ॥५॥ जो उत्तमोत्तम ग्रन्थों को नहीं पढ़े हुए हैं तथा सुगम साधारण ग्रन्थों को ही पढ़े हुए हैं और रसशास्त्रों में कही हुई बातों को नहीं समझते हैं ॥६॥ इस प्रकार के आजकल के जो बालक तथा बालिकाएँ हैं, उनको थोड़े ही समय में सुगमता से रसशास्त्र का ज्ञान कराने के लिये मैंने इस रसतरङ्गिणी नामक ग्रन्थ को लिखने का प्रयत्न किया है ॥७॥ यह रसतरङ्गिणी (रसों की नदी) नाम की पुस्तक, सदानन्द शर्मा घिल्डियाल ने महायत्न से (बाँधी) बनायी है ॥८॥

रसतरङ्गिणी का परिचय ।

जिसमें शिलाएँ तथा पत्थर आदि पड़े हुए हैं तो भी जो किसी की चोट नहीं पहुँचाती है, जिसमें बड़े बड़े साँप बह रहे हैं तो भी जो किसी को भयभीत नहीं करती है, ऐसी यह रसों की नदी सब के लिये सुखपूर्वक प्रवेश करा कर स्नान कराने वाली हो ॥ तथा (दूसरा अर्थ) जिसमें मनशिल का वर्णन है, पर जो खाने से किसी को बाधा नहीं पहुँचाती । जिसमें नाग-धातु या सीसे का वर्णन है पर उसके सेवन करने से भी किसी रोग का भय नहीं होता है, ऐसी यह रसतरङ्गिणी पुस्तक सबके पढ़ने के लिये सुगमता को धारण करे ॥९॥ जिसमें मगरमच्छ, नाकू आदि प्राणी हैं पर तो भी जो किसी को कष्ट नहीं देती, जिसमें बड़ा शब्द हो रहा है तो भी जिसकी चाल स्थिर रूप से चल रही है, ऐसी यह रसों (जलों) की, नदी सबके लिये सुखपूर्वक स्नान करने के योग्य होवे ॥ तथा (दूसरा अर्थ) जिसमें अभ्रकसत्त्व आदि का वर्णन है कि जिनके सेवन से हानि भी कुछ नहीं होती । जिसमें काँसी आदि धातु उप-

धातुओं का वर्णन है तथा स्थिरतापूर्वक सब क्रियाओं (कर्मों) को सिद्ध करने के उपाय वर्णन किये गये हैं, ऐसी यह रसतरङ्गिणी पुस्तक पाठकों के पढ़ने के लिये सुगमता को धारण करे ॥१०॥

रसवैद्य की प्रशंसा ।

जब तक विशेष २ संस्कारों की रीति से पारद को शीघ्र ही शुद्ध न कर लिया गया हो, या एक बार भी शुद्ध पारे की भस्म न बनायी गई हो, जब तक पारे की बुभुक्षा न कर ली गयी हो, जब तक अभ्रकसत्त्व न बनाया गया हो, तथा जब तक पारे में स्वर्ण का जारण न कर लिया गया हो, तब तक कोई पुरुष भी वैद्यों में उत्तम प्रतिष्ठा को पाकर प्राणाचार्य नहीं बन सकता है ॥११॥ मेरी यह रसतरङ्गिणी पुस्तक चाहे दोषों से युक्त भी हो तो भी धीर पुरुषों को इस की तनिक भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । क्योंकि सैंकड़ों कीड़ों से युक्त, काँटों से भरी हुई, केवड़े के फूल की नुस्वार क्या राजा लोग नाक में नहीं लेते ? वे लेते ही हैं । इसी प्रकार दोषयुक्त होने पर भी केवड़े के समान सुगन्धित यह हमारी “रसतरङ्गिणी” पुस्तक भी सबको पढ़नी ही चाहिये ॥१२॥

—रसशाला—

किसी शुद्ध बाटिका के अन्दर एक सुन्दर रसशाला बनानी चाहिये । उसमें जलके लिये नल लगे हुए हों, सुन्दर खिड़कियाँ तथा रोशनदान हों, लोगों की वहाँ भीड़भाड़ न हो तथा बहुत आना जाना न हो, सब प्रकार की औषधों के वर्ग वहाँ उपस्थित हों, रसकर्म करने में सिद्ध जो २ वैद्य पहले हो चुकेहों उनके वहाँ चित्र टंगे हुए हों । ऐसे २ बड़े २ सभी साधनों से युक्त करके उस सुन्दर रसशाला को बनायें ॥१४॥

रसशाला के कामों का बंटवारा

वैद्य को चाहिये कि वह रसशाला के पूर्व की दिशा में शंकर की मूर्ति स्थापन करे, आग्नेय (पूर्वदक्षिण के बीच की) दिशा में अग्निकर्म अर्थात् भट्टियाँ आदि बनावे। दक्षिण दिशा में पत्थर के कर्म अर्थात् खरल, हमामदस्ता, चक्की आदि से कूटना पीसना आदि कार्य करे ॥१५॥ नैऋत्य, (दक्षिण-पश्चिम की) दिशा में शस्त्र-कर्म अर्थात् चोर फाड़ का कर्म करने का प्रबन्ध करे। पश्चिम में जल, काँजी आदि से पारद आदि को धोना आदि कर्म करने का स्थान रखे तथा साधन रखे वायव्य (पश्चिम तथा उत्तर के मध्य की) दिशा में सुखाने आदि कर्मों के करने के लिये स्थान तथा साधन रखे। उत्तर दिशा में यंत्र आदि रखे ॥१६॥ (उत्तर पूर्व के मध्य की) ईशान दिशा में रससिद्ध करने के मूलभूत मुख्य २ साधनों को जो प्रतिदिन काम में आते हैं, रखे ॥१७॥

रसशाला के उपकरणद्रव्य

द्रोणी या नौका रूप लंबे २ तथा गोल २ पत्थर या लोहे के बने हुए खरलों को वहाँ रखे, साथ ही उनके घोटने या कूटने वाले मूसल चट्ट भी रखे ॥१८॥ छोटे नड़े सब मापों के बने हुए बहुत से पात्र भी जो शीशे, भिट्टी, काठ तथा लोहे आदि के बने हुए हों, वहाँ रखे ॥१९॥ संडासी (चिमटा), कैची, चाकू, छाज, ऊखलमूसल, छलनी, मूषा (प्याले) आदि सभी आवश्यक वस्तुओं को वहाँ रखे ॥२०॥ वैद्यराज को चाहिये कि दोला-यंत्रादि की पूरी सामग्री भी वहाँ सुरक्षित स्थान में रखे ॥२१॥ इसके साथ ही बड़ी दृढ़, विविध आकारवाली, शीशे की बनी हुई कुप्पियें तथा शीशियें भी ढक्कनों (कार्को) के सहित रस रखने के लिये वहाँ रखे ॥२२॥ विविध प्रकार के सुन्दर २ पित्तल आदि धातुओं

की बनी हुई तुलाए (तकड़ी, तराजू) तथा तोलने के बट्टे भी वहाँ संभाल कर रखे ॥२३॥ चिकने, सर्वथा नये, श्वेतरंग के कागज भी रखे, जिनमें डालकर रसभस्म आदि किसी को दिये जावें ॥२४॥ अरणे उपले (जंगली कंठे) काष्ठ या ईंधन तुष, (धान्यों के छिलके), तिनके, पानी से बुझे हुए कोयले, अन्तर्धूम बुभाये हुए कोयले, ये सब ही वहाँ पर रखे ॥२५॥ और भी जो जो वस्तुएं देश काल के उपयोगी हों उनको वहाँ वैद्य रखे ॥२६॥ प्रतिदिन रसशाला की सफाई अच्छे चतुर काम करने वाले भूत्यों से वैद्य करवाता रहे जिससे वहाँ किसी रोग आदि के फैलने का भय न हो ॥२७॥

परिचारक का लक्षण ।

वैद्य को चाहिये कि परिचारक या सेवक ऐसे रखे जो कि उद्यमी, सत्यवादी, लोभरहित, परम शुद्ध, शूरवीर, तथा पथ्य भोजन करने वाले हों ॥२८॥

रसकर्म में सिद्ध वैद्यों के नामों की गिनती

श्री शंकर, भैरव, नन्दी, स्वच्छन्दभैरव, मन्थानभैरव, शंभु, ब्रह्मा, विष्णु, भास्कर, ॥२९॥ कापालिक, लंकेश, अगस्त्य, नरवाहन, नागार्जुन, नरेन्द्र, काकचण्डीश्वर, ॥३०॥ मत्त, माण्डव्य, गोविन्द, नागबोधि, विशारद, यशोधन, रत्नकोष, व्याडि, गोरक्षनाथ, ॥३१॥ ये उत्तम नामों वाले रससिद्ध वैद्य पहले हो चुके हैं । इन सब के नाम प्रतिदिन रसपाक की सिद्धि के लिये पढ़ने चाहियें ॥३२॥

रसशास्त्राचार्य का स्वरूप ।

जो सदाचारी, उत्तम चरित्र वाला, समदर्शी, उत्तम आशा वाला, सत्यवादी, सिद्ध मंत्र वाला अर्थात् सिद्धमंत्रों को जपकर जिसने सिद्धि प्राप्त करली हो, सर्वदा शंकर से प्रेम करने वाला

हो ॥३३॥ जो धैर्यवान्, वीर, स्थिर बुद्धि वाला, रसकर्म में चतुर हो, जो रसशास्त्र (कैमिस्ट्री) में स्वतंत्रता से नये नये आविष्कार करने वाला हो। वही आचार्य उत्तम कहाता है ॥३४॥

शिष्य का स्वरूप ।

जो उत्तम अभिप्रायवाला, सदाचारी, अपने कुल के आचार में दीक्षित हो, गुरु की पूजा में लगा हुआ हो, वीर हो, सत्यवादी हो तथा दृढ़व्रत वाला हो ॥३५॥ जो आज्ञा मानने वाला हो, आलस्यहीन हो, उत्तम कुल का तथा अतिचतुर हो। जो आयुर्वेद में अभ्यास करता हो तथा कर चुका हो, वही शिष्य अच्छा होता है ॥३६॥

इन शिष्यों का उपनयन न करे ।

जो दुराचारी, दुश्चरित्रवाला, कुलीन न हो, मग्नादि पीकर मत्त रहता हो अर्थात् अहंकार से अकड़ा रहे। चोरी से या छल आदि करके नित्य विद्याग्रहण का लालच करे। जिसके कुल तथा शील का पता न हो, जो वेदनिन्दक नास्तिक हो, जो गुरुनिन्दा करने वाला हो, ऐसे विद्यार्थी यदि शिष्य बनना चाहे तो रसकर्म विशारद वैद्य, ऐसे शिष्यों को न यज्ञोपवीत दे, न विद्या पढ़ाए ।

इति कविराज श्री विद्याधर विद्यालंकार आयुर्वेद शास्त्री भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी की भाषा में रसशाला विज्ञान का प्रथम तरंग, समाप्त हुआ ॥१॥

अथ परिभाषा विज्ञानीय द्वितीय तरङ्ग ।

परिभाषा विज्ञान का फल ।

जो रस को बनाने वाला वैद्य पहले परिभाषाध्याय को पढ़ लेता है, वह रसशास्त्र के अर्थ जानने में कहीं पर भी भूल नहीं करता ॥१॥

परिभाषा का लक्षण ।

जो अतिगूढ़ हैं, जो नहीं कहे गये हैं, जो अल्प शब्दों में कहे गये हैं, जो सन्दिग्ध हैं, इस प्रकार के सब अर्थों को जो प्रकाशित करती है। तथा जो निश्चित अर्थों को ठीक २ बतला देती है, विद्वान् पुरुष उसे ही परिभाषा कहते हैं ॥२॥

लवणपञ्चक

सेंथालवण, सामुद्रलवण, विड्लवण, सौवर्चल लवण तथा रोमक लवण, ये पाँच प्रकार के लवण होते हैं। इन्हें ही लवण-पञ्चक या पञ्चलवण कहते हैं ॥३॥

लवणत्रिक

सैन्धव, रुचक अर्थात् सौवर्चल (सौंचल), पाक्य (विड्लवण) ये तीनों लवणत्रिक या त्रिलवण कहाते हैं ॥४॥

सैन्धव की मुख्यता ।

विद्वान् पुरुषों ने इन सब लवणों में से सेंधा लवण ही मुख्य माना है। यदि इस पुस्तक में कहीं पर सामान्य “लवण” शब्द कहा जाये तो वहाँ सेंधा लवण ही लेना चाहिये ॥५॥

क्षारद्वय तथा क्षारत्रय ।

स्वर्जिका या सजीक्षार, यवक्षार या जौखार ये दोनों क्षारद्वय कहाते हैं। इनके साथ सुहागा भी लें तो उसे क्षारत्रय या क्षार-त्रिक कहते हैं ॥६॥

चारपञ्चक ।

मुष्कक्षार (मोखा का क्षार), जौखार, ढाक के पेड़ का क्षार, सज्जीक्षार तथा तिलों का क्षार ये पाँचों क्षार पञ्चक कहाते हैं ॥७॥

क्षाराष्टक ।

थोहर का क्षार, ढाक का क्षार, औंगा का क्षार, इमली की लकड़ी का क्षार, आक के पौधे का क्षार, तिलों के नाल (तनों) का क्षार, सज्जीखार तथा जौखार ये आठों क्षार क्षाराष्टक कहाते हैं ॥८॥

मूत्राष्टक ।

भैंस बकरी, भेड़, ऊँट, गौ, गधा, हाथी तथा घोड़े का मूत्र लेना चाहिये । इन आठ जीवों (स्त्री पुरुष भेद से जैसे लिखे हैं इनका ही मूत्र ले) के मूत्र को मूत्राष्टक कहते हैं ॥९॥ इनमें से गधा, हाथी, ऊँट तथा घोड़ा इन पुल्लिंग जीवों के ही मूत्र लेने चाहिएँ । गौ, बकरी, भेड़, तथा भैंस इन स्त्री जीवों का मूत्र लेना चाहिये, ॥१०॥ इन सब मूत्रों में से भी गौ का मूत्र अत्यन्त गुणदायक है । इसलिये जहाँ पर विशेष करके गौमूत्र न लिखकर केवल मात्र “मूत्र” शब्द लिखा हो तो वहाँ पर गौमूत्र ही निश्चय से ग्रहण करना चाहिये ॥११॥

गोर्वर ।

जो गौ के खुर्गों से मसला गया हो, जो गौशाला में ही पड़ा पड़ा सूख गया हो । जो चूर्ण के समान सूक्ष्म हो गया हो, उस गोवर को ही विद्वानों ने गोर्वर नाम से पुकारा है ॥१२॥

अम्लवर्ग ।

जम्बीरी नीबू (खट्टा), छोटा नीबू (कागजी), अम्लबेद (नीबू का एक भेद), इमली, नारंगी, खट्टा अनार, वृक्षाम्ल

कोकम), बिजौरा नीबू (बिजूरी), चाँगेरी (खट्टी बूटी, तिपतिया, चणकाम्ल (चने के पौधे की ओस से बनाया हुआ) खट्टा बेर, करमर्द या करौंदा, चूका, इन सब को अल्मवर्ग कहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

अम्लपञ्चक

अम्लवेद, जम्बीरी नीबू, बड़ा नीबू, नारङ्गी, कागजी या छोटा नीबू ये पाँच फल (या इनके रस) अम्लपञ्चक माने हैं ॥ १५ ॥

दूसरे अम्लपञ्चक

बेर, खट्टा अनार, कोकम, चाँगेरी, इमली इन फलों का स्वरस अम्लपञ्चक या पंचाम्ल कहते हैं ॥ १६ ॥ सब प्रकार के अम्लों की जातियों में से नीबू ही अधिक गुणदायक है। अथवा अम्लवेद नीबू गुणदायक है। इमली भी गुणों में अधिक मानी है ॥ १७ ॥

पञ्च तिक्तक

गिलोय, नीम की जड़ की छाल, बाँसा, छोटी कटेली, पटोलपत्र ये पाँच पदार्थ तिक्त माने हैं। इन्हें पञ्चतिक्त कहते हैं ॥ १८ ॥

पञ्चमृत्तिका

ईंट का चूर्ण, भस्म या राख, बाँबी की मिट्टी, गेरू और नमक ये पाँच “पञ्चमृत्तिका” कहाते हैं ॥ १९ ॥

मधुरत्रिक

घी, गुड़ तथा शहद ये तीनों “मधुरत्रिकम्” “त्रिमधुर” या “मधुरत्रय” कहाते हैं ॥ २० ॥

पंचामृत

गौ का दूध, घी, दही, शहद तथा खाँड इन सब को इकट्ठा किया जाये तो ये पंचामृत कहाते हैं। ये रस आदि बनाने के काम आते हैं ॥ २१ ॥

पंचगव्य

गौ का दूध, घी, दही, गो मूत्र, तथा गोबर ये पाँचों पंचगव्य कहाते हैं ॥ २२ ॥

क्षीरत्रय

आक का दूध, बड़ का दूध और थोहर का दूध, इन तीनों के दूधों को क्षीरत्रय कहते हैं। ये रस के भारण आदि में काम आते हैं ॥ २३ ॥

दुग्धवर्ग

हथिनी, घोड़ी, गौ, भेड़ी, बकरी, ऊँटनी, भैंस, गधी, नारी, काकोदुम्बरी (कैम्बरी पहाड़ी नाम, या जङ्गली अंजीर) थोहर। दूधी, गूलर, आक, बड़, पीपल, लोध इन सब का दूध “दुग्धवर्ग” कहाता है ॥ २४ ॥

तैलवर्ग

तिल, सरसों, धतूरा, भिलौवा, एरँड, नीम तथा अलसी आदि द्रव्यों के बीजों से निकाले हुए तेलों को इकट्ठा करें तो “तैलवर्ग” कहाता है ॥ २५ ॥

कज्जली का स्वरूप

जल आदि द्रव पदार्थों के बिना गंधक आदि के साथ जब पारे को मिलाकर पीसते घोटते हैं और जब घोटते २ वह चिकना होकर काजल के सदृश हो जाता है तो इस काले रङ्ग के काजल

को “कज्जली” कहते हैं ॥ २७ ॥ इसी का नाम कज्जली, कज्जल, तथा कज्जलिका कहाते हैं। यह पारद के साथ मिलाकर बनने वाले रसों के बनाने में तथा पारद के पाक आदि में विशेषकर बनाई जाती है ॥ २८ ॥

रसपङ्क का लक्षण

जब पारे को गन्धक आदि धातुओं से मिलाकर द्रवपदार्थ डालकर पीसते हैं। वह भी पीसते २ कीचड़ सा बन जाता है तो उसे “रसपङ्क” कहते हैं ॥ २९ ॥

पिष्टिका

पारे को गन्धक से घोटें, बाद में दूध आदि द्रव डालकर घोटें। जब घोट कर पीठी बन जावे तो उसे ही पिष्टी या पिष्टिका कहते हैं ॥ ३० ॥

हिङ्गुलाकृष्ट रस

हिङ्गुल या शिंगरफ से जो पारा ऊर्ध्वपातन यन्त्र द्वारा निकाला जाता है उसे ही हिङ्गुलोत्थ पारद या हिङ्गुलाकृष्ट रस कहते हैं ॥ ३१ ॥

धातुसत्त्व लक्षण

एक कुठाली में वज्र अभ्रक आदि डालें और साथ में गलाने वाला कोई द्रावक औषध भी डालें, तेज आँच दें और धौंकनी से हवा दें। उससे वह धातु, तप २ कर गल २ कर अपने सार को छोड़ देती है। उसी सार या सत् को “धातुसत्त्व” कहते हैं ॥ ३२ ॥

वनौषधिसत्त्व लक्षण

वन की काष्ठौषधि को कुचल कर रस निकालकर या जलसे मिलाकर अग्नि पर पकावें। उसे वाष्पस्वेदन यन्त्र या भाप द्वारा

फिर पकावें। उस गाढ़े पदार्थ को उस औषधि का सार या सत्व कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं। (१—गुलाब के फूलों में जल डाल कर अर्क खींचने को भी सार या सत्व कहते हैं। २—मुलट्टी को कूट कर जल से क्वाथ करे। उस क्वाथ का अष्टमांश बचने पर क्वाथको छान ले। उसे फिर एक पात्र में रखे। उस पात्र को एक पानी के पात्र में रखे। अग्नि मन्द २ दे। इससे उस पात्र में वह क्वाथ गाढ़ा २ होकर उस द्रव्य या मुलट्टी का सार या सत्व बन जायेगा। क्योंकि सीधा आग पर रखने से सत्व के जल जाने का भय रहता है इस लिए उसे पानी वाले पात्र में रखते हैं। इस तरह पानी के भापों से वह सत्व पकाया जाता है।) इसे बनौषधि सत्व भी कहते हैं ॥३॥

सिक्थ तेल का लक्षण

मोम में तिल तेल लिखे हुए मान के अनुसार डालकर अग्नि पर पकावें। उसे हिलाता जाये। यह पककर मक्खन के समान हो जाता है। इसे ही “सिक्थतेल” कहते हैं। (इसी में रंग, सुगंधि आदि मिला दें तो वेजलीन का काम देती है) ॥ ३४ ॥

द्रावक गण

गुस्त्रा या रक्तियाँ, शहद, गुड़, घी, सुहागा तथा गूग्गल इस सब द्रव्यों को धातुओं में डालकर गलावें तो वे शीघ्र गलकर पिघल जाता है। इसीलिए इन्हें धातुओं का “द्रावकगण” कहते हैं ॥ ३५ ॥

ढालन

पिघले हुए बर्गआदि धातुओं को जब किसी द्रव पदार्थ में ढाला जाता है तो उसे ही रसशास्त्रियों ने “ढालन” कहा है ॥३६॥

मित्रपंचक

घी, रत्तियाँ, सुहागा, शहद तथा गूगल इन सब को इकट्ठा करले तो इन्हें मित्र पंचक कहते हैं ॥ ३७ ॥ विविध प्रकार के धातुओं को पिघलाने के लिये इस “मित्रपंचक” को ही प्रयोग करते हैं ॥ ३८ ॥

आवापलक्षण

जब बंग आदि को पिघला कर उसमें कोई द्रव्य डाला जाता है तो उसे प्रतीवाप या “आवाप” कहते हैं ॥ ३९ ॥

निर्वापलक्षण

आग्ने में लोह आदि धातुओं को तपा कर जब जल या अन्य स्वरसों आदि में बुझाते हैं तो उसे ही निर्वाप, निषेक या स्तपन कहते हैं ॥ ४० ॥

शुद्धावर्त लक्षण

जब अग्नि अत्यन्त ज्वालाओं से युक्त होकर श्वेत रंग की आभा निकालते हुए ऊपर को उठे वही काल धातुओं के सत्त्व निकलने का होता है। उसे ही शुद्धावर्त कहते हैं ॥ ४१ ॥

पर्पटी का स्वरूप

जब पारे गंधक की बनी हुई ताजी कज्जली को एक प्याले में डाल अग्नि पर पिघलाते ही केले के कोमल, बिछे हुए पत्ते पर बिछाकर उसे किसी वस्तु से दबाकर चपटा बना लेते हैं उसे ही पर्पटी या पर्पटिका कहते हैं ॥ ४२ ॥

ताडन

दो धातुएँ जब परस्पर मिली हों। उनमें से एक को नाश (जला) करके दूसरी धातु को शुद्ध करना हो ॥ ४३ ॥ तो बङ्ग-

नाल से फूँकें मारनी पड़ती हैं। उन फूँकों को ही “ताड़न” कहते हैं। जिस धातु को इस प्रकार ताड़न किया गया हो उसे ही “ताड़ित” धातु कहते हैं ॥ ४४ ॥

घोषाकृष्ट ताम्र

जब काँसी में ओषध डालकर अग्नि पर तपाते हैं और बंकनाल से ताड़ित करते हैं तब वह अपनी बंग धातु को नष्ट कर के शेष ताँबे को छोड़ देती है। वह ताँबा घोषाकृष्ट (अर्थात् काँसी से निकाला हुआ) कहा जाता है ॥ ४५ ॥

बंकनाल

पित्तल आदि धातुओं को एक हाथ भर लम्बी नलकी बनी हुई होती है। वह अग्नि में फूँकें मारने के काम में आती है। उसे बङ्कनाल कहते हैं ॥ ४६ ॥

स्वाँगशीत के लक्षण

जब कोई संपुट आदि आग में रखा हुआ ही आग के समाप्त हो जाने से स्वयं ठण्डा हो जाता है तो उसे स्वाँग शीत या स्वतः शीत कहते हैं ॥ ४७ ॥

बन्दिशीत लक्षण

जो पदार्थ अग्नि में पड़ा हो, उसको बाहर निकाल कर जब शीतल किया जाता है तो उसे बन्दिः शीत कहते हैं ॥ ४८ ॥

भावना लक्षण

जब धातु आदियों के चूर्ण को किसी द्रव पदार्थ से पीस कर सुखाते हैं। उसे ही उस द्रव की भावना देना या भावन शब्द कहते हैं ॥ ४९ ॥

भावना में द्रव का परिमाण

चूर्ण किया हुआ द्रव्य जितने रस से गीला हो जाये, उतना ही (द्रव) रस उसमें डाले, यही भावना देने की विधि है ॥ ५० ॥ यदि स्वरस की जगह किसी क्वाथ की भावना देनी हो तो क्वाथ्य द्रव्य को इतना ले जितना भावना योग्य हो । उसमें आठ गुणा जल डाल कर पकावे । जब पक कर आठवाँ भाग क्वाथ रह जावे तो उस क्वाथ को छान कर भावना के लिये प्रयोग करें ॥ ५१ ॥

शोधन ।

जब विशेष २ कही हुई औषधों के साथ धातु को पीसते हैं और इस प्रकार उस धातु को मल से पृथक कर शुद्ध करते हैं तो उसे ही शोधन कहते हैं ॥ ५२ ॥

वारितर लक्षण

लोहे की भस्म जब जल पर डालने से तैरने लगें तो उसे ही “वारितर” कहते हैं ॥ ५३ ॥

मृतलोह

यदि लोहे की भस्म को तर्जनी उंगली और अंगूठे से खूब परस्पर रगड़ें तो वह दोनों की माँस की रेखाओं में घुस जायेगा और झाड़ने से बाहर नहीं निकलेगा । इसे ही “मृतलोह” या लोह भस्म या मरा हुआ लोह कहते हैं ॥ ५४ ॥ मरे हुए लोहे को चाँदी, घी तथा शहद से मिलाकर पुट में डाल कर तेज आँच दो यदि वह भस्म चाँदी से न मिले, तथा चाँदी वजन में कम अधिक न हो तो समझो यह मृत लोह है । (यह सूक्ष्म परीक्षा है । पहली लोह भस्म की स्थूल परीक्षा थी) ॥ ५५ ॥

अपुनर्भव लक्षण

धातु की भस्म को मित्रपंचक से मिलाकर कुठाली में डालकर आग पर तपावें। पिघलकर यदि वह फिर धातु रूप में न बन जाये तो उसे ही अपुनर्भव या निरुत्थ कहते हैं ॥ ५६ ॥

निरुत्थ लक्षण

अपुनर्भव लोह भस्म को चाँदी के साथ मिलाकर आग पर तपावें। यदि वह चाँदी के साथ नहीं लगता तो समझो वह निरुत्थ है। उसे निरुत्थ कहते हैं ॥ ५७ ॥

अमृतीकरण

लोह आदि धातुओं को मारण करके उन मृत धातुओं के शेष दोषों को दूर करने के लिये जब उनका और संस्कार किया जाता है तो उसे “अमृतीकरण” कहते हैं ॥ ५८ ॥

परिष्कृतसलिल

जब जल को एक बड़े पात्र में डालकर अग्नि पर रखते हैं उस पात्र में से एक नाली लगाकर दूसरे शीतल पात्र में उसका मुँह खुला छोड़ देते हैं। उस पात्र में अग्नि से तपकर भाप उठते हैं। वे नाली में से होकर दूसरे पात्र में शीतल होकर गिरते हैं। उस शुद्ध हुये वाष्पजल को परिष्कृतसलिल कहते हैं। (अर्थात् इसी तरह बनते हैं) ॥ ५९ ॥

मान परिभाषा

पहले मान (माप) की परीक्षा करे, फिर योग बनावे। इसीलिये यहाँ मान लिखते हैं ॥ ६० ॥ छह गोरी सरसों के समान एक यव (जौ) होता है। तीन यवों के समान एक गुंजा या रत्तिका (रत्ती) होती है। आठ रत्तीका एक माशा होता है।

१२ माशे का एक तोला होता है ॥ ६२ ॥ बटक, क्षुद्रक, द्रंक्षण, ये सब नाम तोलक के ही हैं। दो तोलक का एक कर्ष होता है, इसे ही तिन्दुक भी कहते हैं ॥ ६३ ॥ अक्ष, विडाल पदक, कवल-ग्रह तथा सुवर्ण इसी के नाम हैं ॥ ६४ ॥ दो कर्ष को अर्धपल कहते हैं। शुक्तिका, अष्टमिका, पलाद्ध ये सब दो कर्ष के नाम हैं ॥ ६५ ॥ दो शुक्तियों का एक पल होता है। उसे ही मुष्टिका, षोडशिका, चतुर्शिका, बिल्व तथा प्रकुञ्च कहते हैं ॥ ६६ ॥ दो पलों का प्रसृत या प्रसृति कहाती हैं। दो प्रसृतियों का एक कुडव कहाता है। इसे ही अञ्जलि भी कहते हैं ॥ ६७ ॥ दो कुडवों का एक शराव या मानिका या अष्टपल रस शास्त्रों में विद्वानों ने माना है ॥ ६८ ॥ इन दस पलों से ही आज कल का सेर बनता है यह अस्सी (८०) तोले का होता है ॥ ६९ ॥

धन्वन्तरिभागः ।

अग्नि पर पकाकर सिद्ध किये हुए रस आदि का तथा घी और तेलों का आधा भाग दवा बनाने वाले वैद्य को देना चाहिये। धातुओं की भस्म बनानी हो तो चौथाई भाग वैद्य को देवें। अवलेह बनाया हो तो वैद्य आठवाँ भाग लेवे ॥ ७० ॥ अरिष्ठ, आसब तथा सुराआदि बनाये हो तो चौथाई भाग, चूर्ण बनाये हो तो सातवाँ भाग श्रेष्ठ वैद्य को देना चाहिये। स्वास्थ्य तथा मँगल कामना के लिये ये भाग वैद्य को अवश्य ही देने चाहियें। इस प्रकार वैद्य को धन्वन्तरि मान कर जो औषधों का भाग करके उसे रोगी देते हैं उसे पूर्वाचार्य धन्वन्तरि भाग कहते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

विश्वास घातक वैद्य

जो वैद्य लोभ के कारण रोगी से धन्वन्तरि भाग से अधिक औषध हर लेता है। अथवा रोगी को दुष्ट औषध दे

देता है, वह वैद्य विश्वास घातक कहाता है ॥ ७३ ॥ इस प्रकार इस रसतरङ्गिणी पुस्तक में इस शास्त्ररूपी अगाध रत्नाकर (समुद्र) में से व्यवहार में आने वाले परिभाषारूपी अमूल्य रत्नों को इकट्ठा करके हमने उन्हें उचित २ स्थान पर जड़कर रत्नमाला बहुत सुन्दर बनाई है। यह विद्वानों के कण्ठों में सदा शोभित रहे। अर्थात् इसकी परिभाषाओं आदि को सब कण्ठ करलें ॥ ७४ ॥

इति कविराज श्री विद्याधर विद्यालङ्कार आयुर्वेद शास्त्री, भिषगाचार्यकृत रसतरङ्गिणी के भाषानुवाद में यह परिभाषा-विज्ञानीय नाम का द्वितीय तरङ्ग समाप्त हुआ ॥ २ ॥

अथ मूषाविज्ञानीय नाम तृतीय तरंग

मूषा के नाम

मूषा, कुमुदी, कुमुदिका, कौञ्चिका, बहिमित्रा तथा पाचनी ये सब नाम मूषा (कुठाली या प्याले) के हैं ॥१॥ क्योंकि सब धातुओं के दोषों को यह चुरा लेती है इस लिये इसे मूषा कहते हैं। कुमुदनी के फूल के सदृश इस की आकृति होती है अतः इसे कुमुदी कहते हैं ॥२॥ क्योंकि इस मूषा की मित्र अग्नि होती है अतः इसे बहिमित्रा कहते हैं। 'क्योंकि इसमें द्रव्य डालकर पकाये जाते हैं इसी लिये इसे पाचनी कहते हैं ॥३॥

पिधान

द्रव्यों से मूषा को भरकर उस पर ढक्कन लगाया जाता है, जिससे वह द्रव्य बाहर न निकलकर गिर पड़े। इस ढक्कन को ही पिधान कहते हैं ॥४॥

सन्धिलेपन

मूषाओं की सन्धिबन्द करने को मिट्टी या लोहकिट्ट आदि से बने जो लेप आदि लगाये जाते हैं उन्हें ही सन्धिलेपन या सन्धि-बन्धन कहते हैं ॥५॥

मूषा निर्माणोचित मृत्तिका

जिस मिट्टी का रंग पाण्डुर या श्वेत हो, जिसमें रेत के कण मिले हुए हों, जो देर तक अग्नि के ताप को सह सकती हो जो स्थूल कण वाली हो, उसी की मूषा बनानी चाहिये। वह मूषा के बनाने में उत्तम रहती है ॥६॥

सामान्यमूषा

जल में बुझाये हुए कोयले, धान्यों के तुष (तूड़ी) की राख, पटसन या सन, घोड़ों की लीद, पूर्वलिखित मिट्टी इन सब को बारीक करके एकत्र मिलाकर ढण्डे से कूट २ कर पानी की बूँदें डालकर एक जान करले। इसकी मूषा बनावे। इसे रस शास्त्रियों ने सामान्य मूषा माना है ॥७॥

वज्रमूषा

मिट्टी ३ भाग, सन या पटसन २ भाग, लीद २ भाग, तुषों की राख एक भाग, लोहे की मैल आधा भाग लें ॥८॥ सबको बारीक कर मिला, कूटकर मूषा बनावें। इसे ही वज्रमूषा कहते हैं। यही वज्रमूषा सत्त्वपातन के काम में आती है ॥९॥

योगमूषा

तुष आदि की राख से तथा लोहे की मैल आदि से बनाई हुई मूषा पारे को सिद्ध करने वाली होती है। इसीलिये इसे योग-मूषा कहते हैं ॥१०॥

वज्रद्रावणिका मूषा

गंडोये, मिट्टी का गारा, तुषों की राख, भैंस का दूध इन सब को मिलाकर कूटकर बनाई हुई मूषा को वज्रद्रावणिका मूषा कहते हैं ॥११॥ इस मूषा में वज्र अर्थात् हीरे अभ्रक आदि का सत्त्व निकाला जाता है अतः इसे वज्रद्रावणिका मूषा कहते हैं । इसे दो पहर या छः घंटे अग्नि में रखकर धौकनी से तपावें तो भी यह मूषा पिघलती नहीं है ॥१२॥

गारमूषा

दग्ध हुई २ गारे की काली मिट्टी ६ भाग, लोहे का मैल, जलाये हुए तुषों की राख इन सब पदार्थों से मिलाकर बनाई हुई मूषा को गारमूषा कहते हैं ॥१३॥ दो पहर या छः घंटे आँच देने पर भी निश्चित रूप से यह पिघलती नहीं, इसीलिये रसशास्त्री धातुओं के ढालने आदि में इसे प्रयोग करते हैं ॥१४॥

गोस्तनी मूषा

मुनक्का या द्राक्षा के समान लंबी सी, शिखावाली, ढक्कनदार मूषा बनावें । यह धातुओं के सत्त्वपातन, द्रावण अर्थात् पिघलाने तथा शुद्ध करने के काम आती है ॥१५॥

मल्लमूषा

दो प्यालों को सम्पुट रूप में इकट्ठा करके ऊपर नीचे रखकर बंद करें । इसमें पर्पटी आदि अनेक रस (रसरत्न समुच्चय आदि ग्रन्थों में कहे हुए) बनाये जाते हैं । इसे मल्लमूषा कहते हैं । (रसपर्पटी इसमें नहीं बनती । पर्पटी रस और है जो इसमें बनता है) ॥१६॥

महामूषा

जो गोल, चपटी, मूल में मोटी, विस्तार में समान हो, जिसका मुँह चौड़ा हो उसे ही महामूषा कहते हैं ॥१७॥ लोह,

अभ्रक, स्वर्णभाक्षिक आदि के सत्व निकालने के लिये क्योंकि यह महामूषा प्रयुक्त की जाती है। इसी लिये इसे स्थूलमूषा या महामूषा भी कहते हैं ॥१८॥

वृन्ताकमूषा

जैसे धतूरे का फूल ऊपर से फैला हुआ चौड़ा होता है अन्दर से छिद्र नीचे नाल में जाता है उसी प्रकार की मूषा बनावे। जो ऊपर से चौड़े मुख की धतूरे के समान हो उसके नीचे आठ उंगल लम्बी नाल हो बीच में छिद्र हो। ऐसा ऊपर की मूषा बनावे। नीचे एक मूषा १२ उंगल लम्बी वृन्ताक अर्थात् बेंगन के सदृश बनावे। फिर इन दोनों को ऊपर नीचे से संधि-बन्ध करके जोड़कर एक मूषा बना डाले। इसे वृन्ताकमूषा कहते हैं। क्योंकि खपर आदि धातुओं का सत्व इसी मूषा से निकाला जाता है ॥१९॥२०॥

मूषाप्यायनक

जब मूषा में द्रव्य को डालकर अग्नि पर पिघलाते हैं। तब वह पिघलने के रूप में ज्योंही आने लगता है उसी समय उसे निकाल लेना होता है। उस निकालने के क्षण को ही मूषाप्यायन-काल कहते हैं ॥२१॥

अङ्गारधानिका

अङ्गारधानिका, हसन्ती, हसन्तिका, अङ्गारशकटरी, हसनी ये सभी नाम अंगीठी के हैं। इस में मृदुद्रव्य पकाये जाते हैं। बंग आदि कोमल धातुओं को ढालने के लिये यह विशेष प्रयुक्त होती है। इसे ही अङ्गारधानिका कहते हैं ॥२२॥२३॥

कोष्ठिका

जो सत्त्वपातन आदि के काम में आती है, जो द्रव्यों को ढालने के काम में आती है ऐसी जो बन्धिमन्धानिका या भट्टी है उसे ही कोष्ठिका कहते हैं ॥२४॥

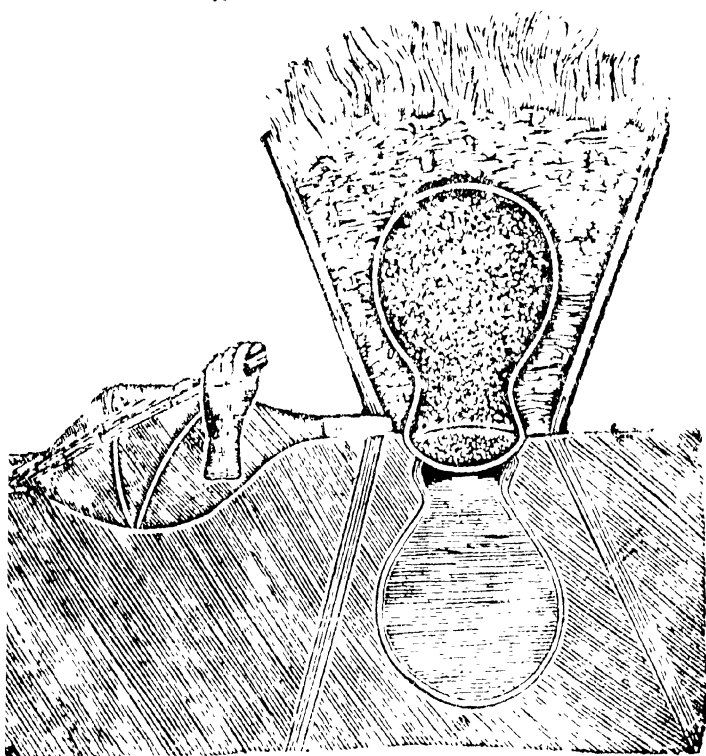
अङ्गारकोष्ठिका

सवा हाथ ऊंची, इससे आधो लंबी चौड़ी तथा बीच में से चौकोन भट्टी बनाओ। इसे मिट्टी से अन्दर से लीप दो। इसमें चार अंगुल का गोल छिद्र एक पार्श्व में कर दो। उसमें एक समकोण वाली पोली नाली तिर्छी करके प्रवेश करा दो। नाली के दूसरी ओर के मुख में धौंकनी का मुख घुसेड़ दो। फिर उस कोष्ठी या भट्टी में कोंयले ढालकर उसमें अग्नि सुलगाओ। उसमें द्रव्ययुक्त मूषा रख दो। अब इसे धौंकनी से हवा देकर आग में तपाओ ॥२५॥ यह अङ्गारों की कोष्ठिका (भट्टी) क्योंकि द्रव्यों को ढालने के काम आती है तथा सत्त्वपातन के काम विशेष करके आती है अतः इसे ही “अङ्गार कोष्ठिका” कहते हैं ॥२५॥२६॥२७॥२८॥

पाताल कोष्ठिका

भूमि के भीतर १२ अंगुल परिमाण का लंबा चौड़ा तथा ऊँचा एक गढ़ा बनाओ जो सब ओर से १२ अंगुल का हो। उसके मध्य में नीचे एक गोल छिद्र बनावे। उसमें एक तिर्छी नाली डाले। नाली के दूसरी ओर के मुँह में धौंकनी का मुँह प्रवेश करा दे तथा मुख को (धागे आदि से) कस दे। फिर द्रव्यों से भरी हुई मूषा को उस भट्टी में कोंयलों में रख धौंकनी से वायु देता रहे। इसमें मृदु द्रव्य ढालते हैं, इसे पाताल कोष्ठिका कहते हैं ॥२९॥

अङ्गार कोष्ठिका यन्त्र ।



अङ्गार कोष्ठिका का वर्णन

क—कोष्ठी या भट्टी जो भूमि पर १ गज ऊंची आधा गज चौड़ी है, नीचे से छोटी ऊपर से चौड़ी तिर्छी बनी हुई है।
 म—कोयले या उपलों की आग। मू—मूषा जिसमें धातु या द्रव्य भरा हुआ है, र—छिद्र मध्य में है। स—संधिवंद है।
 द—द्रव्य धातु। प—नीचे की मूषा। छ—छिद्र। ध—धौकनी से वायु दें। त—यह सत्त्व है जो धातु से तप कर नीचे का मूषा में गिरेगा। दोनों के मध्य छिद्र से गिरेगा।

तप्तग्वल्ल यन्त्र ।



तप्तग्वल्ल का वर्णन

ग—भूमि में गढ़ा

त—तुष, बकरी की सींगों, अग्नि

ख—बोहे का खरल, जो द्रोणीरूप है

प—बीच में पड़ा हुआ पारा ।

नोट—इस यन्त्र का वर्णन पृष्ठ ३४ पर देखें ।

पुट का लक्षण

रस, उपरस, लोह आदि धातुओं को कितनी बार कितनी उपलों आदि की आँच में पकाना है इस माप को बतलाने वाला होने के कारण ही इसे पुट कहते हैं ॥३२॥

पुट का प्रयोजन

रस, उपरस तथा लोहा आदि धातुओं को पुट देने से ही उनके दोषों का ह्रास तथा गुणों का प्रकाश होता है इसीलिये पुटपाक करना आवश्यक है ॥३३॥ पुटपाक करने से लोहा आदि धातुएँ निरुत्थ हो जाती हैं और उनमें अग्निदीपन करने का गुण आ जाता है। उनमें पानी पर तैरने की शक्ति आ जाती है। इसलिये पुटपाक करना चाहिये ॥३४॥ मरे हुए लोहा आदि धातु क्योंकि मरे हुए पारे से भी अधिक गुण वाले हो जाते हैं। उनको मारने के लिये केवल पुटपाक की विधि ही कही गई है। इसलिये पुट देना अच्छा माना है ॥३५॥

सामान्य पुट क्रम

जब पुट देने योग्य लोहा आदि धातुएं मूषा में बन्द करके अग्निमें रखी जाती हैं उनमें अपनी अनुकूलता के साथ जो अग्नि का उस धातु में प्रवेश करना है। इसे ही पुटक्रम कहते हैं ॥३६॥

सूर्यपुट का लक्षण

जब भावना देने वाली औषधों के स्वरस या क्वाथ से द्रव्यों को भावित कर के सूर्य की धूप में सुखाया जाता है तो उसे सूर्य पुट कहते हैं ॥३७॥

महापुट

एक ऐसा चौकोन कुण्ड या गढ़ा बनावे जो आधा व्यास गहरा हो, जो दोनों हाथ फैलाये हुए पुरुष की चौड़ाई के माप के समान २४ अंगुल लंबा तथा उतना ही चौड़ा हो। इसमें जंगली उपले डालकर नीचे का भाग भर देवे। उस पर मूषा को धातुओं आदि से भर कर बंद कर (सम्पुट को) रख देवे ॥३३॥ फिर उसके ऊपर अरने उपले रख दे और इस प्रकार उस कुण्ड को मुख तक भर देवे। फिर उसमें अग्नि सुलगाकर आग लगा देवे। इसे ही वैद्य महापुट कहते हैं। दोनों ओर बाहें फैला कर खड़े हुए पुरुष की दाएं हाथ की मध्य उंगली के सिरे से बाँये हाथ की मध्य उंगली के सिरे तक की लंबाई को व्यास कहते हैं। इससे आधी लंबाई को व्यामार्द्ध कहते हैं ॥३६॥

गजपुट

सवा हाथ लंबा चौड़ा गढ़ा खोदकर उसे जंगली उपलों से आधा भर दे। उस पर सम्पुट रखकर शेष आधा भाग जंगली उपलों से भर कर आग लगा दे। इसे ही गजपुट कहते हैं ॥४०॥

वाराह पुट

एक अरलि भर या २१ अंगुल लंबे, चौड़े तथा ऊंचे चौकोन गढ़े में वन्य उपलों के मध्य में सम्पुट को रखकर जो अग्नि दी जाती है उसे ही वाराहपुट कहते हैं ॥४१॥

कुक्कुटक पुट

२४ अंगुल लंबे चौड़े चौकोन गढ़े में वन्य उपले भर उसमें सम्पुट रख जो अग्नि दी जाती है उसे ही कुक्कुट पुट कहते हैं ॥४२॥

कपोत पुट

पृथ्वी के ऊपर या मध्य में जो आठ जंगली उपल रख कर उनके अन्दर सम्पुट रख कर जो अग्नि दी जाती है उसे ही कपोतपुट कहते हैं ॥४३॥

गोर्वर पुट

किसी कुण्ड या गढ़े में या पृथ्वी पर ही गोबरों से या तुषों से जो आग दी जाती है उसे गोर्वरपुट कहते हैं ॥४४॥

भाण्ड पुट

एक बड़े भाण्डे में तुष भर कर उस में मूषा रख जो अग्नि दी जाती है उसे विद्वानों ने भाण्डपुट कहा है ॥४५॥

बालुकापुट

खूब तपे हुए रेत के अन्दर दढ़ मूषा को रख कर जब पुट देते हैं तो उसे बालुका पुट कहते हैं ॥४६॥

भूधर पुट

भूमि के गर्भ (गढ़े) में मूषा को रख कर फिर दो अंगुल ऊंचा उस पर रेत भर दो उसके ऊपर अग्नि दें तो उसे भूधरपुट कहते हैं ॥४७॥

लावक पुट

एक सम्पुट को रखकर उसके चारों ओर १२ अंगुल भर गोबर या तुषों को भरकर जो अग्नि लगा कर पुट दिया जाता है उसे ही लावकपुट कहते हैं ॥४८॥

बिना मान कहे पुट देना

पुट के नाम जहां न बताये हों, वहां औषध का बल या अबल देखकर कोई सा उचित पुट दे देना चाहिये । जिससे वह औषध ठीक बन सके ॥४९॥

उपल नामानि

उपल, उत्पल, गिरिण्ड, पिष्टक, छाण, छगण, तथा करीष ये सब जंगली उपलों के नाम हैं ॥५०॥

इति कविराज श्री विद्याधर विद्यालंकार आयुर्वेदशास्त्री, भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी के भाषानुवाद में, यह परिभाषा-विज्ञानीय नाम का तृतीय तरंग समाप्त हुआ ॥३॥

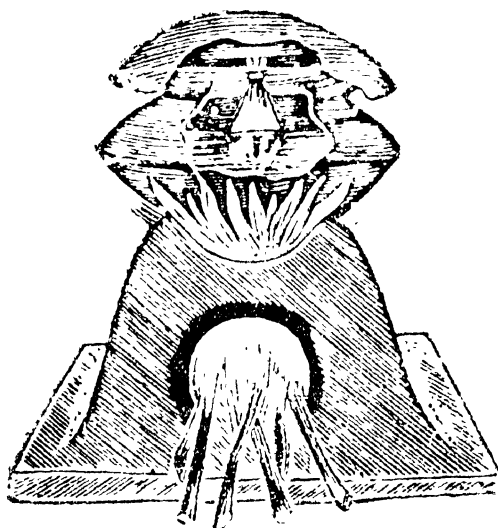
अथ यन्त्र विज्ञानीय नाम का चतुर्थ तरङ्ग

यन्त्र का लक्षण

रस, उपरस, लोहादि धातुओं को मारण शोधन आदि के लिये जिन के द्वारा यंत्रण अर्थात् काबू किया जाता है उन्हें यन्त्र कहते हैं ॥१॥

दोला-यन्त्र का लक्षण

स्वेदन करने योग्य पारा आदि पदार्थों को तीन तह किये हुए वस्त्र में डालें (भोजपत्र में रखकर फिर वस्त्रमें कई आचार्य रखते हैं), फिर उसे एक फीते से कसकर पोटली बनालें ॥२॥ फिर एक हाँडी के मुख के पास आमने सामने दो छिद्र करें। उसमें एक डण्डा डाल कर उसके मध्य में वह पोटली टाँग दें। हाँडी के आधे भाग में औषधों के रस आदि पदार्थ भरे होने चाहिये ॥३॥ अब गुरु क बतलाए हुए ढंगसे उस हाँडी को चूलहे पर रख नीचे अग्नि दें ॥४॥ इस प्रकार पारा आदि धातुओं को स्वेदन करे। क्योंकि इसमें दोला अर्थात् भूले की तरह लटकता हुआ पारा आदि धातु का स्वेदन किया जाता है इसी लिये इसे दोला यन्त्र कहते हैं। यह द्रव्योंके शोधन केलिये विशेष करके प्रयुक्त किया जाता है ॥५॥



दोला यन्त्र का वर्णन

अ—ठीकरे का ठक्कर

व—एक लकड़ी की डण्डी

स—भोजपत्र में रख, चार तहों वाले कपड़े में लिपटा हुआ
पारा

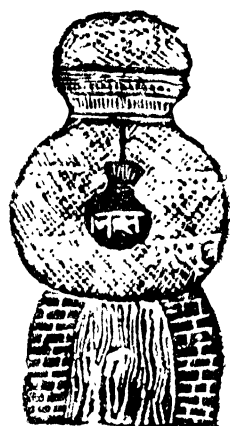
क—हांडी में भरा स्वरस या कवाथ

च—हांडी

भ—भट्ठी

ल—लकड़ी की अग्नि

दौलायन्त्र तथा स्वेदन यन्त्र ।

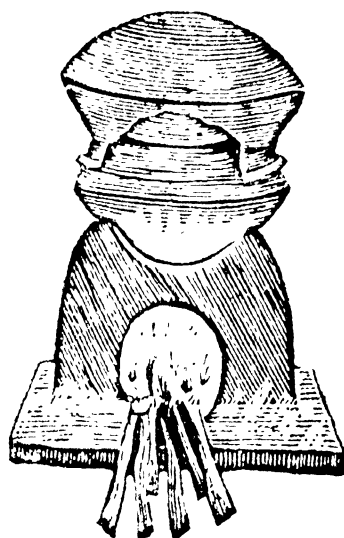


दौलायन्त्र का वर्णन

ह—होड़ी । प—पारा आदि द्रव्यों की कपड़े में बंधी पोतली । ल—लकड़ी की डंडी जो हांडी के सिरो में आरपार रखी है । ढ—ढक्कन । भ—भट्टी । अ—अग्नि । र—हांडी में भरा स्वरस या क्वाथ ।

नोट—यदि स्वरस या क्वाथ में ऊंची पोतली हो और स्वरस या क्वाथ की भाप में ही पारा आदि की पोतली को स्वेदन करें तो इसे स्वेदन यन्त्र कहते हैं । यदि क्वाथ में पोतली डूबी रहे तो दौलायन्त्र कहते हैं ।

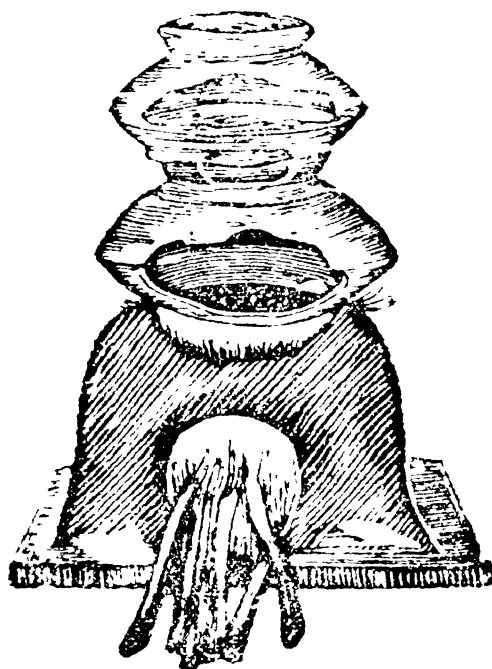
ऊर्ध्वपातन यन्त्र ।



ऊर्ध्व पातनयन्त्र का वर्णन

उ—ऊपर की औंधी हांडी । ह—नीच की हांडी में ।
 प—पारद या नौसादर आदि हैं । भ—भट्टा । अ—अग्नि दें
 तो ऊपर की हांडी में पारं नौसादर आदि के वाष्प लगाकर
 शुद्ध वस्तु प्राप्त होता है । ठंडा जल या उसकी पट्टी ऊपर की
 हांडी पर रखें ।

ऊर्ध्वपातन (विद्याधर) यन्त्र ।



ऊर्ध्वपातन (विद्याधर) यन्त्र का वर्णन

- अ—नीचे की हाँडी
- प—पारा आदि द्रव्य
- ब—ऊपर की हाँडी
- छ—छिद्र
- क—जल मृत्तिका का थाँवला
- ज—जल
- भ—भट्टी । लकड़ी की आग

ऊर्ध्व पातन यन्त्र

एक मिट्टी की सुट्ट, गोल ऐसी हाँडी लो जिस का पेट तो चौड़ा अधिक हो और मुखका व्यास (चौड़ाई) १२ उंगल का हो। उसके मुखके सिरे या होंठ दो उंगल मोटे हों। ऐसी हाँडी को नीचे रखे ॥ उसके ऊपर ठीक इसी प्रकार की दूसरी हाँडी उल्टी करके रखे। नीचे की हाँडी में पारा डालकर दोनों हाँडियों के मुँह को कपड़मिट्टी से बंदकर धूपमें सुखाले। ऊपर वाली हाँडीके ऊपर एक जलमृत्स्ना (पुराने लोहे का मैल, बबूल के गाढ़े क्वाथमें गूँधे उसीमें गुड़का चूर्ण डालकर कूट २ कर जलमृत्स्ना बनालेवे। इस में से पानी नहीं निकल सकता)। की ऊँची २ दीवार बना लेवे। उसमें एक छिद्र कर रखे। इस छिद्र में एक नलकी लगाकर इसे जलमृत्स्नासे सन्धि बंद करदें। नलकी के दूसरे सिरे को काग लगा कर बंद करदें। ऊपर वाली हाँडी का अन्दर का पेट बड़ा साफ तथा उज्ज्वल होना चाहिये, जिससे उसमें शुद्ध रूप में पारा-आदि धातु लग सकें। अब इस हाँडी को चूल्हे पर चढ़ा कर नीचे अग्नि जलायें। ऊपर वाली हाँडी की दीवार में शीतल जल भर दें। जब २ जल गरम हो नलकीका काग खोलकर उसे निकाल दें और काग लगा कर फिर शीतल जल भरदें ॥ इस यन्त्र द्वारा क्योंकि नीचे पड़ा हुआ पारा ऊपर की हाँडी में जा पड़ता है इसी लिये इसे ऊर्ध्वपातनयन्त्र कहते हैं ॥६---१०॥

अधःपातन यन्त्र

उसी प्रकार की दो हाँडियाँ लो। ऊपर की हाँडी में पारा लीप दो, नीचेवाली हाँडीमें जल भरदो। दोनों के मुखों की सन्धि बन्द करदो। एक गढ़ेमें इनको रख दो। ऊपर खूब जलते हुए

उपलोंकी अग्नि बारबार जलाते रहो। ऊपर की हाँडी के तल भागसे पारा उड़कर नीचे की जलवाली हाँडीमें गिरेगा। इसीलिये इसे अध-पातनयन्त्र कहते हैं॥११॥१२॥

तिर्यक पातन यन्त्र

एक लंबे घड़े में पारा डालो। उसके मुखके अन्दर से एक तिर्छी नली लाकर एक नीचे रखेहुए घड़े में लगा दो। दोनों ओर से नली को घड़ोंके साथ जलमृत्सना से जोड़ कर सन्धि बंद करदो। नीचे वाले घड़े में शीतल जल भर दो। पारे वाले ऊपर के घड़े का मुँह अच्छी तरह से बन्द करके उसे चूल्हे पर रख दो। नीचे निरन्तर अग्नि देते रहो॥ इससे पारा उड़कर तिर्छी नलकी में से होकर पानी वाले घड़े में गिरता है। इसीलिये इसे तिर्यकपातनयन्त्र कहते हैं॥१३-१५॥

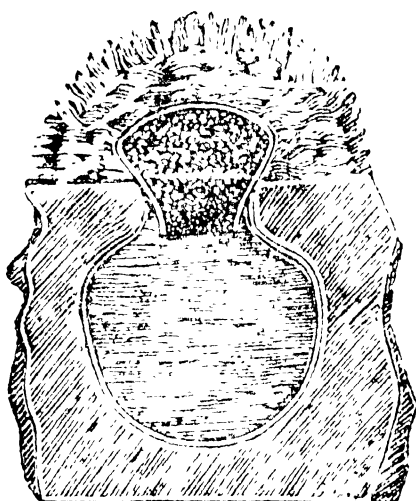
भस्म यन्त्र

एक बालिशत भर अर्थात् १२ अंगुल गहरा एक नया मिट्टी का मजबूत पात्र लो। उसके आधे भाग में (कपड़े से छनी हुई) राख भर कर उसे खूब दबा २ कर एक समान कर दो। उसके ऊपर हडताल आदि की टिकियाँ क्रम २ से चुनदो॥१६॥ फिर उसी प्रकार की छनी हुई राख को उन टिकियों के ऊपर डाल कर हाथ से दबा २ कर हाँडी को मुख तक भरदो। मुखपर कोई प्याला रख सन्धि बंद करदो। इसे चूल्हे पर रख कर नीचे आग जलाओ। इसे ही भस्मयन्त्र कहते हैं॥१७॥

कच्छपयन्त्र का स्वरूप

एक बड़े मिट्टी के पात्रमें (मटके में) जल भर दो। उसके अन्दर एक घड़े का ठीकरा रखकर उस ठीकरे में पारा गंधक की कज्जली से युक्त एक मूषा रखो। इस मूषा का मुख प्यालेसे बन्द करके सन्धि बंद किया हुआ हो। अब इस पात्र का मुँह भी एक

अधः पातन यन्त्र ।



अधः पातन यन्त्र का वर्णन

ग—भूमि में गढ़ा ।

अ—बड़ी हांडी ।

ज—जल से भरी ।

म—मिट्टी ।

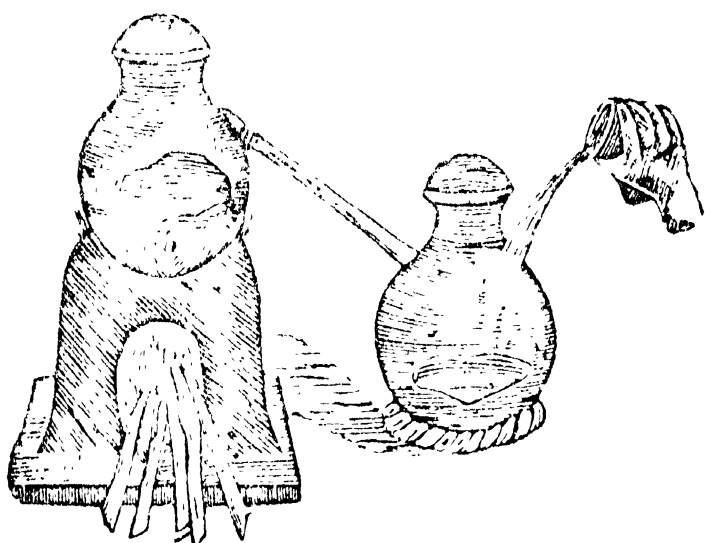
ह—छोटे मुंह की हांडी

प—पारा ।

उ—उपलों की आग ।

स—सन्धि लेप ।

तीर्थक् पातन यन्त्र ।



तीर्थक् पातन यन्त्र का वर्णन

ढ—ढक्कन ।

स—संधिलेप ।

ह—दो हांडी ।

प—पारा ।

न—दोनों हांडियों से जुड़ी हुई नाली ।

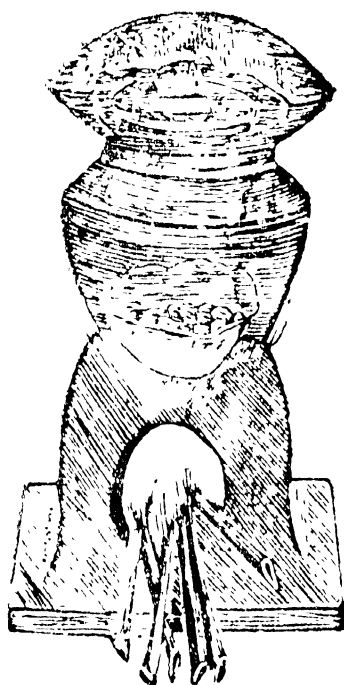
ज—जलधारा ।

श—शुद्ध पारा ।

भ—भट्टी ।

ल—लकड़ी की आग ।

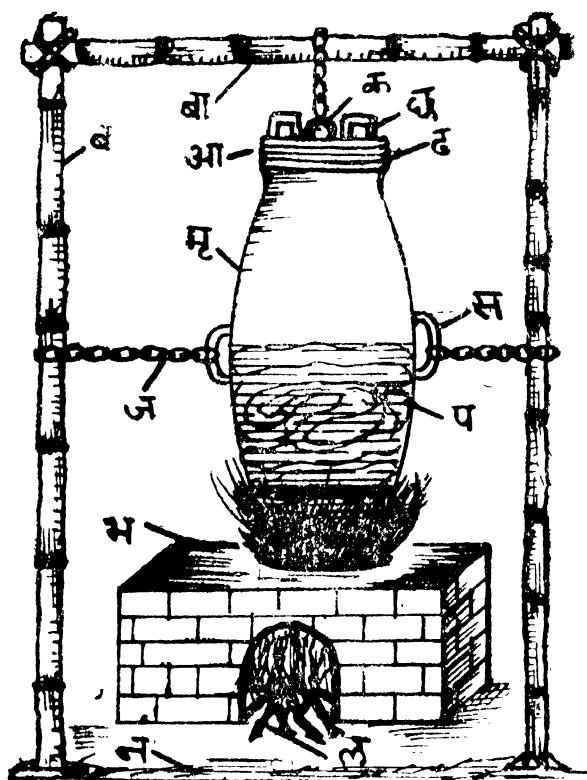
धूप यन्त्र ।



धूपयन्त्र का वर्णन

ह—लोहे का ८ उंगल ऊंचा ८ उंगल चौड़ा पात्र लें । द—द्रव्य भर दें जिससे सोने या चांदी के पत्रों को धूप देनी है । जैसे गंधक, हड़ताल, मनसिल, सीसा, बंग आदि भर दें । ज—गले के नीचे लोहे की शलाकाओं पर लोहे की जाली टिका दें । स—सोना या चांदी के पत्र रख दें । ल—लोहे की औंधे मुंह पड़ा ढक्कन । भ—भट्टी । ल—लकड़ी आग देने को । ध—धुआँ जो नीचे से उठकर सोना चांदी के पत्रों को भस्म करता है । इसे धूप यन्त्र कहते हैं ।

मृदंग यन्त्र ।



मृदंग यंत्र का वर्णन

व—३॥ हाथ लंबे बांस भूमि में गड़े हुए । न—भूमि ।
 बा—ऊपर का बांस या डंडा । क—कुंडा । ढ—पंचदार
 ढकन । आ—आर्वा या पेच या चूड़ियां । छ—दो कुंडे ।
 मृ—मृदंग की आकृति का पात्र । प—पात्र में पारा तथा गंधक
 की कज्जली आधा डालें । स—दो कुंडे । ज—जंजीर से बांध दें ।
 भ—भट्टी । ल—लकड़ी की आग देने से हिंगुल बन जाता है ।

प्याले से बन्द करके कपड़मिट्टी से बन्द करदो। इसे अग्नि पर रख खैर के कोयलों की तेज अग्नि दो। इसे ही कच्छपयन्त्र कहते हैं। (जैसे कच्छप या कलुआ जलमें रहता है, ऐसेही पारागंधक वाली मृषा जलमें रहती है इसीलिये इसे कच्छपयन्त्र कहा है)। इससे क्योंकि गंधक पारेमें जीर्ण होती है जिससे पारे को सिद्ध करते हैं इसीलिये यह कच्छप यन्त्र कहाता है ॥२०॥

भूधर यन्त्र

एक कुठाली में पारा आदि डालकर उसकी संधि बन्द करे। उसे एक गढ़े में रखदे। उसके नीचे ऊपर और चारों ओर रेत भरी होनी चाहिये। अब ऊपर से जलते हुए उपलों की आँच देवें इसे भूधरयन्त्र कहते हैं ॥२१॥

मृदङ्गयन्त्र

मृदङ्ग के समान एक ओर से तंग मुखवाला दूसरी ओरसे चौड़े मुखवाला एक सुदृढ़ पात्र बनावे। अन्दर से यह खाली हो ॥२२॥ उसके एक ओरके मुँह को पेचदार ढक्कन से कस दे। (दूसरा मुख बन्द रखे)। इसे पकड़कर घुमाने के लिये दोनों ओर दो हथ्ये (जिसमें मुट्टी आमके) लगे हों ॥२३॥ इसमें युक्तिपूर्वक पारागंधककी कज्जली डाल देवें। पेचदार ढक्कन उसमेंकसदे ॥२४॥ फिर साढ़े तीन हाथ ऊँचे दो खम्भे आमने सामने रख भूमिमें गाड़ देवे ॥२५॥ उन खम्भों में आमने सामने छिद्र करके एक डण्डा फँसा देवें। इस डण्डे में उस मृदङ्गयन्त्र को टाँग देवे। इस यन्त्र को घुमाने से कृत्रिम हिंगुल बनता है। आज कल इसका हिंगुल बनाने के लिये विशेष प्रयोग किया जाता है। (यहाँ हथ्ये और चक्र दोनों बनाने चाहिये)। चक्र डण्डेमें फँसाकर पात्र लटकाये ॥२६॥ ॥२७॥

स्थालीयन्त्र

एक हाँडी में लोहा आदि धातुओं को भर कर ऊपर से

एक प्याले से उस का मुँह बन्द करदे। कपड़मिट्टी कर सुखा लो। इसे चुल्हे पर रख कर नीचे अग्नि जलाओ। इसे स्थाली यन्त्र कहते हैं ॥२८॥

बालुका यन्त्र

कपड़े सहित कुटी हुई मिट्टी का एक काँच की मजबूत कूपी पर (सात बार) लेप करके बार २ सुखा ले उस में पारा गंधक आदि इतना डालो कि उस का पेट भर जाये ॥२९॥ अब एक मजबूत बड़ी हाँडी या मटके को रुई मिली हुई कुटी मिट्टी के साथ लेप कर (कपड़ मिट्टी कर) धूप में सुखाले। इस में बालू डाले, उस पर वह कूपी रख कर उस हाँडी को बालू से भर दे। कूपी के ठ तक बालू आ जावे ऐसा भरे ॥३०॥ इस हाँडी को अग्नि दे। अग्नि क्रम २ से मन्द, मध्यम, तीव्र तथा नियत काल तक दे। इसे ही बालुका यन्त्र कहते हैं ॥ आज कल के बालुका यन्त्र द्वारा जो मकरध्वज बनता है उसमें स्वर्ण नहीं होता। क्योंकि स्वर्ण तो कूपी के नीचे बैठ जाता है। पारा ऊपर उड़ कर सिन्दूर-रस बन जाता है। इस लिये यह बालुका यन्त्र ठीक नहीं। प्राचीन बालुका यन्त्र द्वारा पारा स्वर्ण को ग्रस करता था। उसकी विधि यह थी कि पूर्वोक्त लंबी नाली वाली काँच कूपी को सात कपड़ मिट्टी करके एक सात कपड़ मिट्टी किए हुए मजबूत लंबे रुँचे मटके में ऐसे रखते थे जिसमें कूपी के मुँह से ६ उँगल ऊपर तक बालू आजावे। बालू भी छलनी से छान कर मोटा २ लेना चाहिये। इसके मुँह को प्याले से बन्द कर देवे। नीचे नियत विधि से नियत काल तक अग्नि दे। जब पात्र के मुख पर तृण रखने से जल जावे और कनक के दाने भुन जावें तो अग्नि मद करके सान्नीहित होने देवे। इससे अन्त धूम मकरध्वज या रत्न सिन्दूर बनता है इसमें पारा सोने के साथ नीचेही रहता है यही असली

सिद्ध सम्मत स्वर्ण घटित मकरध्वज कहाता है गन्धक कूपी के मुँह पर जली हुई मिलती है इस तरह का स्वर्ण मकरध्वज कुछ पीले से रंग का बनता है ॥ (अनुवादक)

लवणयन्त्र

पूर्वोक्त बालु का यन्त्र में बालू की जगह यदि नमक डाल कर कूपीस्थ पारदादि को पकावें तो इसे लवण यन्त्र कहते हैं । यह मृगाङ्गरस आदि के बनाने में काम आता है ॥ ३२ ॥

पुट यन्त्र

किसी घड़े आदि में पुट देने योग्य लोह आदि द्रव्यों को रख उसका मुँह दृढ ढक्कन से बंद करदे । फिर कपड़ मिट्टी करदे ॥ ३३ ॥ उस घड़े को चूल्हे पर रखकर अग्नि देकर पकावे अथवा उपलों की आंच के मध्य में पकावे । इस यन्त्र द्वारा लोहा आदि धातु मारे जाते हैं । इसलिए इसे पुटयन्त्र कहते हैं ॥ ३४ ॥

वाष्प स्वेदन यन्त्र

एक पात्र में जल भरे । उसके अन्दर ऐसा पात्र रखे जिसके दोनों ओर दो कुण्डे या हत्थे लगे हों । उन हत्थों को पानी वाले पात्र पर टाँग कर उस छोटे पात्र को पानी वाले बड़े पात्र पर रख कर टिकावे छोटे पात्र में द्रव्यों का क्वाथ भर दे ॥ ३५ ॥ फिर इसे चूल्हे पर रख कर नीचे आग जलावे । फिर उस क्वाथ को इतना सुखावे कि वह चूर्ण हों जावे ॥ ३६ ॥ क्योंकि इस यन्त्र द्वारा वाष्प से पारे का स्वेदन करते हैं ॥ ३७ ॥ जंगल की जड़ी बूटियों में से किसी का सत्त्व बनाने के लिए यह यन्त्र काम आता है इसलिये इसे वाष्प स्वेदन यन्त्र कहा जाता है ॥ ३८ ॥

दर्बिका यन्त्र

दर्बी या कड़छी के समान आकार का एक प्याला लें जिसके पीछे लम्बा दस्ता लगा हो । उसमें गन्धक को गरम करके शुद्ध

करते हैं । इस यंत्र को दर्विका यन्त्र कहते हैं ॥ ३६ ॥

पालिका यन्त्र

इसी प्याले में यदि भुकी हुई डंडी या दस्ता लगा हो तो इसे पालिका यंत्र कहा जाता है । इसके द्वारा तेल आदि निकालते हैं इसे आजकल 'पली' या 'पाली' बोलते हैं । कौड़ी आदि को शुद्ध करने में इसे काम लेते हैं ॥ ४० ॥

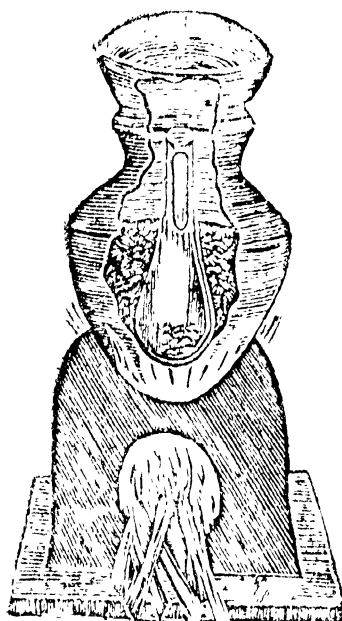
डमरूकारय यन्त्र

डमरू के समान एक हाँडी के मुँह के ऊपर दूसरी हाँडी को उल्टी रखें । दोनों के मुखों को मिलाकर संधि बंद करें । इसमें (हिंगुल भर कर) क्रमशः अग्नि देते हैं (तो ऊपर पारा शुद्ध हो कर जा लगता है) इस यंत्र को डमरू के आकार का होने के कारण डमरू यंत्र कहते हैं (कुछ लोग नीचे की हाँडी के मुँह को ऊपर की हाँडी के मुँह में घुसेड़ देते हैं जिससे पारा ठीक ठीक निकले) ॥ ४१ ॥

नाड़िका यन्त्र

चूल्हे पर एक घड़ा रख कर उसमें जल (औषधादि) डाल दो इस पर एक दूसरा घड़ा उल्टा मुँह करके रख दो ॥ ४२ ॥ फिर दोनों मुखों का कपड़ मिट्टी से संधि बंद कर दो ओर सुखालो अब ऊपर के भाँडे में छिद्र कर एक नली लगा दो ॥ ४३ ॥ इसी नली को आगे कुंडलाकार बनाकर एक पानी भरे हुए पात्र में से गुजार कर उस में भी छिद्र करके नली के मुख को बाहर निकाल दो । इस मुख को एक शीशी में या कुपी में डाल दो । जब तक घड़े के अंदर पड़े हुए पदार्थ की भाप बनती रहे तब तक आँच देते रहो । क्योंकि यह नाड़िका (नलिका) के द्वारा अर्क आदि को देता है इसीलिए इसे नाड़िका यंत्र कहा जाता है । अर्क निकालने के काम में यह विशेष करके प्रयोग होता है ॥ ४४-४६ ॥

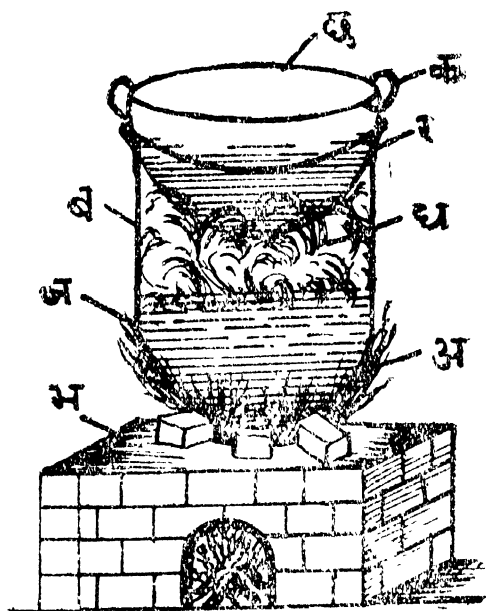
बालुका यन्त्र और लवण यन्त्र तथा भस्म यन्त्र



बालुका यन्त्र और लवण यन्त्र तथा भस्म यन्त्र का वर्णन

ढ—ढक्कन, कभी २ ढक्कन नहीं भी देते हैं। ह—हांडी।
 क—लंबी कुप्पी अथवा यहां पर सम्पुट में बन्द कोई भी रसादि
 बनाने के द्रव्य रख दें। प—कुप्पी के अन्दर पड़ी पारा गंधक
 की कजली आदि द्रव्य। ब—बालुका या रेत। यदि यहां
 बालू भरें तो बालूका यन्त्र कहायेगा यदि ल—लवण भरें तो
 लवण यन्त्र कहायेगा। र—यदि राख भर दें तो भस्म यन्त्र
 कहायेगा।

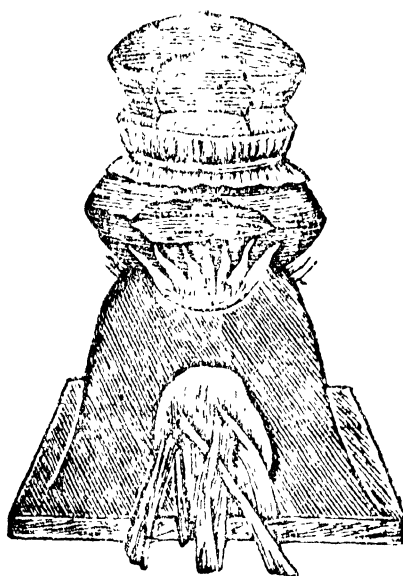
वाष्प स्वेदन यन्त्र ।



वाष्प स्वेदन यंत्र का वर्णन

ख—छोटे पात्र में । र—ब्राह्मी का स्वरस है । क—दो कुंड़े लगे हैं । व—नीचे बड़ा पात्र है जिसमें । ज—जल आधा भरा है । भ—भट्टी में । अ—अग्नि जल रही है । घ—वाष्प उठकर छोटे पात्र के रस को गाढ़ा या घन बना रहे हैं ।

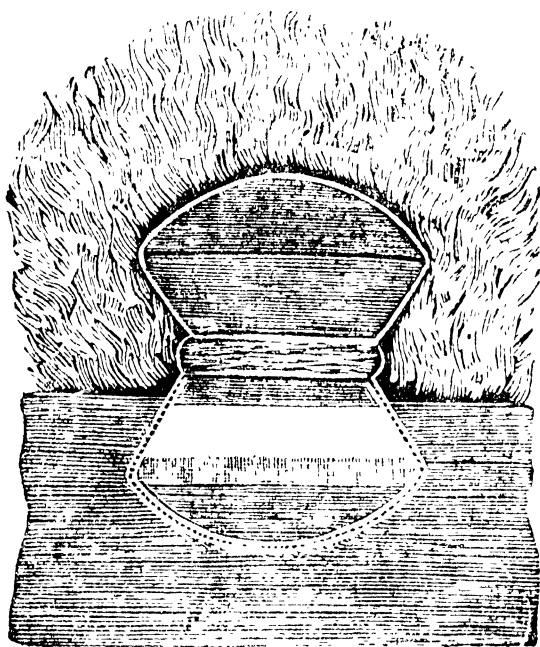
स्वेदन (कन्दुक) यन्त्र ।



स्वेदन (कन्दुक) यंत्र का वर्णन

भ—भट्टी । अ—अग्नि । ह—चौड़े मुंह का एक लोहे का पात्र जिसमें जल भरा हो । छ—छोटा पात्र सीधे मुंह का जिसके दो ओर पकड़ने को दो कुंड़े लगे हों, इसमें गिलोय का स्वरस आदि भरे हों । जल के वाष्पों से सूख २ कर गिलोय स्वरस घन हो जायेगा । अथवा पारा स्वेदन हो जायेगा । इसे स्वेदन यंत्र कहते हैं ।

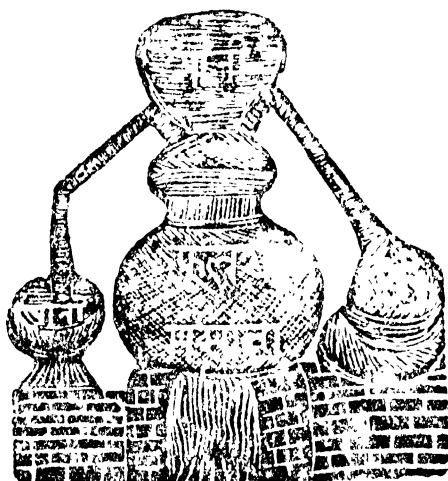
अधः पातनयन्त्र डमरू यन्त्र तथा पाताल यन्त्र



अधः पातन यन्त्र डमरू यन्त्र तथा पाताल यन्त्र का वर्णन

अ—कोयलों या उपलों की आग। ह—उल्टे मुंह किये हांडी, जिसमें। द—द्रव्य पारा लिपा हुआ है। स—संधिवंद। न—नीचे की हांडी जो भूमि में दबी हुई है। प—गिरकर शुद्ध हुआ २ पारा मिलता है। इसी प्रकार सन्धि मुखों में एक छिद्र मात्र रख शेष मुख बन्द कर दें तो छिद्र से नीचे तैलादि गिरा लेते हैं इसे पाताल यन्त्र कहते हैं। इसी प्रकार दो बंद हुई हांडियों में नीचे से अग्नि दें ऊपर की हांडी में रस कपूर आदि उड़कर लगेगा। इसे डमरू यंत्र भी कहते हैं जो ऊर्ध्वपातन का ही भेद है।

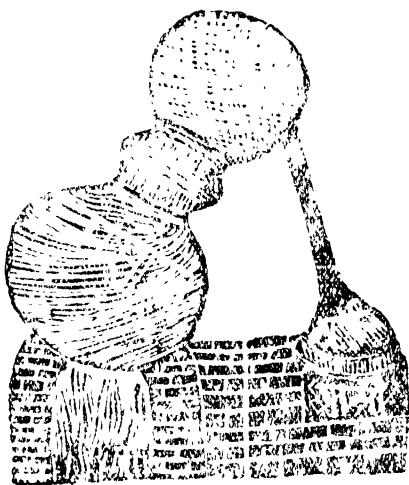
अर्कयन्त्र या प्रसृत यन्त्र ।



अर्कयन्त्र या प्रसृतयन्त्र का वर्णन

ह—हांडी या देग । फ—फूल तथा जल या सौंफ आदि मसाला और जल । स—सन्धिबंद । द—दूसरी उल्टी हांडी या टीन की देग । ढ—ढक्कन बंद । अ—अर्क खींचने वाली नाली । श—शीशी । च— चुआ हुआ अर्क । ज—जल । न—नाली जिससे गर्म हुए जल को बाहर निकाल देना होता है । इसे ही अर्कयन्त्र कहते हैं । इसे नाड़िकायंत्र भी कहते हैं ।

द्वितीय अर्क यन्त्र या प्रस्तुत यन्त्र ।



द्वितीय अर्क यन्त्र या प्रस्तुत यन्त्र का वर्णन

ह—नीचे की हांडी में । म—मसाला या फूल या कंवल जल भरा है । हो—ऊपर की हांडी उल्टी करके नीचे की हांडी पर लगी है । स—सन्धि लेप किया हुआ है । छ—छिद्र है जिसमें । क—नाली लगी है । व—बोतल है जिसमें नाली का मुँह खुलता है और भाफ को लाता है । अ—बोतल में भाफ अर्क बनती जाती है । ज—नीचे ठंडा जल है जिसमें बोतल रखी हुई है । अ—अग्नि है जो चूल्हे में दी जाती है । इसे ही नाडिकायन्त्र भी

पाताल यंत्र

भूमि के अन्दर एक गहरा गढ़ा खोदो उसके नीचे एक हाँडी रखो। उतनी ही बड़ी एक और हाँडी लो ॥४७॥ उसमें (तेल-आदि निकालने के लिए) औषधें डालकर उसके मुँह को एक ऐसे ढक्कन से बंद करो जिसके मध्य में छिद्र हो ॥४८॥ इस पात्र को उल्टा करके नीचे वाली हाँडी के मुँह में घुसेड़ दो। दोनों के मुख पर दृढ़ सन्धि बन्धन करदो ॥४९॥ फिर उस गढ़े को मिट्टी से चारों ओर से भर दो। अब ऊपर अग्नि देवे। इसको उचित मात्रा में प्रयोग के अनुसार देता रहे। जब स्वागशीतल हो जावे तो ॥५०॥ ऊपर के पात्र को धीरे से (मिट्टी को हटाकर) उतार लेवे। फिर नीचे के पात्र में पड़े हुए तेल को विधिपूर्वक ग्रहण कर ले ॥५१॥ इसे विद्वानों ने पाताल-यन्त्र कहा है। इसके द्वारा ही गंधक आदि का तेल निकाला जाता है ॥५२॥

॥ खल्वयन्त्र ॥

प्याले के सदृश अति स्वच्छ, बड़ा दृढ़ तथा फिसलने वाला, उत्तम पत्थर का बना हुआ पात्र यहां पर खल्वयन्त्र के नाम से कहा जायेगा ॥५३॥

॥ खल्वयन्त्र का प्रयोजन ॥

रस, उपरस, लोहा आदि धातुओं के पीसने कूटने आदि कर्मों के लिए रसशास्त्री खल्वयन्त्र (खरलों) का प्रयोग करते हैं ॥५४॥

॥ खल्वयन्त्र के दो प्रकार ॥

खल्वयन्त्र दो प्रकार के होते हैं। ये दोनों ही रसशास्त्र में विशेष उपयोगी माने गये हैं। एक वर्तुलाकार अर्थात्

गोल, दूसरा द्रोणीरूप अर्थात् नौका की सी आकृतिवाला लम्बा ॥५५॥

॥ वर्तुल (गोल) खल्व ॥

जो उपर से १२ अंगुल चौड़ी परिधि का हो, नीचे से ६ अंगुल के घेरे में चौड़ा हो, जिसकी अंदर से ऊंचाई (या गहराई) ११ अंगुल हो, जिसको दीवार की (पत्थर की) मोटाई दो अंगुल हों, जो तलभाग में एक जैसा समान हो, जो नीले कमल की सी आभा वाला हो, जो अति चिकना (या फिसलना) हो, और जिसका घर्षक (घोटने की मूसली) चौदह अंगुल लम्बी हो, वह खरल गोल या वर्तुलखल्व कहाता है। पारे आदि के साधन में यह काम आता है ॥६॥

॥ द्रोणीरूप खल्व ॥

जो ऊंचाई में सात अंगुल हो, और लंबाई में १६ अंगुल हो, फैलाव में या चौड़ाई में १२ अंगुल हो, जिसकी मोटाई (या जिसके लोहे या पत्थर की दीवार) दो अंगुल हो, जो अति चिकना हो, जिसका घर्षक (मूसली या बट्टा) १२ अंगुल लम्बा हो, जो अच्छी प्रकार खुले मुँह का हो, जो लोह (ताम्र, पत्थर) आदि से बनाया गया हो, जो नौका के समान लंबूतरा हो, ऐसा खरल रस आदि की सिद्धि के लिए अति उत्तम माना है यह द्रोणीरूप खल्व कहाता है ॥५७॥

॥ उलूखल यन्त्र ॥

जो दस अंगुल फैलाव में (लंबाई चौड़ाई) में हो, जो सोलह अंगुल ऊंचा हो, जो १३ अंगुल नीचे से चौड़ा हो, जो

सुदृढ़ हो ॥५८॥ जो लोहे से बनाया गया हो, मध्य में से अति चिकना हो। जिसमें २० अंगुल लंबा सुन्दर लोहे का डण्डा हो, ॥५९॥ इसे विद्वानों ने उलूखल (ऊखल या हमामदस्ता) यन्त्र माना है। यह यन्त्र स्वर्णमाञ्जिकादि धातुओं को कूटने के काम में आता है ॥६०॥ इसी प्रकार युक्तिपूर्वक छोटे तथा बड़े यन्त्र द्रव्यों के लिए बनाकर वैद्य रखे ॥६१॥ उदाहरण के लिए ये कुछेक यन्त्र मैंने यहां लिख दिये हैं। जिससे पढ़ने वाले बालक सुख पूर्वक शीघ्र इनको जानकर रसकर्म कर सकें ॥६२॥

इति कविराज श्री विद्याधर विद्यालंकार आयुर्वेद शास्त्री भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी के भाषानुवाद में यह “यन्त्र विज्ञानीय नाम चतुर्थ तरंग समाप्त हुआ ॥४॥



अथ पञ्चम तरङ्ग

पारद के अष्ट संस्कार विज्ञानीय नाम का पञ्चम तरङ्ग

पहले पारे के नाम लिखते हैं:—

रस, रसेन्द्र, सूत, रसेश, रसेश्वर, चपल, रसराज, पारद, शिवाह्वय अर्थात् शिवजी के सभी नाम जैसे रुद्र, हर, भव आदि ये सब नाम पारे के हैं ॥१॥ क्योंकि यह अभ्रक आदि उपरसों को तथा स्वर्ण आदि धातुओं को खाता है इसलिए पारे का नाम रस रखा गया है, क्योंकि यह अभ्रक आदि धातुओं का अधिराजा है अथवा उन सब में इसी की चमक होती है इसलिए यह रसेन्द्र कहाता है ॥२॥ क्योंकि इसमें देह को लोहे के समान दृढ़ करने की सिद्धि (करने की शक्ति) है इसलिये इसे सूत (उत्पन्न करने वाला) नाम से कहा गया है। क्योंकि यह स्वभाव से ही चंचल होता है इसीलिये इसका नाम “चपल” है ॥३॥ क्योंकि रोगादि दुःखों के कीचड़ में फंसे हुए लोगों को उस में से पार कर देने की शक्ति इसमें विद्यमान है अर्थात् यह रोगों से पार करने वाला है, इसलिये इसका नाम पारद है। अभ्रक आदि उपरसों में तथा अभ्रक आदि से (योगों द्वारा) बनाये हुए रसों में यह सर्वत्र बिराजता है इसलिये इसका नाम रसराज विद्वानों ने कहा है। (सभी रस पारे के योग से बनाये जाते हैं। जिनमें पारा नहीं पड़ता वे रस नहीं कहे जाते) ॥४॥

विशुद्ध तथा अविशुद्ध पारे के स्वरूप

जो पारा भीतर से बहुत नीला दिखाई दे जो बाहर से

उजला या श्वेत चमकीला हो, जो सूर्य के समान तेजस्वी हो वही पारा विशुद्ध होता है। जो पारा धुँए के से रंग का तथा कुछ पीले रंग का हो वह अविशुद्ध पारा होता है ॥५॥

अविशुद्ध पारे की हेयता

क्योंकि दोषयुक्त पारा विविध प्रकार के रोगों को करता है इसलिये पारे को दोषों से रहित करके ही योगों में प्रयोग करना चाहिये ॥६॥

पारे के स्वाभाविक दोष

नाग, बङ्ग, वह्नि, मल, चापल्य, विष, गिरि, असह्याग्नि ये आठ दोष पारे में स्वाभाविक होते हैं ॥७॥ नाग या मीसा धातु मिले होने से पारे में नागदोष रहता है उसके संवन से व्रण उत्पन्न होते हैं। बङ्ग (कली धातु मिली होने) के दोष के कारण पारा कुष्ठ उत्पन्न करता है। वाह्नि अर्थात् अग्नि (उष्णता की अधिकता) के दोष के कारण पारा ताप उत्पन्न करता है। मल (मैल मिली होने से) के दोष से पारा शरीर में जड़ता के दोष को उत्पन्न करता है। चपलता या चंचलता के दोष के कारण पारा वीर्यनाश को उत्पन्न करता है। विष के दोष के कारण पारा मृत्यु उत्पन्न करता है ॥८॥ गिरि अर्थात् पर्वतादि के अंश मिले होने के कारण पारा छाले उत्पन्न करता है। असह्याग्नि (अग्नि को न सहकर उड़ जाना) दोष से पारा मोह को उत्पन्न करता है। इसलिये इन सब दोषों से रहित हुआ २ पारा (अर्थात् शुद्ध करके) ही योगों में बर्तना चाहिये ॥९॥

पारे के सात कंचुक

भेदी, द्रावी, मलकरी, ध्वांत्ती, पर्पटिका, अन्धकारी तथा पाटनिका ये सात पारे के कंचुक (या केंचलियाँ) माने जाते हैं ॥१०॥

सातों कंचुकों का परिचय

पारे से मिली हुई अनेक नाग बंगादि धातुएं जब आकाश में रहने वाले वहां के अमृत (प्राणवायु या आक्सीजन oxygen) के साथ मिलती हैं तब उनका कुछ भाग टूट २ कर चूर्ण हो जाता है ॥११॥ तब वे चूर्ण बनकर पारे को ढक देती हैं क्यों कि वह धातुओं का ढकना (केंचली या परदा या आवरण) पारे के आकार का ही (लम्बा चौड़ा होता है जैसा मनुष्य के शरीर पर कंचुक या कुर्त्ता) होता है ॥१२॥ इसलिए उस आवरण के कारण पारे से युक्त हुई २ धातुएं (i) कंचुक नाम से कहाती हैं ऐसी पूर्वीय तथा पश्चिमीय रसायन शास्त्रियों की सम्मति है। कुछ आचार्य इन दोषों को उपाधिजन्य अर्थात् बाद में बनियों ने पारे में मिला-वट करदी होती है, ऐसा भी मानते हैं ॥१३॥

- (i) Impure mercury, when shaken with air yields a black powder, caused by the oxidation of the metallic impurities and the film of the oxide incloses a small globule of the liquid metal.

(Chemistry by H. E. Roscol and
C. Schorlemmer F.R.S.)

पारद शोधन की आवश्यकता

जो दोष स्वाभाविक होते हैं तथा जो कंचुक नाम से कहे जाते हैं उनके दूर करने के लिए पारे का सामान्य शोधन कहा है ॥१४॥ पूरी तरह शुद्ध किया हुआ रसराज सचमुच ही अमृत के समान गुणदायक होता है। दोषों से युक्त पारा दूसरा यम-राज या मृत्यु के समान ही होता है ॥१५॥ इसलिए उत्तम २ सेवकों के साथ पारे की शुद्धि के लिए सब सामग्री लेकर पारे की शुद्धि करना आरम्भ करे ॥१६॥

शोधन के लिए पारे का परिमाण

पारा १०० पल लें या २५ पल ले, या दस पल लें या पांच पल लें या एक पल लें ॥१७॥ १ पल से न्यून पारा संस्कार करने के लिये नहीं लेना चाहिए। क्योंकि पारा बहुत प्रयत्न से सिद्ध होता है, कम लें तो लाभ भी नहीं होता है तथा उड़ भी जाता है ॥१८॥

शोधन का समय

उत्तम दिन तथा शुभ नक्षत्र में अपने इष्ट देव, शङ्कर तथा भैरव जी की भली प्रकार पूजा करके पारे के शोधन आदि सब कर्मों को करना आरम्भ करे ॥१९॥

अथ रसपूजन

“अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोराघोरतरेभ्यश्च । सर्वतः सर्वसर्वभ्यो नमस्ते रूद्ररूपिभ्यः । इस रूद्राध्यायोक्त अघोर मन्त्र को वैद्यराज बोलकर पारे को खल्व में डाले। फिर सुगन्ध युक्त सामग्री धूप आदि जलाकर उसकी पूजा करे ॥२०॥

पारे का साधारण शोधन

रसायनाचार्यों ने, मनोगत रोगों तथा शरीरगत रोगों को नाश करने के लिए तथा रसों में प्रयोग करने के लिए पारे का सामान्य शोधन करना अच्छा माना है ॥२१॥

शोधन का पहला प्रकार

रसाईधर की अंगीठी में लगा हुआ धुआँ, पक्की ईंट का चूरा, हल्दी, भेड़ की ऊन ये चारों द्रव्य एक २ भाग लेकर मिलित चार भाग लें। सारे चूर्ण से १६ गुणा अर्थात् ६४ भाग पारा लें। सब को मिलाकर खरल में डालकर घोटें। बाद में नीबू के रस या कांजी आदि खटाई से अच्छी प्रकार धो लें। इस प्रकार से पारे का नागदोष छूट जाता है ॥२२॥ इन्द्रायण, अंकोठ या ढेरा तथा हल्दी इन तीनों को समान भाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण से १६ गुणा पारा लें। दोनों को मिलाकर घोटें। इससे पारे का बंगदोष छूट जाता है। चीते के चूर्ण में सोलह गुणा पारा डाल कर घोटें तो शीघ्र ही पारे का अग्नि दोष दूर होता है। अमलतास के मूल के चूर्ण से पारे को सोलह गुणा लेकर मर्दन करें तो मल दोष दूर होता है ॥२३॥ काले धतूरे के रस से घोटें तो पारे की चंचलता दूर होती है। त्रिफला के चूर्ण से घोटें तो विषनाश होता है। गिरिदोष को त्रिकुटे अर्थात् सोंठ, मिरच और पीपल का चूर्ण नाश करता है। इन तीनों को एक २ भाग लेकर चूर्ण करें और १६ गुणा पारे से मिलाकर घोटें। गोखरु का चूर्ण १ भाग लें, पारा १६ भाग लेकर घोटें तो पारे का असह्याग्नि दोष नष्ट हो जाता है ॥२४॥ ऊपर जितने द्रव्यों के चूर्ण कहे गये हैं। उन सब को पृथक् २ पारे का सोलहवां भाग लेना

चाहिये । और इनके साथ ही घीकुमार का रस भी हर बार डालकर सब को एक दिन लगातार घोटना चाहिये । बाद में खटाई के जल से अनेक बार पारे को धोना चाहिये ॥२५॥ इस प्रकार से पारे को शोध जावे तो सचमुच ही वह सातों कंचुकों से रहित हो जाता है । इस प्रकार से शुद्ध हुए २ पारे को वैद्यराज सब रसों में प्रयोग करे ॥२६॥

पारा शोधन का दूसरा प्रकार

पारे को सम भाग अनबुझे चूने के चूर्ण के साथ खरल में तीन दिन तक घोट ले । फिर चौथे दिन दो तहों वाले कपड़े में डालकर पारे को छान ले । फिर उस शुद्ध पारे को खरल में डालकर रखे ॥२७॥ लसुन की पोथियां छिलके उतार कर कूटकर कल्क करें । इस कल्क को पारे के समान भाग लें । इस कल्क से आधा भाग सेंधालवण का चूर्ण मिलावें । फिर पारा मिलाकर खूब खरल करें । जब घोटते २ वह कल्क सर्वथा काले रंग का हो जावे ॥२८॥ तब उस कल्क को निकाल कर फेंक दें । फिर युक्तिपूर्वक उस पारे को कोसे जल से धोलें । इस प्रकार एक बार करने से ही पारा शुद्ध हो जाता है ॥२९॥ यह विधि मेरे गुरुवर श्री नरेन्द्रनाथजी मित्र ने कही थी और मैंने इसको कई बार प्रयुक्त करके देखा है । प्रयोगों में पारे की शुद्ध सरलता से की जा सके इसीलिये मुझ सदानंद घिलिडयाब ने इस प्रयोग को यहां पर प्रकाशित कर दिया है ॥ ३० ॥

पारा शोधन का तीसरा प्रकार

घीकुंवार, चीता, लालसरसों, बड़ी कटेली तथा त्रिफला इन को सम भाग लेकर काढ़ा कर लें । इस काढ़े से पारे को तीन दिन

तक घोटें तो पारे के सातों मल दूर हो जाते हैं । अथवा घीकुंवार आदि चारों द्रव्यों के क्वाथ से पारे को घोटें फिर त्रिफला के चूर्ण वा क्वाथ से पारे को घोटें तो इस प्रकार तीन दिन करने से वह सातों मलों से रहित होकर शुद्ध हो जाता है ॥ ३१ ॥

पारा शोधन का चौथा प्रकार

गुड़, सोंठ, मिरच, पीपल, हल्दी, पांचों नमक, चीता, हरड़, बहेड़ा, आंवला, जौखार, सज्जी, सुहागा, धतूरा, लालसरसों इन सब को एक २ भाग लेकर चूर्ण कर लें । यह चूर्ण एक भाग लें, पारा २० भाग लें, दोनों को मिलाकर सात दिन तक घोटते रहें तो पारा शुद्ध हो जाता है ॥ ३२ ॥ यह प्रयोग श्री पूज्य गुरु नरेन्द्रनाथ जी मित्र का बतलाया हुआ है, और इस को मैं ने अनेक बार बना कर देखा है । रसादि योगों में भी, इसे प्रयोग करता रहा हूं । इस लिये शोधन के इस प्रकार को भी यहां लिख दिया है ॥ ३३ ॥

पारा शोधन का पांचवां प्रकार

पान के पत्तों के रस से, अदरक के रससे, तीनों (जौ, सज्जी तथा सुहागा) क्षारों से रस राज पारे को पृथक् २ खरल करें ॥ ३४ ॥ फिर उनसे पारे को पृथक् करके रखें । यह पारा सातों दोषों से रहित होता है तथा मोती के समान आकार वाला स्वच्छ हो जाता है । इसे ही सब योगों में प्रयुक्त करें ॥ ३५ ॥

पारा शोधन का छठा प्रकार

पारा में सोलहवां भाग चूना डालकर सात दिन तक खरल करें । फिर रसोईघर का थुआ, हल्दी तथा ईंट के चूर्ण से

मिलाकर पारे को तीन दिन खरल करें । फिर कांजी से धोदे ॥३६॥ बाद चार गुणे वस्त्र से छान लें । इस प्रकार करने से पारा सातों कंचुकियों से रहित निर्मल हो जाता है ॥३७॥

यहां तक रस का सामान्य शोधन कहा

अब हिङ्गुल से निकाले हुए पारे का निर्माणप्रकार लिखते हैं

हिङ्गुल (शिगरफ) को फरहद की छाल के रस से घोटे अथवा चाङ्गेरीबूटी के रस से घोटे या जम्बीरी नीबू के रस से घोटे ॥३८॥ बाद में ऊर्ध्व पातन यन्त्र से उड़ा लेवे । इस प्रकार निकला हुआ पारा सातों कंचुकियों से रहित होता है । इसे रसायनाचार्य ग्रहण करें ॥३९॥ फिर उस पारे में हल्दी का चूण पारे से १६ बां भाग डालकर घोटे । अथवा सेंधालवण तथा अम्ल रस से मिलाकर पारे को दो दिन घोटे ॥४०॥ फिर वस्त्र की चार तहें करके उसमें से पारे को छान लेवे । इस प्रकार से निर्मल हुए २ पारे को योगों में डालकर वैद्य प्रयुक्त करें ॥४१॥ गुरु के बतलाये हुए मार्ग से ही यन्त्र बनावे । क्योंकि यहां पर पारे का मान (तोल) नहीं बतलाया है इसलिये यन्त्रों का मान (माप) भी लिखा नहीं जा सकता । (इसलिए कितने पारे को कितने बड़े यन्त्र में डालकर घोटना, ऊर्ध्वपातन आदि करना है, यह गुरु से पूछकर ही शिष्य को पता लगता है ॥४२॥

पारे के आठों संस्कार

रसायन के लिए बनाने योग योगों (नुसखों) में रसायनशास्त्री वैद्य को आठ कर्मों द्वारा शुद्ध किया हुआ पारा प्रयुक्त करना चाहिए ॥४३॥ स्वेदन, मर्दन, मूच्छन, उत्थापन, तीनों प्रकार (ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक) प्रकार का पातन, बोधन तथा

नियामन ॥४४॥ प्रदीपन ये आठों संस्कार रसायनाचार्यों ने सर्व कर्मों के उपयोग के लिए कहे हैं ॥४५॥

स्वेदन का लक्षण

पारे को दोलायंत्र द्वारा क्षारों, अम्लों या औषधों के काढ़ों में युक्ति पूर्वक पकाने को स्वेदन संस्कार कहते हैं विद्वानों ने इस संस्कार को पारे के दोषों को शिथिल करने वाला कहा है ॥४६॥

स्वेदन का प्रथम प्रकार

पिप्पली, काली मिरच, चीता, अद्रक, साँठ, सेंधालवण, हरड़ बहेड़ा, आँवला, इनमें से प्रत्येक द्रव्य को एक २ भाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले। फिर एक मटके में आधे भाग तक काँजी भरकर उसमें यही चूर्ण घोल दें। इसमें सारे चूर्ण से १६ गुणा पारा लेकर चार तहें वाले वस्त्र में भोजपत्र रखकर उसमें पाग रखकर पोटली बाँधे। फिर दोलायन्त्र के समान इस पोटली को उस काँजी में लटका दे ॥४७॥ नीचे मध्यम अग्नि जलावे। इसी प्रकार तीन दिन तक उस पारे को नया कल्क तथा नई काँजी डाल २ कर पकावे। यह पारे का स्वेदन संस्कार कहाता है ॥४८॥

स्वेदन का द्वितीय प्रकार

साँठ, मिरच, पीपल, मूली के बीज, राई, नमक, अद्रक, तथा चीतामूल इन सब द्रव्यों को एक २ भाग लेकर चूर्ण कर लें। फिर इस चूर्ण को या कल्क को काँजी में घोल लें। पहले के समान पोटली में पारे को बाँधकर इस काँजी में वह पोटली लटका दें। इस प्रकार तीन दिन तक स्वेदन करें ॥४९॥

स्वेदन का तीसरा प्रकार

पिप्पली, काली मिरच, सोंठ, अदरक, लसुन अदरख, चीता, चौलाइ, सेंधा, नमक, सहदेवी, नोसादर, मेढासिंगी, । ५०॥ राई, जंगली गेहूं, हरड़, बहेड़ा, आँवला, इन सब द्रव्यों को पृथक् २ पारे से सोलहवां भाग लेकर सब द्रव्यों को इकट्ठा करले या जितने मिले अथवा एक द्रव्य को ही सोलहवां भाग लेकर बांजी से घोटकर कल्क (चटनी) बनाले ॥५१॥ फिर इस कल्क से एक वस्त्र पर एक अंगुल मोटा लेप करदे। उस लिपे हुए वस्त्र में पारे को रखकर पोटली बनाले और एक फीते से पोटली को बाँधकर मुख बन्द करदे ॥५२॥ फिर एक मटके में आधे भाग तक कांजी डालकर उसमें इस पोटली को दोलायंत्र की विधि से लटका देबे। नीचे मध्यम आग लगातार जलाता रहे। इस प्रकार प्रतिदिन नई २ कांजी डालकर पारे को तीन दिन तक स्वेदन करता रहे ॥५३॥

मर्दन का स्वरूप

क्षार आदि या अन्य औषधों के साथ मिलाकर पारे को जो खरल में डालकर घोटा जाता है उसे ही विद्वानों ने पारे का मर्दन संस्कार कहा है। इस मर्दन संस्कार से पारे के बाहर के (ऊपरी) भाग के मैल (दोष) दूर होते हैं ॥५४॥

मर्दन का पहला प्रकार

पारा १६ भाग ले। उसमें सेंधालवण, रसोई घर का धुआँ राई, हल्दी, लसन, अदरक, हरड़, बहेड़ा, आँवला इन सब क्वचूर्ण सम भाग लेकर एकत्र करके एक भाग ले। फिर दोनों को

खरलमें डाल कर एकत्र तीन दिन मर्दन करे । यह पारे का मर्दन संस्कार कहाता है ॥ ५५ ॥

मर्दन का द्वितीय प्रकार

ईंट का चूर्ण, सेंधालवण, हल्दी, रसोईघर का धुआं, गुड़, राई, सोंठ, इन सब को एक २ भाग लेकर चूर्ण करलें । यह सम्मिलित चूर्ण जितना हो उससे १६ गुना पारा लें । दोनों को खरल में डालकर तीन दिन तक घोटें । यह मर्दन संस्कार है ॥ ५६ ॥

मूर्च्छन का स्वरूप

पारे के मल, वह्नि तथा विष दोषों को दूर करने के लिए जो घीकुंवार आदि द्रव्यों से घोट कर नष्टपिष्ट किया जाता है इस ही मूर्च्छन संस्कार कहते हैं ॥ ५७ ॥ जो चंचलता आदि पारे के अपने स्वरूप को त्याग कराके पीठी के रूप में (स्थिर) कर देना है उस (चंचलतादि रूप से रहित) जीते हुए पारे को ही विद्वानों ने नष्टपिष्ट नाम से कहा है ॥ ५८ ॥

मूर्च्छन का पहला प्रकार

घीकुंवार मल दोष को नाश करती है । त्रिफला अग्नि दोष को नाश करती है । चीते की जड़ विष को नाश करती है । इस लिए इन सब द्रव्यों से यत्नपूर्वक सात २ बार मर्दन करके पारे को मूर्छित करे । इस प्रकार भली भांति मूर्छित किया हुआ पारा सब दोषों से छूट जाता है ॥ ६० ॥

मूर्च्छन का दूसरा प्रकार

जौखार, सजी, पांचों लवण, अम्लगण के द्रव्य इन सब को पारे में डालकर (पारा सोलह भाग इन द्रव्यों का चूर्ण एक भाग

ले) तब तक घोटें जब तक नष्टपिष्ट न हो जाये ॥ ६१ ॥ इस प्रकार से मूर्छित किया हुआ पारा तीनों दोषों को नाश करता है ॥ ६२ ॥

उत्थापन का स्वरूप

पारे की मूर्छा को जो स्वेदनादि द्वारा दूर करना है तथा फिर अपने स्वरूप में ले आना है इसी को उत्थापन संस्कार कहते हैं ॥ ६१ ॥

उत्थापन का प्रथम प्रकार

सुहागा, सैधालवण, शहद इन तीनों को सम भाग लेकर इन सब को खरल में डाले। इन की अपेक्षा १६ गुना पारा लेकर खरल में डालें। सब को एकत्र कर देर तक घोटें। फिर उस गोले को एक (चार तहें वाले) कपड़े की पोटली में डालकर रखें ॥ ६४ ॥ इस पोटली का मुँह बंद करके दोला यंत्र में लटका दें। उस पात्र में क्षारादि युक्त जल डाल दें। इस प्रकार तीन बार करके पारे को स्वेदन करे तो फिर यही पारा टीक २ उठकर या जागृत होकर अपने स्वरूप में आजाता है। इस ही पारे को उत्थापन कहते हैं ॥ ६५ ॥

उत्थापन का दूसरा प्रकार

अथवा पारे को पोटली में बांध कर कांजी में लटका दें। इस प्रकार दोलायंत्र द्वारा स्वेदन करे। फिर पारे को अम्लरसों से भली प्रकार धोवें। तो पारा उत्थित (स्वरूप स्थित) हो जाता है ॥ ६६ ॥

तृतीय प्रकार

पारे को कांजी में डाल कर तीन घन्टे खरल करें। फिर साधारण जलसे धो लें तो पारा उत्थित हो जाता है ॥ ६७ ॥

चतुर्थ प्रकार

पारे में जम्बीरी या खट्टेनीबू आदि का रस डालकर धूप में रख कर घोंटे। वस्त्रों में से फिर पारे को छान लें। इस प्रकार करने से भी पारा ठीक प्रकार से उत्थित हो जाता है ॥ ६८ ॥

तीनों पातनों का स्वरूप

कही हुई औषधों के रस में पारे को खूब घोटकर यंत्र में डालकर जो पारे को ऊपर को, नीचे को तथा तिरछी ओर को उड़ाकर निकालना है इसे ही पातन संस्कार अर्थात् ऊर्ध्वपातन, अधः पातन तथा तिर्यक् पातन कहा गया है। इन पातन संस्कारों से बंग तथा सीसे के बहुत से दोष दूर हो जाते हैं ॥ ६९ ॥

अर्धपातन का प्रथम प्रकार

सड्जी, जौखार, हींग, पांचों नमक तथा अम्ल वर्ग में कहे हुए द्रव्यों के साथ पारे को घोंटें ॥ ७० ॥

फिर इस पारे सहित कल्क भाग को नीचे की हांडी में रखदे। इसके ऊपर एक हांडी नीचे मुंह करके लगादे तथा दोनों के मुख की संधि को कपड़मिट्टी से बन्द कर के सुखाले। इस नीचे की हांडी के नीचे युक्ति पूर्वक अग्नि देवे। इससे पारा उडकर ऊपर की हांडी में जा लगेगा (ऊपर की हांडी पर ठण्डा पानी का कपड़ा भी फेरते रहें तो पारा शीघ्र जम जायेगा।) ॥ ७१ ॥

दूसरा प्रकार

नीला थोथा अथवा स्वर्णमालिक लेकर उससे पारे को घोटें। यदि नीला थोथा मिलाकर पारे को घोटें तो जल से कई बार धोकर फिर उसे घीकुंवार के रस से तब तक घोटें जब तक वह नष्टपिष्ट (पीठी) नहीं होजाता। स्वर्णमालिक से पारे को घोटें तो नष्टपिष्ट करके ही घीकुंवार के रस से घोटें ॥ ७२ ॥ फिर इस पारे की पीठी को एक हाँडी के अन्दर रख कर ऊर्ध्वपातन यन्त्र द्वारा पकायें। इससे शुद्ध पारा ऊपर की हाँडी में आ लगेगा। इस शुद्ध पारे को निकाल लें ॥ ७३ ॥

तीसरा प्रकार

शुद्ध पारा ३ भाग, शुद्ध तांबे के पत्र या चूरा १ भाग लें। दोनों को खरल में डालकर घोटें। फिर जम्बीरी नीबू का रस डालकर तीन दिन तक घोटें। इसे डमरू यन्त्र में डालकर विधि पूर्वक ऊर्ध्वपातन कर लें। यह पारे का ऊर्ध्वपातन कहाता है ॥ ७४ ॥

अर्धःपातन या प्रथम प्रकार

पारे के साथ गंधक का घोटें। विधि पूर्वक कज्जली बनाकर जम्बीरी नीबू के रस से दूर तक मर्दन कर ॥ ७५ ॥ फिर चीता सुहांजने के बीज, राई, सेंधा नमक, कौंच के बीज, इन सब को सम भाग लेकर कूट पीसकर कज्जली में डालदे ॥ ७६ ॥ फिर सब को एकत्र घोट कर एक हाँडी के बीच में लेप करदे। अब इस हाँडी को उल्टा कर इसके नीचे दूसरी हाँडी सीधी रखकर संधि बन्द करके अर्धः पातन की रीति से ऊपर के पात्र को अग्नि देकर पकावे। इस प्रकार नीचे के पात्र में पारा शुद्ध होकर आ

जायेगा इस शुद्ध पारे को लेले' । यह पारे का अधःपातन हुआ
॥ ७७ ॥

दूसरा प्रकार

हरड़ का चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण, राई का चूर्ण, सेंधा लवण
भीता, सुहाजन के बीज, इन सब को एक २ भाग लेकर इनको
खरल में डालें । इनमें (१६ गुना) पारा डालें । इन सब को
खूब घोटें जब पारे की पीठी बन जाये तो अधः पातन यन्त्र
द्वारा पारे को अधःपातन करलें ॥ ७६ ॥

तिर्यक् पातन

पूर्व कही हुई औषधियों के साथ पारे को खूब घोट लें, उस
पारे की पीठी को तिर्यक्पातन यन्त्र में डालकर जो पारे को
तिरछा करके उड़ाना है उसे ही तिर्यक् पातन कहते हैं ॥ ८० ॥

बोधन का लक्षण

मर्दनादि संस्कारों के कारण पारे में क्लैव्यता या अनबलता
आजाती है उस क्लैव्यता को नाश करने के लिए जो कर्म
किया जाता है उसे ही बोधन संस्कार कहते हैं ।
(इसे ही कहीं २ रोधन संस्कार भी कहा गया है) ॥ ८१ ॥

बोधन का प्रथम प्रकार

भोज पत्र में पारे को रखकर उसपर कपड़े की पोटली
बांधकर सेंधा लवण के जल में उसे दोला यंत्र की विधि से
लटकाने । नीचे से आग देकर पकाये ॥ ८२ ॥ इस प्रकार से पारे
को स्वेदन करें, तो वह फिर से बलवान तथा वीर्यशाली

होकर क्लैव्यता को छोड़ देता है। यही पारे का बोधन कहा जाता है ॥ ८३ ॥

दूसरा प्रकार

एक शीशी में सेंधानमक, जल तथा पारा डालकर (ढाट लगाकर) उसे भूमि के अन्दर गढ़े में दबा दें। तीन दिन तक ऐसे ही दबा रखें। फिर निकाल कर पारे को (धोकर) रखें। इस प्रकार से पारे की नपुंसकता दूर होती है तथा वह बलवान हो जाता है ॥ ८४ ॥

तीसरा प्रकार

(नींबू) के रस वा अम्लरस से मिलाकर सेंधालवण पीसें। इस नमक को तथा पारे को एक शीशी में डालकर एक गढ़े में धर दें। ऊपर से लघुपुट अर्थात् लावकपुट दें ॥ ८५ ॥ इस प्रकार पुट देने से पारा शीघ्र ही पुष्ट हो जाता है। वह वीर्यशाली होकर क्लैव्यता को छोड़ देता है ॥ ८६ ॥

नियामन का स्वरूप

बोधन संस्कार से वीर्यवान (बलवान) हुए २ पारे को जो स्वेदन किया जाता है उससे पारे की चपलता नष्ट होती है। इस स्वेदन को ही नियामन संस्कार कहा जाता है ॥ ८७ ॥

नियामन का प्रथम प्रकार

इमलो, सर्पाक्षी, भांगरा, बांभीककोड़ा, मोथा, धतूरा इनके रस से पृथक् २ वा एकत्र स्वेदन किया हुआ पारा निश्चित ही चंचलता रहित हो जाता है ॥ ८८ ॥

दूसरा प्रकार

लसुन, भांगरा, मोथा, इमली, नौमादर इन सब से पृथक् २ वा एकत्र करके बार २ स्वेदन किया हुआ पारा निश्चित ही चंचलता से रहित हो जाता है ॥८६॥

तीसरा प्रकार

आगे लिखे नियामकगण में कही हुई औषधों के पृथक् २ रस वा कल्कसे अथवा सब औषधों के एकत्र रस वा कल्कसे पूर्व कहीहुई विधि से स्वेदन किया हुआ पारा चञ्चलता से रहित हो जाता है । (यदि कल्क लिया हो तो कांजी डालकर स्वेदन करें) ॥८७॥

पारे का नियामक गण

महाबला या सहदेवी, नागबला या गंगेरन, कर्षी इमली, पुनर्नवा, मूषापर्णी या चूहाकन्नी, पीलीभिएटी या पिया बांसा, बांसा, मकोय ॥८१॥ गोखरु, सरफोंका, श्वेत अपराजिता, चौलाई, मण्डूकपर्णी, तुलसी, ग्विरेंटी, काली अपराजिता ॥८२॥ शतावर, शंखपुष्पी, सफेद रंग का आक, धतूरा, पनवाड़, करंजवा, ब्रह्मदण्डी, अपामार्ग ॥८३॥ गिलोय, सेंधालवण, पाठा, इन्द्रायण, मत्स्यान्ती या मछेछी, इन औषधों को पारे की चंचलता को दूर करने के कारण नियामक गण कहा है ॥८४॥

दीपन का स्वरूप

पारे को दोलायंत्र द्वारा जो क्षार आदि के जल में पकाना है इसे ही पंडितों ने पारे का दीपन संस्कार कहा है । इसके

कारण पारद धातुओं आदि को ग्राम कर सकता है तथा गंधकादि के जारण में समर्थ हो जाता है ॥६५॥

दीपन का प्रथम प्रकार

हीराकसीस, कालीमिरच, फिटकरी, सुहांजने के बीज, कांजी, सुहागा, पांचों नमक, चीता तथा राई इन सब को समान २ भाग लेकर घोट ले। इसमें कांजी अधिक डालकर घोल लें। फिर पारा डाल कर दोलायंत्र द्वारा दो दिन तक पकावे। इस प्रकार करने से पारा ग्रासार्थी (या भूखा) तथा जारण करने में चतुर हो जाता है ॥६६॥

दूसरा प्रकार

सुहागा, पांचों नमक, कालीमिरच, सुहांजना के बीज, राई, कसीस, जौखार, चीता, फिटकरी, हारसिंगार, सज्जी इन सब को एक २ भाग लें। इन सब को चूर्ण करके कांजी (पात्र के आधे भाग में जितनी कांजी आजावे, उतनी सर्वत्र लेनी चाहिये।) डालकर रखें। इस सारे द्रव्य में पारे की पोटली को लटका कर दोलायंत्र द्वारा छः घंटे स्वेदन करें। इससे पारा ग्रासार्थी या बुभुक्षित हो जाता है ॥६७॥

तीसरा प्रकार

तीन घंटे तक पारे को कांजी में दोलायंत्र से स्वेदन कर लें। इससे भी पारे की शक्ति बढ़ती है और वह शीघ्र ही बुभुक्षित हो जाता है ॥६८॥

चौथा प्रकार

अथवा चीते के काथ में तथा कांजी में तीन २ दिन पारे

को पृथक् २ दोलायंत्र से पकावें तो भी पारा उत्तम प्रासार्थी हो जाता है ॥६६॥

जारणा का स्वरूप

पारे में विशेष २ प्रकार से जब गन्धक आदि डालकर जलाई जाती है तो उसे ही पारे का जारण संस्कार कहा जाता है ॥१००॥

छः गुणा गंधकजारण का प्रयोजन

आठ प्रकार के संस्कार करके शुद्ध हुआ २ पारा अथवा सीधा शिंगरफ से निकाला हुआ पारा तब तक निश्चय ही रोगों को नाश करने की शक्ति नहीं रखता जब तक कि वह छः गुणा गंधक की जारणा न कर ले ॥१०१॥

छः गुणा गंधक की जारणा का प्रथम प्रकार

बालुका यंत्र में (मजबूत प्याला रखे) उसमें एक भाग शुद्ध आंवलासारगंधक डाल दे ॥१०२॥ जब वह गंधक पिघल जावे तब उसमें एक भाग पारा डाल देवे । जब अग्नि के ताप से गंधक आधी जल चुके तब फिर एक भाग गंधक डाल देवे ॥१०३॥ इस प्रकार त्यों २ गंधक आधी जल जावे त्यों २ थोड़ी २ करके गंधक डालता जाये । उसमें जब छः गुणा गंधक डाल चुके तो अग्नि निकाल कर धीरे २ उसें स्वांग शीतल होने दें शीतल हुए २ पात्र में से पारे को अलग निकाल लेवे ॥१०४॥

छः गुणा गन्धक जारणका दूसरा प्रकार ।

कच्छपयन्त्र से भी इसी प्रकार छः गुणा शुद्ध गन्धक पारा में जारण करले इस प्रकार छः गुणा गन्धक जला कर पारे को निकालें ॥१०५॥

छः गुणा गन्धक खाये हुए पारे के गुण

पारा समभाग गंधक खाकर साधारण रोगों को ही नाश कर सकता है । दो गुना गन्धक खाकर महारोगों को भी विशेष करके नाश कर सकता है ॥ १०६ ॥ तीन गुना गन्धक खाकर पारा अत्यन्त पुरुषत्व को देता है । चौगुना गन्धक को खाकर पारा महा उत्साह, अतिमेधा तथा स्मृति शक्ति को बढ़ाता है ॥ १०७ ॥ पांच गुना गन्धक खाकर पारा सारे रोगों को नाश करता है । जब पारा छः गुना गन्धक खा चुकता है तो अनेक प्रकार के अद्भुत काम कर सकता है ॥ १०८ ॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रसतरङ्गिणी के भाषानुवाद में पारद से अष्ट संस्कार विज्ञानी नाम का पाँचवा तरंग समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

अथ मूर्च्छनाविज्ञानीय नाम का छठा तरङ्ग

मूर्च्छना का स्वरूप

अनेक विधियों से पारे के अन्दर जो रोग नाश करने निश्चित शक्ति उत्पन्न की जाती है, उसे ही विद्वानों मूर्च्छना कहा है ॥ १ ॥

मूर्च्छना के दो भेद

मूर्च्छना दो प्रकार की होती है, निर्गन्धा तथा सगन्धा । निर्गन्धामूर्च्छा वह कहाती है जिसमें गन्धक नहीं मिल जाती । सगन्धामूर्च्छना वह कहाती है जिसमें गन्धक मिल जाती है ॥ २ ॥ रसपुष्पादि में क्योंकि गन्धक

डाली जाती इसलिए पारे की उस मूर्च्छना को निर्गन्धा कहा जाता है । रससिन्दूर आदि रसों के बनाने में पारे में क्यों कि गन्धक मिलायी जाती है इसलिए उस मूर्च्छना को सगन्धा कहा जाता है ॥ ३ ॥

सगन्ध मूर्च्छना के दो भेद ।

सगन्धा मूर्च्छना भी रस शास्त्रियों ने दो प्रकार की मानी है । अन्तर्धूम तथा बहिर्धूम ॥ ४ ॥

अन्तर्धूम मूर्च्छना का स्वरूप

जब पारे में गन्धक मिला कर शीशी या कुप्पी के भीतर डाल कर बाल का यन्त्र द्वारा अग्नि से पकाते हैं तब यदि आरम्भ में शीशी या कुप्पी का मुख बन्द कर के गन्धक को कुप्पी के अन्दर ही जलाया जाये तो उस गन्धक का धुआँ कुप्पी के अन्दर ही रहने के कारण वह मूर्च्छना अन्तर्धूम कहाती है ॥ ५ ॥ यदि आरंभ में ही कुप्पी या शीशी का मुख खुला रखकर गन्धक जलाकर धुआँ बाहर निकाला जाये फिर उसका डाट बन्द कर के पारा पकाया जाये तो उसे बहिर्धूम मूर्च्छना कहते हैं ॥ ६ ॥ गन्धक सहित पारा यदि देरतक भी सेवन किया जाये तो पारे से होनेवाले विकार शरीर में कभी उत्पन्न नहीं होते ॥ ७ ॥ गन्धक के बिना मूर्च्छित किया हुआ पारा रोगनिवृत्ति के बाद यदि सेवन किया जावे तो अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है ॥ ८ ॥

मुग्ध रस को बनाने की रीति ।

चार तोला शुद्ध पारा लें, पत्थर आदि से रहित शुद्ध की हुई खड़िया मिट्टी को आठ तोला लें । दोनों को मिला

कर खरल में खूब देर तक घोटें ॥ ६ ॥ इस चूर्ण को तब तक घोटते रहें जब तक पारे की चमक नष्ट न हो जाय ॥ १० ॥ जब चमक नष्ट हो जाये तो इसे रोगों में प्रयोग कर सकते हैं। इस रसका नाम विद्वानों ने मुग्ध रस माना है डाक्टर लोग इसे (grey powder) नाम से प्रयोग करते हैं ॥ ११ ॥

मुग्धरस के गुण

मुग्ध रस के सेवन से अतीसार रोग, वमन, तथा जन्मसे हुआ २ फिरंग (आतशक, गर्मी) रोग भी निश्चित नाश होता है। फिरंग रूपी हरिण के लिए तो मुग्ध रस सिंह के समान है, यह बच्चों के रोगों को तो विशेष करके नाश करता है ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥ १२ ॥

मुग्ध रस की मात्रा

आधी रत्ती से लेकर ढाई रत्ती तक युवा पुरुष के लिए मुग्ध रस की पूर्ण मात्रा निश्चित की गई है ॥ १३ ॥ १ रत्ती के आठवें भाग से चौथाई रत्ती तक एक वर्ष के बालक के लिए मात्रा निश्चित की गई है ॥ १४ ॥

मुग्ध रस का आमयिक प्रयोग

मुग्धरस एक रत्ति लेकर (एक दोघूंट पानी से मिलालें इसको एक या दो मास यत्न पूर्वक सेवन कराने से गर्भवती स्त्रियोंकी फिरंग रोग से हुई २ नई या पुरानी पीड़ा भी शीघ्र ही नष्ट हो हो जाती है ॥ १५ ॥ १६ ॥ चौथाई रत्ती मुग्ध रस जल से मिला कर सेवन किया जाये तो शिशुओं के जन्म से होने वाले फिरङ्ग रोग का नाश करता है ॥ १७ ॥ चौथाई रत्ती मुग्ध रस जल

से मिलाकर सेवन करें तो बालकों के अतिसार को निश्चित नाश करता है ॥ १८ ॥ जब रोग को आराम हो जावे तब प्राणाचार्य वैद्य रस सिंदूर के समान मुग्धरस को देर तक सेवन न कराता जावे (क्यों कि अधिक देर तक सेवन कराने से रोगी को हानि होने की भी सम्भावना रहती है) ॥ १९ ॥

रस पुष्प के नाम

रस पुष्प, रस सुम, रस कुसुम ये तीनों रस पुष्प के नाम कहे गये हैं, कुछ आचार्य इसे सुधानिधि रस कह कर भी पुकारते हैं ॥ २० ॥

रस पुष्प बनाने की पहली विधि ।

शुद्ध पारा ५ तोला, सैधा लवण ५ तोला, शुद्ध कसीस ५ तोला ॥ २१ ॥ इन सबको खरलमें तबतक बारीक पीसं जबतक पारे की चमक नष्ट न हो जाये फिर इस चूर्ण को निकाल कर एक हांडी में डाल दें ॥ २२ ॥ उसके ऊपर एक ऐसी हांडी को ढकदे जिसके मध्य में छिद्र हो जिसके अन्दर कांच का लेप हुआ हो तथा जिमका मुंह भी अधिक चौड़ा हो ॥ २३ ॥ इन दोनों हांडियों की संधि को कपड़े से लपेटकर उस पर थोड़ी सी ही गीली मिट्टी का लेप कर दें । ऊपर की हाँडी को कपड़ मिट्टी से न लीपें, फिर इस संधि लेप को धूप में सुखालें ॥ २४ ॥ फिर हांडी को चूल्हे पर रखकर अत्यन्त मन्दी आँच पर पकायें । ऊपर की हाँडी के छिद्र में से भाप तेजी से निकलेगी ॥ २५ ॥ जब वह जलकी बनी भाप सर्वथा निकल चुके तब छेद में खड़िया मिट्टी का डाट लगाकर ऊपर से खड़िया मिट्टी का लेप कर दे ॥ २६ ॥ इस प्रकार आरंभ से लेकर अति मन्द २ अग्नि पर सावधानी से पकाते हुए जब छः घन्टे हो जावें तब (अग्नि

बंद रख स्वाङ्ग शीतल होने दें ॥२७॥ सर्वथा शीतल हो जाने पर हांडी को तिरछा करके (मीधी उठाने से ऊपर की हांडी से रस पुष्प नीचे गिर सकता है, इस लिये टेढ़ा करके हांडी को उतारना अच्छा है) उतार लें फिर सन्धि स्थान की कपड़ मिट्टी साफ करके दोनों हांडियों को पृथक् कर लें । ऊपर वाली हाँडी में लगे हुए चाँद के समान स्वतः रंग के लटकते हुये रस पुष्प (पारे के फूलों) को इकट्ठा कर लें ॥ २८ ॥ (डाक्टर इसे ही Calomal नाम से प्रयोग करते हैं) ।

रस पुष्प बनाने की दूसरी विधि ।

शुद्ध पारा ५ तोला, शुद्ध कसीस ५ तोला, सेंधा लवण ५ तोले लें । सब को एकत्र कर उत्तम खरल में भारीक निश्चन्द्र पीस लें । फिर एक शीशे की कुप्पी में सब चूर्ण को डालकर बालुका यन्त्र में रखकर ६ घन्टे तक मन्दाग्नि से पकावें । घाद में बर्फ के समान श्वेत रंग के रसपुष्प को कुप्पी के गले में से निकाल लें ॥ २९ ॥ जब जल वाली भाप निकल चुके तब कुप्पी के मुख को खड़िया मिट्टी के डाट से बंद कर दें । तथा ऊपर मिट्टी का लेप कर दें । कुप्पी के गले के चारों ओर से (ठंड पहुंचाने को) बालू भी हटा दें ॥ ३० ॥ कुप्पी के कन्ठ में लटकता हुआ फूलों के समान क्योंकि पारा शोभित होता है, इस लिए प्राणाचार्य वैद्यों ने इसे रसपुष्प नाम से ही पुकारा है ॥ ३१ ॥

रस पुष्प बनाने की तीसरी विधि

पुष्पकासीस को चूर्ण करके अति मन्द २ आँच पर कुछ भून लेवे, जब उसका जल नष्ट हो जावे तो उसे ५ तोला लेलेवे ॥ ३२ ॥ फिटकरी को आग पर भून कर खील बनाले । यह फूली

हुई फिटकरी भी ५ तोला ले लें। पारा शुद्ध ५ तोला, सेंधा लवण ५ तोला सबको पृथक् २ ले लें ॥ ३३ ॥ इन सब को खरल में डालकर पीसों और जब तक चमक न चली जावे तब तक पीसते जायें। जब ठीक चूर्ण हो जावे तब डमरू यंत्र में डाल दें ॥ ३४ ॥ इसको अति मन्द २ अग्नि पर दो पहर (छः घण्टे) तक पकावें। योग्य वैद्य स्वाङ्ग शीतल होने पर इसे उतार कर खोले ॥ ३५ ॥ तब सूर्य के समान चमकीले, शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान श्वेत लटकते हुए फूलों के समान रस पुष्प को निकाल लेवें ॥ ३६ ॥ रस शास्त्र रूपी महा समुद्र में सर्वोत्तम मल्लाह रूप (विश्वामित्र) मित्र वंश के भूषण पूज्य सद्गुरु ॥ ३७ ॥ श्रीमान् नरेन्द्रनाथ जी ने यह विधि निकाली थी, जो मैंने संसार के भले के लिए यहां लिखकर प्रकाशित कर दी है ॥ ३८ ॥

रस पुष्प की परीक्षा

अत्यन्त (मांज कर) शुद्ध किये हुए लोहे के पत्र पर जल की बूंद डाल दे। उस जल पर रस पुष्प डाल देवे ॥ ३९ ॥ क्षण भर के बाद उस जल को फेंक दे या बख से पोंछ दे। यदि उस लोहे पर काला दाग न पड़े तो उस रस पुष्प को शुद्ध जानना चाहिए। (यदि दाग पड़ जाये तो उसे अभी कच्चा समझें) ॥ ४० ॥

रस पुष्प के गुण

रस पुष्प पित्त नाशक है, मूत्र कारक है, ब्रण दोषों को हरने वाला है, अति दस्तावर है तथा भूत जन्य विषों या संक्रामक

रोंगों के कीटाणुओं को नाश करता है ॥ ४१ ॥ शरीर को अत्यन्त स्वस्थ करता है, शरीर के जलीयांश को शोषण करता है, पित्ताशय को जुब्ध करके मल पित्त को बाहर निकाल देता है ॥ ४२ ॥ विषूचिका या हैजे के कीड़ों को नाश करता है हिचकी, फिरंग रोग, जलोदर आदि रोंगों को शीघ्र ही नाश करता है ॥ ४३ ॥

रस पुष्प की मात्रा

आधी रत्ती से लेकर ढाई रत्ती तक रस पुष्प की मात्रा विद्वानों ने मानी है ॥ ४४ ॥ दस्त या जुलाव देने के लिए रस पुष्प की मात्रा ढाई रत्ती की मानी है । हिचकी रोग में रत्ती का आठवां भाग मानी है ॥ ४५ ॥ फिरंग रोग पर रत्ती का चौथाई भाग मात्रा मानी है । (ये सब मात्राएँ युवा पुरुषों के लिए कही गई हैं) शिशुओं के विरेचन के लिए रसपुष्प की चौथाई रत्ती की मात्रा देनी चाहिए । बालकों के अन्य रोंगों पर रोगानुसार रत्ती का बीसवां वा तीसवां भाग मात्रा देनी चाहिए ॥ ४६ ॥

रस पुष्पों का रोंगों पर प्रयोग

रस पुष्प ढाई रत्ती, सज्जी खार (आधा माषा) दोनों को मिलाकर (जल से) सेवन करें तो ६ घण्टे के बाद दस्त होते हैं । ॥ ४७ ॥ यदि (हैजे) विसूचिका रोग के आरम्भ में रस पुष्प की चौथाई रत्ती मात्रा जल के साथ रोंगी को खिला दी जाये तो विसूची के कीड़ों को नाश करती है ॥ ४८ ॥ रस शास्त्र को ठीक तरह से न जानने वाला मन्द बुद्धि वैद्य लगातार रस पुष्प का किसी को सेवन न करावे ॥ ४९ ॥

चन्दनादिवटी का

लाल चन्दन, काली मिर्च, खांड या बूरा, कश्मीरी केसर, रसपुष्प, तथा लौंग इन सब को पृथक २ एक २ तोला लें ॥५०॥ सबको पीसकर चूर्ण करके विधि पूर्वक (जल से) एक २ रत्ती की गोली बनालें। फिर एक गोली को मक्खन के साथ प्रतिदिन खावें तो इससे भयंकर, न आराम होने वाला फिरंग (आतशक, गरमी) रोग भी अच्छा हो जाता है। इसे चन्दनादि वटी कहते हैं ॥५१॥

रसपुष्पमलहर (मल्हम)

रसपुष्प चार रत्ती लें। निर्मल जल से मक्खन को एक सौ बार धोकर एक तोला लें ॥५२॥ फिर उस धुले मक्खन में रस-पुष्प को भली प्रकार मिलाकर मल्हम बना लो। इसे रसपुष्प-मलहर कहते हैं। इस मल्हम को लेप करने से फिरंगगज व्रण की पीड़ा शीघ्र ही दूर हो जाती है ॥५३॥

रसपुष्पाद्यमलहर

रसपुष्प चार रत्ती, सिक्थ तेल (मोम का तेल) एक तोला छोटे से अति चिकने खरल में दोनों को डालकर यत्न से घोंटे ॥५४॥ फिर चौड़े मुंह वाली शीशे की बनी हुई किसी प्याली या शीशी में रखे। यह रसपुष्पाद्यमलहर कहाता है ॥५५॥

इस मल्हम के गुण

इस मल्हम को बहुत थोड़ी मात्रा में यदि प्रतिदिन लेप किया जाये तो बहुत बड़ा हुआ भयंकर फिरंगजव्रण भी दूर हो जाता

है ॥५६॥ इसी मल्हम को थोड़ी मात्रा में लेप करने से गुदा में होने वाली या मूत्रेन्द्रिय पर होने वाली विचर्चिका (सूखी खाज) या (Eczima) नाश होती है ॥५७॥ सिंह, चीता आदि भयंकर प्राणियों के नख या दाँत से काटने पर जो घ्रण हो जाते हैं उन्हें अथवा इनके काटने से हुए २ छः मास या एक वर्ष के पुराने घ्रणों के बिष भी इस मल्हम से दूर होते हैं ॥५८॥

प्रसङ्गवश सिक्थतेल के बनाने की पहली विधि—

निर्मल या स्वच्छ मोम एक भाग लें। तिलों का तेल छः भाग लें। दोनों को मिलाकर क्लीदार पात्र में रखें ॥५९॥ इस पात्र को मन्द २ अग्नि पर रखकर तब तक पकावें जब तक मोम पिघल न जाये पिघल जाने पर पात्र को उतार कर भूमि पर रखें ॥६०॥ अब इसे एक कड़छी से तब तक हिलात रहें जब तक कि वह खूब गाढ़ा न हो जावे। क्योंकि सिक्थ अर्थात् मोम और तिलों के तेल के मिलाने से यह बनाया जाता है इसलिए इसे सिक्थतेल कहते हैं ॥६१॥

सिक्थ तेल की दूसरी विधि

शुद्ध मोम एक भाग, तिलों का तेल ५ भाग। दोनों को मिलाकर के पूर्व लिखित विधि से पकालें ॥६२॥ इसे नीचे उतार कर तीन घंटे तक कड़छी से घोटें तो यह मक्खन के समान हो जाता है। इसे ही रसानाचार्यों ने दूसरा सिक्थ तेल कहा है (यह परमोत्तम वैजलीन सदृश वस्तु बन जाती है) ॥६३॥

इन दोनों का प्रयोग

पहला सिक्थ तेल तो शीत काल में, और दूसरा सिक्थ

तेल ग्रीष्मकाल में मल्हमों के प्रयोगों में काम आता है। (गरमी की ऋतु में अधिक भाग मोम वाला दूसरी विधि से बना सिक्थ तेल गरमी से देर में पिघलेगा इसलिए दूसरा ही लेना उचित रहेगा) ॥६४॥

रसकपूर के निर्माण की विधि

अति यत्न से शुद्ध किया हुआ पारा एक पल लें। डेढ़ पल शुद्ध गंधकाम्ल (गंधक का तेजाब) लें ॥६५॥ फिर एक शुद्ध शीशे के प्याले में दोनों को डाल दें। इस पात्र को एक लोहे की तिपाई पर रख दें ॥६६॥ इसके नीचे सुरा से जलने वाला सुरा-प्रदीप या (Spirit Lamp) जलाकर रखें। धीरे २ जल के अंश को सूखने दें। जब शेष चूर्ण जलरहित होकर सूख जावे तो उसे प्रदीप से उतार लें ॥६७॥ अब इस चूर्ण रूप हुए २ पारे के सम भाग ही संधा लवण लेकर दोनों को मिलाकर खरल में घोटलें। फिर इसे एक कांच की कुप्पी में डाल दें ॥६८॥ इस कुप्पी को बालुका यंत्र में रखकर चार पहर या बारह घंटे अति यत्न से (मन्द अग्नि से) पकावें ॥६९॥ (पहले नमक का धुआं निकलेगा, उसे निकल जाने दें। बाद में कुप्पी का मुंह बंद करके गले से बालू उतार दें। जिससे रसकपूर गले में लग जावे। यह शुद्ध रसकपूर की नयी विधि श्री मित्र जी ने इसलिये निकाली है क्योंकि भावप्रकाश में कही हुई रसकपूर बनाने की विधि से यदि बनाया जावे तो उसमें रस पुष्प से मिला हुआ रसकपूर बनता है और वह पूरा २ लाभदायक सिद्ध नहीं होता है।) ऐसे आग देने के बाद जब कुप्पी स्वाङ्गशीतल हो जावे तो रसकपूर को कुप्पी के गले में से निकाल लेवे

(डाक्टर Perchloride of Mercury नाम से इसे प्रयोग करते हैं। बाजार में यह भी अशुद्ध रूप में बिकता है।) ॥७०॥

इसमें रहस्य

जब लवण के अन्दर से जलीयवाष्प बनकर निकले तो कुप्पी के मुख में से उन्हें निकल जाने दें। भाप निकल चुकने के बाद खड़िया मिट्टी के ढाट से मुँह बंद कर दें। कुप्पी के गले पर लगी हुई रेत भी हटा दें। ऐसा करने से ही रस-कर्पूर बनगा ॥७१॥

रसकर्पूर के गुण

रसकर्पूर बहुत प्रकार के संक्रामक जीवाणुओं के विष को नाश कर देता है। त्वचा तथा रक्त के दोषों को शान्त करता है, मल को संग्रह करता है, रुचि बढ़ाता है ॥७२॥ अतीसार को नाश करता है तथा विशेष करके कृमियों को नाश करता है। प्रवाहिका रोग को नाश करता है। आधिक मात्रा में दें तो विष का सा काम करके हानि भी पहुँचाता है ॥७३॥ स्फोट या छाले, पुरानो खुजली, मण्डलादि सब कुष्ठरोग, सब दोषों से तथा सब उपद्रवों से युक्त फिरंग, जन्मजात फिरंग, स्पर्श अन्य फिरंग को तथा नानाघ्रणों में होने वाली घोर पीड़ा को यह रसकर्पूर शीघ्र ही दूर करता है। यह जाठराग्नि को भी तेज करता है ॥७४॥ यदि इस रसकर्पूर को एक भाग लेकर सोलह भाग शीतल जल में मिला दें तो यह सर्वथा उसमें घुलकर द्रव हो जाता है ॥७५॥

रस कर्पूर की मात्रा

रसकर्पूर की मात्रा रक्ती के ६४वें भाग से लेकर रक्ती के ३२वें भाग तक (अधिक से अधिक) होती है । (यह मात्रा भी रोगी के बल तथा निर्वलता को देखकर ही देना चाहिये ॥७६॥

रसकर्पूर की पीने योग्य मात्रा बनाने की विधि

शुद्ध नौशादर ५ रक्ती, रसकर्पूर ५ रक्ती दोनों को एकत्र करके ६० तोला जल में डाल दे ॥७७॥ इस जल की ३० बूँद से मात्रा आरम्भ करके अधिक से अधिक ६० बूँद तक दे । (यह मात्रा युवा पुरुष के लिये है) ॥७८॥

चूर्ण रूप में खाने के लिये मात्रा बनाने की विधि

दारचीनी का चूर्ण ५ माशा लें, उसमें एक रक्ती रसकर्पूर डाल दें । सब को नीबू के अम्ल से घोट लें तथा सुखा लें ॥७९॥ इसकी एक रक्ती मात्रा युवा पुरुष के लिये पूर्ण मात्रा कहाती है ॥८०॥

रस कर्पूर का रोगों पर प्रयोग

यह रसकर्पूर उचित मात्रा में सेवन करें तो प्रातःकाल खाना खाते ही दस्त जाने का रोग आराम होता है ॥८१॥ इस रसकर्पूर की उचित मात्रा को सेवन करें तो पुराना अतिसार जिस में पतला २ पीले रंग का मल आता है तथा दाह भी होता है, नष्ट होता है ॥८२॥ उचित मात्रा में सेवन किया हुआ रसकर्पूर अति पुराने कफ तथा रक्तमिश्रित प्रवाहिका रोग को भी दूर करता है ॥८३॥

रसकपूर गुटिका

कश्मीरी केसर, काली मिरच, लाल चन्दन, लौंग, जावित्री इन सब द्रव्यों का चूर्ण पृथक् २ एक २ माशा भर ले लें ॥८४॥ शुद्ध रसकपूर एक रत्ती डालें। सब को एकत्र नीबू के रस से घाटकर एक रत्ती प्रमाण की गोली बनावें ॥८५॥ यह रसकपूर गुटिका नाम की गोली मक्खन में खाने से निम्बसन्देह फिरंग रोग को नाश करती है ॥८६॥

बाहर के प्रयोगार्थ भूतघ्नचक्रिका

रसकपूर ७३ भाग लें, निर्मल निम्बूकाम्ल ३८ भाग लें ॥८७॥ इन दोनों को अति यत्न से मिलाकर ६ रत्ती की टिकियां बना लें ॥८८॥ इसे भूतघ्नचक्रिका नाम से रसवैद्य पुकारते हैं। यह कभी बिगड़ती नहीं। सब प्रकार के भूतों (सूक्ष्म जीवाणुओं) के विष को नाश करती है ॥८९॥

प्रमङ्ग से निम्बूकाम्ल के बनाने की विधि लिखते हैं

कागजी नीबू, खट्टा नीबू या अन्य भी छोटो बड़ी जाति के अनेक प्रकार के खट्टे नीबूओं का रस इकट्ठा करें। उसको स्याही चूस से छानकर एक ऐसे मिट्टी के पात्र में डालें। जिस के अन्दर कांच या शीशा लिपा हुआ हो। उसको फिर अंगीठी पर रख कर उबालें ॥९०॥ जब उस का उबलते हुए कुछ मैल दूर हो जावे तो उसे अंगीठी पर से उतार लें उसमें खड़िया मिट्टी का चूर्ण डालदे। जब तक भाप निकलती रहे तब तक थोड़ा थोड़ा चूर्ण डालते रहें ॥९१॥ उसके बाद गन्धकाम्ल को धीरे धीरे डालें। इस प्रकार तब तक करता जाये जब तक

कि कुन्द के फूल के सदृश तथा चन्द्र के सदृश श्वेतरंग का चूर्ण पात्र के तल भाग में नहीं बैठ जाता ॥६२॥ जब सब चूर्ण नीचे बैठ जाये तो मोटे कपड़े से शेष रस को छान ले । जो कपड़े के अन्दर छानस रह जावे उसे त्याग दें । शेष पतला रस जो छन कर निकले उसे ग्रहण कर ले ॥६३॥ जो छुना हुआ रस या पानी हो उसे एक काँच के पात्र में डालकर फिर अग्नि पर सुखा ले । इस प्रकार पात्र के तलभाग में चन्द्रमा के समान श्वेत रंग का चूर्ण मिलेगा ॥६४॥ इसी चूर्ण को वैद्य लोग “निम्बूकाम्ल” कहते हैं । इसके गुण भी उसी नीबू के समान होते हैं कि जिस नीबू (की जाति) से यह बना होता है, अर्थात् गलगल के रस से बनाये हुये निम्बूकाम्ल में गलगल जैसे गुण होंगे इत्यादि ॥६५॥

रसकपूर द्रव का निर्माण प्रकार

एक शीशे के पात्र में एकसौ तोला जल डाल कर उसमें एक भूतघ्नचक्रिका डालें । जब वह उसमें घुल जाये तो इस द्रव को जहां उचित हो प्रयोग करें । इस प्रकार यह द्रव रसकपूर की मात्रा से दो हजार गुणा बन जाता है । यही प्रयोग में लेना चाहिए ॥ ६६ ॥

द्रुमि विधि से रसकपूर द्रव बनाना

३२ रत्ती रसकपूर लें, $२\frac{1}{2}$ तोला अल्कोहल (अंग्रेजी शराब) में डालें ॥ ६८ ॥ दोनों को घोल कर शीशी में डालकर रखें । इसमें से आठवां भाग द्रव लें ॥ ६९ ॥ उसे १०० तोला शुद्धजल में मिलाकर वर्त्तें । इस प्रकार से भी यह द्रव रसकपूर से २००० गुणा जल मिलाकर बन गया है ॥ ७० ॥ (अंग्रेजी माप के हिसाब से १ ड्राम रसकपूर का पहले १ ओंस

अलकोहल में घोल कर रखो। उस गाढ़े द्रव में से फिर १ ड्राम अर्थात् ६० बूंद लेकर २ पाईंट अर्थात् सवा सेर जल में घोल लें। इस प्रकार भी यह द्रव रसकपूर से २००० गुणा जल वाला बन गया है ॥१००॥

रसकपूर द्रव के गुण

रसकपूर द्रवसे धोवें तो फिरंग रोगके छाले, फुंसियां तथा उनका विष दूर होता है। पोप वाले ब्रणों की शुद्धि होती है हाथ पैर योनि और घर आदि में रहने वाले भूतों अर्थात् सूक्ष्म रोग के जीवाणुओं को यह द्रव नाश करता है ॥१०१॥ विशेष कर संक्रामक या छूत से फैलने वाले रोगों के जीवाणुओं को यह द्रव नाश कर देता है ॥१०२॥

रसकपूर द्रव का प्रयोग

रसकपूर द्रव को अब १००० गुणा जल से मिलाकर रखें। इस द्रव से फिरंग रोग के फोड़े, ब्रण तथा अन्य जहरीले ब्रण धोने चाहिये ॥१०३॥ जो ब्रण बहुत पुराने हो गये हों उनको धोने के लिए शल्यचिकित्सक को चाहिए कि वह रसकपूर को दश-सहस्र गुणे जल में घोल कर उस द्रव से उन ब्रणों को धोवे ॥१०४॥ यदि शरीर शुद्धि के लिए मनुष्य अपने हाथ और पैर आदि अंगों को धोना चाहे या अपने मकान को धोकर शुद्ध करना चाहे तो उसे चाहिए कि वह १००० गुणा जल में रसकपूर द्रव के एक भाग को घोल कर उस द्रव का प्रयोग करे ॥१०५॥ यदि योनि आदि कोमल अंगों को धोना हो तो ५००० गुणे जल में रसकपूर द्रव को घोल कर द्रव बनाले और उस से ही उन्हें धोवे ॥१०६॥

कज्जली का स्वरूप

पारे से आधी, समान, दुगुनी या अधिक गंधक को लें। उस के चूर्ण को उस में मिला दें। इन दोनों को घोटकर जो काले रंग के कज्जल के समान अति चिकनी कज्जली बनती है उसे ही कज्जलिका या कज्जली कहते हैं ॥१०७॥

कज्जली का प्रयोगों में विधान

जहां २ नुमस्त्रों में पारा तथा गंधक समान भाग लेने लिखे गये हैं, वहां वैद्य उन दोनों के तोल के बराबर कज्जली लेके (अर्थात् पारा एक तोला, गंधक एक तोला किमी नुसखे में डालनी हो तो वहां पर दो तोला कज्जली डालनी चाहिये) ॥१०८॥ जहां २ पर केवल प्रयोगों में पारा (या पारं की भस्म) ही लिखा हो, वहां २ पर निश्चित रूप से रस सिन्दूर ही लेना चाहिए ॥१०९॥ यदि किन्हीं योगों में पारे के मान से अधिक गंधक लिखी हो तो उन योगों में अधिक गंधक ही डालनी चाहिए ॥११०॥ जहां २ गंधक की अपेक्षा पारा अधिक लेना लिखा हो तो वहां २ पर पारा अधिक लेना चाहिए और उतना २ पारा तथा गंधक लेकर सबसे पहले कज्जली बना लेनी चाहिए ॥१११॥

कज्जली के गुण

कज्जली अपने सहपानों तथा अनुमानों के साथ प्रयोग की जाये तो सभी रोगों को नाश करती है, वृष्य अर्थात् वीर्यवर्धक है तथा वात, पित्त, कफ, इन तीनों दोषों को नाश करती है ॥११२॥

कज्जली का रोगों पर प्रयोग

यदि कज्जली को समान भाग पारा तथा गंधक से बनाया जाये। इलायची (यहां वमन नाशार्थ बड़ी इलायची ले) काली मिरच, कपूर, मोथा, लौंग, वेर की गुठली की गिरी इन सब को सम भाग लेकर चूर्ण करले। इस चूर्ण के साथ यदि कज्जली मिलाकर (चैत के माहने में होने वाले) शहद से चटावे तो वमन रोग दूर होता है ॥११३॥ यदि पारे से दुगनी गंधक लेकर कज्जली बनाई जाये तो उस कज्जली में कपूर सुगंधवाला मिरच, शिलाजीत, (इन सबको सम भाग लेकर चूर्ण करे) इन सब के चूर्ण को मिलाकर खांड डालकर खिलावे तो भयंकर प्णस तथा वमन का दूर करती है ॥११४॥ यदि कज्जली को सुश्रुतोक्त वरुणादिगण के क्वाथ से खिलावे तो भयंकर बाह्यविद्रधि तथा अन्तर्विद्रधि को नाश करती है ॥११५॥ पारा एकभाग, गंधक दो भाग मिलाकर जो कज्जली की जाती है, उसे यदि करेले की बेल के पत्तों के स्वरस से खावे तो भयंकर बीसर्प दूर होता है ॥११६॥ दुगनी गंधक से बनायी हुई कज्जली यदि सुहांजने की छाल के रस और (बमन्त में होने वाले) शहद से खायी जाये तो अति भयंकर बाह्यविद्रधि तथा अन्तर्विद्रधि को नाश करती है ॥११७॥ दुगने गंधक से बनाई हुई कज्जली बाबुई तुलसी से भावित करके रखें। उसे मुलहठी, बांसां, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, इनके क्वाथ या चूर्ण के साथ दें तो श्वास, कास तथा तमक श्वास को नाश करती है ॥११८॥ समान भाग गंधक से मिलाकर बनाई हुई कज्जली निम्बूकाम्ल, सोंठ तथा पिप्पली, के चूर्ण से मिलाकर चटावे तो भयंकर अजीर्ण

रोग को नाश करती हैं ॥११६॥ छोंटी इलायची, अफीम, कपूर जायफल, लौंग, इन सब को सम भाग लेकर चूर्ण करलें। इस चूर्ण के साथ कज्जली सेवन की जावे तो स्वप्नमेह को नाश करती है ॥१७॥ यदि कज्जली को शीशम की लकड़ी के तेल (पाताल यंत्र से तेल निकाल लें) के साथ या कज्जली को मक्खन के साथ मिलाकर पुराने चर्मदल (चम्बल) पर रात दिन लेप किया जाये तो वह भी ठीक हो जाता है ॥११८॥ चीते के रस में पीसी हुई कज्जली में दुगने धतूरे के पत्तों का रस या चूर्ण मिलाकर मक्खन से युक्त करके लेप करें तो कण्डू तथा पामादियों को नाश करती है ॥१२२॥ कज्जली को सैधालवण से मिलाकर आक के दूध से घोट लें। फिर गिल्टियों पर इसे लेप करें तो गण्डमाला को नाश कर देती हैं ॥१२३॥ त्रिफला और गूगल में से एक २ द्रव्य को सम भाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण के साथ कज्जली मिलाकर एरण्ड के तेल के साथ खावे तो सभी रोग (वात रोग विशेष करके) दूर होते हैं ॥१२४॥ यदि दुगनी गंधक डालकर कज्जली बनाई गई हो तो उसे गौ के मक्खन के साथ मिलाकर यदि खावे तो भयंकर उपदंश को भी नाश करती है। पथ्य के लिए नमक तथा नमकीन वस्तु वर्जित है ॥१२५॥ समान गंधक के योग से बनाई हुई कज्जली यदि मक्खन से मिलाकर लेप करें तो गजचर्म रोग को नाश करती है ॥१२६॥ यदि कज्जली में खांड तथा आंवले का स्वरस मिलाकर सेवन करावे तो सभी प्रकार का मदात्यय रोग नष्ट होता है ॥१२७॥ कज्जली को धतूरे के बीजों के स्वरस से पीसकर उसमें

सोंठ, मिरच, पीपल का सम भाग सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर नस्य दी जाये तो सन्निपात को नाश करती है ॥१२८॥

कज्जलिकोदय मलहर

निर्मल सिन्धतैल (जो पहले लिख चुके हैं) ४८ तोला लें, उत्तम पिसी हुई कज्जली दो तोला लें ॥१२९॥ शुद्ध मुर्दासंग (जल में पीसन से मुर्दासंग शुद्ध होता है, यह शुद्धि मृदारशृङ्ग के प्रकरण में लिखी जायेगी) दो तोला लें। शुद्ध कमीला आठ तोला लें ॥१३०॥ शुद्ध नीलायांथा तीन माषे लें। सबको एकत्र करके विधि पूर्वक पीमलें ॥१३१॥ इस मलहम को चौड़े मुंह वाली शीशी में रखें। इसे ही कज्जलिकोदयमलहर कहते हैं ॥१३२॥ यह व्रण को शुद्ध भी करती है तथा भरती भी है। यह नाड़ीव्रणों को नाश करती है तथा विवधि व्रणों को नाश करती है ॥१३३॥ जो-व्रण सैंकड़ों औषधियों से भी शान्त नहीं होते हैं वे व्रण इसके अधिक प्रयोग करने से शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं ॥१३४॥

रसपर्पटिका का निर्माण प्रकार

शिगरक से (ऊर्ध्वपानन यन्त्र द्वारा) निकाला हुआ शुद्ध पारा लेकर जयन्ती के स्वरस से, एरण्ड के स्वरस से तथा अदरक के स्वरस से क्रमशः घोट लेबे। फिर गन्धक को पहले भांगरे के स्वरस से सात बार भावना दे लें। बेरी के कोयलों की अग्नि पर उस गन्धक को (लोहे के पात्र में) पिघलाकर तुरन्त भांगरे के स्वरस में सिंचन करें। फिर उस गन्धक को पीस लें ॥१३५॥ इस पारे और गन्धक को समान भाग

लेकर युक्ति पूर्वक कज्जली बना लें। इस कज्जली को फिर लोहे की कड़छी में डाल दें। फिर बेर के कोयलों की उवाला पर इस कड़छी को रखें। पाक विद्या में चतुर वैद्य जब उस कज्जली को पिघला हुआ देखे तब तुरन्त ही गोबर पर रखे हुए १ केले के पत्ते पर उसे डाल दे ॥१३६॥ ऊपर से तुरन्त दूसरे केले के पत्र से उसे ढक कर देर तक पड़ा रहने दें। क्यों कि यह पर्पट अर्थात् पापड़ के समान होती है इस लिए इसे पर्पटी या रस पर्पटी कहते हैं ॥१३७॥ (यहाँ पर कज्जली जब सर्वथा सूखी हो तथा नयी २ बनाई गई हो तभी लेनी चाहिए। लोहे की कड़छी में कज्जली डाल कर एक दो बूँद गौ का घी भी डाल देना चाहिए। तब वह पिघलने लगेगी जब तक इन दोनों बातों का ध्यान न रखा जायेगा तब तक पर्पटी कभी न बनेगी इसमें यही भेद की बात है। “विद्याधर”)

पर्पटिका का तीन प्रकार का पाक

मृदु, मध्य तथा खर तीन प्रकार का पाक होता है। मृदु तथा मध्य पाक वाली रसपर्पटी का प्रयोग वैद्य करें। परन्तु खरपाक वाली पर्पटी को विष के समान समझकर त्याग दें। (क्योंकि खर पाक में गन्धक जल जाती है) ॥१३८॥

तीन प्रकार के पाकों के स्वरूप

मृदुपाक में पर्पटी को भंग नहीं किया जा सकता। मध्यम पाक में पर्पटी को सरलता से भंग किया जा सकता है। इन दोनों में चन्द्रकाएँ होती हैं तथा कृष्णता या कालापन

होता है। खरपाक में जो पर्पटी होती है वह चूर्ण रूप में होती है तथा उसका रंग लाल होता है ॥१३६॥

पर्पटी के गुण

रस पर्पटी, ग्रहणी रूपी हाथी को नाश करने के लिए उत्तम है। क्षय, कास, जलोदर तथा गुल्म को नाश करती है। अतिसार मतिभ्रम तथा दाह को नाश करती है ज्वर तथा शीत को नाश करती है ॥१४०॥

अर्श, कामला, पाण्डु, शूल तथा शोथयुक्त पाण्डुरोग, भयानक भस्मक रोग, अठारह प्रकार के कुष्ठ, सब प्रकार की सूजन अति पोड़ा, युक्तितल्ली तथा सब प्रकार के आम-वातों को नष्ट करती हैं ॥१४१॥

अम्लपित्त को शान्त करती है। बुढ़ापे के दोषों को दूर करती है। कामदेव की तथा वीर्य की वर्धक है। और मस्ती लाती है। इस लिए पर्पटी को सर्वत्र सेवन करना चाहिए ॥१४२॥

पर्पटी की मात्रा

आरम्भ में दो रस्ती की मात्रा देनी चाहिये, बाद में क्रम से बढ़ाकर दस रस्ती तक दे सकते हैं ॥१४३॥

रस पर्पटी का आमयिक प्रयोग

रास्ना की जड़ के चूर्ण के साथ आठ रस्ती रस पर्पटी गौ के घी के साथ मिलाकर खिलावे, तो उन्माद रोग को नाश करती है ॥१४४॥ ब्राह्मी स्वरस के साथ आठ रस्ती रस पर्पटी खिलाने से अपस्मार रोग को नाश करती है ॥१४५॥ हींग,

आधी रत्ती और सफेद जीरे का चूर्ण आठ रत्ती के साथ मिलाकर आठ रत्ती रसपर्पटी खिलायें तो भयंकर ग्रहणी भी दूर होती है ॥१४६॥ सौंठ मिरच, पीपल और निम्बू के पत्तों के साथ मिलाकर रस पर्पटी खायें तो अपस्मार को दूर करती है ॥१४७॥ अरण्ड के बीजों के तेल के साथ गूगल मिलाकर यदि रस पर्पटी का प्रयोग किया जाये तो पाण्डु-शोथ का नाश करती है ॥१४८॥ धतूरे के बीजों के साथ पांच रत्ती रसपर्पटी खिलायें तो उन्माद रोग को विशेषतया ठीक करती है ॥१४९॥ गौमूत्र के साथ रसपर्पटी एक महीना खायें तो अर्श के मस्सों का नाश होता है ॥१५०॥ निम्बू का पंचांग भिलावां बाबची तथा भांगरे के चूर्ण के साथ मिलाकर रस पर्पटी खायें तो सर्व कुष्ठों को नाश करती है ॥१५१॥ दशमूल के काथ के साथ रसपर्पटी खाने से भयंकर वातिक उवर विशेषतया नाश करती है ॥१५२॥ सौंठ, मिरच, पीपल के चूर्ण के साथ रसपर्पटी सेवन करने से शीघ्र ही कफजकास को नाश करती है ॥१५३॥

पर्पटिका के खाने के बाद जलपान का निषेध

पारे गन्धक से बनी हुई रसपर्पटी के खाने के साथ ही नदी का या कूँए का (तथा अन्य प्रकार का भी) जल विद्वानों को नहीं पीना चाहिये ॥१५४॥

रस पर्पटी के पथ्य

मकोय, पटोल या परबल, गीली या ताजी सुपारी, बथुआ, केले के फूल, काला बैंगन, बारीक पुराने शाली चावल जो कृमिदोष से रहित हों, खांड के साथ मिलाकर गौ का दूध

पीना, ये सब पदार्थ विद्वानों ने रसपर्पटी के सेवन समय पथ्य माने हैं ॥१५५॥

अन्य प्रकार से पथ्य लिखते हैं—

रसपर्पटी में पुराने शाली चावल, बंगन, परवल, गौ का दूध ये चारों पदार्थ निरन्तर सेवन करने पथ्य माने जाते हैं ॥१५६॥ यदि किसी रोगी का प्रथमावस्था में दूध अनुकूल न पड़ता हो तथा अतिसार लाता हो तो वह दूध को सेवन न करें ॥१५७॥ लाव या बटेर तथा तीतर आदि पक्षियों के मांस रस को ऐसे रोगी को देना चाहिये । परन्तु जब अतिसार बन्द हो जाये तो फिर दूध देना आरम्भ कर दें ॥१५८॥ शोथ रोग में पर्पटी के सेवन के साथ २ जल तथा लवण का सेवन सर्वथा बन्द कर दें । यदि प्यास लगे तो थोड़ा सा नारियल का जल पीने को दें ॥१५९॥ उष्ण प्रधान देश में रोगी की भलाई के लिये शोथ होने पर भी पीने के लिये पानी सर्वथा बन्द न करें । (थोड़ा २ देता ही रहे, यह भाव है ॥१६०॥

रस पर्पटी में अपथ्य

रसपर्पटी सेवन करते समय अम्लरस न खावे, शीतल जल से स्नान न करे । न वायु (धूप, अग्नि) आदि का सेवन करे । क्रोध, चिन्ता तथा उष्णपदार्थों का सेवन न करे, क्योंकि ये सभी अहित करते हैं । कड़वे रस वाले नीम आदि पदार्थों का सेवन भी न करे । गुड़ और आनूपदेश के जीवों का मांस आदि भी सेवन न करें । स्त्री से बातचीत तथा सम्भोगादि भी सर्वथा न करें ॥१६१॥

रस सिन्दूर का निर्माण प्रकार

आठ तोला शुद्ध पारा ले, आठ तोला शुद्ध गन्धक ले। दोनों की कज्जली करके बड़ के अंकुरों के स्वरस (अभाव में कवाथ) से भाधित करे ॥१६२॥ दवात के आकार की एक काले रंग की (शराब की प्रसिद्ध काली) बोतल लेकर उस पर रुई मिलाकर कुटी हुई मिट्टी का लेप कर दें ॥१६३॥ फिर उसे सुखा ले। बाद में कज्जली को यत्नपूर्वक उस शीशी में डाल दें। इस शीशी को बालुकायन्त्र में रखकर क्रमशः मन्द, मध्य तथा तीव्र अग्नि से पकावें। जब गंधक जल चुके तब उस शीशी के मुख को युक्तिपूर्वक (खड़िया मिट्टी के ढाट से) बन्द कर दे ॥१६४॥ बालुकायन्त्र में रखी हुई शीशी के मुख में से जब गोरोचन के समान पीला २ (भूरे रंग का) धुआँ निकलना बन्द होजावे तब पारा जारण में कुशल वैद्य समझ लेवे कि अब सारी गन्धक जल चुकी है ॥१६५॥ तब उस शीशी या कुप्पी में (खड़िया मिट्टी को जलसे पासकर बनाया हुआ) ढाट लगा दें। उस ढाट पर गुड़ तथा चूने को पीसकर लोप दें। फिर छः घण्टे तक अग्नि पर पकावे ॥१६६॥ बाद में स्वांगशीतल होने पर बालसूर्य के समान लालरंग के चमकते हुए रससिन्दूर को गलदेश में से (शीशी को तोड़ कर) निकाल लेवे ॥१६७॥

रस सिन्दूर का निर्माणप्रकार

आठ तोला शुद्ध पारा, आठ तोला शुद्ध गन्धक ले ॥१६८॥ दो दिन तक खरल में डालकर घोटो। जब नये बादल के समान नीले रंग की कज्जली हो जावे ॥१६९॥ तब उसे बड़के अंकुरों के स्वरस से तीन भावमा दें। अथवा छोटे सीमल की

मूसली के स्वरस से तीन बार भावना देवे ॥१७०॥ फिर दवात के सदृश आकार वाली काली शीशी को लो कि जिसके ऊपर रुई तथा मिट्टी कूट कर जल से मिलाकर कपड़ मिट्टी कर रखीहो ॥१७१॥ फिर उस शीशी को बालुका यन्त्र में रख कर क्रमशः मन्द मध्यम तथा तीव्र अग्नि से पारे को पकावे ॥१७२॥ पहले मन्दाग्नि से छः घन्टे पकावे । इस प्रकार चिह्नान वैद्य गन्धक को जलावे ॥१७३॥ जब सब गंधक का धुंआ निकल कर गंधक जीर्ण हो जावे ता शीशी के मुंह को पूर्व वर्णित विधि से डाट से बन्द करदे ॥१७४॥ उस डाट पर या कुप्पी के मुख पर गुड़ तथा चूने को जल से पीसकर लेप लगादें । फिर छः घन्टे तीव्र अग्नि से उसे खूब पकावें ॥१७५॥ स्वांगशीतल होने पर उस शीशी या कुप्पी को फोड़कर कमल के समान लाल रंग वाले रस सिंदूर को निकल लेवें ॥१७६॥

तलस्थ रससिन्दूर बनाने की विधि

शुद्ध पारा तथा शुद्ध गन्धक सम भाग लेकर कज्जली करे उसे शीशी में डालकर ऊपर से डाट लगाकर सन्धि बन्द करदे ॥१७७॥ लम्बाई चौड़ाई तथा गहराई में एक हाथ गहरा गढ़ा खोदकर उसमें शीशी रख देवे ॥१७८॥ इसे चार अंगुल ऊंचे रेत में दबा देवे । शेष भाग शीशी का खुला रहने दे । फिर जंगली उपलों से शेष गढ़े को भरकर आग लगा देवे । जब स्वांगशीतल हो जावे तब कुप्पी को उस मेंसे निकाल लेवे । ॥१७९॥ ॥१८०॥ कुप्पी के नीचे का सिन्दूर लाल रंग का होगा । इसे अधः बालुकायन्त्र कहते हैं ॥१८१॥ श्री नरेन्द्रनाथ

मित्र जी ने यह मार्ग निकाला था तथा अनुभव किया था । इस लिए यहाँ प्रकाशित किया जाता है ॥१८२॥ (जितनी ऊँचाई तक कज्जली शीशी में हो उतनी ऊँचाई तक ही रेत में दबाये यहां चार अंगुल से यही अभिप्रस्त है) ।

अर्धगन्धकजीर्ण रससिन्दूर

आठ तोला शुद्धपारा, दोकर्ष (चार तोला) शुद्ध गन्धक ले । नौसादर एक कर्ष (दो तोला) ले । सबको विधि पूर्वक घोट कर खट्टेनीबू से रस से घोट ले ॥१८३॥ फिर इस चूर्ण को कुप्पी में डालकर विधि पूर्वक सिकतायन्त्र में रखकर पकावे । स्वांगशीतलहोने पर कुप्पी को तोड़कर शिगरफ के रंग के जैसे लाल रससिन्दूर को निकाल लेवे ॥१८४॥

समान गन्धक से जीर्ण हुआ रससिन्दूर

शुद्ध गन्धक एक पल (चार तोला) ले, उतना ही शुद्ध पारा ले । एक तोला नौसादर ले । विधिपूर्वक सबको पीसले । फिर कुप्पी में डालकर बालुका यन्त्र में रखकर पका ले । बाद में कुप्पी को तोड़कर ऊपर के भाग में लगे हुए कमल के समान लाल रंग के रससिन्दूर को निकाल लेवे ॥१८५॥

द्विगुण गन्धकजीर्ण रस सिन्दूर

शुद्ध गन्धक दो पल ले, शुद्ध पारा एक पल ले । उसकी कज्जली बनाकर उसे लाल से रंग के कपास के फूलों से घोट ले । फिर इस को कुप्पी में डालकर बालुका यन्त्र में रखकर एक दिन रात पकावे । स्वांगशीतल होने पर कुप्पी के ऊपर के भाग में लगे हुए कमल के समान लाल रंग के रससिन्दूर को निकाल ले ॥१८६॥

त्रिगुणादि गन्धक जीर्ण रससिन्दूर का विधान ,

ऊपर लिखी हुई विधि से ही गन्धक को क्रमशः बढ़ाकर रस-सिन्दूर बना सकते हैं ॥१८७॥ जब तक गन्धक जल जावे उतने दिन तक गन्धक को क्रमशः जलाकर तब फिर छ घण्टे पारे को पृथक् जलने दे । इससे पारा ठीक पक जाता है ॥१८८॥

पडगुणगन्धकजीर्ण रससिन्दूर

शुद्ध गन्धक छः पल लें, पारा शुद्ध एक पल लें । दोनों की कज्जली करके दो कुवार के स्वरस से एक पहर (तीन घण्टे) भावित करे । फिर सुखाकर कुप्पी में डालकर बालुकायन्त्र में रखकर आग देवे । सात दिन तक खूब आग देकर कुप्पी के ऊपर के भाग में लगे हुए रस सिन्दूर को निकाल लेवे ॥१८९॥

रस सिन्दूर के गुण

रस सिन्दूर प्रमेह रूपी हाथी के लिये सिंह के समान है प्रबलशूल के लिए कालाग्नि है । भगंदर नाशक है तथा महाज्वर रूपी हाथी के लिए अंकुश के समान है । सारे रोगों को नाश करने वाला है । सभी प्रकार के शोष सूखा या क्षय रोगों को नाश करने वाला है । यह रस सिन्दूर अति आनन्द तथा भोग विलासों को देता है ॥१९०॥

हे मित्र ! मलयानिल से क्या लाभ है ? औषधियों के सेवन से क्या लाभ है ? कपूर मिलाये हुए उत्तम चन्दन के लेपों से क्या लाभ है ? जबकि कामदेव को जीवन देने वाला, कामवर्धक, मन को कामदेव का आनन्द देनेवाला, अति बल तथा कान्ति को देने वाला रससिन्दूर सेवन करने के लिए विद्यमान है ।

इस लिए इस रससिन्दूर को ही सेवन करना चाहिए ॥१६१॥ गुल्म तथा लीहा को नाश करने वाला, काम वाग्मना वर्धक राज्यदमा रूपी हाथी के नाश के लिए सिंह के समान, पाण्डु रोग तथा स्थूलता नाशक, ब्रण नाशक, रुक्षता तथा अग्नि मांद्यका नाशक, कुष्ठ रोग नाशक, रति कला में चतुर नारियों को भी आनन्द देने वाला, यह रस सिन्दूर सदा सबका कल्याण करे ॥१६२॥ यह रस सिन्दूर नियम पूर्वक सेवन करने से बढ़ी हुई प्राणादि पांचों वायुओं को नियम में ले आता है। वात की समता होने पर धमनियों की अपनी २ क्रिया शक्ति को फैलाना है। आरम्भ में नाड़ियों के जाल को दृढ़ करता है और फिर सेवकों के मन को आनन्द देता है ॥१६३॥ इस रस के सेवन से जो पसीना, मल, मूत्र तथा वायु बाहर निकलने योग्य होते हैं, वे निकल जाते हैं ॥१६४॥ यह वात को निकाल देता है पर विरेचन नहीं लाता। खाने से पित्ताशय तथा कोष्ठ को लुभित नहीं करता है अर्थात् आमाशय तथा पक्वाशय को लुब्ध नहीं करता है ॥१६५॥ रस सिन्दूर देर तक सेवन करने पर भी मसूढ़ों की सूजन, मुख का पकना, मुख-क्षत आदि, लारें बहना तथा प्रवाह को नहीं करता है ॥१६६॥ इसी प्रकार के अन्य भी पारद सेवन से होने वाले भयंकर विकार भी रस सिन्दूर के सेवन करने वाले को नहीं होते ॥१६७॥ यह रस सिन्दूर अत्यन्त बढ़े हुए त्रिदोषों को भी शमन करता है तथा इन्द्रियों को विशेषकर अपने २ विषयों में प्रवृत्त कर देता है ॥१६८॥

सहपान का लक्षण

जिस द्रव्य के साथ मिलाकर देने से पारे आदि के परमाणु विभक्त होकर अर्थात् सूक्ष्म रूप में बँट कर शीघ्र ही अंगों में फैल जाते हैं उसे ही सहपान कहते हैं ॥१६६॥

अनुपान के लक्षण

किसी औषध के सेवन के पीछे उसी रोग की दूसरी औषध जो सहायता के लिए पी जाती है उसे ही अनुपान कहते हैं ॥२००॥ सहपान और अनुपान के साथ वैद्य औषध की शक्ति को बढ़ावे जिससे रोगी में रोग नाश करने वाली शक्ति सदा अधिक गुणवती होती जावे ॥२०१॥ यदि सहपान तथा अनुपान की सर्वथा प्राप्ति न हो तो शहद के साथ या जल के साथ ही औषध देनी चाहिए ॥२०२॥

रस सिन्दूर का आमयिक प्रयोग

नव ज्वर में, पुष्पित तुलसी के पत्तों के स्वरस से या अदरक के स्वरस से, या पान पत्र के स्वरस से रस सिन्दूर का सेवन करे ॥२०३॥ गिलोय, पित्त पापड़ा, तथा धनियाँ का काथ करके चतुर्थांश शेष रखे। इस क्वाथ से रस सिन्दूर सेवन करने को दे तो ज्वर का नाश होता है ॥२०४॥ प्रमेह में गिलोय के रस से अथवा हल्दी की जड़ के जलसे (कच्ची हल्दी के स्वरस से) दे। रक्तप्रदर में अशोक तथा खिरौंटी आदि के क्वाथ से रससिन्दूर को देना चाहिए ॥२०५॥ विद्वान् पुरुष को चाहिए कि अर्शरोग में छोटी हरड़

के क्वाथ से देवे । बच के रस से रस सिन्दूर को अपस्मार रोग में देवे ॥२०६॥ उन्माद रोग में रस सिन्दूर को पेटे के स्वरस से देवे । श्वास रोग में बहेड़े के क्वाथ से या बांसे के स्वरस से देवे ॥२०७॥ कामला रोग में रससिन्दूर को दारू हल्दी के काथ से देव । पाण्डु रोग में रस सिन्दूर को लोहे की भस्म से देवें ॥२०८॥ मिश्री, छोटी इलायची तथा शिलाजीत इन तीनों को समभाग लेकर चूर्ण करें । इस चूर्ण के साथ रस सिन्दूर सेवन करने को दें तो सभी मूत्र कृच्छ्र नष्ट होते हैं ॥२०९॥ अजीर्ण रोग में रस सिन्दूर को मधु से दें या मोथा के क्वाथ से दें । शूल में त्रिफला के क्वाथ से दें ॥२१०॥ एक रत्तो रससिन्दूर पिपली के चूर्ण तथा शहद से मिलाकर सेवन करें तथा पथ्य रूप में जल में अबगाहन (घुसकर स्नान) करें तो मूच्छा को दूर करता है ॥२११॥ रस सिन्दूर को बड़ी इलायची के क्वाथ से या मधु से दें, तो बमन का नाश होता है । शोथ रोग में रस सिन्दूर को पुनर्नवा के क्वाथ से दें ॥२१२॥ गिलोय, नीम की छाल, खैर की छाल या कत्था, इन्द्र जौ के द्रव या क्वाथ में कपूर तथा चातुर्जात (दार चीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर) का चूर्ण मिलाकर सेवन किया जावे ॥२१३॥ और इसके साथ रस सिन्दूर एक रत्ती सेवन किया जावे तो बिस्फोट या छालों को पेसेदूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करता है ॥२१४॥ काकोली के चूर्ण के साथ नारियल के तेल से संयुक्त करके रस सिन्दूर सेवन किया जावे तो जरायुज रोग को हरता है ॥२१५॥ बंगभस्म के साथ रस सिन्दूर शहद से खावें तो अति पुराने प्रमेह को नाश करता है ॥२१६॥ शहद, सोंठ, मिरच, पीपल

धनियां, श्वेत जीरा तथा सोंठ लें, इन सब के साथ रससिन्दूर का सेवन करें तो भयंकर वमन दूर होती है ॥२१७॥ ब्राह्मी, वच, शंखपुष्पी, कुष्ठ, छोटी इलायची इन सबके क्वाथ के साथ दो रत्ती रससिन्दूर सेवन करें तो यह अपस्मार को नाश करता है ॥२१८॥ आंवला, हरड़, बहेड़ा के क्वाथ के साथ अथवा त्रिद्विग चूर्ण के साथ रससिन्दूर को भगन्दर में दें तो लाभ होता है २१९॥ रससिन्दूर को गुल्मरोग में देना हो तो सौंफ और छोटी हरड़ के क्वाथ से या अजवायन के चूर्ण से या विड्मूलक से ही दें ॥२२०॥ दशमूल के क्वाथ से शिरशूल में रससिन्दूर देना चाहिये । बड़ी कटेली, सुगन्ध बाला, गिलोय तथा सोंठ के क्वाथ से रससिन्दूर को व्रण रोगों में दें ॥२२१॥ गिलोय, शतावर, पिप्पली, रास्ना, हरड़, बच, मोथा, तथा सोंठ इनके क्वाथ के साथ रससिन्दूर सेवन किया जावे तो चिरकाल से उत्पन्न हुआ २ आमवात भी नष्ट होता है ॥२२२॥ ॥२२३॥ सीमल की जड़ के चूर्ण से या सुश्रुतोक्त विदार्यादिगण के साथ मिलाकर रससिन्दूर सेवन किया जावे तो उत्तम वाजीकरण होता है ॥२२४॥ रससिन्दूर को अभ्रक भस्म से या स्वर्णभस्म से या दोनों से मिलाकर खावें तो धातु वृद्धि को करता है ॥२२५॥ जायफल, लौंग, कपूर तथा अफीम के चूर्ण के साथ रससिन्दूर सेवन किया हुआ स्वप्नमेह को नाश करता है ॥२२६॥ रससिन्दूर को बलाके क्वाथ से सेवन करें तो पुराने सिर के कांपने को दूर करता है ॥२२७॥ जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, छोटी कटेली, हरड़, धनियां इन सब को सम भाग लेकर इनके साथ रससिन्दूर सेवन करें तो वमन को शान्त करता है ॥२२८॥ हींग, अजवायन, सोंठ, चण्य, धनियां तथा सोंचल नमक

के साथ मिलाकर रससिन्दूर सेवन किया जाये तो शीघ्र ही पानात्यय रोग को नाश करता है ॥२२६॥ जौखार और सुहागे के साथ मिलाकर सात दिन तक रससिन्दूर सेवन किया जावे तो वह परिणामशूल को नाश करता है ॥२३०॥ रससिन्दूर को बांसे के क्वाथ से दें या लोध के क्वाथ से दें तो रक्तप्रदर का नाश होता है ॥२१॥ रस सिन्दूर के साथ त्रिफला का क्वाथ अथवा कांजी, नमक मिलाकर सेवन की जावे तो वस्ति कुण्डल (मूत्राशय के रोग) को आराम करता है ॥२३२॥ बच्चों के नव ज्वर तथा प्रतिश्याय में इसकी मात्रा तुलसी के साथ देनी चाहिए। छोटी कटेली के रस के साथ रस सिन्दूर दिया हुआ खाँसी तथा श्वास को नाश करता है ॥२३३॥ रस सिन्दूर के साथ सहपान तथा अनुपान का सम्बन्ध नहीं तोड़ना चाहिए। रोगानुसार वैद्य इन अनुपानों आदि की कल्पना स्वयं कर लिया करें ॥२३४॥

रससिन्दूर की मात्रा

एक वर्ष तक के बालक को रोगी देखकर रससिन्दूर की एक रत्ती का सोलहवां भाग मात्रा देनी चाहिये ॥२३५॥ दो वर्ष तक के बालक को एक रत्ती का सातवां भाग मात्रा दें। छः वर्ष तक के बालक को एक रत्ती का तीसरा भाग दें ॥२३६॥ १२ वर्ष तक के बालक को आधा रत्ती रससिन्दूर दें। पूर्ण ज्वान पुरुष के एक रत्ती लिये की मात्रा पूर्ण मात्रा समझे ॥२३७॥

मकरध्वज का निर्माणप्रकार

एक तोला स्वर्ण के अति बारीक पत्र (वर्क) लेकर उन्हें विधिपूर्वक शुद्ध कर ले। स्वर्ण से आठ गुणा पारा ले। यह पारा अच्छी प्रकार से शुद्ध गंधक खाया हुआ हो। तथा इस पारे के अनेक प्रकार के संस्कार करके इसे अति शुद्ध कर रखा हो। इस पारे में १६ तोले शुद्ध गंधक पीसकर कज्जली बनाये ॥२३८॥ इस कज्जली में लाल रंग के कपास के फूलों का रस डालकर एक दिन घोंटे तथा अंकोल वृक्ष की जड़ की कोमल छाल के रस से एक दिन घोंट तथा घीकुंवार के रस से एक दिन घोंटे तथा भावना दें। फिर भली प्रकार पीसकर तथा अच्छी प्रकार से सुखाकर पारे को काँच की कुप्पी में भरें। फिर बिल आदि की सूखी लकड़ियों को जलाकर अग्नि में दें ॥२३९॥ पहले विद्वान पुरुष दो पहर अर्थात् ६ घण्टे तक मन्द २ अग्नि से पकावे, फिर छः घण्टे तक मध्यम अग्नि से पकावे ॥२४०॥ फिर तीक्ष्णाग्नि से दो पहर तक पकावे। शेष दो पहर (६ घण्टे) फिर तीव्र अग्नि से पकावे ॥२४१॥ बालुकायंत्र में इस काँच की कुप्पी को रख कर पकावे। इसके बाद स्वांगशीतल होने पर काँचकुप्पी को निकालकर तोड़ लें। उसमें से पके आम के फल के समान (काला मिश्रित लाल) रंग वाला, तोड़ने में लाल रंग का, पीसने में लाल रंग के कमल के समान, सोने की मूर्छना से युक्त पारे को वैद्य ग्रहण करे ॥२४२॥ क्योंकि मनुष्य इस रस के सेवन करने से कामदेव के समान बन जाता है इसीलिये रसावनाचार्यों ने इसे मकरध्वज नाम से कहा है ॥२४४॥

श्री सिद्धमकरध्वज ।

जितना स्वर्ण मकरध्वज में लिख चुके हैं उस एक तोला सोने की अपेक्षा चार गुणा सोना लें । और मकरध्वज के समान ही शुद्ध पारा ८ तोला तथा गंधक शुद्ध १६ तोले लें । इन सब की विधिपूर्वक कज्जली बनाकर पूर्व के समान ही लाल कपास के फूलों आदि के रस में कज्जली को घोटें । फिर इसे कुपी में भरकर विधिपूर्वक बालुका यंत्र में पका दें । इस प्रकार क्रमशः ६ गुणा (४८ तो०) गंधक जला दें ॥२४६॥ इस रस को बनाकर क्योंकि महादेव जी ने सिद्धों को अर्पण किया था, इसलिये यह श्री सिद्धमकरध्वज रस कहा जाता है ॥२४७॥ (नोट—पहले ४ तो० स्वर्णपत्र, ८ तो० पारा, १६ तो० गंधक की भावित कज्जली को पकावे । फिर उसके बने रससिन्दूर तथा नीचे बचे हुए स्वर्ण को ले १६ तोला शुद्ध गंधक डालकर कज्जली बनाकर उड़ावे । इसी प्रकार तीसरी बार १६ तो० शुद्ध गंधक डालकर उड़ावे । इस प्रकार ६ गुणा (४८ तोला) शुद्ध गंधक पारे में खपा कर उड़ा देवे । यह तो बहिर्धूमविपाचित सिद्धमकरध्वज बना । अन्तर्धूमविपाचित सिद्धमकरध्वज जिसमें सोना पूरा २ मिला होता है पहले तलस्थ रससिन्दूर में लिख चुके हैं ॥२४७॥

इस मकरध्वज के गुण

लघु रोग को नाश करने वाला, प्रबल खांसी को नाश करने वाला, प्रमेहों को नाश करने वाला, आंत्रशोष को नाश करने वाला, समस्त रोगों को नाश करने वाला, समस्त नारियों को प्रसन्न करने वाला, यह रसराज मकरध्वज सदा ही विजयी होवे ॥२४८॥

सर्वाङ्ग सुन्दर रस

शुद्ध पाग एक पल, शुद्ध गंधक एक पल लें। दोनों की कजली करके भुई आँवला तथा हांथी सुंढी के स्वरस से निरन्तर ७ दिन तक घोटते रहें ॥२४६॥ फिर एक संपुट में इस कजली को बंद करके बालुका यंत्र में रखकर मन्द २ अग्नि से १ दिन रात पकावे। जब पक जावे तब स्वांगशीतल होने पर उम संपुट को निकाले ॥२५०॥२५॥ संपुट के अन्दर लगी हुई पांगे की पीली भस्म को निकाल लेवे। इसे ही पूर्वाचार्यों ने “सर्वाङ्गसुन्दर” कहा है। इसको देने की मात्रा आदि रसमिन्दूर के समान समझें।

इस सर्वाङ्ग सुन्दर के गुण

यह सर्वाङ्ग सुन्दर रस हृदय में प्रीति को उत्पन्न करता है, उदरामयों को नाश करता है। बल तथा रंग को देने वाला, उ्वर रूपी हाथी के लिये सिंह के समान है ॥२५२॥ वातव्याधि को नाश करता है, जठराग्नि को दीपन करता है। शूलरूपी हाथी को वश में करने वाला अंकुश है, शीघ्र ही कामदेव को यथेष्ट बढ़ाता है ॥२५४॥ रोगानुसार इसका सहपान अनुपान भी रसमिन्दूर के समान ही दोषानुसार कल्पित कर ले ॥२५५॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रसतरङ्गिणी के भाषानुवाद में मूर्छाविज्ञानीय नाम का छठा तरंग समाप्त हुआ ॥६॥

पारद मारण विज्ञानीय नाम का सप्तम तरङ्ग

सामान्य मारण का लक्षण ।

विविध प्रकार के क्रमों से, गन्धक आदि औषधों द्वारा, रसादि धातुओं को रोगनाश करने योग्य बनाना ॥१॥ तथा गन्धकादि सहित ओषजन (औक्मीजन या प्राणवायु) से युक्त करके जो भस्म कर देना है उसे ही यहां मारण कहते हैं ॥२॥

मृत पारद के लक्षण

जिसे अग्नि पर डालने से धुआं न निकले, जो तेज अर्थात् चमक से रहित हो, जो गुरुता अर्थात् भार से युक्त हो, जो अंगारों पर रखने से भी अपने रूप को न बदले ॥३॥ और जो लघु अर्थात् हल्की न हो, जो चंचलता को छोड़ देवे, जो मानसिक तथा शारीरिक रोगों को नाश कर दे, उसे पारद की भस्म कहते हैं ॥४॥

पारद मारण का प्रथम प्रकार

अच्छी प्रकार से शुद्ध किया हुआ पारा दो पल, शुद्धगन्धक एक पल लें । दोनों की कूजली बनाकर आगे कही हुई मारकगण की औषधों के स्वरस के साथ एक दिन तक इनको घोटें ॥५॥ बाद में इस कल्कको दो मूषाओं के सम्पुट में रखकर आगे कही गई बन्धिमृत्ना से सन्धि बन्द करके भूधर्यत्र में रखकर पकावें तो शीघ्र ही पारे की भस्म हो जाती है ॥६॥

बन्हिमृत्स्ना के लक्षण

खड़िया (चाक) मिट्टी, सेंधानवण, मण्डूर (लोहे का मैल) इन तीनों द्रव्यों को समभाग लेकर भैस के दूध में घोटकर रखें। यह मिट्टी क्योंकि बन्हि अर्थात् अग्नि के ताप को अत्यन्त सह सकती है इसलिये इसे बन्हिमृत्स्ना कहते हैं ॥७॥ मूषा आदि की सन्धि लेपन करने के लिये बन्हिमृत्स्ना अच्छी मानी गयी है क्योंकि इसमें गेका हुआ पारा पुठ में से बाहर नहीं निकलता ॥८॥

पारे का मारकगण

विष्णुक्रान्ता या कायल, बंदालडोडा, सर्पाक्षी, सहदेवी, लाक्ष, पुनर्नवा, आक, हुरहुर, कलिहारी ॥६॥ चाण्डालिनीकन्द, मकोय, विदारीकन्द, खिरेंटी, थोहर, जयन्ती, हाथीसुंड़ी ॥१०॥ कंला, तोरी, सांठ, बाबची, हल्दी, दाढ़ हल्दी, काकजंघा, कौआ-ठोंडी, तुलसी, शतावर ॥११॥ मूषाकणो, ब्रह्मदण्डो, दूब घास, शरफोंका, चकवड् या पनवाड़, कदम्ब, पिप्पली, पुनर्नवा, कड़वीतुम्बी ॥१२॥ इन्द्रायण, हंसपार्श्व या हंसराज (प्रसौशा), शंखपुष्पी, चमेली, मूर्वा, लज्जावन्ती या छुईमुई, सरसों, तिलसदृश पत्रवाली तिलपर्णी ॥१३॥ बांभककोड़ी, धतूरा, गिलोय, श्वेतअपराजिता, प्रसारिणी, भांगरा, हींग, सोमलता ॥१४॥ सुहांजना, ढाक, मछेछी, इमली, मण्डूकपर्णी, चीता, संभल्लु, मूसली, वच ॥१५॥ ये सब द्रव्य पूर्वाचार्यों ने पारे के मारने वाले पड़े हैं। अनेक विधियों से ये पारे को भस्म करते हैं। इन्हें ही पारे का मारकगण कहा जाता है ॥१६॥

पारद का द्वितीय मारण प्रकार

विष्णुकान्ता या कोयल तथा बन्दाल डोडे को सम भाग लेकर कांजी से पीसे । और इन दोनों के ही द्रव से पारे को सातवार भावित कर ले ॥१७॥ जब पारा मूर्छित हो जाये तो पारे को एक मिट्टी के खप्पर में डाल दे । दीप्त अग्नि वाले चूल्हे पर उस खप्पर को धरे ॥१८॥ बार २ उन दोनों औषधियों के रस को उस पर शीघ्र २ डालता जावे । इस प्रकार करने से पारा एक दिन में ही भस्म हो जाता है ॥१९॥

पारा मारने का तृतीय प्रकार

शुद्ध पार के समान शुद्ध गन्धक लेकर कज्जली करें । फिर अंकोल की जड़ के स्वरस में घोटें ॥२०॥ उसको एक मूषा में रख बन्धिमृत्ना से संधि बंद करें । तब तपे हुए उपलों की आग में भूधर यंत्र में रख इस पुट को चार पहर (१२ घंटे) तक पकावे । इस प्रकार से पारे की शीघ्र ही भस्म हो जाती है ॥२१॥

पारद मारण का चतुर्थ प्रकार

अपामार्ग के नये बीजों का चूर्ण कर ले, उनका कल्क बनाकर दो मूषा (प्याले) बना ले । फिर दुर्गन्धित खैर या विट्खदिर, बिडंग, गुमा के फूल ये तीनों द्रव्य समान भाग लेकर चूर्ण करके मूषा में रखे । फिर कम्बरी या जंगली अंजीर का दूध लेकर उसमें यत्न पूर्वक पारे को घोटें । उसे प्याले में रखे हुए चूर्ण पर रख दे और ऊपर से उसी चूर्ण से ढक देवे ॥२२॥ इस पारे के गोले को उस चूर्ण में रखकर तथा लीपकर तब मूषा में रखें । फिर उस मूषा को बन्धिमृत्ना से सन्धि बंद करके धूप में सुखाकर

गजपुट में फूँक देवे । इस प्रकार एक पुट देने से ही पारा भस्म हो जाता है ॥२७॥

पारदमारण का पञ्चम प्रकार

पान के पत्तों के रस में पारे को घोट ले । ककड़ी की जड़ को बारीक पीसकर उसके कल्क में उस पारे को रखे । फिर इस सारे गोले को सस्पुट में बंद करके गजपुट में फूँक देवे । इस प्रकार से पारे की भस्म हो जाती है ॥२८॥२९॥

पारे की भस्म का अनुभूत छठा प्रकार

जंगली अंजीर के दूध से हींग को भावित करे । उसके कल्क से दाँ मूषा बनावे ॥३०॥ उसमें जंगली अंजीर से घुटे हुए शुद्ध पारे को रखे । पारे को चारों ओर से उस हींग से ढककर मुद्रा करके मिट्टी की मूषा में रख दे । फिर बन्दिमृत्ना से संधि लेपन करके सुखा लेवे । उसे लघुपुट में रखकर भस्म करे । स्वांगशीतल होने पर निकाल लेवे ॥३१॥३२॥ फिर मूषा की संधि खोलकर काले अंजन के समान चमकदार तथा हल्कापन (आग्निस्थायी, स्थिर, धूमरहित) आदि गुणों से युक्त इस पारे की भस्म को निकाल लेवे ॥३३॥

पारद मारण का (अनुभूत) सप्तम प्रकार

शुद्ध किये हुए शिगरफ से निकाला हुआ पारा एक पल ले । शुद्ध गंधक भी एक पल लें । युक्तिपूर्वक दोनों की कउजली बनाकर बड़ के दूध से पीस ले । फिर मिट्टी के पात्र में इसे रखकर नीचे से एक दिन भर आग देते रहें और बड़ के ताजे

डंडे से इसे चलाते रहें। इस प्रकार मन्दाग्नि से एक दिन पकावें तो पारा निश्चित ही भस्म हो जाता है ॥३४॥ यह पारा भस्म अति चिकना होता है तथा काले अंजन के समान होता है। यह निर्धूम आदि गुणों से युक्त होता है अतः इस भस्म को ही प्रयोगों में लेना चाहिये ॥३५॥ (नोट—पहिले कपास की सूखी लकड़ियों से अति मन्द २ आग दें नहीं तो भस्म न बनकर पारा उड़ जायेगा)

मृत पारद के गुण

पारे की भस्म ग्रहणी रूपी हाथी को नाश करने वाली, अतिसार, क्षय, शोष, अग्निमांश को नाश करती है ॥३६॥ मद मस्त नारियों के गर्व को हरने वाली है, बल वीर्य तथा विषयानन्द को उत्पन्न करने वाली है, पारा सेवन करने वाले के शरीरादि की रक्षा करने वाली है ॥३७॥ अतिक्षीण शरीर वाले क्षय रोगी क्षयरोग को नाश करती है, कांति देती है, स्मृति बढ़ाती है शरीर को शीघ्र दृढ़ करती है। इसे एक वर्ष तक सेवन करें तो वृद्धावस्था को दूर करती है। इस पारे के गुणों को पूरी तरह कौन कह सकता है ॥३८॥ कामकला को यह बढ़ाती है। सुन्दरी ललनाओं को इसके सेवन करने वाला व्याकुल कर सकता है। पारदभस्म खाने से कामवासना उत्पन्न करती है, कामियों के लिये तो यह मित्रवत् है ॥३९॥ यह पारदभस्म शृंगार का सर्वस्व है, काम की देवता है तथा नारियों को वश में करने का मंत्र है ॥४०॥

मृत पारद का आमयिक प्रयोग

पित्तपापड़ा, मोथा इनको सम भाग लेकर क्वाथ करे । पारद भस्म को इस क्वाथ से, या तुलसी के क्वाथ से या पिप्पली के क्वाथ से दें तो ज्वर का नाश करती है ॥४१॥ कच्ची लाख के चूर्ण या जल के साथ, या हरड़ के चूर्ण के साथ या बड़ी कटेली के चूर्ण के साथ, या शहद के साथ मिलाकर पारदभस्म को सेवन करें तो रक्तपित्त का नाश होता है ॥४२॥ पारदभस्म को छोटी कटेली के क्वाथ तथा पिप्पली के साथ सेवन किया जावे तो सभी प्रकार की खांसी नष्ट होती है । त्रिफला तथा हल्दी के काढ़े के साथ पारदभस्म सेवन की जाये तो पाण्डुरोग का नाश होता है ॥४३॥ पारदभस्म के साथ पीपल आदि (वट, गूलर, पीपल, पिलखन तथा बेत के पौधे (ये क्षीर वृक्ष कहाते हैं ।) क्षीरीवृक्षों के काथ को शीतल करके पीने से या आम, जामुन, कैथ, बिजौरे, विल आदि पञ्च पल्लवों के क्वाथ को ठण्डा करके पीने से यह भयंकर अतिसार को नाश करता है ॥४४॥ आम के तथा जामुन के पत्तों के स्वरस में, गुड़ डालकर अच्छी प्रकार पकाले । कच्ची बेलगिरी तथा सोंठ का चूर्ण पारद भस्म में मिलाकर खावें और ऊपर से आमपत्रादि का क्वाथ पीवें तो प्रवाहिका रोग का नाश होता है ॥४५॥ पारदभस्म को हींग तथा पीपली के चूर्ण से खावें तो भयंकर विषूचिका का नाश होता है । हरड़ के चूर्ण तथा कांजी के साथ पारदभस्म खावें तो अजीर्ण का क्षण भर में नाश होता है ॥४६॥ पारदभस्म को तेल तथा सेंधानमक मिलाकर पुट में पकाये हुए जिमीकंद की भस्म के साथ खावें

तो पुरानी बवासीर के मस्सों को भी नाश करती है ॥४७॥ पारदभस्म को बिजौरे नीबू से, खटाई से तथा नमक से मिलाकर सेवन करें तो पांचों प्रकार की हिचकी का नाश करती है । पारदभस्म को मिश्री, धान की खिलें, जल तथा शहद से मिलाकर खिलावें तो बमन तथा दाह का नाश करती है ॥४८॥ जिस बकरी के दूध में पीपली तथा गंधक डालकर घी पकाया गया हो उस घी के साथ पारद भस्म सेवन करें तो क्षतयुक्त क्षय रोग का नाश होता है ॥४९॥ गोलुरादिगण के क्वाथ से अथवा मसूर के काढ़े से शहद डालकर खाई हुई पारदभस्म मूत्र-कृच्छ्र को नाश करती है ॥५०॥ सोंठ, मिरच, पीपली के साथ पारद भस्म खाकर तिलों का क्वाथ पिया जाये या इन्हीं चारों के क्वाथ से पारद भस्म खावें तो आंवशूल का नाश होता है शम्बूक भस्म के साथ पारद भस्म सेवन करें तो परिणामशूल का नाश होता है ॥५१॥ पारद भस्म को कुटकी, पटोलपत्र या नीम तथा सोंठ के काढ़े के साथ सेवन करें तो शोथ का नाश होता है । पारद भस्म को दारू हल्दी तथा त्रिफला के क्वाथ से मिलाकर सेवन करें तो कामला रोग को दूर करती है ॥५२॥ नयी बनाई हुई थोहर की छार लें, उसके जल में भावित की हुई हरड़ के चूर्ण के साथ यदि पारद भस्म खाई जाये तो उदर रोगों का नाश करती है ॥५३॥ सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मिरच, सब एक २ भाग लें । सब के मिलित चूर्ण के बराबर शुद्ध गुग्गुलु लें । उसमें पारद भस्म मिलाकर खावें, बाद में एरण्ड का तेल पीवें अथवा सबके साथ एरण्ड का तेल मिलाकर खावें तो

शीघ्र ही पुरानी तुन्दिलता (मुटापे) को दूर करता है ॥५४॥ लशुन से पकाये हुए तिलके तेल के साथ पारद भस्म को यदि पिघा जाये तो वात के बहुतसे घोर रोगों को जो चिरकाल के भी हों तो दूर करती है ॥५५॥ हरड़, गिलोय, सुगंध बाला, गुड़ सब द्रव्य समान २ भाग लेकर चूर्ण करले। इसे पारा भस्म से मिलाकर खावें तो वात रक्त का नाश होता है ॥५६॥ सोंठ, एरण्ड की जड़ से पकाये हुए दूध के साथ पारद भस्म सेवन की जाये तो पुरानी पृथ्वी को ऐसे नाश करती है जैसे सूर्य अन्धकार को ॥५७॥ सोमराजी त्रिफला तथा भांगरे के साथ पारद भस्म सेवन की जाये तो किलाम कुष्ठ को नाश करती है ॥५८॥ वायविडंग, नीम, अनार की छाल, ढाक के बीजों के चूर्ण के साथ शहद मिलाकर पारद भस्म सेवन की जाये तो शीघ्र ही कृमियों को नाश करती है ॥५९॥ राई, चीता, लसुन, नील, भांगरा, के कोमल २ पत्तों के साथ तथा भिलावों के साथ दूध डालकर तेल पकावें तो पारद भस्म खाने और इस तेल के लगाने से सम्पूर्ण कुष्ठ ऐसे नाश होते हैं ॥६०॥ जैसे वन में रहते हुए सिंह से सब मृग नाश होते हैं ॥६१॥ शतावर, खिरेंटी, अमगंध, केले की जड़, इन सब के क्वाथ से रस भस्म दो मास तक सेवन की जाये तो कृशता का नाश होता है ॥६२॥ सोंचल लयण, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, गोमूत्र, इन सब को मिलाकर विधि पूर्वक धी पका लें। इस धी के साथ पारदभस्म सात दिन सेवन करें तो सभी प्रकार के अपस्मारों का नाश करती है ॥६३॥ मुलहठी, कबूतर की बीठ, मनेसिल का चूर्ण इनके साथ पारद भस्म मिलाकर अन्जन लगाने से (तथा पारद भस्म को खाने से, मयूर उपाद रोग का

नाश होता है ॥६४॥ जो मनुष्य पारद भस्म को शहद से चाटकर ऊपर से शहद मिलाकर कोसा पानी पीता है वह मेदवृद्धि से होने वाली पुरानी स्थूलता से बच जाता है ॥६५॥ त्रिफला, शिलाजीत, त्रिकुटा, इन सब के चूर्ण को भांगरे के स्वरस के साथ भावना दं । इस चूर्ण के साथ पारद भस्म सेवन की जाये तो सभी प्रकार के प्रमेहों को सचमुच ही नाश करती है ॥६६॥ मूर्वा के स्वरस के साथ पारद भस्म लेप करने तथा खाने से मसूरिका का नाश होता है ॥६७॥ घी कुंवार की जड़ के स्वरस वा चौलाई के स्वरस के साथ पारद भस्म सेवन की जावे तो स्थावर तथा जंगमविष को शीघ्र नाश करती है ॥६८॥ तण्डुलोदक के साथ पारद भस्म सेवन की जावे और नस्य में तथा पीने में विशेष रूप से दी जावे तो विषार्क्षरोगी को सुख देती है ॥६९॥ गोबर के स्वरस के साथ उत्तम कपूर को सात बार भावित कर लिया जाये तो उसके साथ पारद भस्म लेप करें या सेवन करें तो स्थावरादि विष के भेदों का नाश होता है ॥७०॥ पुनर्नवा के बीज तथा जड़ के स्वरस को पुरुष के मूत्र से पीसकर पारद भस्म मिलाकर लेप करें तो बिच्छु के काटे रांगी की विष दूर करके तुरन्त आराम करती है ॥७१॥ बांभककोडी के फल तथा जड़ से युक्त करके पारद भस्म सेवन की जाये या लेप की जाये तो स्थावर तथा जंगमविष को नाश करती है ॥७२॥ पारद भस्म को कैथ के फल के साथ अथवा देवदाली के फल के साथ, अथवा गृह धूम, और मैन फल के साथ अथवा सरफोंका के बीज के साथ बार २ लेप आदि करें तो मदमस्त चूहों का विष दूर होता है ॥७३॥ सोंठ को पान के रस में कांसी के पात्र में,

डाल कर पीसें। इसके साथ मिलाकर पारे की भस्म को लगावें तो भयंकर बिच्छु को पीड़ा भी शांत होती है ॥७४॥

रसायन आदि में पारद सेवन की विधि

जो मानसिक रोगों तथा शारीरिक रोगों को नाश करती है, जो आयु को स्थिर करती हैं, जो मेधावर्धक, वृष्य, नेत्रहितकारी औषध हैं वह रसायन कहाती है ॥७५॥ रसायन सेवन करनी हां तो पहले अपनी देह को क्षेत्र बना लेवें। मिताहार तथा पथ्याहार करके रसायन सेवन करे तो मनुष्य देहसिद्धि को प्राप्त होता है ॥७६॥ जो मनुष्य क्षेत्रीकरण किये बिना रसायन औषध सेवन करता है उसकी न तो देहसिद्धि होती है ना ही कोई लाभ होता है प्रत्युत कुछ हानी ही होती है ॥७७॥ जैसे अच्छे संस्कारों वाला उत्तम बीज भी हो, उत्तम किसानों द्वारा बोया भी गया हो, परन्तु ऊसर भूमि में डालने से जैसे नहीं उगता है, उसी प्रकार से बिना पञ्चकर्म किये हुए मनुष्य के शरीर रूप क्षेत्र में रसायन औषध सेवन कराने से नहीं फलती है ॥७८॥

क्षेत्रीकरण का स्वरूप

पञ्चकर्म कराकर जो औषधों से रोगों का नाश करना है रसायनादि कार्यों में उसे ही क्षेत्रीकरण कहा गया है ॥७९॥

क्षेत्रीकरण की प्रक्रिया

बैद्य को चाहिये कि पहले मनुष्य को पञ्चकर्म कराकर बाद में सिद्ध औषधियों से रोगों की शान्ति करे। यदि रसायन सेवन

करने वाला गेगी बालक, कृश, तथा क्षीण हो तो उनको पक्व-
कर्म न करावे ॥८१॥ समय का जानने वाला वैद्य तब युक्तिपूर्वक
रेचन करावे अथवा आवश्यकता न हो तो न करावे । तब सिद्ध
औषधियों से रोगों को पहले रोग रहित करले ॥८२॥ जब
सिद्धौषधों के प्रयोग से रोग शान्ति हो जावे तब अभ्रकभस्म
के मुख्य २ योगों का सेवन करावे ॥८३॥ इस प्रकार अपने
शरीर को क्षेत्र बनाकर शालीचावलों का भात आदि पथ्य
वस्तुओं का सेवन करता हुआ मनुष्य बलवान बनकर पारद
सेवन करता हुआ रसायन कर्म को करे ॥८४॥

रसायन के उचित रस

जो पारा सुवर्ण जीर्ण कर चुका हो अथवा अभ्रक के सत्व
को जीर्ण कर चुका हो, अथवा बज्रादि (हीरा आदि) को जीर्ण
कर चुका हो, उसे भस्म करके खाना रसायन के लिए रस-
शास्त्रियों ने परमोत्तम माना है ॥८५॥

रस भक्षण काल

उषःकाल के समय पारद भस्म सेवन करना चाहिये । उसके
सेवन के बाद पहले तीन घंटों में य. पहले पहर में कुछ पथ्य
भोजन करना चाहिये । और दूसरे पहर में या ६ घंटे में हित
कर भोजन करना चाहिये ॥८६॥

मात्राओं का भेद

स्वर्णजीर्ण पारद भस्म की मात्रा आधी रत्ती देवे । वैक्रान्त-
जीर्ण पारद भस्म की मात्रा आधी रत्ती देवे ॥८७॥ बज्र अर्थात्

हीरा जीर्ण किये हुए पारद भस्म की मात्रा चौथाई रस्ती देवें ।
एक रस्ती मात्रा अन्य (अभ्रक सत्त्व आदि जीर्ण) पारद भस्म की
खाने को देवें ॥८८॥

रसायन सेवन में अपथ्य ।

मिथ्या आहार, मिथ्या विहार, अतिपान, अतिजल क्रीड़ा,
अतिनिद्रादि, क्रोध करना, दुःख करना, अति कामना करनी,
अति प्रसन्न रहना, अति स्नान, उबटना मलना, नित्य अतिनारी
प्रसंगकरना, हर समय चिन्ता करना, असूया अर्थात् निन्दा
करना, प्यास का लगना, भूख बन्द होना, मद मस्त होना,
ये सब बातें रसायन सेवी पुरुष सदा त्याग देवें ॥८९॥

रस सेवन में पथ्य

अदरक, घा, धनियाँ, श्वेत जीरा इन का छौंका लगाकर
पकाये हुए बैंगन, परवल, चौलाई और बाथू ॥९०॥ पुनर्नवा का
शाक, कमल की जड़ आदि का शाक खावें । पुराने शाली चावल,
गौ का दूध, गौ का दही तथा गौ का घी खावें ॥९१॥ गेहूँ,
रूंग का रसा, शीतल हंमोदक ये कुछेक पथ्य पारा सेवन
करने वाले को सेवन करने चाहिये ॥९२॥

पारा सेवन में अपथ्य

पेठा, कछुवे का मांस, तरबूज, बेर, कुलथी, ककोड़ी,
निर्मली के बीज, कैथफल, कचनार के फूल, कङ्गनी, काठजी,
करेला, कमल, ककोड़ा, ककड़ी, कुसुम्भा, कबूतर ये सब
ककारादिगण कदाता है ॥९३॥ ककारादिगणोक्त औषधों को

रसायनकलाकांक्षी मनुष्य कभी सेवन न करें ॥६४॥ उड़द, मसूर, तिलतैल, मटर, सुरा, आसव, नारंगी, नारियल, धान्याम्ल, निम्बू आदि ॥६५॥ आनूप जीवों का मांस, बेंतका अगला भाग तथा कुकड़ न खावें। केले के पत्ते पर भोजन न करे, छाछ सहित चावलों का भात, मोंचलनमक ॥६६॥ तथा कांसी के पात्र में रख भोजन न खावे। गुरु, विष्टम्भकारक भोजन न खावे। कटु, अम्ल, तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण भोजन सर्वथा न खावे ॥६७॥ कुंकुम या केसर का लेप करना त्याग दें तथा काफूर का लेप भी त्याग दें, दोपहर की धूप में घूमे नहीं तथा किसी से वाद तथा जल्प अर्थात् वादविवादादि न करे ॥६८॥

अन्य किन्हीं वैद्यों के मत से ककाराष्टक का निषेध

तरबूज, करेला, केला, मकोय, कुसुम्भ, ककाड़ी, पैठा, ककड़ी ॥६९॥ ये ककाराष्टक कहाते हैं। इनसे नित्य ही रस सेवी पुरुष परहेज रखे ॥६९॥१००॥ (इन्हें खावें तो पाग शरीर से मलमूत्र द्वारा निकल जाता है।)

रसविकार में सुखाचार

पारे के सेवन से यदि शरीर में अधिक सन्ताप हो तो शीतल जल का सिंचन करे। उसके सिर और मस्तक पर चन्दन और कर्पूर का लेप करे और सुगन्धित शीतल, मन्द र चलने वाली वायु में उसे मन्द र घुमावे। चन्द्रमा की चांदनी में घुमावे, काव्य की कथाओं को सुनावे ॥१०१॥ यदि छाती में ताप प्रतीत हो तो शीतल जल में प्रवेश करके स्नान करे। यदि मन में मलिनता हो अर्थात् कमजोरी या मनोविकार हो तो आसव और अरिष्ट का पान करावें। यदि रात दिन प्यास

लगती हो तो कच्चे नारियल का पानी पीने को दें और शीतल पथ्य का सेवन करावें ॥१०२॥ गिलोय, खस, धनिया, मुलट्टी, पित्त पापड़ा, (श्वेत) चन्दन, इनका काढ़ा बनाकर इसमें वंसलोचन और मिश्री का चूर्ण मिलाकर पिलाया जाए तो पारद से उत्पन्न ताप को शान्त करता है ॥१३॥ मूंगा भस्म, बंगभस्म चार चार भाग, सुवर्ण भस्म तथा मोती भस्म एक २ भाग ले। इन सब के बराबर वंशलोचन तथा सतगिलोय मिलाकर रखे। इसकी उचित मात्रा (छः रती) पेट के स्वरस के साथ खाने से पारदजन्य ताप आदि विकार नष्ट होते हैं ॥१०४॥

अमूर्जित और अमृत पारद भक्षण जन्य क्लेश में गन्धक का विधान

बी दूध तथा भांगरे आदि औषधियों से शुद्ध की हुई गन्धक को उचित मात्रा में पान के रस के साथ युक्तिपूर्वक लगातार खावें तो अमूर्जित और ठीक न मरे हुए पारे के खाने से उत्पन्न हुए सारे दोष शीघ्र ही दूर होते हैं ॥१०५॥

कूष्माण्डादि गण

पेठा, तुलसी, लाख, सफेद बूरा या खाण्ड, सौंफ, लौंग, मीठा तेलिया या बत्सनाभ विष, चौलाई की जड़, पूर्व आचार्यों ने इन सब का कूष्माण्डादि गण में पाठ किया है। यह अमूर्जित और ठीक तरह से न मरे हुए पारे के खाने से उत्पन्न हुए विकारों का नाशक है ॥१०६॥१०७॥ कूष्माण्डादि गण

में कही गई किसी एक औषधि के साथ दो माषा गन्धक लेकर गौ के दूध के साथ पीवें। सैंकड़ों औषधियों के प्रयोग से भी न ठीक होने वाले पारद के विकारों में भिषगवर इस योग को देवें ॥१०८॥१०९॥ प्रति दिन एक तोला मकोय का रस पीने से दोष युक्त पारद से उत्पन्न विकार नष्ट हो जाते हैं ॥११०॥ रस चिकित्सक को चाहिए कि तुलसी के रस के साथ बनाई हुई पान के पत्तों की चटनी में गंधक मिला कर शरीर पर लेप के लिए देवें ॥१११॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालांकार भिषगाचार्य कृत, रस तरङ्गिणी के भाषानुवाद में पारद-मारण नाम का सातवाँ तरङ्ग समाप्त हुआ ॥७॥

अथ गंधक विज्ञानीय नाम का अष्टम तरङ्ग

अथ गंधक के नाम

गंधक, गन्धपाषाण, गंधी, रसगंधक, सुगंधिक, गंधिक, गंध, मौगन्धिक ॥१॥ पूतिगंध, आतगंध, पामागि, कीट नाशन, बलिवसाख्य, कुष्ठारि, शग्भूमिज, ॥२॥ शुल्वारि, नवनीत, दैत्येन्द्र, गंधमादन, कीटघ्न, क्रूरगंध ये सब नाम गंधक के कहे गये हैं ॥३॥

गंधक का स्वरूप

जो मल से रहित हो, हल्दी के समान पीलेरंग की हो, चमकदार हो, मक्खन के समान कोमल हो, उसे अमलसार

(आंवलासार) गंधक कहते हैं। रस कर्म में तथा रसायन कर्म में वही प्रयुक्त करनी उत्तम है ॥४॥

अशुद्ध गन्धक के दोष

अशुद्ध गंधक सेवन करने से शरीर में ताप होता है, चित्त भ्रम होता है तथा रक्त सम्बंधी रोग उत्पन्न होते हैं ॥५॥ और प्रसन्नता, सुरुपता, शरीर गठन की सुन्दरता, प्रभा, बल इनको नाश करती है अतः इसे पहले शुद्ध कर लेना चाहिये ॥६॥

गन्धक शोधन का प्रथम प्रकार

जलती हुई अग्नि वाली अँगोठी पर एक लोहे की कड़ाही या पात्र देर तक रखें। फिर शुद्ध घी उस पात्र में डालकर पिघलावे ॥७॥ घी के खूब तप जाने पर उम घी के बराबर ही गंधक का चूर्ण डाल देवे। फिर मन्द २ अग्नि पर पककर गलती हुई गंधक को पूरी २ पिघला लेवे ॥८॥ एक पात्र में (गरम २) दूध भरकर ऊपर पतला कपड़ा ढक दे। इस कपड़े पर पिघली हुई गंधक को डाल दे ॥९॥ फिर उस कपड़े में से उस गंधक को छानकर नीचे के गरम २ दूध में गिरावे। फिर दूध में से गंधक को निकाल कर ठीक प्रकार से (गरम) जल से धो लेवें ॥१०॥ इसी प्रकार और पकाकर गंधक को दो बार नये गरम २ दूध में छानकर डाले तथा गरम जल से धोकर रखे। इस प्रकार तीन बार शुद्ध की हुई गंधक निर्मल हो जाती है। इसी प्रकार से १०० बार शुद्ध की हुई गन्धक अपनी गंध (बदबू) को छोड़ देती है, इसमें कोई भी संदेह नहीं है ॥१२॥

द्वितीय शोधन प्रकार

गरम दूध से आधा पात्र भर दो उसमें (गंधक के सम भाग) घी डाल दो । उस पात्र के मुँह को नये बारीक कपड़े से बंद कर दो ॥१३॥ गंधक को चूर्ण करके इस वस्त्र पर डाल देवे । फिर इस गंधक को एक मिट्टी के खप्पर से विधिपूर्वक ढक देवे ॥१४॥ फिर कपड़मिट्टी करके नीचे के पात्र और ऊपर के खप्पर की संधि बंद कर देवे । फिर वैद्यराज उस दूध वाले पात्र को गरदन तक भूमि में दबा देवे ॥१५॥ फिर पात्र के मुख के ऊपर जंगली उपलों को चुनकर आग लगा देवे । इस प्रकार से पिघली हुई गंधक तुरन्त ही दूध में जा गिरती है ॥१६॥ फिर जब वह पिघली हुई गन्धक ठंडी होकर दूध में जम जाये तब उसे निकाल कर गरम जल से बार २ धोवे । इस प्रकार एक बार (पिघलाने से) ही गन्धक शुद्ध हो जाती है ॥१७॥

तृतीय शोधन प्रकार

सरसों का तेल या तिलों का तेल या कुसुम्भ का तेल लेकर उसे कड़ाही में डालकर पिघलावे और नीचे से आग जलावे ॥१८॥ जब तेल खूब तप जाये तो उस तेल के समान ही गंधक का चूर्ण डालें । फिर मन्दान्नि से पकावे ॥१९॥ जब गंधक पिघल जावे तो उसे शीघ्र ही गरम दूध में डाल देवे । फिर उसे गरम जल से अनेक बार धोये तो गंधक शुद्ध हो जाती है ॥२०॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

गन्धक का चूर्ण करके लोहे के पात्र में आग पर पिघलावे । फिर भांगरे के रस में डाल देवे । फिर जल से धो देवे ॥२१॥

इसी प्रकार से सात बार पिघला कर भांगरे के रस में डालकर, जल से धो २ कर शुद्ध करे। इसे यदि अकेला ही खाना हो तो इस प्रकार से सात बार शुद्ध करे। यदि अन्य द्रव्यों में इसे मिलाना हो तो तीन बार शुद्ध करे ॥२२॥

पञ्चम शोधन प्रकार

एक खरल में चार पल गंधक डालकर खूब बारीक पीस ले। इसे डमरू यन्त्र में डाल चार पहर तक अग्नि पर पकावे। उस यन्त्र के ऊपर के पात्र के अन्दर लगी हुई पीली २ गंधक को यत्नपूर्वक उतार लेवे ॥२३॥ ऐसी शुद्ध की हुई गन्धक को उत्तम शुद्ध गंधक समझे। इस प्रकार करने से पत्थर आदि मिले हुए सब पदार्थों के दोष नीचे के पात्र में रह जाते हैं और ऊपर की गंधक शुद्ध हो जाती है ॥२४॥

षष्ठ शोधन प्रकार

अनबुझा चूने (का पत्थर) को लेकर तिगुने जल में युक्तिपूर्वक बुझावे ॥२५॥ दो भाग गन्धक को (उस चूने के) जल १३ भाग में डालकर चूल्हे पर रखकर पकावे ॥२६॥ जब गंधक पिघल जावे तथा भूरे से रंग का बट्ट घोल हो जावे तो उसे एक मोटे कपड़े से छान लेवे। इसे काँच लिये हुए मिट्टी के पात्र में या शीशे के पात्र में डालकर रखे ॥२७॥ जब शीतल हो जाये तो लवणद्रावक “या नमक के तेजाब” को धीरे २ उस पात्र में तब तक डालता जाये जब तक गंधक नीचे न बैठ जाये ॥२८॥ जब गंधक तलभाग में नीचे बैठ जाये तो जल के

भाग को किसी दूसरे पात्र में नितार लेवे। शेष बची हुई गंधक को जल से अनेक बार धो लेवे ॥३०॥ फिर इस गंधक को सुखाकर बारीक चूर्ण कर ले। इस प्रकार शुद्ध की हुई गंधक को निःशंक होकर प्रयोग करे आजकल के डाक्टर इसी विधि से शुद्ध की हुई गंधक लेते हैं ॥३१॥

अथ सुधालवण

उसमें नितारे हुए जल को सुखा ले। इसका फिर चूर्ण कर ले। इसे ही "सुधालवण" कहते हैं। यह रक्त खाव को बन्द करने में उत्तम माना है ॥३२॥

गन्धक की गंध को नाश करने का उपाय

गंधक को चूर्ण करके दूध में डालकर पकावे। जब दूध गाढ़ा होने को आये तो उसमें सुवर्चला अर्थात् हुग्हुग् का रस डाल देवें ॥३३॥ फिर धीरे २ आग पर पकावे। (जब वह रस जल जावे, दूध भी गाढ़ा हो जावे) फिर उस गंधक को निकाल कर त्रिफला के जल में डाल देवे ॥३४॥ ऐसा करने से गंधक की गंध (बदबू) मर्गथा दूर हो जाती है। यदि देर तक गंधक खानी हो तो इस प्रकार से शुद्ध की हुई गंधक को खाना चाहिये ॥३५॥

अथ विशुद्ध गन्धक के गुण

शुद्ध किया हुआ गन्धक कृत्रिम विष तथा अन्य सब विषों को नाश करता है। लुद्रकुष्ठ रूपी हाथियों को सिंह के समान

नाश करता है। खांसी, दमा, दूर करता है। दाद रूपी बन को अग्नि के समान नाश करता है। आधि अर्थात् मानसिक रोग तथा व्याधि को नाश करता है। आम को नाश करता है। दिव्य दृष्टि को देता है जाठराग्नि को तेज करता है ॥३६॥ शुद्ध गंधक दस्तावर है तथा उत्तम रसायन है। कटु रस वाला, उष्णवीर्य, पाचन तथा पारे की शक्ति को बढ़ाने वाला है ॥३७॥ दूषित पारे के खाने से जो विकार शरीर में उत्पन्न होते हैं तथा दूषित या अशुद्ध सीसे के सेवन से जो शिर की दाह आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, उन सब को यह शुद्ध गंधक दूर कर देती है ॥३८॥

शुद्ध गन्धक की मात्रा

एक रत्ती से लेकर आठ रत्ती तक शुद्ध गंधक की मात्रा है। इसे बल, काल तथा रोगी की प्रकृति को देखकर वैद्य प्रयुक्त करे ॥३९॥

अथ शुद्ध गंधक का रोगों पर प्रयोग

शुद्ध गंधक (जल में पीसकर) बाहर लेप करने से आमवात तथा पुरानी गृध्रसी को नाश करता है ॥४०॥ शुद्ध गंधक त्रिफला के काढ़े से खावें तो ऊर्ध्वग (शिर आंखादि के) रोग तथा अग्निमांश नाश होता है ॥४१॥ बांसे के काढ़े से गंधक खावें तो नया रक्तयुक्त रोग नाश होता है। कटेली के क्वाथ से गंधक खावें तो खांसी तथा दमा को आराम होता है ॥४२॥ यदि पके हुए केले के फल के साथ गंधक खायी जाये तो चर्मदोष को नाश करती है। चीने के चूर्ण के साथ खावें तो

तिल की कमी या निर्बलता को नाश करती है ॥४३॥ शुद्ध गंधक तिल के चूर्ण से खावे तो गुदा में होने वाले गुदा रोग से उत्पन्न हुए २ विदर (fisher) को नाश करती है ॥४४॥ मुलठी, ग्वांड, मनाय, सौंफ इन सब का चूर्ण सम भाग करे। इसमें एक भाग गंधक मिलाकर खावे तो गुदा में होने वाला विदर दूर होता है ॥४५॥ गूगल, त्रिफला, इनके सम भाग चूर्ण के साथ गंधक मिलाकर दो मास सेवन करें तो कफ के सभी रोगों को नाश करती है ॥४६॥ मालकंगनी के बीजों का तेल, बच का बारीक चूर्ण, गौ के दही से ताजा निकाला हुआ स्वच्छ मक्खन ये तीनों द्रव्य समान २ भाग लें। गन्ध रहित शुद्ध गंधक तीन भाग लें। सब को मिलाकर सेवन करें। इस योग को यदि एक मास सेवन करें तो राजयक्ष्मा, अन्त्रशोष तथा भयंकर गण्डमाला दूर होता है ॥४७॥ इससे दृष्टि दिव्य हो जाती है, वीर्य बढ़ता है, चित्त सन्तुष्ट रहता है, देह पुष्ट होती है, शूरवीरता बढ़ती है, मुट्ठी बज्र के समान मजबूत हो जाती है तथा सभी रोगों का भय जाता रहता है। इसे एक मास सेवन करने से ये सब गुण प्राप्त होते हैं ॥४८॥ गंधक एक कोल भर लेकर ऊर्ध्वगतन यंत्र से शुद्ध कर लो। उसमें ६ कोल स्वच्छ ग्वांड या मिश्री का चूर्ण मिला दो ॥४९॥ उसे बारीक पीसकर शीशी में डाल शीशे के ढाट से मुँह बंद कर रखो ॥५०॥ इसकी एक रत्ती मात्रा शीतल जल से ठीक समय पर खाने को दें तो शीघ्र ही शुक्रदोषों को नाश करती है ॥५१॥ जो शुक्र जल की तरह पतला हो, जिसमें से गंध न आती हो, उसे शुद्ध, फल (सन्तान) दायक, गाढ़ा तथा शहद के समान गंधवाला कर देती है ॥५२॥ मुर्दासंग, सुहागा, कपूर तथा गंधक इन सब को

सम भाग ले पीसकर रखें ॥५३॥ इस चूर्ण को नारियल के तेल से मिलाकर लगातार लेप करें तो चाहे पुरानी भी हो तो भी भयंकर पामा को यह नाश कर देता है ॥५४॥ सुहागा, राल, फिटकरी, गंधक इन सब को समान भाग लेकर वैद्य चूर्ण करे ॥५५॥ फिर नीबू के स्वरस से मिलाकर इसे लगातार लेप करें तो दद्रु शीघ्र ही नष्ट हो जाती है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥५६॥ यदि शुद्ध गंधक को नये कोमल सीमल की छोटी जड़ के चूर्ण के साथ मिलाकर खिलाओं तो शूरवीरता तथा वीर्य को बढ़ाती है ॥५७॥ शुद्ध गंधक को शहद से मिलाकर चाटें और ऊपर से आंवलों के रस का अनुपान करें तो यह गलत्कुष्ठ को नाश करती है ॥५८॥

दद्रु विद्रावण मलहर

सिक्थ तेल १२ तोला, शुद्धगंधक एक तोला लें ॥५९॥ सुहागे की खील, पनवाड़ के बीज तथा स्वच्छ लाख का चूर्ण प्रत्येक आधा २ तोला ले मिला लें ॥६०॥ अति मन्द २ अग्नि पर पकावें। फिर ठंडा होने पर चौड़े मुँह की शीशी में डाल रखें। इसका नाम “दद्रु विद्रावणमलहर” है ॥६१॥ इस मलहम को सात दिन तक यदि लेप करें तो यह दाद को जड़ समेत निःसन्देह नाश करती है ॥६२॥

गन्धकाद्य मलहर

सिक्थ तेल ६ तोला, गंधक, और सिन्दूर आधा २ तोला लें ॥६२॥ सुहागा, कपूर दो २ माशे लें। इन सब को पीसकर विधिपूर्वक मिलाकर शीशी में रखें ॥६४॥ इसका नाम गन्धकाद्य-

मलहर है। यह शीघ्र ही अति भयंकर पामा को भी निश्चित नाश करती है ॥६५॥

प्रथम गन्धक कल्प

शुद्ध गन्धक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, भांगरा इन सब के सम भाग चूर्ण को मिलाकर विधि पूर्वक घी शहद, से तीन मास तक खावें तो भयंकर पुराने रोगों को भी नाश करती है। यह दोनों नेत्रों को गीध के समान तेज कर देती है ॥६७॥ इसके ऊपर से छोसा २ खांड मिला हुआ दूध तथा कोमा २ साठी के चावलों का भात खाना चाहिये। तथा जो २ वस्तुएं शीतवीर्य होवें वे सब भी इसमें पथ्य कहीं है ॥६८॥

द्वितीय गन्धक कल्प

शुद्ध आंवलासार गन्धक, और आंवले का चूर्ण समभाग लेकर आंवले के रस में सातवार भावना देवें। फिर सिम्बल के रस के साथ सात बार भावना देकर रखें। इस गन्धक कल्प को खांड और शहद के साथ मिला कर चारों ओर ऊपर से दूध पीवें ॥६९-७०॥ इस प्रयोग को ३० मास सेवन करने से वृद्ध पुरुष भी पुनः युवा हो जाता है। और कामातुर होकर सैकड़ों रमणियों को प्रसन्न कर सकता है ॥७१॥

तृतीय गन्धक कल्प

शुद्ध गन्धक को आधा माशा लेकर कोसे दूध से प्रतिदिन एक मास तक खावे तो वीर्य की वृद्धि होती है ॥७२॥ इसको ६ मास सेवन करने से दिव्य दृष्टि हो जाती है और शरीर की कान्ति स्वर्ण जैसी हो जाती है ॥७३॥

चतुर्थ गंधक कल्प

आधा माशा शुद्ध गंधक तिल के तेल से सेवन करें और पामा आदि त्वचा के रोगों पर नित्य गर्म जल का सिञ्चन करें ॥७४॥ इस प्रकार तीन सप्ताह में ही पामा आदि सब त्वचा के रोग इस से दूर होते हैं । तथा शरीर का वर्ण स्वर्ण के समान सुन्दर हो जाता है ॥७५॥

पञ्चम गंधक कल्प

शुद्ध गंधक, पिप्पली का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण, इन तीनों को सम भाग मिलाकर रखें । इसमें से दो २ माशा इस चूर्ण को घी और शहद से मिलाकर प्रति दिन खावें । इस प्रकार भोजन से पहले उसे तीन महीने प्रातःकाल खाते रहें । ब्रह्मचर्य पूर्वक रहें । तो तपे हुये स्वर्ण के समान सुन्दर मुख हो जाता है । शौर्य और वीर्य बढ़ता है । तथा मनुष्य की दिव्य दृष्टि हो जाती है ॥७६॥७७॥

षष्ठ गंधक कल्प

तैल में शुद्ध किये हुये गंधक को चूर्ण करके रखें । इस में से आधा माशा चूर्ण शहद से मिलाकर चाटे । इससे चिरकाल से उत्पन्न हुई २ जुद्धकुष्ठ की भयंकर वेदना भी नष्ट हो जाती है ॥७८॥ इसके साथ कालीमिर्च, गंधक, इन दोनों को तैल से पीस लें । उसे फिर अपामार्ग के रस के साथ पीसे और फिर सारे देह पर लेपन कर दें । ॥७९॥ उसके बाद धूप में बैठ कर इस लेप को सुखावें । बाद में उत्तम कुष्ठनाशक औषधियों के जल से स्नान करें, अथवा शीतल जल से स्नान करें

इस प्रकार दो सप्ताह में ही लुद्रकुष्ठ का नाश हो जाता है ।
 (प्रातः गंधक खावें, मध्याह्न में लेप लगाकर शयन में बैठें । फिर
 दही भात खावें, रात को आग तापें, प्रातः भैंस के गोबर का
 लेप करें । ठंडे जल से स्नान करें । इसमें पामाकुष्ठ नष्ट होते
 हैं) ॥८०॥

सप्तम गंधक कल्प

शुद्ध गंधक को लेकर तीन बार गौ के दूध से भावना दें ।
 उसके बाद त्रिफला के क्वाथ से ८ बार भावना दें ।
 उसके बाद चतुर्जात, (दारचीनी, छोटी इलायची, नाग कंसर,
 तेजपात, समभाग) के क्वाथ में आठ बार भावना दें । उसके
 बाद गिलोय के स्वरस में आठ बार, भांगरे के स्वरस में आठ
 बार तथा अदरक के स्वरस में आठ बार भावना दें ॥८१॥८२॥
 भली प्रकार सूख जाने पर इस गंधक रसायन के समान
 भाग ही मिश्री मिला दें ॥८३॥ इस गंधक रसायन को एक माशा
 भर प्रतिदिन सेवन करें । तो एक मास के प्रयोग करने से यह
 विविध रोगों को नाश करती है ॥८४॥ धातुओं के क्षय से होने
 वाले रोगों को तथा कोष्ठ में होने वाले रोगों को, प्रमेह के रोगों
 को, सिर के रोगों को, शूल को, तथा कुष्ठ आदि अनेक रोगों को
 यह नाश करती है । ॥८५॥ गंधक रसायन सेवन करने वाले को
 क्षार पदार्थ अम्ल पदार्थ और लवणादि पदार्थ, तथा कोप आदि,
 नारी संसर्ग एवं सब प्रकार की दालें तथा पत्तों के साग त्याग
 देने चाहियें । ॥८६॥

अष्टम गंधक कल्प

शुद्ध गंधक का चूर्ण, भांगरे के रस में तीन बार भावित करें बाद में इस चूर्ण को एक माशा लेकर गौ के घृत, शहद और हरड़ के चूर्ण में मिलाकर नित्य ही सेवन करें । ॥८७॥ इस को दो महीने लगातार सेवन करने से और मित तथा पथ्य भोजन करने से वृद्ध पुरुष भी कामातुर होकर निश्चित यौवन को प्राप्त हो जाता है ॥८८॥

नवम गंधक कल्प

एरण्ड के तैल से मिलाकर शुद्ध गुग्गुल, त्रिफला (हरड़ बहेड़ा, आंवला) और शुद्ध पारा मिलाकर शुद्ध गंधक सेवन करें । पहले पारा गंधक की कउजली बनाकर फिर अन्य वस्तुएँ मिलानी चाहियें) ॥८९॥ इसको एक महीना लगातार सेवन करने से पुराने से पुराने कफ के, वायु के तथा पित्त के रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं । ॥९०॥ गरुड़ के समान तीक्ष्ण दृष्टि हो जाती है और शरीर भीमसेन के समान बलवान हो जाता है । तथा सूर्य के समान तेजस्वी और बज्र के समान कठोर शरीर हो जाता है ॥९१॥

दशम गंधक कल्प

त्रिफला मिलित १ भाग, भांगरे का चूर्ण एक भाग, शुद्ध की हुई गंधक एक भाग, तीनों के चूर्ण को एकत्र करके रखें ॥९२॥ इसे (२ माशा भर) प्रति दिन खाने से एक मास में ही मनुष्य की दृष्टि दिव्य हो जाती है । तथा देह बज्र के समान

कठोर हो जाती है । छह मास सेवन करने से विल (भुर्रियों) और पलित (श्वेत केश) नष्ट हो जाते हैं ॥६३॥

गन्धक का तैल

उबलते हुवे दूध में शुद्ध गन्धक का चूर्ण डालें । फिर इस पके हुवे दूध में से विधि पूर्वक घी निकाल लें । उसी को खूब तपाने से गन्धक का तैल बन जाता है । ६४॥ यह गन्धक तैल लेप करने से अथवा भक्षण करने से शीघ्र ही विशेष कर जुद्ध कुष्ठों को नाश करता है । तथा वीमर्ष आदि रोग समूह को नाश करता है ॥६५॥

गन्धक तैल का द्वितीय निर्माण प्रकार

एक वस्त्र को आक के दूध से सातवार लेपन करें, उसी प्रकार थोहर के दूध से सातवार लेप कर के सुखाले फिर गन्धक को मक्खन के साथ पीसकर उसे वस्त्र पर युक्ति से लीप दें । ॥६६॥ अब इस गन्धक वाले वस्त्र को लपेट कर बत्ती बना लेवे फिर इसे किसी संडासी में पकड़ कर नीचे को मुंह करके आग लगा दें और इसके नीचे कांच का पात्र रख दें ॥६६॥ इस कांच केपात्र में गन्धक का तैल ऊपर से गिरकर इकट्ठा हो जावेगा, इसे जुद्ध बुधे कुष्ठ आदि रोगों पर (लेप द्वारा) प्रयोग करें ॥६७॥

गन्धक तैल का तृतीय निर्माण प्रकार

सोलह भाग शुद्ध गन्धक का चूर्ण ले, त्रिकटु (मोंठ, मिर्च, पीपल का मिलित) चूर्ण एक भाग लेवे, इनको एक वस्त्र पर फैला

कर उस वस्त्र को बत्ती के समान लपेट कर सूत्र से बांध देवें ॥६६॥ उसके बाद इस बत्ती को तिल से तेल में तीन घण्टे डुबो रखें । फिर चिमटे से पकड़े और इस बत्ती के नीचे एक कांच का पात्र रखें ॥१००॥ अब इस में त्रिाग्नि लगा दें । इस बत्ती से बूंद २ करके नीचे गन्धक पिघल कर गिरेंगी यही गन्धक का तेल है, जिसे विद्वानों ने अत्युत्तम माना है । ॥१०१॥ एक पान के पत्ते के ऊपर इस तेल की तीन बूंद डाले और उसमें शुद्ध पारे को उसके समान डाल कर खूब मल कर (अंगुली में ही मर्दन करे) कज्जली बना कर खायें ॥१०२॥ तीन दिन इसे खाने से जठराग्नि दीप्त होती है । इसके एक दिन के सेवन से भी आंव नष्ट हो जाती है ॥१०३॥ यह गन्धक का तैल विधि-पूर्वक सेवन करने से काम श्वास को नाश करता है, प्रदहणी रूपी हाथी को दूर करने को सिंह के समान है तथा आमवात आदि रोगों को दूर करता है ॥१०४॥

गन्धक तैल का चतुर्थ निर्माण प्रकार

ढाक के बाजों का बारीक चूर्ण करके बकरी के दूध में डाल कर उसे युक्ति पूर्वक सुखा लेवें । अब यह चूर्ण १६ भाग ले, तथा गन्धक एक भाग ले, दोनों को घोट कर एक कांच की कुप्पी में डालकर रखें । फिर पाताल यन्त्र के द्वारा इसका तेल निकाल लेवे । यह गन्धक तेल परम उत्तम तथा गन्धक का सन्ध ही होता है । इस गन्धक तेल को पान के पत्ते पर २ रस्ती मात्रा में डाले, तथा इसमें १ रस्ती शुद्ध पारा डाल कर मिलावें ॥१०५॥१०६॥ अंगुली के अगले भाग से अच्छी प्रकार मिलाने से कज्जली हो जावेगी अब इस कज्जली वाले पान को खा

लेवे ॥१०७॥ गन्धक तेल के सेवन करने वाले मनुष्य के लिए अम्ल रस, पत्तों के शाक, ककाराष्टक तथा अन्य उष्णवीर्य द्रव्य सब अवश्य हैं ॥१०८॥ इसको सेवन करने वाला वृद्ध पुरुष भी तरुण हो जाता है और अत्यन्त कामानुर होकर प्रतिदिन सैकड़ों रमणियों को आनन्दित कर सकता है ॥११०॥ यह काम श्वास नाशक है, बलदायक है, बली तथा पलित रोग नाशक है, शोष रोग को दूर करता है तथा क्षय रोग रूपी हाथी को दूर करने में मिह के समान है ॥१११॥ शूल को हरता है तथा सब प्रकार के प्रमेहों को दूर करता है। इस तेल के समान उत्तम संसार में अन्य रसायन कोई नहीं ॥११२॥

गन्धक द्रावक का निर्माण प्रकार

एक लोहे के पात्र में १०० पल गन्धक डाल कर चूल्हे के ऊपर रख कर नीचे से अग्नि को जलावे ॥११३॥ दूसरे पात्र में ६५ पल शोरा डालकर चूल्हे पर रख कर नीचे अग्नि को तेज करे ॥११४॥ इन दोनों के मुखों को ढक्कनों से बन्द कर दे। और उनमें से एक २ लम्बी नली लगाकर उस नली को दूर रखे हुवे एक सीसे के कौंठाकार पात्र में जोड़ दें। इस प्रकार से गन्धक और शोरे का धुआं उड़ उड़ करके उस सीसे के पात्र में जाकर एकत्र होगा ॥११५-११६॥ उधर एक अन्य पात्र में २१० पल जल डालकर अग्नि पर रखे। और इसमें से एक नली निकाल कर उसी सीसे के पात्र में जोड़ दें। इस प्रकार जल के वाष्प भी उस सीसे के बर्तन में जाकर उस धुँए को घोल लेंगे। इस प्रकार ३०० पल परिमाण में पीले से

रंग का अतिमनोहर गन्धक द्राव (गन्धक का तेजाव) तैयार हो जाता है ॥११७-११८॥

गन्धकद्राव के नाम

गन्धद्राव, बलिद्राव और गन्धाम्ल यह सब नाम गन्धक के तेजाव के हैं ॥११६॥

अशुद्ध गन्धद्राव के दोष

विशुद्ध गन्धकद्राव सेवन करने से अमृत से भी अधिक फल देने वाला है। परन्तु यदि वही अशुद्ध हो तो दोषों को उत्पन्न करने वाला होता है। इसलिए उसे शुद्ध करना चाहिए ॥१२०॥

गन्धकद्राव के शोधन प्रकार

गन्धकद्राव को एक कांच की कुप्पी में डालकर उसमें एक नाली लगावे और इस नाली के दूसरे मुख को एक दूसरी कांच की कुप्पी में लगा देवे। फिर गन्धकद्राव वाली कुप्पी को मन्दाग्नि से पकावे। उसमें तृतीय अंश क्योंकि जल का अधिक होता है इसलिए उसको पहले यत्न पूर्वक उड़ाकर वाष्प बनाकर निकाल देवे। शेष बचें हुवे विशुद्ध गन्धकद्राव को अग्नि से उड़ाकर दूसरी कुप्पी में गिरावे ॥१२१॥१२३॥ इस प्रकार से सीसे के पात्र में उत्पन्न होने वाला सीसे का दोष और जल का अधिक अंश जो गन्धकद्राव में होता है, उसे त्याग कर वह निर्मल हो जाता है ॥१२४॥

पीने के लिये सजल गन्धकद्राव का निर्माण प्रकार

शुद्ध गन्धकद्राव १ भाग, इसमें १२ भाग परिस्त्रुत जल डाले ॥१२५॥ फिर कांच की कुप्पी में रखकर दढ़ ढाट से मुख बन्द करदे ॥१२६॥ इसके बाद आगे कहे हुये रोगों में उचित मात्रा में अनिप्रयत्न से इस गन्धकद्राव का प्रयोग करें ॥१२७॥

सजल गन्धकद्राव की मात्रा

पांच बूँद से लेकर अधिक से अधिक २० बूँद तक सजल गन्धकद्राव (Sulphuric acid Diluted) को निःशंक होकर प्रयोग करें ॥१२८॥

सजल गन्धकद्राव के सहपान

सजल गन्धकद्राव के साथ सहपान के लिए एक पल, डेढ़ पल या दो पल तक जल मिलाकर पिया जाता है ॥१२९॥ अजवायन का, सौंफ का, दालचीनी और लौंग का अर्क इसके साथ सहपान में पृथक् २ प्रयोग किया जाता है ॥१३०॥

गन्धकद्राव के गुण

यह गुल्म, प्लीहा, कृमि, सब प्रकार के उदर रोग, विसूचिका रोग, इनको नाश करता है। यह अत्यन्त संकोचक है अर्थात् मल को स्तम्भ करता है। आध्मान के वेग को रोकता है तथा उवर के वेग को भी रोकता है, रक्तातिसार को नाश करता है। रक्त-स्राव को रोकता है, अग्नि को दीप्त करता है। यह उष्णवीर्य है ॥१३१॥ यह विशेष करके विसूचिका अर्थात् हैजे में होने वाली

तृषा को शान्त करता है तथा अत्यन्त पसीना आने को रोकता है। सदाअतिसार को नाश करता है ॥१३२॥ अशुद्ध और ठीक भस्म न हुए २ सीसे को खाने से जो पक्षवध आदि भयंकर रोग हो जाते हैं, उन सब को शीघ्र ही ऐसे नाश करता है जैसे अन्धकार को सूर्य नाश करता है ॥१३३॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रस-तरङ्गिणी के भाषानुवाद में गन्धक विज्ञानीय नाम का आठवां तरंग समाप्त हुआ ॥८॥

अथ हिङ्गुल विज्ञानीय नाम का नवम तरङ्ग

हिङ्गुल, यह शब्द पुंल्लिङ्ग तथा नपुंसक लिंग दोनों में प्रयुक्त होता है। हिङ्गूल, इङ्गूल, म्लेच्छ, रक्त, सुरङ्ग, चित्रांग, चूर्ण पारद रसोद्भव, रसस्थान, रज्जन, कर्पशीर्षक, रक्तकाय, हंसपाद और दरद ये सब नाम शिगरफ के हैं ॥१-२॥

हिङ्गुल का स्वरूप

जो जफ के फूल के समान लाल रंग का हो और पीसने से सुन्दर प्रतीत हो, महान् उज्ज्वल अर्थात् चमकदार हो और भार से पूर्ण हो, ऐसा हिङ्गुल अर्थात् शिगरफ श्रेष्ठ माना जाता है ॥३॥

हिङ्गुल के दो भेद

हिङ्गुल दो प्रकार का है, एक खनिज जो खान से उत्पन्न होता है और दूसरा कृत्रिम जो पारे और गन्धक से बनाया जाता है ॥४॥

कृत्रिम हिङ्गुल का निर्माण प्रकार

आठ भाग गन्धक, ४२ भाग पारा, दोनों को मृदङ्ग यन्त्र में डाल कर हस्तक (दस्तक, हत्था) को घुमावे ॥५॥ उसको अच्छी प्रकार से घुमाने से ही बारीक चूर्ण हो जाता है। उसके बाद पेचदार ढकने को खोल कर उस यन्त्र में से चूर्ण को निकाल लेवे ॥६॥ यह चूर्ण घुँए के से रंग का होगा। इस चूर्ण को एक अत्यन्त दृढ़ हांडी में डाल देंगे ॥७॥ इस हांडी के मुख के अन्दर रेखाएं बनी हुई (पेचदार हो) होनी चाहिए। इस के ऊपर एक दूसरी हांडी जिसका मुख पेचदार हो अच्छी प्रकार रखे ॥८॥ ऊपर की हांडी को घुमा २ कर दोनों के पेचदार मुखों को यत्न पूर्वक कसदे। इस प्रकार अच्छी प्रकार से दोनों के मुखों को बन्द करने के बाद नीचे की हांडी को चूल्हे पर रख कर धीरे २ मन्द अग्नि देंगे ॥९॥ इस प्रकार नीचे की हांडी के गले के बीच में लगे हुये हिङ्गुल को निकाल लेवें। ऊपर की हांडी के तल भाग में लगे हुये (अधिक गन्धक वाले) हिङ्गुल को दुबारा इसी प्रकार दो हांडियों के बीच में पकाकर अधिक गन्धक जल जाने पर निकाल लेवे ॥१०॥

अशुद्ध हिङ्गुल के दोष

अशुद्ध हिङ्गुल से मोह, प्रमेह, चित्तभ्रम, अन्धापन, बलान्ति तथा क्षीणता उत्पन्न होती है। इस कारण हिङ्गुल को शुद्ध कर लेना चाहिए ॥११॥

अथ हिङ्गुल शोधन का प्रथम प्रकार

हिङ्गुल को खरल में चूर्ण करके अदरक के रस से सात भावना दे इस प्रकार हिङ्गुल निर्मल हो जाता है ॥१२॥

द्वितीय शोधन प्रकार

हिङ्गुल को चूर्ण करके बड़हल के स्वरस में सात बार भावना देकर सुखा लेवे । इस प्रकार हिङ्गुल की शुद्धि होती है ॥१३॥

तृतीय शोधन प्रकार

अच्छी प्रकार से चूर्ण किए हुये हिङ्गुल को भेड़ के दूध में अच्छी प्रकार सात बार भावना देकर सुखा लेवे तो हिङ्गुल अच्छी प्रकार से शुद्ध हो जाता है ॥१४॥ अब यदि इसी शुद्ध हुये हिङ्गुल को अम्लवर्ग में कहीं हुई औषधियों से पुनः सात बार भावित कर दिया जाय तो हिङ्गुल की बहुत ही अच्छी शुद्धि हो जाती है इस में कोई आश्चर्य नहीं ॥१५॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

हिङ्गुल को बारीक चूर्ण करके नीम्बू के स्वरस में सात बार भावित करे और फिर जल में बहुत बार धो दे ॥१६॥ फिर धूप में अच्छी प्रकार सुखा लेवे । इस प्रकार शुद्ध हुये हिङ्गुल को निःशंक होकर प्रयोग करें ॥१७॥

शोधित हिङ्गुल के गुण

शुद्ध हिङ्गुल नेत्र रोग, कफ तथा पित्तज रोगों को नाश करने

में श्रेष्ठ है। लीहा, कुष्ठ, कृत्रिम विष, कामला रोगों को नाश करता है। जाठराग्नि को दीप्त करता है तथा पाचन है ॥१८॥ मेह रोगों को नाश करता है, आमवात को दूर करता है और ज्वर का संहार करता है। इस के सेवन से शरीर की कान्ति बल तथा बुद्धि बढ़ती है ॥१९॥

शुद्ध हिंगुल के प्रयोग

शुद्ध गन्धक, जायफल, अफीम, पिप्पली तथा मोठ प्रत्येक एक २ भाग लें। इन के चूर्ण म मिला कर सेवन किया हुआ एक भाग शुद्ध हिंगुल शुकस्थान में आश्रित वायु को शीघ्र ही नाश करता है ॥२०॥ पिप्पली और शुद्ध मीठा विष के चूर्ण के साथ मिला हुआ शिगरफ शहद और अदरक के रस के साथ मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही वात ज्वर को नाश करता है। ॥२१॥ भय जनित ज्वर, पित्त कफ से होने वाला ज्वर, नव ज्वर, तथा आम वात से होने वाले ज्वर को भी नाश करता है। ॥२२॥ जायफल, अफीम, मोथा, कपूर, इन्द्रजौ, प्रत्येक का चूर्ण १-१ भाग तथा एक भाग शुद्ध शिगरफ मिला कर सेवन करने से भयंकर आमातिसार का नाश करता है। ॥२३॥ जायफल, लौंग, इन्द्रजौ, सुहागे की खील, काफूर और शिगरफ प्रत्येक वस्तु एक २ भाग लेकर मिलाकर रखें। इसे सेवन करने से आमातिसार शीघ्र ही नष्ट होता है। ॥२४॥

हिंगुलाद्य मलहर

उत्तम मिश्रित तेल १२ तोला लें। सिन्दूर और शिगरफ

आधा आधा तोला लेवें । ॥२५॥ सब को चिकने खरल में पीस कर एक कांच की प्याली में रख देवें इसे हिंगुलाग्र मलहर कहते हैं । यह आतशक (फिरंग रोग) के जख्मों को भर देती है । ॥२६॥

हिंगुलामृत मलहर

बारह तोला सिक्कथतैल में शिंगरफ का चूर्ण आधा तोला डालें । २७॥ फिर जुदा संग २ माशा, सुद्दगा की खोल २ माशा, कपूर २ माशा, रस पुष्प २ माशा, फिट्करी २ माशा, गिरि मिन्दूर २ माशा इन सब को बारीक चूर्ण करके उम में मिला देवें । ॥२८॥ सब को चिकने खरल में घोट कर कांच की प्याली में रखें । इसका नाम हिंगुलामृत मलहर है । ॥२९॥ यह हिंगुलामृत मलहम व्रण में से पीप निकालने के लिए उत्तम है । व्रणों को शोधन करने वाला तथा रोपण करने वाला है । और विविध प्रकार के व्रणों को रोपण करता (भरता) है । ॥३०॥ व्रण के अन्दर इसे भर देने से यह नाड़ी व्रण (नासूर) का नाश करता है । विशेष करके यह भगन्दर को दूर करता है । ॥३१॥

हिंगुल से सिन्दूर निर्माण प्रकार

नीम्बू के रस से शुद्ध किया हुआ तथा जल से धोया हुआ शिंगरफ तथा शुद्ध गन्धक एक २ पल लेवें ॥३२॥ दोनों को घोट कर बहुत बारीक चूर्ण करके एक कांच की कुप्पी में डाल देवें । इस कुप्पी को बालुका यन्त्र में रखकर अग्नि पर क्रमशः पकावें । जब यह स्वांग शीतल हो जाये तो जपा के फूल के समान लाल रंग के रस सिन्दूर को निकाल लें । ॥३३॥ ॥३४॥

इसके गुणादि का निरूपण

हिगुल के गुण, उसकी मात्रा, तथा भिन्न २ प्रयोग, अनुपान तथा पथ्यापथ्य आदि ये सब रस मिन्दूर के सदृश ही जानने चाहियें । ॥३५॥

श्री मिद दग्दामृत

दो कर्ष का अर्थात् चार तोला भर का एक टुकड़ा हिगुल का लेवें । उस पर कपास के सूत खूब लपेट दें । ॥३६॥ फिर एक चूल्हे पर मिट्टी के एक पात्र को रखकर उसमें इस हिगुल को रख दें । उस पर दो पल अर्थात् १६ तोला प्याज का स्वरस डालें ॥३७॥ और एक कर्ष (२ तोला) बड़ का दूध डालें । चूल्हे में अग्नि बहुत तेज कर दें, जलांश के सूख जाने पर उस मिट्टी के पात्र को चूल्हे से उतार लेवें ॥३८॥ स्वांगशीत होने पर शिगरफ (हिगुल) को निकाल लेवें । फिर उस मिट्टी के पात्र को खूब साफ करके चूल्हे के ऊपर रखें ॥३९॥ लौंग का चूर्ण १ कर्ष (२ तोला) उस प्याले में बिछा दें । उस पर हिगुल का खण्ड सम्भाल कर रख दें ॥४०॥ उसके बाद भिलावां के फल १२½ कर्ष अर्थात् २५ तोले लेकर उस प्याले में चारों ओर फेला कर ऊँचा ढेर सा बना दें ॥४१॥ लौंग के चूर्ण से शेष छिद्रों को पूर्ण कर दें । इस प्रकार लौंग के चूर्ण के बल पर भिलावां का ऊँचा ढेर प्याले के अन्दर उठाकर रखें । नीचे से चूल्हे में आग जलावें ॥४२॥ (भिलावें के धुँए से वैद्य अपना रक्षा करता रहे) जब वे भिलावें जल जावें तो उनको बीच में से चिमटी से निकाल कर बाहर करना जावे । उसके बाद हिगुल से

दश गुना अर्थात् ४० तोला घी उसमें क्रमशः डाले ॥४३॥ जब वह घी भी जल जावे तब उस हिंगुल को उसमें से निकाल लेवे । कपास के सूत की भस्म हिंगुल पर से वस्त्र द्वारा पोछ कर साफ कर देवे ॥४४॥ क्योंकि महादेवजी ने इसे सिद्धों को अर्पण किया था इस लिए संसार में इसका नाम श्री सिद्ध दरदामृत है ॥४५॥

इसके गुण

ऊरुस्तम्भ, आमवात, पक्षाघात तथा भयंकर शीतांग सन्निपात ॥४६॥ दीर्घकाल से होने वाला त्रिदोषज प्लीहोदर तथा क्लैव्य को यह शीघ्र नाश करता है ॥४७॥ (सिद्ध दरदामृत $\frac{1}{2}$ रत्ती शुद्ध संखिया $\frac{1}{200}$ रत्ती मिलाकर गौ के दुग्ध के अनुपान से दें तो ऊरुस्तम्भ, पक्षाघात और शीतांग सन्निपात नष्ट होता है । पुराने गुड़ के साथ इसे मिलाकर गौ दुग्ध के अनुपान से दें तो आमवात नष्ट होता है । नपुंसकता में पान के पत्रादि में देने से यह लाभ करता है) इस प्रकार के अनुपानों की विशेषता से उचित मात्रा में दिया हुआ यह सिद्ध दरदामृत विविध गुणों को करता है और रोग समूह को नाश करता है ॥४८॥

इसकी मात्रा

इसकी पूर्ण मात्रा आधी रत्ती की है, परन्तु बल और अबल को देखकर इसकी मात्रा बढ़ाई और घटाई भी जा सकती है ॥४९॥

हिंगुलीय माणिक्य रस

शुद्ध हिंगुल ८ तोला, गन्धक ८ तोला, हरताल ८ तोला

ले ॥५०॥ पलाश (ढार) के फूलों के रस में इन सब को सात दिन पोस कर सुखा लेवे । फिर इसको बारीक चूर्ण कर लेवे । ॥५१॥ इस चूर्ण का कांच की कुप्पी में डाल बालुका यन्त्र में रखकर क्रम से मन्द मध्यम और तीक्ष्ण अग्नि देता हुआ तीन दिन तक पकावे ॥५२॥ उसके बाद स्वांगशीतल होने पर कुप्पी के कण्ठ में लगे हुवे रससिन्दूर के सदृश माणिक्य रस को निकाल लेवे ॥५३॥

हिंगुलीय माणिक्यरस के गुण

यह माणिक्यरस ग्रहणी रोग, अतिसार, रक्तदोष से होंगे वाले सब रोगों को नाश करता है । बल वीर्य और शरीर को बढ़ाता है । ॥५४॥ यह क्षुद्र कुष्ठों को नाश करता है । आयु को स्थापन करता है तथा सब प्रकार के रोगों का नाश करता है ॥५५॥

इस की मात्रा

एक यव (जौ) से लेकर तीन यव तक बल, काल, आदि की अपेक्षा से रस माणिक्य की मात्रा देनी चाहिए ॥५६॥

श्री सिद्ध हिङ्गुलेश्वर

विशुद्ध हिंगुल को धतूरे की जड़ के स्वरस में सात बार भावना देवे । उसके बाद खूब सुखा लेवे । ॥५७॥ उसके बराबर शुद्ध सुहागा डालकर दोनों को खूब घोटें । इसे ही श्री सिद्ध हिङ्गुलेश्वर नाम से पुकारते हैं । ॥५८॥ सोंठ, मोचरस और इन्द्रजौ ये समान भाग लेकर इस में आधी रस्ती सिद्ध हिङ्गुलेश्वर मिला कर दें ॥५९॥ इसके ऊपर धनिये का शीत कषाय शीघ्र ही पिला

देवें । तो इस से दाह मूर्च्छा प्यास आदि उपद्रव शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । ॥६०॥ यह पाचन, दीपन तथा नाड़ी की गति को नियमित करने वाला है । ज्वर कृमि, तथा कफ को नाश करता है । और मृदु धारक है । ॥६१॥ यह कोष्ठ की बात को शान्त करने वाला तथा वायु को अनुलोमन करने वाला है । इसके समान अन्य कोई रस ज्वर तथा अतिसार नाशक लोक में नहीं है ॥६२॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार, भिषगाचार्य कृत रस तरंगिणी के भाषानुवाद में हिंगुल विज्ञानीय नाम का नवमां तरङ्ग समाप्त हुआ ॥६॥

अथ अभ्रक विज्ञानीय नाम का दशम तरङ्ग

अभ्रक के नाम

अभ्रक, गगन, भृङ्ग, अभ्र, खम्, व्योम अर्थात् आकाश के सब नाम, वज्र, घन, गिरिज, बहुपत्र, अनन्तक ॥१॥ आकाश, अम्बर, शुभ्र, अमल, गरजध्वज, मेघ के सब नाम, अन्तरिक्ष ये सब नाम अभ्रक के हैं ॥२॥

अभ्रक के चार प्रकार

श्वेत, लाल, काला तथा पीले रंग के भेद से अभ्रक चार प्रकार का है । उस में से काला अभ्रक रोगों को नाश करता है ॥३॥

कृष्ण अभ्रक के भेद

पिनाक, नाग, मण्डूक और वज्र ये चार भेद कृष्णाभ्रक के रस वैद्यों ने माने हैं ॥४॥

पिनाक अभ्रक का लक्षण

अग्नि में तपाने पर जिस के दल या पत्र अलग २ छूटते जायें उसे रसवैद्यों ने पिनाक कहा है ॥५॥

इसके दोष

पिनाक अभ्रक सेवन करने से मनुष्य का मल रुक जाता है और उस से निश्चित मृत्यु होती है तथा यह कुष्ठ आदि महा रोगों को भी करता है ॥६॥

नाग अभ्रक का लक्षण

अग्नि में तपाने से जो क्रुद्ध सांप के समान फुंकार (फुस्-फुस्) को शीघ्र २ छोड़े उसे नागाभ्रक कहते हैं ॥७॥

इस के दोष

इसके सेवन करने से महाघोर भगन्दर हो जाता है। मण्डल कुष्ठ अथवा महाकुष्ठ हो जाता है। अथवा ये दोनों ही महा रोग हो जाते हैं इस में कोई सन्देह नहीं ॥८॥

मण्डूक अभ्रक का लक्षण

अग्नि में तपाया हुआ जो अभ्रक मेंढक के समान शब्द करे तथा उछल २ कर बाहर गिरे उसे मण्डूकाभ्रक कहते हैं ॥९॥

इसके दोष

मसहूक अभ्रक को लगातार सेवन करने से शीघ्र ही निःसन्देह पथरी उत्पन्न हो जाती है जो केवल शस्त्रचिकित्सा से ही अच्छी हो सकती है ॥१०॥

वज्र अभ्रक का लक्षण

अग्नि में तपाने से जो विकार को प्राप्त नहीं होता और वज्र (हीरे) के समान वैसे ही अग्नि में पड़ा रहता है उसे वज्राभ्रक कहते हैं ॥११॥

इस के गुण

वज्राभ्रक सर्वश्रेष्ठ है। यह महारोगों को नाश करता है। देह-सिद्धि अर्थात् शरीर को लोहे के समान दृढ़ करता है वृद्धावस्था तथा उस से उत्पन्न हुई विरूपता को नाश करता है ॥१२॥

उत्तम अभ्रक का स्वरूप

जो अभ्रक नीले अञ्जन के समान काला, सिग्ध, भार-वाला, अति चमकदार, कोमल तथा जिस में से छोटे २ पत्र सुख से छूटते या निकलते हो ऐमा अभ्रक-श्रेष्ठ कहाता है ॥१३॥

देश भेद से अभ्रक की विशेषता

हिम शैल से उत्पन्न अभ्रक उत्तम, पूर्वशैल अर्थात् बंगाल आदि की ओर होने वाला मध्यम तथा दक्षिण देश के पर्वतों में पाया जाने वाला अभ्रक अधम कहाता है ॥१४॥

अभ्रक के खोदने की विधि

एक हाथी के प्रमाण या एक पुरुष के प्रमाण गहरा खान को खोदना चाहिये, उस में से अञ्जन के समान काला तथा भार वाला, अभ्रक खोद कर निकालना चाहिए (क्योंकि इस में ही सत्व अधिक होता है इस लिए यही अभ्रक अधिक गुणों वाला होता है) ॥१५॥

अशोधित अभ्रक के दोष

यदि अभ्रक शुद्ध न किया जाय और अशुद्ध-अभ्रक को ही मार लिया जाय तो वह शरीर में विविध प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। वह हृदय के शूल तथा पार्श्व शूल को बहुत अधिक उत्पन्न करता है ॥१६॥ शोथ, क्षय, पांडुरोग तथा कुष्ठ को भी उत्पन्न करता है। इसी लिए धान्याभ्रक बनाने के लिये अभ्रक को मारने के लिए तथा मत्त्वपातन करने के लिए अभ्रक को पहले शुद्ध कर लेना आवश्यक है ॥१७॥

अभ्रक शोधन का प्रथम प्रकार

अभ्रक को अग्नि में तपा २ करके कांजी में डाले। इस प्रकार सात बार करें। फिर खरल में डाल कर किसी अम्ल-रस से बहुत देर तक पीसता रहे। इस प्रकार एक दिन तक लगातार पीसने से अभ्रक शुद्ध हो जाता है। ॥१८॥१९॥

द्वितीय शोधन प्रकार

अभ्रक को अग्नि में तपा २ कर गौ के दूध या त्रिकला के क्वाथ में सात बार बुझाने से वह उत्तम प्रकार से शुद्ध हो जाता है ॥२०॥

तृतीय शोधन प्रकार

अग्नि में तपा २ करके अभ्रक को सात बार बेर के काढ़े में सिञ्चन करे और फिर पीस लेवे, इस प्रकार अभ्रक शुद्ध हो जाता है ॥२१॥ धान्याभ्रक बिना बनाये भी इसी प्रकार तपा २ कर यदि बेरी के क्वाथ में बुभावें और फिर अम्ल में पीस लें । तो ऐसा शुद्ध किया हुआ अभ्रक रस वैद्य मारने के लिए प्रयोग करें ॥२२॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

अभ्रक को अग्नि में तपा २ कर सात बार गौ के दुग्ध में बुभावे । उसके बाद जम्बीरी नीम्बू आदि अम्ल द्रव्यों के स्वरस के साथ पीसे । फिर चौलाई के रस के साथ पीस लेवे । इस प्रकार तीन दिन में ही अभ्रक शुद्ध हो जाता है ॥२३॥२४॥

धान्याभ्रक का स्वरूप

अभ्रक और धान्यों (छिलके समेत चावल) को मिलाकर एक कम्बल के बीच में डालकर बांध दें फिर उसे मर्दन करें । इस प्रकार धान्यों के बीच में से होकर निकलने वाला अभ्रक धान्याभ्रक कहाता है ॥२५॥

धान्याभ्रक का निर्माण प्रकार

एक भाग धान्यों को और चार भाग बज्र अभ्रक को एक कम्बल के अन्दर डालकर उसके मुख को रस्सी से बांध देवे ॥२६॥ इसे एक दिन जल के बीच में भिगो रखें जिससे वह भीग (सीज) जाय । जब अच्छी प्रकार से सीज जाय तब

उस दोनों हाथों से खूब दृढ़ता से तब तक उसी जल में मले जब तक कि वह सारा अभ्रक उस जल में न आ जावे। अब इस अभ्रक को धूप में सुखाकर जलीय अंश सर्वथा सुखा दें। फिर पुट द्वारा मारने के लिए रख लेवे। इसे ही धान्याभ्रक कहते हैं ॥२७-२८॥

अभ्रक के मारण में पुट संख्या का नियम

रोगों की शान्ति के लिए अभ्रक को २० से १०० तक पुट देने चाहिएं। और रसायन कर्म के लिए १०० से १००० तक पुट देने चाहिएं ॥२९॥

अभ्रक का प्रथम मारण प्रकार

धान्याभ्रक को लेकर के कासमर्द अर्थात् कसोंदी के स्वरस से एक दिन पीस कर टिकियां बनालें ॥३०॥ उसके बाद एक हांडी में सम्पुट कर गजपुट देवें। इस प्रकार कसोंदी के रस में मर्दन कर के दस बार पुट देता जावे फिर आक के दूध में अच्छी प्रकार घोट २ कर दस पुट देवे ॥३१॥ इस प्रकार २० पुट देने से अभ्रक की भस्म सिन्दूर के सदृश लाल रंग की निःसन्देह हो जाती है ॥३२॥

द्वितीय मारण प्रकार

धान्याभ्रक को लेकर पान के पत्तों के स्वरस से तथा बांसा के स्वरस से मीनाक्षी या मछेछी के स्वरस से तथा बड़ के दूध से अच्छी प्रकार घोटकर गजपुट देवे। प्रत्येक स्वरस से घोट २ कर पांच २ बार पुट देवे। इस प्रकार २०

वार पुट देने से अभ्रक की भस्म तैयार हो जाती है ॥३३-३४॥

तृतीय मारण प्रकार

धान्याभ्रक को लेकर चौलाई के स्वरस से तीन दिन पीसे फिर टिकियां बनाले ॥३५॥ फिर इसे गजपुट में फूंक दे। इसी तरह दस बार फूंक देवे। उसके बाद पुनर्नवा के स्वरस में मर्दन कर २ के दस बार गजपुट दे ॥३६॥ फिर बट के अंकुरों के काढ़े से पीस २ कर दस बार गजपुट दे। इस प्रकार तीस पुट देने से अभ्रक की भस्म हो जाती है ॥३७॥

चतुर्थ मारण प्रकार

धान्याभ्रक को मोथे के कढ़े के साथ घोट २ कर पट्टले पांच बार गजपुट देवे। फिर केल्ले के स्वरस में घोटकर पांच बार गजपुट देवे। फिर चौलाई के स्वरस में घोट २ कर पांच बार पुट देवे ॥३८॥ फिर भांगरे के स्वरस में घोटकर पांच पुट देवे। फिर त्रिफला के क्वाथ में घोट २ कर पांच बार पुट देवे। इस प्रकार २५ पुट देने के बाद समान भाग शुद्ध गन्धक डालकर, एक बार और पुट देवे तो अभ्रक की भस्म हो जाती है ॥३९॥

पञ्चम मारण प्रकार

धान्याभ्रक को लेकर आक के दूध अथवा आक की जड़ के स्वरस के साथ निरन्तर एक दिन घोटै ॥४०॥ फिर टिकियां बनाकर धूप में सुखा लें। इन पर आक के पत्ते लपेट कर गजपुट में फूंक दे। इसी प्रकार सात बार करे ॥४१॥ फिर बड़ की जड़ के काढ़े से घोटकर तीन बार गजपुट देवे ॥४२॥ उसक

बाद केले की जड़ के स्वरस से घोटकर सात बार पुट देवे । इस प्रकार १७ पुट देने से ही अभ्रक की भस्म बन जाती है ॥४३॥

पष्ठ मारण प्रकार

वटक्षीर, आक का क्षीर और थोहर का दूध, मकोय, गोखुरु, अपामार्ग, बड़ के अंकुर, गोमूत्र, तुलसी, केले की जड़ ॥४४॥ इन दम द्रव्यों से क्रमशः अभ्रक को मर्दन करे । इनमें से एक द्रव्य के रस से दम २ बार अभ्रक को मर्दन करके गजपुट देता जावे इस प्रकार १०० पुट देने से अभ्रक भस्म निश्चन्द्र तथा लाल कमल के समान चमकदार एवं सभी दोषों से रहित बनकर तैयार होती है ॥४५॥

सप्तम मारण प्रकार

धान्याभ्रक को लेकर उसमें आठवां भाग गुड़ मिलावे और एरण्ड के पत्तों के रस से ६ घण्टे घोटें । बाद में टिकियां बनाकर बड़ के पत्तों में लपेट कर ऊपर से कपास का सूत लपेट कर पत्तों में अच्छी प्रकार बन्द करे । फिर हांडी में रखकर गजपुट देवे । इस प्रकार दस बार गजपुट देने के बाद निश्चय से अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म हो जाती है ॥४७॥४८॥

अष्टम मारण प्रकार

धान्याभ्रक को लेकर मूली के स्वरस से एक दिन या दो दिन दृढ़ता से पीसे ॥४९॥ फिर टिकियां बनाकर वटपत्रों से लपेट देवे और फिर २१ बार इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक पुट देता जावे । तो निश्चन्द्रक तथा विकार से रहित अति गुणदायक

अभ्रक भस्म तैयार हो जाती है। इसे निःशुंक होकर प्रयोग करना चाहिए ॥५०-५२॥

नवम मारण प्रकार

धान्यभ्रक को बड़ के अंकुरों के काढ़े में पीस लेवे। फिर टिकियाँ बनाकर अण्ड के पत्तों से लपेट कर दस बार (हांडी में रख) पुट देवे। फिर छोटी कटेली के काढ़े से, बाँसा के काढ़े से तथा बहेड़ा के काढ़े से क्रमशः घोट कर टिकियाँ बना कर दस दस बार पुट देवे। इस प्रकार ४० पुटों में ही निश्चन्द्र अभ्रक भस्म तैयार हो जाती है। यह क्षय और कास रोग आदि को नाश करती है ॥५३॥५५॥

मृत अभ्रक के लक्षण

जो अभ्रक भस्म चन्द्रिका अर्थात् चमचमाहट से रहित हो, लाल हो सुसूक्ष्म हो, स्पर्श में कोमल हो, उस भस्म को वैद्य मरा हुआ समझे ॥५६॥

अभ्रक का मारक गण

बड़, चाक तथा थोहर इन तीनों प्रकार के दूध में मकोय, मोथा, घीकवार, बड़ के अंकुर, गोमूत्र, बिल की जड़ तथा पत्ते, बाँसा ॥५७॥ त्रिफला, बकरे का खून, कटेली छोटी, कदम्ब, अरणी, शालपर्णी, गम्भारी, पाढल, गुड़ ॥५८॥ तिलपर्णी, पृष्ठ-पर्णी, गोखरू, अपामार्ग, गोरी सरसों, लोध, बड़ी कटेरी, हिल मोचिका ॥५९॥ धतूरा, कसौदी, भंग, गिलोय, मारिष (मरसा), तुलसी, दूब, असगन्ध, कुटकी ॥६०॥ मण्डूकपर्णी,

मैनफल, पिण्डीतगर, शंखपुष्पी, नागर बेल, बेरी, सफेद पुनर्नवा ॥६१॥ मूसापर्णी, सप्तपर्णी (सतवन या सतौना), केले के कन्द का स्वरस, भंगरा, देवदार, सफेद मूसली, चमेली या मालती ॥६२॥ अगस्त्य के पत्ते, तालीस पत्र, चीता, जल-कुम्भी, दाढ़ू या अनार के पत्ते, चौलाई ॥६३॥ अरण्ड की जड़ और अरण्ड के पत्ते, मोनलू, मंजीठ, पालंकी (पालक), भद्र मोथा, मीनाक्षी या मछेंछी और तालमखाना ॥६४॥ इन सब औषधियों का गण पूर्वाचार्यों ने अभ्रक को मारने के लिए अच्छा माना है। इन में से रोग के अनुसार जो जो औषधि भी मिल सकती हों उन के स्वरस के साथ अभ्रक को घोट २ कर पुट देकर अभ्रक का भस्म करालें ॥६५॥

अभ्रक भस्म को लाल बनाना

नागबला, भद्र मोथा, बड़ का दूध, बड़ की जड़ का स्वरस, हल्दी का स्वरस ॥६६॥ और मंजीठ का काढ़ा इन सब द्रव्यों के साथ अभ्रक की भस्म को पीस कर के दो या तीन पुट बाद में देवें। तो लाल कमल पुष्प के पत्र के समान लाल रंग की कोमल तथा निश्चन्द्रिक भस्म हांती है। इस भस्म को सब कार्यों में प्रयोग करना चाहिए ॥६६॥६७॥६८॥

अभ्रकभस्म का अमृतीकरण

अभ्रक भस्म १० भाग लेकर त्रिफला का ताजा काढ़ा १६ भाग, गौ घृत आठ भाग, इन तीनों को एकत्र करके लोहे के पात्र में डाल कर पकावे। इस प्रकार पकाने से अभ्रक का उत्तम

अमृतीकरण हो जाता है, यह अभ्रक देखने में भी सुन्दर होता है
॥६६॥७०॥

द्वितीय प्रकार

घीकवार का रस १६ भाग, अभ्रक भस्म १० भाग, गौ घृत १२ भाग इन सब को एकत्र कर लोहे की कढ़ाई में पकाने से अभ्रक का श्रेष्ठ अमृतीकरण हो जाता है ॥७१॥

तृतीय प्रकार

अभ्रक भस्म के तुल्य गोघृत डाल कर पकावे । इस प्रकार से अभ्रक भस्म का अमृतीकरण होता है और उसे सब कार्यों में प्रयोग करना चाहिए ॥७२॥

मृत अभ्रक के गुण

अभ्रक की भस्म स्निग्ध, परम शीत वीर्य, मधुर रसयुक्त मुख्य करके आयुवर्धक, केशों तथा वर्ण के लिए हितकारी, रुचिकारक अग्निदीपक, अति बलदायक नेत्रों के लिए हितकारी, मेधावर्धक स्तनों में दूध बढ़ाने वाली है । देह दृढ़ करती है तथा कामदेव की अत्यन्त वर्धक है ॥७३॥ महा रोगों को शीघ्र ही नाश करती है । यौवन सम्बन्धी हास विलासों में मनुष्य की प्रवृत्ति के फिर से उत्पन्न करती है । देह में बहुत शक्ति देती, सन्तान उत्पन्न करने की अत्यन्त शक्ति को उत्पन्न करती है तथा कार्य करने में आलस्य को नाश करती है । अभ्रक को लगानार सेवन करने से सब रोग नष्ट होते हैं ॥७४॥

अभ्रक के आमयिक प्रयोग

रस सिन्दूर के साथ मिला कर अभ्रक भस्म खाई जावे तो ज्वर को नाश करती है । पिप्पली के चूर्ण तथा शहद से मिला कर अभ्रक भस्म खावे तो जीर्ण ज्वर का नाश होता है) ॥७५॥ त्रिफला चूर्ण और शहद से मिला कर अभ्रक भस्म खावे तो दृष्टि को बहुत बढ़ाती है । त्रिकुटा तथा घी के साथ अभ्रक भस्म मिलाकर खाने से शीघ्र ही ग्रहणी रोग को नाश करती है ॥७६॥ हरड़ का चूर्ण, इलायची का चूर्ण, खांड और गुड़ मिलाकर अभ्रक भस्म सेवन करने से रक्त पित्त को नाश करती है ॥७७॥ त्रिकुटा, त्रिफला, चतुर्जात (दार चीनी, इलायची, तेजपत्र नागकेसर) तथा शहद से मिलाकर अभ्रक भस्म सेवन की जाय तो अर्श, पाँडु, क्षय तथा हलीमक रोग का नाश होता है ॥७८॥ अभ्रक भस्म, हल्दी चूर्ण, पिप्पली चूर्ण और मधु मिला कर एक मास सेवन करने से प्रमेह रोग छूट जाता है । स्वर्ण भस्म के साथ मिला कर अभ्रक भस्म यदि एक मास सेवन की जाय तो पुरुषों की धातु की वृद्धि करती है तथा विशेष कर के क्षय को नाश करती है । ॥८०॥ गिलोय के सत के साथ अभ्रक भस्म सेवन करने से सब प्रमेहों का नाश होता है । चाँदी और स्वर्ण भस्म के साथ मिलाकर अभ्रक भस्म सेवन की जाय तो शुक्रकारक और सन्तान कारक है । ॥८६॥ भुईं आँवला, गोखरू, बड़ी इलायची, खांड तथा गौ का घी मिला कर अभ्रक भस्म सेवन की जाय तो भयंकर मूत्र कृच्छ्र को शीघ्र नाश करती है ॥८७॥ क्षाराष्टक के साथ अभ्रक भस्म सेवन की जाय तो मूत्रावात का नाश करती है । अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र को भी नाश करती है और विशेष करके

अग्नि को दीपन करती है ॥८३॥ मूर्वा के काढ़े के साथ मिलाकर अभ्रक भस्म सेवन करनेसे ब्रणों का नाश करती है । क्षीरकाकोली अथवा क्षीर विदारी के साथ अभ्रक भस्म मिला कर खावे और ऊपर से गौदुग्ध पीवे तो बल को बहुत बढ़ाती है ॥८४॥ अभ्रक भस्म मिलावों के साथ सेवन की जाय तो सब बवासीरों को नाश करती है । लयंग-चूर्ण और शहद के साथ मिला कर सेवनकी जाय तो अत्यन्त धातुवर्धक है ॥८५॥ जायफल के चूर्ण के साथ अभ्रक भस्म मिलाकर भांग का स्वरस डालकर सेवन की जाय तो शुक्रस्तम्भकारक है ॥८६॥ सोंठ, पुष्करमूल, भारंगी, असगन्ध इनको सम भाग लेकर चूर्ण करें । इस चूर्ण के साथ अभ्रकभस्म शहद मिलाकर सेवन की जाय तो शीघ्र ही वायुजन्य रोगों को नाश करती है ॥८७॥ कज्जली के साथ मिलाकर अभ्रकभस्म को अर्जुन के क्वाथ से भावित कर लें । इसे सेवन करें तो यह कृमिजन्य तथा कफजन्य हृदोग को नाश करती है ॥८८॥ चतुर्जान के चूर्ण के साथ खांड तथा अभ्रकभस्म मिलाकर सेवन करने से पित्त रोग का नाश करती है । अथवा गोदुग्ध में खांड मिलाकर अभ्रकभस्म सेवन करने से पित्त रोग को नाश करती है ॥८९॥ पिप्पली का चूर्ण, कायफल का चूर्ण और अभ्रकभस्म शहद मिलाकर एक मास तक सेवन करने से सभी प्रकार के कफ रोगों को नाश करती है ॥९०॥

सत्वों की विशिष्टता

भिन्न २ योगों में जहां उपरसों का प्रयोग किया जाता है वहां पर यदि उन उपरसों के सत्वों को प्रयोग किया जाय तो

अधिक गुण होता है। इसीलिए सत्वों को अधिक अच्छा माना जाता है ॥६१॥

अभ्रकसत्व पातन का प्रथम प्रकार

एक भाग वज्राभ्रक, चौथाई भाग सुहागे का चूर्ण दोनों को मिलाकर मृमली के स्वरस के साथ घोटें। फिर एक कुठाली में डालकर बहुत तेज आंच दें। इससे अभ्रक का उत्तमसत्व निकल आता है ॥६२॥

द्वितीय प्रकार

वज्राभ्रक के चूर्ण को कांजी से पीस लेवे फिर शूगणकन्द (जिमीकन्द) के स्वरस से भली प्रकार पासे। फिर केले के ताजे कन्द के रस से अच्छी प्रकार भावित कर ले। अब यह, जितना अभ्रक हो उससे चौथाई भाग सुहागा, पिप्पली तथा छोटी मछलियां, तीनों मिलित सम भाग लेवे ॥६३॥ इन सब को एकत्र अच्छी प्रकार से मिलाकर भैंस के गोबर से मिलाकर पिण्ड बना लेवें। फिर एक कुठाली में डालकर तेज आंच में पकावे। इस प्रकार शीघ्र ही अभ्रक अपने सत्व का छोड़ देता है। इसे सब प्रयोगों में डाला जा सकता है।

तृतीय प्रकार

अभ्रक को बांसा, चौलाई, कसौंदी, हंसराज, मछेछी तथा थोहर के रस के साथ पृथक २ पीसकर धूप में सुखा लेना चाहिए। फिर गेहूँ का चूर्ण, सुहागा, छोटी मछलियां, इन तीनों को पृथक २ अभ्रक से आठवां भाग लेकर सब को अभ्रक के

साथ मिलाकर एकत्र पीस लेवे। उसके बाद बकरी के दही, दूध, घी, मूत्र और मल को लेकर अथवा गौ के दही, दूध, घी, मूत्र वा मल को एकत्र लेकर अभ्रक में मिलाकर धूप में सुखा लेवे। फिर गोले बनाकर अधः पातन कोष्ठी में इन गोलों को डाल कर उस कुठाली को तेज आंच दे। इससे अभ्रक का सत्व निकल आता है ॥६४-६८॥

चतुर्थ प्रकार

सुहागा, गुग्गुल, गुड़, राल, ऊन, लाव, तिल की खली, छोटी मछलियां, इनको सम भाग लेकर एकत्र करें और इनके तुल्य अभ्रक लेकर बकरी के दूध से दोनों को पीसकर गोलियां बना लेवे। फिर इन गोलियों को वज्रमूपा में बन्द करके एक कुठाली में डालकर तीव्र अग्नि में तपावे तो इस प्रकार से शीघ्र ही अभ्रक का सत्व निकल आता है ॥६६-१०१॥

अभ्रक सत्व का पिण्डीकरण

घी, रत्तियां, सुहागा, शहद, तथा गुग्गुल इस मित्रपंचक के साथ चूर्ण के समान हुये २ अभ्रकसत्व को मिला कर एक मूपा में डाल कर कोयलों की आग में रख कर अत्यन्त तीक्ष्ण अग्नि देने से कांसी के समान वह डकड़ा होकर पिण्ड बन जाता है। फिर उस सत्व का शोधन करना चाहिए ॥१०२॥

अभ्रक सत्वका सामान्य शोधन

अभ्रक सत्व को अग्नि में तपा २ कर त्रिफला के रस में अथवा बड़ की जड़ के काढ़े में अथवा अम्लरस में अथवा कांजी में बुझाने से वह शुद्ध हो जाता है ॥ १०४ ॥

विशेष शोधन

अभ्रक सत्व के गोले को आग में खूब तपा २ कर कांजी में बुझावे और फिर लौह के डण्डे से खूब कूटे। फिर तपा कर बुझावे और खूब कूटे। इस प्रकार तब तक करता रहे जब तक वह चूर्ण न हो जाय। चूर्ण हो जाने पर गौ के घी से तीन बार खूब भून लेवे अथवा आंवलों के रस में तीन बार भून लेवे। प्रत्येक बार भून कर अभ्रक सत्व को खरल में खूब पीस लेना चाहिए और फिर भूनना चाहिए। इस प्रकार अच्छी प्रकार से भून कर और पीस कर फिर पुनर्नवा के रस में पीसे। इस के बाद बासे के स्वरस में पीसे। फिर कांजी से पीसे। इस प्रकार पीसने से अभ्रक का सत्व बिशुद्ध हो जाता है। और मारने के योग्य हो जाता है ॥१०५॥

अभ्रक सत्व का भारण

शुद्ध किया हुआ अभ्रकसत्व १ भाग, शुद्ध पारा तथा गन्धक की कज्जली आधा मासा दोनों को अच्छी प्रकार मिलाने के बाद एक खरल में पीस कर कांच की कुप्पी में डालो। फिर इसे वालुका यत्र में रख कर विधि पूर्वक अग्नि देवे। इस प्रकार अभ्रक का सत्व शीघ्र ही भस्म हो जाता है ॥१०६-११०॥

द्वितीय मारण प्रकार

दो भाग अभ्रक सत्व, १ भाग पारद गन्धक की कज्जली लेवे, दोनों को पीस कर उपलों की आग में पुट देवे। इस प्रकार सात बार करने से अभ्रक सत्व की भस्म हो जाती है। इस भस्म को निःशंक होकर सर्वत्र प्रयोग करे ॥१११-११२॥

अभ्रक सत्व के गुण

अभ्रक का सत्व अत्यन्त शीतवीर्य है। मधुर रसवाला है तथा अत्यन्त रूचिकारक है। अति स्निग्ध है। केशों के लिए हितकारी, आयुवर्द्धक, त्रिदोष नाशक तथा रसायन है ॥ ११३॥ जो मनुष्य अभ्रक सत्व को सेवन करता है वह प्रौढ़ाङ्गनाओं के मद को शान्त करने में अत्यन्त प्रबल होता है, सिंह के समान पराक्रमी होता है तथा बहुत से पुत्रों को प्राप्त करता है, लावण्ययुक्त मुख चन्द्रवाला होकर सदाचारी रहता हुआ सौ वर्ष तक जीता है ॥ ११४॥ अभ्रक सत्व की भस्म से बढ़कर पुष्टि देने वाली विशेष करके पुरुषत्व देने वाली और आयु को स्थापन करने वाली कोई औषध नहीं है ॥ ११५॥ सारे संसार की औषधियों के अन्दर अभ्रक सत्व की भस्म के समान कोई औषध निर्विकार, गुणदायक तथा त्रिदोषनाशक नहीं है ॥ ११६॥

अभ्रक सेवन करने में वर्जनीय वस्तुएं

करीर (टेंट, डेले) करेला, ककड़ी, बेर, अम्लरस, तिल तैल क्षार तथा बैंगन ये वस्तुएं अभ्रक सेवन करने वाले को नहीं खानी चाहिए ॥ ११७॥

अभ्रक का प्रथम कल्प

अभ्रक भस्म (अभ्रक सत्व की भस्म) त्रिकुटा, विडंग, आंवला इन सब को सम भाग लेकर केशराज के स्वरस अथवा केवल जल के साथ ही खरल में अच्छी प्रकार पीस कर गोलियाँ बना लेवें। इन्हें छाया में सुखाकर शीशी में बन्द करके रखे ॥ ११८—११९॥ इन

गोलियों में से एक २ गोली प्रातःकाल ६ महीने वा ३ महीने वैद्य के बचनों पर निरन्तर विश्वास करके सेवन करे ॥१२०॥ इसमें दिव्य दृष्टि, शरीर की विशालता, मुख की सूर्य के समान काँन्ति, दाँतों की दृढ़ता तथा कामदेव के समान रूप हो जाता है ॥१२१॥ इस से आन्त्रशोष हड्डियों में होने वाला शोष, केवल शोष, भयंकर राजयक्ष्मा, बहुत पुरानी पाँचों प्रकार की खाँसी तथा भयंकर श्वाम, सब प्रकार की अशो, ग्रहणी, पाण्डु, कामला, कुम्भ कामला, १८ कोढ़, आमवात, तथा त्रिदोषज, महा भयंकर मृत्यु के समान रोग, इन सब की यह प्रथम व्रजकल्प शीघ्र ही नाश करता है ॥१२२॥१२४॥

अभ्रक का द्वितीय कल्प

अभ्रक भस्म दस भाग, लोह-भस्म ६ भाग, शुद्ध पारा चार भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग ले। पहले पारद गन्धक की कज्जली करे। फिर सब को एकत्र पीसकर त्रिफला के रस से सात बार भावित करे ॥१२३॥ फिर भांगरे के रस से सात बार भावित करे फिर सुहांजना, कुटकी तथा चीते के स्वरस से पृथक् २ सात बार भावना देकर गोलियाँ बनावे। इन्हें शीशी में बन्द करके रखें ॥१२४॥ इस गोली को पिप्पली के चूर्ण तथा पुराने गुड़ से मिला कर एक २ गोली को खावे तो सर्व रोगों को नाश करती है। इस गोली को ६ महीने खानेसे मनुष्य भीमसेन के समान बलवान् वृहस्पति के समान मेधवान् तथा गरुड के समान चतुर्भुज हो जाता है। १२७॥१२८॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रस-तरंगिणी के भाषानुवाद में यह अभ्रक विज्ञानीय नाम का दसवां तरंग समाप्त हुआ ॥१०॥

अथ तालकादि विज्ञानीय नाम का एकादश तरङ्ग

तालक के नाम

हरिताल, ताल, तालक, नटभूषण, नटमण्डनक, शैलूषः भूषण, विडालक, चित्रगन्ध, पिण्डजर, वंशपत्रक, आल, पीतनक और मल्लगन्धज ये नाम हरताल के हैं ॥१-२॥ मल्ल अर्थात् संख्या और गन्धक के योग से क्योंकि इस हड़ताल की उत्पत्ति होती है इस लिए श्रेष्ठ वंश इसे मल्लगन्धज कहते हैं ॥३॥

तालक के दो भेद

पुगने आचार्यों ने हरताल दो प्रकार की मानी है। एक पत्रताल, दूसरी पिण्डताल, ॥४॥

पत्रताल का स्वरूप

सुनहरी रंगवाली, निर्मल, भारी, महा चमकीली, पतले पतले पत्रों से युक्त और स्निग्ध हरताल पत्रताल कहाती है ॥५॥

पिण्डताल का स्वरूप

जो हरताल कान्ति रहित, अल्प सत्व वाली, पत्र रहित, लघु तथा विशेष करके पिण्ड रूप होती है, उसे पिण्डताल कहते हैं ॥६॥

पत्रताल तथा पिण्डतालक की विशेषता

पत्रताल, त्रिदोषघ्न, अत्यन्त कुण्डनाशक, वातरक्त नाशक तथा परम रसायन हैं। पिण्ड तालक नारी के मासिक धर्म

को नष्ट करने वाली है । पत्र ताल से कम गुणवाली है, इस कारण उसे रस आदि में प्रयुक्त नहीं करना चाहिए ॥७-८॥

कृत्रिम हड़ताल का निर्माण प्रकार

शुद्ध श्वेत संखिया ४६ भाग, शुद्ध की हुई गन्धक २४ भाग दोनों को खरल में पीसकर धीरे २ मिला लेवे ॥ ६—१० ॥ फिर डमरु यन्त्र में डलकर मन्दग्नि से धीरे २ पकावे । स्वांग शीतल होने पर ऊपर के पात्र में लगी हुई हड़ताल को निकाल लेवे ॥११॥ यदि शुद्ध हुवे २ संखिये और गन्धक से हड़ताल बनाली जावे, तो उस हड़ताल को फिर शुद्ध करने की वैद्य को आवश्यकता नहीं है ॥१२॥

अशोधित ताल के दोष

अशुद्ध हरताल अधिक सेवन करने से अत्यन्त दाह, क्षोभ, प्रकम्प, तथा पीड़ायें उत्पन्न हो जाती हैं ॥१३॥ देह कान्तिहीन होकर कुष्ठ उत्पन्न हो जाता है । सारे गात्र मलिन हो जाते हैं (तथा अंगों को संकुचित कर देती है) ॥१४॥ अशुद्ध हरताल बात और कफ से उत्पन्न होने वाले मृत्यु तक की शंका पैदा करने वाले सब रोगों को पैदा कर देती है । इसलिए इसे शुद्ध करके प्रयोग करना चाहिए ॥१५॥

तालक शोधनका प्रथम प्रकार

हरताल को अच्छी प्रकार से चूर्ण करके एक कपड़े की पोटली में बांधकर ताजे नीबू के रस में दोला यन्त्र द्वारा एक प्रहर (३ घण्टे) तक निरन्तर पकावें । फिर उसमें से निकाल

कर तीन घण्टे कांजी के अन्दर पकावे । इस प्रकार से हरताल सर्वथा शुद्ध हो जाती है) इसे निःसन्देह होकर सब रसों में प्रयोग करें ॥१७—१८॥

द्वितीय प्रकार

हरताल को चूर्ण करके एक पोटली में बाँधकर পেठे के स्वरस में दोलायन्त्र से तीन घण्टे तक पकावे । उसके बाद चूने के जल में तीन घण्टे पकावे, अथवा त्रिफला के ववाथ में तीन घण्टे पकावे । इस प्रकार ६ घण्टे के अन्दर ही हरताल बहुत अच्छी प्रकार से शुद्ध हो जाती है ॥१९—२०॥

तृतीय प्रकार

हरताल के चूर्ण को एक पोटली में बांधकर दोला यन्त्र में डालकर तिलक्षार के जल में तीन घण्टे तक पकावे । इस प्रकार एक प्रहर स्वेदन करने से ही हरताल शुद्ध हो जाती है । इसे निःशंक होकर सर्वत्र प्रयोग करे ॥२१—२२॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

वंशपत्र हरताल के चूर्ण को कपड़े की पोटली में बांधकर सीमल की जड़ के स्वरस में तीन घण्टे तक दोला यन्त्र में स्वेदन करे तो हरताल शुद्ध हो जाती है । अथवा सीमल की जड़ के स्वरस में सात दिन तक हरताल के चूर्ण को भावित करने से हरताल शुद्ध हो जाती है ॥२३—२४॥

पञ्चम शोधन प्रकार

पत्रताल को चूर्ण करके चूने के जल में अतियत्न से सात

बार भावित करे, इस प्रकार हरताल की बहुत उत्तम शुद्धि होती है ॥२५॥

तालकमाणिका प्रथम प्रकार

शुद्ध हरताल को खरल में डलकर पुनर्नवा के रस में एक दिन घोट्टे फिर सुखाले और जब कुछ नमी रह जाय तो उसकी टिकियां बना लेवे और फिर धूप में उन्हें अच्छी प्रकार से सुखा लेवे उसके बाद भस्म यन्त्र में रखकर पका लेवे ॥२६-२७॥ इसको पकाने की विधि यह है कि पुनर्नवा की क्षार बनाकर एक हाँडी को आधा भर देवे । (क्षार को पहले वारीक कपड़े में से छान लेना अति आवश्यक है) इस हाँडी पर अब हरताल की टिकियों को रख देवे और उसी क्षार से हाँडी को ऊपर तक दबा २ कर भर देवे ॥२८॥ अब इसके नीचे विधि पूर्वक क्रम २ से अग्नि को बढ़ाकर निरन्तर (तीन दिन अथवा पाँच दिन तक) अग्नि देकर पकावे । इस प्रकार से हरताल की निःसन्देह भस्म हो जाती है ॥२९॥

द्वितीय मारण प्रकार

शुद्ध की हुई हरतल को पांच तोला भर लेवे । फिर पीपल की छाल के काढ़े को कपड़े में से छानकर उसमें हरताल को २१ बार भावना देवे । इस प्रकार अन्त में टिकियां बनाकर, खूब सुखाने के बाद भस्म यन्त्र में पका लेवे ॥३०—३१॥ पीपल की छाल की भस्म को कपड़े में छानकर उससे आधी हाँडी को भरकर उसपर टिकियां रख देवे ॥३२॥ हाँडी का शेष भाग उसी भस्म से पूर्ण करके हाँडी को चूल्हे पर रखे । और चार प्रहर (बारह घण्टे) क्रम से अग्नि को बढ़ाता हुआ) अग्नि देवे

॥३३॥ इस प्रकार से निःश्वेत ही हरताल की भस्म हो जाती है और इसे निःसंकोच होकर सर्वत्र प्रयोग करे ॥३४॥

तृतीय मारण प्रकार

शुद्ध हरताल पांच तोला लेकर दस गुने अर्थात् ५० तोला आक के दूध में डालकर भली प्रकार पीस लेवे ॥३५॥ फिर टिकियां बनाकर धूप में अच्छी प्रकार से सुखा लेवे । तदनन्तर उसी भस्म यन्त्र द्वारा युक्ति पूर्वक पका लेवे ॥३६॥ पलाश (दार की भस्म को वस्त्र से छानकर उससे आधी हांडी को भरकर उसमें टिकियां रख देवे । हांडी के शेष भाग को उसी भस्म से भरकर अच्छी प्रकार दबा देवे । इस प्रकार बारह घंटे अग्नि दे । इससे हरताल की श्वेत रंगकी भस्म हो जाती है ॥३७-३८॥

चतुर्थ मारण प्रकार

निर्मल वंशपत्र हड़ताल को १ तोला लेकर उसमें शुक्ति भस्म सम भाग डाल कर मिला लेवे । फिर घीवार के रस से तीन घण्टे खरल करे । उसके बाद टिकियां बनाकर धूप में सुखा लेवे । फिर शराब सम्पुट में रख बन्द कर लघुपुट (आठ दस उपलों) में पकावे । स्वांग शीतल होने पर निश्चन्द्र हुई २ भस्म को निकाल लेवे । इस हड़ताल की भस्म को प्रयोग करने से कुष्ठ रोग शीघ्र ही नाश होता है । (यह स्वर्गीय कविराज नरेन्द्रनाथ जी मित्र का अनुभूत योग है) ॥ ३९-४० ॥

पञ्चम मारण प्रकार

पत्रताल को पलाश की जड़ के (मधुतुल्य) घने कबाथ में तीन बार भावित कर लेवे । उसके बाद भैस के मूत्र से भावना देवे

उसके बाद कगेत पुट (८ जंगली उपलों) से भस्म कर लेवे । इस प्रकार हड़ताल को बारह पुट देने से इसकी भस्म हो जाती है । इसे निःसन्देह सब रोगों में प्रयोग करें ॥४२—४४॥ (यह भी मित्रा जी का अनुभूत है) ।

षष्ठ मारण प्रकार

शुद्ध वंशपत्र हरिताल को घीक्वार के रस से अच्छी प्रकार से घोट लेवे । फिर टिकियां बनाकर अच्छी प्रकार से धूप में खूब सुखा लेवे ॥४५॥ फिर एक बड़े (डेढ़ दो सेर के) उपले में गढ़ा करके उसमें हरिताल के बराबर समुद्र फेन का चूर्ण कपड़े में छानकर जमा देंगे । इसपर हरिताल की टिकियां रख देंगे ॥४६॥ उसके बाद उसी चूर्ण से उन टिकियों को अच्छी प्रकार से ढक देंगे । अब इस बड़े उपले को केवल भूमि पर अथवा एक गढ़े में महापुट (डेढ़ हाथ के लम्बे चौड़े गढ़े में बनोपलों को भर कर अथवा एक मन बनोपलों को चुनकर, उस) के मध्य में उस उपले को रखकर अग्नि दो । ॥४७॥ जब स्वांग शीतल हो जाय तो उपलों की राख को धीरे २ हटाते जाओ । इस प्रकार बाद में रखे हुये अपने उपले में से शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान श्वेत रंग की हरिताल की भस्म (जिसमें समुद्र फेन का चूर्ण भी भस्म होकर मिल गया है ।) को निकाल लो ॥४८॥ अब इस हरिताल को खरल में अच्छी प्रकार चूर्ण करके एक शीशी में बन्द करके रखो । यह हरिताल भस्म विषम ज्वर (विशेषकर मलेरिया शीत ज्वर तथा उसके भेदों) को नाश करती है ॥४९॥ एक चावल के बराबर मात्रा दिन में एक बार दूध के साथ देनी चाहिये । यह गुरु महाराज श्री कविराज नरेन्द्रनाथ जी मित्रा ने हरिताल मारने की सुगम

और श्रेष्ठ विधि स्वयमाविष्कृत एवं अनुभव की थी। इसी कारण मैंने लोगों के भले के लिए इसे प्रकाशित कर दिया है ॥५०—५१॥

(यदि ज्वर में कोष्ठबद्धता न हो तो इसे दें। इसे चढ़े हुए ज्वर और उतरे हुए ज्वर में भी देना चाहिए। इसका अनुपान दूध है। कोष्ठबद्धता में पहले लघु विरेचन देकर कोष्ठ शुद्धि करनी अच्छी है। यह मलेरिया के सभी प्रकार के भेदों में कुनीन से बढ़कर अन्यर्थ महौषध है। विद्याधर)

मृततालक के गुण

हरिताल की भस्म बहुत देर के पुराने घोर फिरंग रोग को भी नाश करती है। वातरक्त, वीसर्प, विपादिका (विवाईयां), विचर्चिका (सूखी खुजली या Dry Eczima) विविध प्रकार के कुष्ठ, सब प्रकार की बवासीरें, विषम ज्वर, फिरंग रोग से उत्पन्न हुए २ अन्य अनेक प्रकार के रोग, अपस्मार, भगन्दर, अनेक विध व्रण, नाड़ीव्रण (नासूर), अति भयंकर विस्फोट (छालें) तथा वातरक्तजन्य अन्य अनेक रोगों को भी नाश करती है ॥५२—५४॥

शुद्ध तालक के गुण

शुद्ध की हुई हरिताल स्निग्ध है और भूत ज्वरों को नाश करती है, त्वचा के लिए हितकारक है। कुष्ठ आदि का नाश करती है तथा रसायन है ॥५५॥

हरिताल की मात्रा

शुद्ध की हुई हरिताल अथवा भस्म की हुई हरिताल को

अधिक से अधिक चौथाई रक्ती से आधी रक्ती तक की मात्रा में वैद्य दे सकता है ॥५६॥

मृत्तालक का परीक्षण

एक शीशे के प्याले में जल मिला हुआ लवणद्राव डाले । उसमें एक रक्ती हड़ताल की भस्म डाले । फिर उस प्याले को अग्नि दे । अच्छी प्रकार म तप्त होने पर यदि पीले रंग का चूर्ण पानी में गिरकर पात्र के तल पर आ बैठे तो हड़ताल का ठीक भस्म हुआ २ जान ले । यदि पीला चूर्ण न मिले तो अन्य किसी धातु आदि की भस्म समझे ॥५८-५९॥

अथ तालक का आमयिक प्रयोग

हड़ताल को अड़से या छोटी कटेली के रस के साथ सेवन किया जाय तो भयानक कास श्वास को भी नाश करती है । आंबा हल्दी के स्वरस के साथ हड़ताल को सेवन किया जाय तो सब प्रकार के रक्त विकारों की अव्यर्थ औषधि है ॥६०-६१॥ बच और जीरे के चूर्ण के साथ हड़ताल सेवन करें तो अपस्मार को नष्ट करती है । पंचतिक्त (गिलोय, नीम की जड़ की छाल, बांसा, छोटी कटेली, पटोल पत्र) के काढ़े से हड़ताल को सेवन करें तो कुष्ठ रोग का नाश होता है ॥६२॥ देवदाली (बन्दालडोडा, घाघर बेल) के रस के साथ हड़ताल को सेवन करें तो वातरक्त के समस्त रोगों को नाश करती है ॥६३॥ बांभ ककोड़े के रस के साथ सेवन से भयंकर वीसर्प रोग का नाश करती है । घीक्वार के स्वरस से सेवन करने से त्वचा रोगों को शीघ्र ही नाश करती है ॥६४॥ चेतकी हरड़ के चूर्ण के साथ हड़ताल को सेवन करें तो बवासीरों को शीघ्र नाश

करती है । हल्दी के स्वरस से पाण्डुरोग को शीघ्र ही नाश करती है ॥६५॥ गलाय के सत के साथ हड़ताल वातरक्त का नाश करती है । पान के रस के साथ क्षय को नाश करती है । तुलसी के रस के साथ प्रमेह को नाश करती है ॥६६॥ बकरी के मूत्र के साथ जलोदर को शीघ्र ही नाश करती है । पिप्पली चूर्ण और शहद के साथ हड़ताल आग्निमान्द्य को नाश करती है ॥६७॥ मिरच, कज्जली और विष के चूर्ण के साथ हड़ताल लें । इनमें से प्रत्येक एक २ भाग हो । सब को जल से पीसकर एक २ रत्ती को गोली बना लें ॥६८॥ इस गोली को सेवन करने से प्रलप और मोह से युक्त, दुर्जल जनित ज्वर तथा सन्निपात ज्वर नष्ट होता है ॥६९॥ शुद्ध नीला थोथा १ भाग, शंखभस्म २ भाग, हड़ताल ३ भाग, इन सब को सहा (घीकुंवार) के रस से घांट कर विधि पूर्वक पुट देकर पका लेवे ॥७०॥ एक जौ के बराबर उचित अनुपान से इसे सेवन करायें तो दुर्जलजनित ज्वर को तथा सूक्ष्मकृमिजन्य अनेक प्रकार के भूत ज्वरों को नाश करती है ॥७१॥ ताम्रभस्म कज्जली, हड़ताल (शुद्ध इन तीनों को १-१ भाग लेकर ताजे नीम के स्वरस के साथ १४ बार भावना देवे ॥७२॥ इसकी १-१ रत्ती की मात्रा ज्वर चढ़ने से तीन घण्टे पहले दे दें तो परम भयंकर भूताभिषंगज (मलरिया) ज्वर नष्ट होता है ॥७३॥ नौशादर के चूर्ण के साथ हड़ताल को समभाग पीस कर रखो । इसे जल से मिलाकर बिच्छू के काटे हुए स्थान पर लगा दें तो भयंकर पीड़ा भी निश्चित नाश हो जाती है ॥७४॥ लौंग, दारचीनी, कपूर इसके समभाग चूर्ण के साथ हरिताल सेवन की जाय तो शुक्रमेह को नाश करती है । जावित्री और केसर

के साथ हड़ताल सेवन करने से प्रतिश्याय का नाश करती है ॥७५॥ अपामार्ग की जड़ के क्षार के साथ मिलाकर हड़ताल को यदि लेप किया जाय तो लिङ्ग पर हुए २ पुराने अर्श (मस्मों) को दूर कर देती है ॥७६॥ त्रिकुटा, ताम्रमस्म और हड़ताल को मिलाकर सेवन किया जाय तो वातशूल का नाश करती है । जायफल के चूर्ण के साथ हड़ताल को सेवन करने से बलवृद्धि होती है ॥७७॥

तालकोदय मलहर

शुद्ध सिक्थ तैल ३० तोला लें । पेटे के रस में शुद्ध की हुई हड़ताल दो तोला लें ॥७८॥ बहुत अच्छी पिसी हुई कजली, हल्दी, खैरसार (कथ्था), गेरू, सिन्दूर इन सब को पृथक् २ एक तोला लें और बारीक पीस लें ॥७८-७९॥ शुद्ध मनमिल बारीक पीस कर ३ तोला ले । फिर खरल में सबको बहुत बारीक पीसकर एक शीशी में रखे ॥८०॥ इसका नाम तालकोदय मलहर है । यह नाना दोषों से उत्पन्न हुए व्रणों को नाश करती है ॥८१॥ विचित्रिका, दद्रू, कुष्ठ, पामा, विस्फोट इन सब को नाश करती है । विशेष कर नाड़ीव्रण को नाश करती है ॥८२॥

प्रथम रम-माणिक्य

पेटे के रस में सात बार या तीन बार भावित की हुई हड़ताल को दो कर्प (चार तोला) ले । फिर दही के साथ अथवा निम्बु आदि के अम्ल रस के साथ सात बार या तीन बार भावना देवे । उसके बाद गरम २ जल से इस हड़ताल को धोकर सुखा लेवे ॥८३-८४॥ इसके बाद दो अभ्रुक पत्रों के बाच में इसे रखकर एक मिट्टी के प्याले में रख देवे । दूसरे

मिट्टी के प्याले से इसे यत्न पूर्वक ढक देवें ॥८५॥ बेरी के पत्तों के कलक से इस प्याले का सन्धिलेपन करके सुखा लेवे और बालुका यत्र में रखकर पका लेवें ॥८६॥ मध्यम अग्नि से अति यत्नपूर्वक केवल तीन घण्टे पकाना चाहिए। स्वांगशीतल होने पर माणिक्य के समान लाल रंग के रस का निकाल लेवे ॥८७॥ इसका नाम माणिक्य रस है। इसका दो रस्ती मात्रा भयंकर वातरक्त को हरती है तथा अति भयंकर फिरंग रोग को हरती है ॥८८॥ विविध कुष्ठों का तथा नाड़ी व्रणों को हरती है। नाक और मुख के अन्दर हो। वाले रोगों को हरता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥८९॥ (नाक के अन्दर फिरंगजनित व्रण हो जाते हैं उससे तालु फट जाता है। ऐसे समय पहले पारे आदि के योग देने चाहिए। यदि लाभ न हो तो हड़ताल को देना चाहिए अथवा स्वर्ण भस्म देनी चाहिए। व्रण के ऊपर अन्दर से जात्यादि घृत लगाना चाहिए ॥ विद्याधर)

द्वितीय रसमाणिक्य

पेठे के रस के साथ सात बार हड़ताल को भावित करे। फिर दही के साथ अथवा किसी अम्ल रस के साथ सात बार भावना देवे ॥९०॥ उसके बाद गर्म जल से खूब धोकर बारीक चूर्ण कर लेवे। दो मास इस हड़ताल के चूर्ण को लेकर दो बड़े अभ्रक के पत्तों के बीच में बिछाकर (इन पत्तों को चारों तरफ पिनो से टांक देना चाहिए) ॥९१॥ फिर इन पत्तों को कोयलों की आंच पर रख कर बँकनाल (धोंकनो, फुंकनाल) से तब तक प्रयत्न पूर्वक हवा देना जाये जब तक माणिक्य के समान हड़ताल का रंग न हो जाय ॥९२॥ बाद में अंगारों को हटाकर रसमाणिक्य को उन पत्तों में से निकाल कर रखे। इस

प्रकार बारम्बार हड़ताल के चूर्ण को पत्तों में रख कर जितना चाहे रस माणिक्य बना लेवे ॥६६॥

हड़ताल के सत्वपातन का प्रकार

दो पल (१६ तोले) हड़ताल लेवे और सुहागा भी १६ तोलें लेवे । दोनों को पीस कर भेड़ के दूध में भावित करे । फिर पेठे के स्वरस में भावित करे । ॥६४॥ फिर घाक्वार के स्वरस से भावित करे । उसके बाद थोहर के दूध से भावित करे ॥ ३॥ फिर आक के दूध से भावित करे । फिर एरण्ड के तेल से खुब पीस लेवे । और फिर शहद और घा मिला कर अच्छी प्रकार पीसकर छोटी २ गोलियाँ बना लेवे ॥६६॥ उसके बाद एक कांच की कुप्पी में डालकर बालुका यन्त्र के मध्य में डालकर मन्द मन्द अग्नि से चार दिन तक चूल्हे पर पकावे ॥६७॥ तदनन्तर स्वांग शीतल होने पर निर्मल हीरे के समान चमकते हुये कुप्पी के ऊपर के भाग में लगे हुये हड़ताल के सत्व को कुप्पी को तोड़कर निकाल लेवे । इसे सभाल कर रखे ॥६८॥

द्वितीय प्रकार

पेठे के रस में शुद्ध की हुई हड़ताल ३२ तोला ले उसे घाक्वार के स्वरस में सात दिन भावित करे ॥६९॥ फिर धूप में अच्छी प्रकार से सुखा कर चूर्ण कर लेवे । इस चूर्णको एक कांच की कुप्पी में डालकर एक बालुका यन्त्र के मध्य में रख कर पकावे ॥७०॥ सात दिन तक लगातार विधि पूर्वक पकाना चाहिए । इस प्रकार स्वांग शीतल होने पर ऊपर लगे हुए हड़ताल सत्व को जो कुछ पीले रंग का होता है शीशी को तोड़

कर निकाल लेवे। इस को $\frac{1}{2}$ रत्ती लेकर कुष्ठ आदि में प्रयोग करना चाहिए। विशेष करके कुष्ठ में देना चाहिए। इसे सर्वांग शिवत्र में देने से बहुत लाभ होता है ॥१०१—१०२॥

हड़ताल के विकारों पर भैषज्य

यदि हड़ताल के खाने से शरीर में कोई रोग पैदा हो जाय तो श्वेत जीरे के चूर्ण को खाड़ से मिला कर दिन में तीन बार खाना चाहिए। अथवा पेट के स्वरस को दिन में तीन बार पीना चाहिए ॥१०३॥

अथ मनःशिला के नाम

मनःशिला, रोगशिला, शिला, नैपालिका, मनोगुप्ता, मनोज्ञा, मनोह्वा, नागजिह्विका ॥१०४॥ कुनटी, कुलटी, गोला, नागभाता, कल्याणिका तथा रसनेत्रिका ये सब मनसिल के नाम हैं ॥१०५॥

शोधनोचित मनःशिल का स्वरूप

जो पत्थर के टुकड़ों से रहित हो, लाल कमल के समान रंगवाली हो, भार में अर्धफ भारी हो तथा चमकदार हो वह मनसिल शोधन करने के लिए लेना चाहिए ॥१०६॥

अशोधित मनःशिला के दोष

अशुद्ध मनसिल को यदि भूल से सेवन किया जाय तो बल का नाश करती है तथा त्वचा के सौन्दर्य को नाश करती है ॥१०७॥ मल को शरीर के अन्दर रोक देती है और मूत्र को भी रोक देती है और मूत्रकृच्छ्र को उत्पन्न करती है ॥१०८॥

प्रथम शोधन प्रकार

मनसिल को चूर्ण करके चूने के जल में डालकर तीन दिन तक रखे रखें तो सब दोषों से रहित हो जाती है ॥१०६॥

द्वितीय शोधन प्रकार

मनसिल को चूर्ण करके कपड़े की पोटली में रख भांगरे के रस से दोलायन्त्र में १० घण्टे पकाया जावे तो उत्तम प्रकार से शुद्ध हो जाती है ॥११०॥

तृतीय शोधन प्रकार

मनसिल को चूर्ण करके बिजौरे नींबू के स्वरस से सात बार भावित करें तो वह शुद्ध हो जाती है इसमें कोई संशय नहीं ॥१११॥

चतुर्थ प्रकार

जयन्ती के स्वरस से मनसिल के चूर्ण को दोलायन्त्र में १२ घण्टे पकावे तो मनसिल शुद्ध हो जाती है ॥११२॥

पञ्चम शोधन प्रकार

मनसिल के चूर्ण को अगस्त के पत्तों के स्वरस में सात बार भावना देने से मनसिल भली प्रकार शुद्ध हो जाती है ॥११३॥

षष्ठ शोधन प्रकार

अदरक के स्वरस में मनसिल के चूर्ण को सात बार भावना दे दें तो मनसिल शुद्ध हो जाती है ॥११४॥

मनः शिला के गुण

यह कटु, तिक्त रस वाली है, स्निग्ध है, उष्ण है, लेखन करने वाली तथा गुरु है। कास श्वास का नाश करने वाली, भूत जनित उपद्रवों को अर्थात् जीवाणुजन्य रोगों को तथा मानसिक उन्माद आदि को नाश करती है ॥११५॥ अग्निमान्द्य क्षय और आनाह को नाश करती है। खुजली को नाश करती है। ज्वर तथा विष को नाश करती है। शरीर के रंग को अच्छा करती तथा रसायन है ॥११६॥

विशुद्ध मनः शिला की मात्रा

रत्ती के चौबीसवें भाग से लेकर रत्ती के सोलहवें भाग तक बल और काल आदि को देखकर इसका प्रयोग करना चाहिए ॥ ११७ ॥

इसका आभ्यंगिक प्रयोग

त्रिकुटे के चूर्ण के साथ मनसिल को मिलाकर बांसे के स्वरस के साथ सेवन करें तो खांसी तथा दमे को नाश करती है ॥११८॥ पिप्पली और मारिच के साथ जल में पीसकर आंखों में लगावें तो निश्चित ही विषम ज्वर को नाश करती है ॥११९॥ पिप्पली, नीम के बीजों का चूर्ण मनसिल इन तीनों को सम भाग लेकर करले के रस में मिलाकर चाटने से त्रिदोष ज्वर को नाश करती है ॥१२०॥ सेंधानमक १ भाग, काली मिरच २ भाग, शुद्ध मनसिल ३ भाग, शंखभस्म ४ भाग सब को पीस कर अंजन बना ले। इसे विधिपूर्वक आंखों में लगाने से आंखों के सभी रोग नष्ट होते हैं ॥१२१॥ रसौत,

शुद्ध मनसिल, जंगली कबूतर की बीठ, इन तीनों को अच्छी प्रकार से खरल में पीसकर अंजजन करें तो अपस्मार को नाश करती है ॥ १२० ॥ हल्दी, दारु हल्दी, मजीठ, जौखार का चूर्ण और मनसिल इन सब को सम भाग लेकर घी और शहद से मिलाकर लेप करने से रंग निखरता है और त्वचा के रोगों का नाश होता है ॥ १२३ ॥ पिप्पली, मोठ, धान की खीलें, इनके सम भाग चूर्ण के साथ शुद्ध मनसिल को मिलाकर कैथ फल के रस और मधु के साथ मिलाकर चाटने से वमन को दूर करती है ॥ १२४ ॥

मनः शिलीय माणिक्यरस

शुद्ध किये हुए वरनाग को ८ तोला ले, हिंगुल से निकाले हुए पारे को ८ तोला ले, शुद्ध मनसिल ८ तोला तथा शुद्ध गंधक ८ तोला लें। वरनाग को आग्न पर पिघला कर पारे के साथ खरल में डाल अत्यन्त घारीक पीसें। फिर पिट्टी हो जाने पर मनसिल तथा गंधक डालकर खूब पीस लें। फिर कांच कुप्पी में डालकर बालुका यन्त्र में रख ४८ घंटे तक आग्न देकर विधिपूर्वक पकावें। इसके बाद ऊपर लगे हुए सिन्दूर के समान लाल रंग के “मनः शिलीय माणिक्य रस” को निकाल लें। इसे कफप्रधान राजयक्ष्मा में जिसमें कफ की अधिकता के कारण भूख भी मारी जाती है। तथा कफ की प्रबलता रहती है—दें तो यह उस आरंभावस्था के राजयक्ष्मा को नाश करता है। मात्रा आधी रक्ती अधिक से अधिक दें। इस योग को पूर्वाचार्यों ने रसमाणिक्य नाम से कहा है।

रेल में यात्रा करते हुए श्री नरेन्द्रनाथ जी मित्र को एक साधु ने इस रस की तीन मात्रा दी थी और यह नुसखा बनलाया था। एक यक्ष्मा के रोगी को जिसकी छाती कफ से भरी थी, खांसी दमे से बेताल हो रहा था। भूख का नाम नहीं था। घोर अरुचि थी। इसकी एक मात्रा प्रतिदिन दी थी। तीन मात्राओं में ही रोगी की कफ छँटकर इतनी भूख खुली कि वह हर समय भूख अनुभव करने लगा। कुछ ही दिनों में दृष्ट पुष्ट होकर यक्ष्मा से छूट गया। तब से यह रस मित्र जी बनाकर प्रयोग करने लगे थे ॥ विद्याधर ॥ १२४ ख ॥

शुद्ध मनः शिला के विकारों पर भैषज्य

मनसिल के सेवन से यदि विकार हो जावें तो तीन दिन तक दूध में शहद मिलाकर पीवे। और पथ्य से रहे तो वमनादि सब विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ १२५ ॥

मनः शिला का निर्माण प्रकार

शुद्ध किया हुआ संखियां ४६ भाग और शुद्ध गन्धक १६ भाग ले। दोनों को खरल में यत्न से पीसकर चूर्ण कर ले। इसे डमरु यन्त्र में डालकर मन्द अग्नि पर पकावे। स्वांग शातल होने पर ऊपर के पात्र में लगी हुई मनसिल को निकाल लेवे। इसे विधिपूर्वक प्रयोग करें। इसकी मात्रा एक सरसों के बराबर है ॥ १२६-१२८ ॥

मनः शिला का सत्वपातन

गुड़, गुग्गुल, भण्डूर और गौ का घी इनको एक २ भाग

लेकर (ये सब मिलाकर यदि चार भाग हों) तो मनसिल आठ भाग लेकर सबको मिलाकर मूषा में डालकर तेज आंच देने से मनसिल का रस निकल आता है ॥ १२६ ॥

अथ शङ्खविष के नाम

शङ्खमूष, शङ्खविष, गौरीपाषाणक, दारुमूष, दारुमोच, मल्लक, फेनाश्मभस्म, सोमल, सम्बल, आखुपाषाणक, ये नाम शङ्खविष अर्थात् संखिये के हैं ॥ १२७—१३१ ॥

अथ शङ्खविष की द्विविधता

श्वेत और लाल भेद में संख्या दो प्रकार का होता । श्वेत संख्या कृत्रिम अर्थात् बनाया जाता है । और लाल संख्या स्नान में से निकलता है ॥ १३२ ॥ (रसायन शास्त्र के अनुसार संखिये के ये दो भेद माने गये हैं । वैसे सफेद, लाल, पीला, और काला चार प्रकार का संख्या मिलता है । विशेष करके यहां श्वेत संखिये को ही व्यवहार में लिया गया है ।)

शङ्खविष का शोधन

अच्छी प्रकार से चूर्ण किये हुए संखिये को एक वस्त्र में अच्छी प्रकार से लपेट कर चौलाई के रस में दोला यन्त्र द्वारा एक दिन मन्दाम्नि से पकावे ॥ १३३ ॥ इस प्रकार संख्या भली प्रकार से शुद्ध हो जाता है । इसे यत्न पूर्वक व्यवहार में लेना चाहिए ॥ १३४ ॥

शङ्खविष शोधन का द्वितीय प्रकार

संखिये के चूर्ण को एक पोटली में बांधकर बकरी के दूध

में दोलायन्त्र द्वार एक दिन मन्द २ अग्नि से पकावे । इस प्रकार से संखिये की शुद्धि होती है ॥ १३५ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

करेले के रस में संखिये को दोला यन्त्र द्वारा ६ घण्टे मन्द २ अग्नि से पका लेवे । इस प्रकार से शुद्ध हो जाता ॥ १३६ ॥

चतुर्थ प्रकार

शङ्खविष को सुहागे जल में अथवा गौ के दूध में तीन घण्टे पकावे तो अच्छी प्रकार से शुद्ध हो जाता है ॥ १३७ ॥ (कोई २ इसे कांजी में भी तीन घण्टा पकाते हैं । इस प्रकार भी यह अच्छी तरह से शुद्ध हो जाता है ।)

विशुद्ध संखिये के गुण

संखिया स्पर्श करने में स्निग्ध, त्रिदोषघ्न, पारे को बाँधने वाला, कफ तथा बात रोगों को मारने वाला तथा विच्छू आदि के विषों को नाश करने वाला है ॥ १३८ ॥ एक मास लगातार सेवन करने से परम दारुण श्वास तथा विविध कुष्ठों को निःसन्देह नाश करता है । श्लीपद से उत्पन्न उवरो को नाश करता है तथा कामदेव को बढ़ाता है । सन्धिबात तथा फिरंग रोग को नाश करता है ॥ १३९-१४० ॥ अग्निमान्द्य, विषम उवर, पुराना पाण्डु रोग, इनको नाश करता है तथा कन्ति को बढ़ाता है ॥ १४१ ॥ प्रतमक श्वास जो पुराना और बड़ा भयङ्कर हो उसको नाश करने वाला है । आरंभावस्था में राजयक्ष्मा को भी शीघ्र नाश कर देता है ॥ १४२ ॥ हृदय शूल से उत्पन्न हुए २ हृदय के दौर्बल्य

को शीघ्र नाश करता है ॥ भोजन के २५ वं ही होने वाले अति-
सार को शीघ्र ही नाश कर देता है ॥ १४३ ॥ संखिया बाहर
अर्थात् फोड़े फुन्सी आदि पर प्रयोग करने में चारकर्म (फाड़ना
आदि) करता है । तथा मूजन और सन्ताप को कम करता
है ॥ १४४ ॥

संखिये का मात्रा निरूपण

रत्ती के १२० वें भाग से लेकर ३० वें भाग तक यत्न
पूर्वक मात्रा निर्धारण करके वैद्य संखिये को प्रयोग करे ॥ १४५ ॥

अन्य प्रकार

अथवा सरसों के दाने के १० वें भाग से लेकर तीसरे भाग
तक की मात्रा में बनाकर भी संखिया दिया जा सकता
है ॥ १४६ ॥

मात्रा की निर्माण विधि

संखिया १ रत्ती और काली मिर्च का चूर्ण १५ माशा लेकर
खरल में डालकर अदरक के स्वरस से तीन दिन तक घोटें ।
और तब १—१ रत्ती की गोलियां बना लेवे । विभिन्न दोषों की
शान्ति के लिए वैद्य निःशंक होकर इसकी एक गोली प्रातः और
१ गोली सायं (भोजन के बाद) प्रयुक्त करे ॥ १४६ ॥ आगे इसी
ढंग से प्रयोग में बनाई अन्य औषधियां के साथ उसको मिला
कर गोली आदि बनावे ॥ १५० ॥

मात्रा निर्माण में सावधानता

क्योंकि १ रत्ती भर संखिया खा लेने से भी मनुष्य मर जाता है इस लिए सावधानता पूर्वक देश कालादिका विचार करके रोगी के बलाबल का निरीक्षण करके रसायनविशेषज्ञ चिकित्सक इसकी मात्रा का निर्माण करे ॥१५१-१५२॥

शंखविष के आमयक प्रयोग

अङ्गुले के सत से या छोटी कटेली के चूर्ण से सेवन किया हुआ संखिया बहुत पुराने तथा भयङ्कर श्वास रोगको भी नाश करता है ॥१५३॥ पञ्चतित्त के सत्व अथवा चूर्ण के साथ सेवन किया हुआ संखिया विविध कुष्ठां को शीघ्र ही नाश करता है ॥१५४॥ गिलोय और आक की जड़ के चूर्ण के साथ सेवन किया हुआ संखिया श्लेष्मज्वर को शीघ्र ही नाश करता है ॥ १५५ ॥ करञ्ज बाज के चूर्ण के साथ प्रयुक्त किया हुआ शुद्ध संखिया एक दिन में ही निःसन्देह शीत ज्वर को नाश करता है ॥ १५६ ॥ सोंठ और पुननवा के चूर्ण के साथ तीन दिन सेवन करने से शुद्ध संखिया घोर आमवाल को तथा उनसे पैदा होने वाले ज्वर को नाश करता है ॥१५७॥ लोहे की भस्म के साथ शुद्ध संखिया सेवन करने से बहुत पुराने पाण्डुरोग को भी शीघ्र ही नाश कर देता है ॥ १५८ ॥ जावित्री और लौंग के साथ सेवन किया हुआ शुद्ध संखिया अति भयंकर फिरङ्ग रोग को शीघ्र ही नाश करता है । (इस प्रयोग से पहले फिरंग रोगी को पारे का सेवन करा देना चाहिए । उसके बाद यह प्रयोग अति लाभदायक सिद्ध होता है ।) ॥ १५९ ॥ रस

सिन्दूर और लोहे के साथ संखिया सेवन करने से निश्चय ही यक्ष्मा का नाश करता है । और शङ्खपुष्पी के चूर्ण के साथ संखिया प्रयोग करने से हृदय की दुर्बलता को नाश करता है ॥ १६० ॥ सोंठ और काली मिरच के साथ श्वेत संखिये का सेवन करने से खाना खाने के बाद ही होने वाले दस्तों को नाश करता है ॥ १६१ ॥ संखिये को जल के साथ पीसकर लेप करे तो आधी घड़ी में ही भयंकर बिच्छू का जहर नष्ट हो जाता है ॥ १६२ ॥ (बाहर और अन्दर के प्रयोग के लिए संखिये का जल भी बनता है जो कि आज कल ऐलोपैथी में प्रयोग किया जाता है । इसकी निर्माण विधि इस प्रकार है—१० छुटाँक या २० औंस जल में ४४ रत्ती या ८७½ ग्रेन शुद्ध संखिया का चूर्ण और ४४ रत्ती या ८७½ ग्रेन शुद्ध यवक्षार का चूर्ण डालकर एक शीशी में घोलकर रखें । इसका युवा पुरुष को खान के लिए देना हो तो डेढ़ कर्प या तीन तोले जल में २, ३, बूंद डालकर पिलावे बाहर लेप करने के लिए बिच्छू दँश पर बिना जल मिलाये ही लगावे । मच्छर आदि के काटने पर इसे जल में घोलकर लगावे । किसी मस्से को काटना हो या फोड़े को फोड़ना हो तो तिनके पर लगाकर या eye dropper (विन्दुनिक्षेपक यन्त्र) में लेकर इसे मस्से पर लगावे ॥ १६२ ॥

शंखविषोदय रस

शुद्ध संखिया १ रत्ती, मरिच चूर्ण, ३ माशे सिन्दूर ३ माशे शुद्ध धतूरे के बीज, पिप्पली तथा सोंठ इनमें से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण दो २ माशे ले । इन सबको खरल में एकत्र

पीसकर नीम्बू के रस में तीन दिन तक घोट लेवे। फिर १—१ रत्ती की गोली अपने सामने बना लेवे। इन्ने दिन में दो बार (जल दूधादि से) सेवन करावें। इस को शङ्खविषोदय रस कहते हैं। यह भूत उ्वर को तथा सन्निपात उ्वरों को नाश करता है ॥ १६३—१६६ ॥

चण्डेश्वर रस

यत्न से निर्मल किया हुआ सङ्ख्या १ रत्ती, शुद्ध वत्सनाम विष २ माशा और अच्छी प्रकार से मारा हुआ ताम्र भस्म २ माशा, ताजी बनी हुई उत्तम कज्जली १६ माशा, इन सबको एकत्र पीसकर अदरक के स्वरस से सात बार भावना देवे। फिर निर्गुण्डी के स्वरस से सात बार भावना देवे। उसकी एक २ रत्ती की गोली अपने सामने बनाकर रखे। इसका नाम चण्डेश्वर रस है। यह विशेषतया त्रिविध उ्वरों को नाश करता है ॥ १६७—१७० ॥ (यह बातकफ के सम्पूर्ण रोगों को नाश करता है ।)

संखिया की मारण विधि

शोरा २ पल (१६ तोले) लेकर एक मिट्टी के प्याले में रखे। अब उसके ऊपर असली हाथी दांत का चूर्ण स्तूपाकार (ऊंचाई) में खड़ा कर देवे। उस प्याले के नीचे अग्नि देवे। जब वह सारा जलकर निर्धूम हो जाय और भस्म के समान हो जाय तब उसको नीचे उतार ले और उस भस्म को एक कांच की कुण्पी में पीसकर सम्भाल कर रखे। अब इस भस्म को एक

कर्ष (२ तोला) भर लेकर एक मृधा में रखे । उसके ऊपर शुद्ध सङ्खिये का टुकड़ा एक तोला भर रखें । और उसके ऊपर फिर २ तोला वही हाथीदांत आदि की भस्म बिछाकर उस सङ्खिये को ढक दे । इसके बाद दूसरे प्याले को ऊपर से ढक कर सन्धिबन्धन करके सुखा लेवे । फिर इन प्यालों को लावकपुट में रखकर फूंक देवे (भस्म करे) ॥ इस प्रकार से सँखिये की अत्यन्त श्वेत भस्म हो जाती है । अब इसको निकालकर पीस कर शीशी में सम्भालकर (लाल स्याही से नाम लिखकर) पृथक् रख देवे । इस भस्म के गुण तथा मात्रा शुद्ध किए हुए सँखिये के समान ही जानने चाहिए ॥ १७१—१७६ ॥

संखिया भस्म का प्रयोग

सङ्खिये की भस्म एक रत्ती, अफीम ६ माशा, कस्तूरी दो माशा, अम्बर ११ रत्ती, केसर ८ माशा इन सबको पीसकर गृष्ठी अर्थात् पहली बार की प्रसूता गौ के दूध में खूब पीसकर आधी रत्ती से एक रत्ती, तक की गोलियां बना लें । इस गोली को दूध के साथ प्रातःकाल (पहले कुछ खाकर) प्रयोग करें । इस नुसखे के सेवन से नपुंसकता नाश होती है । शरीर पुष्ट और बलवान होता है । शुद्ध संखिये को या सँखिये की भस्म को सेवन करने वालों के लिए यह आवश्यक है कि वे इनके प्रयोगों को निरन्तरपेट भूलकर भी—प्रयोग न करें । पहले कुछ न कुछ अन्नादि खाकर फिर इन्हें सेवन करें और सप्ताह के बाद एक दिन के लिए इसका सेवन सर्वथा त्याग दें । इसी प्रकार संखिये के सेवन करने के समय और बाद में भी मक्खन, घी, दूध, मिश्री आदि

का अधिक से अधिक अवश्य सेवन करें। इसे अधिक दिन तक सेवन कभी न करें। यदि भूल से खाली पेट सेवन कर भी लें तो बहुत मक्खन या घी से ही खायें।

अथ सुराष्ट्रजा के नाम

सुराष्ट्र देश में उत्पन्न हुई मिट्टी को तुवरी (कसैले स्वाद की कहते हैं। सुराष्ट्रजा सौराष्ट्री, सौराष्ट्र, मृत्तिका, ये सब नाम भी सोरठ मिट्टी के हैं) ॥ १७७ ॥

अथ स्फटिकारिका के नाम

स्फटकारि, स्फुटी, स्फटिका, स्फटिकारिका, स्फुटिका, फटिक, शुभ्रा, कांती, रङ्गदा, ददरङ्गा, रंगददा, ददरंगदा, तुवरी, रँगदात्री ये सब नाम फिटकरी के हैं ॥ १७८—१७९ ॥

फिटकरी का परिचय

सौराष्ट्र देश की मिट्टी को ही भली प्रकार से निर्मल कर लेने के बाद उसके निर्मल करने वाले लोगों के द्वारा उसे स्फुटिकारिका या फिटकरी ही पुकारा जाता है ॥ १८० ॥

इसके गुण

फिटकरी कसैली चरपरी तथा कड़वे रस वाली है। उष्ण-वीर्य है तथा विषदोष को नाश करती है। वीसर्प और खुजली को नाश करती है। केशों के लिए हितकारी, व्रणों को भरने वाली तथा श्वेत कुष्ठ को दूर करने वाली है। यह नेत्र रोग को शान्त करती है, विषम उबर को नाश करने

वाली, योनि को संकोच करने वाली तथा व्रणों को नाश करने वाली है। यह ग्राही, लेखन, स्निग्ध, रक्तस्राव को रोकने वाली, मुख रोगों को हरने वाली तथा दांतों को दृढ़ करने वाली है ॥ १८१—१८३ ॥

इसके आमयिक प्रयोग

मुर्दासंग के चूर्ण के साथ फिटकरी का चूर्ण समभाग मिला कर दोनों को अत्यन्त बारीक कर लेवे। इसे व्रणों पर छिड़कने से व्रणों का रोपण हो जाता है ॥ १८४ ॥ दो माशा फिटकरी को १६ तोले जल में घोलकर योनि को धाने से क्षण मात्र में ही शिथिलता दूर हो जाती है ॥ १८५ ॥ फिटकरी को गौ के दूध के साथ नस्य द्वारा लेवें तो नाक द्वारा होने वाला भयंकर रुधिर स्राव नष्ट होता है ॥ १८६ ॥ सुहागे के चूर्ण के साथ फिटकरी को सम भाग मिलाकर जल में घोल लेवे। इस जल से पुराना सूखी और बहने वाली विचर्चिका को (Dry and Weeping eczima) धोवें तो उसे सात दिन में निश्चित नाश कर देती है ॥ १८७—१८८ ॥ एक माशा स्फटिका चूर्ण पीसकर तलवार आदि से कटे हुए सद्योव्रण पर छिड़कें तो उससे बहने वाले रुधिरस्राव को यह शीघ्र ही बन्द कर देता है ॥ १८९ ॥ तीन रत्ती फिटकरी ५ तोला जल में घोल कर उत्तर वस्ति के द्वारा गुरु के कहे हुए ढंग के अनुसार व्रण मेह अर्थात् सूजाक की चिकित्सा करे। इस प्रकार सूजाक का भी नाश होता है और मूत्र मार्ग से भयंकर पीव आनी आदि उपद्रव भी बन्द हो जाते हैं। (इन्द्रिय की जड़ को पहले एक

फीते से ज़रा कस कर बांध लेना चाहिए । तब पिचकारी करनी चाहिए । ऐसा न करने से कभी २ पीप अन्दर की ओर जाकर अधिक हानि करती है । यही गुरुदशित मार्ग है । एक अमेरिकन डाक्टर ने भी इस प्रकार मूत्रेन्द्रिय की जड़ में फीता बांध कर पिचकारी करना अपनी "Twelve lectures on Genorrhoea" नाम पुस्तक में लिखा है ॥ १६०-१६१ ॥ एक रत्ती फिटकरी का चूर्ण खांड के साथ मिलाकर खाने से भयंकर रक्तपित्त का नाश होता है ॥ १६२ ॥ फिटकरी ६ रत्ती ५ तोला जल में घोलकर वस्ति यन्त्र से (अनीमेसे) गुदा में पिचकारी देने से चिरकाल से उत्पन्न हुए २ गुदा के मस्मों को शीघ्र ही संकुचित कर देती है तथा रक्त को रोक देती है और गुदभ्रंश को नष्ट कर देती है ॥ १६३-१६४ ॥ लाल गुलाब के अर्क का ५ तोला भर लें । उसमें ४ रत्ती फिटकरी डालें । उस जल की २-३ बूँदें आंख में डालने से शोथ पाक आदि से उत्पन्न आमयिक रोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १६५-१६६ ॥ १ तोला फिटकरी को ५० तोले जल में घोलकर उत्तर वस्ति देने से प्रसूता स्त्री के गर्भाशय को जो अपने स्थान से टल गया हो तथा जिसमें दर्द होती हो । यह शीघ्र ही संकुचित करके ठीक स्थान पर ला देती है और रक्तस्राव को रोक देती है ॥ १६७-१६८ ॥ इससे शिथिल हुई २ योनि भी अपने स्थान पर पहुँच जाती है । उसकी खुजली भी नष्ट हो जाती है और श्वेत प्रदर की बाधा भी नष्ट हो जाती है । (सन्तान होने के ४० दिन से पूर्व इस वस्ति को नहीं करना चाहिए) ॥ १६९ ॥ रस सिन्दूर के साथ मिलाकर फिटकरी १ रत्ती खाने से अधोगामी और

ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त निश्चित दूर हो जाता है ॥ २०० ॥ २ रत्ती फिटकरी को खांड के साथ मिलाकर सेवन करें तो ठीक तरह भस्म न हुवे २ (कच्चे) मीसे को खाने से उत्पन्न हुए २ भयंकर शूल (Lead colic) को दूर करती है ॥ २०१ ॥ मौलसिरी की छाल के चूर्ण के साथ मिलाकर फिटकरी का चूर्ण दन्त मूलों पर मलें तो दांत दृढ़ होते हैं । २ रत्ती फिटकरी को इन्द्रजौ के साथ मिलाकर सेवन करें तो भयंकर अतीसार को नाश करती है । लौंग, इलायची, फिटकरी और खांड इन चीजों को मम भाग ले चूर्ण करके दांतों पर मलें तो दांतशर्करा को नाश करती है ॥ २०२-२०४ ॥ संधानमक १ तोला, फिटकरी २ तोला दोनों के चूर्ण को दांतों पर मलें तो दन्त पैन्ड्रिल्य रोग का नाश होता है ॥ २०५ ॥ ५ तोला जल में ५ रत्ती फिटकरी घोलकर यदि कुल्ले किये जाय तो इससे दन्त पैन्ड्रिल्य, भयंकर मुखपाक, पुगानी गलशुण्डी (टान्सिल तथा अधिजिह्वा जिसमें सूजन भी हो गई हो) नाश होती है ॥ २०६-२०७ ॥

फिटकरी, गेरु जलसे पीसकर १ रत्ती खावें तो विषम ज्वर नाश होता है । श्वेत फिटकरी की भस्म १ या २ रत्ती बकरी के दूध से वेगोदय से तीन घंटे पहले पी लें तो उरःक्षत को लाभ होता है, शहद से खावें तो विषम ज्वर दूर होता है । आक के पत्तों को बिछा उस पर फिटकरी रख भस्म करें तो ज्वर नाश करती है ।

अथ खटिका के नाम

खाटका, खटिनी, खटी, लेखनमृत्तिका, कठिनी, कठिनिका, वर्णिका, वर्ण लेखिका, ये सब नाम खटिका के हैं ॥ २०८ ॥

इसके भेद

इसके दो भेद हैं खटी और गौरखटी । खटी तो मलिन होती है और गौरखटी मृदुशिला के समान श्वेत होती है ॥ २०६ ॥

खटिका का शोधन

शुद्ध पात्र में खड़िया के चूर्ण को रखकर विशुद्ध जल से धोवे । इससे यह निश्चय ही शुद्ध हो जाती है, इसमें संशय नहीं ॥ २१० ॥

इसके गुण

यह शिशिर, तिक्त, मधुर, शोथ को नाश करने वाली, पित्त को शान्त करने वाली तथा विविध व्रणों को रोपण करने वाली होती है । कफ, दाह तथा रक्त दोषों को दूर करती है, नेत्र रोगों को नष्ट करती है, हरे रंग के दस्तों वाले अतिसार को तथा बहुत ज्यादा निकलने वाले पसीने को रोकती है ॥ २११-२१२ ॥

खटिका का आमयिक प्रयोग

ठण्डे पानी के साथ १ माशा खड़िया का चूर्ण खाने से प्रवाहिका, रक्तपित्त तथा ग्रहणी का नाश होता है । शुद्ध खड़िया खांड मिलाकर सौंफ के अर्क से सेवन करने से अति भयंकर अतिसार को भी शीघ्र नाश करती है ॥ २१३-२१४ ॥

चूर्ण के नाम

चूर्ण, चूर्णक, सुधा, सौध, विलेपन, शिलाक्षार ये सब नाम चूने के हैं ॥ २१५ ॥

“चूर्णोदक का निर्माण प्रकार”

दो रत्ती चूना (अनघुष्ठा) ५ तोला जल में डाल कर नौ घण्टा रखे रखें । फिर सारक यन्त्र (Filter paper or Blotting paper या स्याहीचूस) से कांच के प्याले में छान लेवे । इसी का नाम चूर्णोदक और सुधोदक है । इस चूर्णोदक को हरे रंग की दृढ़ शीश में दृढ़ता पूर्वक डाट लगा कर रखे ॥ २१६—२१७ २१८ ॥

चूर्णोदक के गुण

चूर्णोदक कृमिनाशक अतीसार को नाश करने वाला अम्ल पित्तनाशक और विशेष कर दूध को पचाने वाला है । शूल और ग्रहणी को नाश करता है तथा खड़िया मिट्टी के समान गुणदायक है गन्धकामल आदि तेजाब के खाने से शरीर के अन्दर जो विषक्रिया उत्पन्न होती है उसे यह नाश कर देता है ॥ २१६—२२० ॥

इसकी मात्रा

३० बूंद से लेकर ६० बूंद तक उस चूर्णोदक को एक वर्ष की आयु के बालक को देना चाहिए ॥ २२१ ॥ जवान आदमी के लिए चूर्णोदक (चूने के पानी) की दो तोला तक मात्रा सुखदायक मानी गई है ॥ २२१—२२२ ॥

आमयिक प्रयोग

सुधोदक या चूने के जल का वस्ति द्वारा गुदा में देने से बड़ी आँत में रहने वाले बीड़ों को नाश करता है । यदि बिच्छू के काटे हुए स्थान पर नौसादर और चूने को सम भाग लेकर मलें तो पीड़ा शीघ्र ही शान्त हो जाती है ॥ २२४ ॥

सङ्ख्या विष खाया हो उसे चूनेका जल पिलावे तो यह सङ्ख्या खाने से हुई २ विष की क्रिया को तुरन्त नाश करता है ॥ २२३-२२५ ॥ चूने के पानी को दूध के साथ मिलाकर प्रति दिन सेवन करें तो तुरन्त ही अम्लपित्त को नाश करता है ॥ २२६ ॥ सुधोदक को मुख में भरकर कवल धारण किया जाय तो शीघ्र ही मुखपाक और मुखस्थ व्रण आदि को नाश करता है) ॥ २२७ ॥ चूर्णोदिक एक कर्प (दो तोला) लेकर एक काँच के प्याले में डाले और उतना ही (१ कर्प भर) अलसी का तेल उस प्याले में डाल कर एक काँच की मलाई से थोड़ी देर दोनों को खूब हिलाकर लेप सा बनाकर विद्वान वैद्य एक काँच की कुप्पी में रख देवे इसका लेप लगावे तो यह अग्नि से जले हुये स्थान में होने वाले दाह को नाश करने के लिये अच्छा प्रयोग है ॥ २२८—२२९ ॥

अथ दुग्धपाषण के नाम

दुग्ध पाषाणक, दुग्द्धी, दुग्ध पाषाणिका, दुग्धा, दुग्धशिला, क्षीरी, क्षीरक्षयः ॥ २३० ॥ वज्राभ, दीप्तिक, सौध, गोभेद सन्तिम, दुग्धोपल, दुग्धदृषद् ये सब नाम दुधिया पत्थर के कहे जाते हैं ॥ २३१ ॥

इसके गुण

दुग्धपाषाण मधुर है, कुछ गर्म और उवर को नाश करता है । पित्त को नाश करने वाला, त्वचा की दाह और आध्मान (अफारे) को नाश करता है ॥ २३२ ॥ हृदय के रोग को नाश करता है । रुचिवर्धक तथा पित्तज शूल को दूर करता है और काम श्वास को नाश करने वाला है ॥ २३३ ॥

आमयिक प्रयोग

श्वेत दुग्धपाषाण के समान भाग यवक्षार मिलाकर लगातार प्रलेप करते रहने से मिध्म कुष्ठ (शरीर पर छोटे २ लाल या सफेद रंग के दाग जिन्हें थिम्ब भी कहते हैं।) का नाश करती है ॥ २३४ ॥ दुग्ध पाषाण का चूर्ण १ रत्ती सेवन करने से सायंकाल में होने वाले मन्दवेग वाले ज्वर को नाश करता है ॥ २३५ ॥ दुग्ध पाषाण के चूर्ण को यत्न पूर्वक छिड़कने से चोट के कारण जख्मों से निकलने वाला खून बन्द हो जाता है ॥ २३६ ॥

अथ गोदन्त के नाम

गोदन्तिका, गोदन्ता, गोदन्त, ये सब नाम गोदन्ती के हैं। यह एक प्रकार का सौम्य पत्थर है। इसे हड़ताल की तरह न समझना चाहिए, नहीं इसे गोदन्ती हड़ताल कहना उचित है। (लोग भूल से हड़ताल इसके नाम के साथ लगाते हैं। वास्तव में यह हड़ताल के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं रखती। हड़ताल गर्म खुश्क है, यह पत्थर शीतल है) ॥ २३७ ॥

इसका स्वरूप

पत्रों से युक्त, अति चिकना, शरद ऋतु के चन्द्र के समान निर्मल श्वेत वर्ण का चमकदार गोदन्त लेना चाहिए ॥ २३८ ॥

इसका शोधन

गोदन्त को नीम्बू के रस के साथ या द्रोणपुष्पी (गूमा) के रस के साथ डेढ़ घण्टा दोला यन्त्र में स्वेदन करें तो निःसन्देह शुद्ध हो जाता है ॥ २३९ ॥

गोदन्त की मारण

शराब सम्पुट के अन्दर शुद्ध गोदन्ती को बन्द करके रखें और पुट (मध्यम पुट) दें तो चन्द्र के समान श्वेत वर्ण की भस्म हो जाती है ॥ २४० ॥

गोदन्त के गुण

गोदन्त की भस्म शीतल है, पित्त ज्वर को नाश करती है । जीर्ण ज्वर को नाश करती है, बलदायक है, अग्नि दीपक है, तथा श्वास कास को नाश करती है । (यह सायं काल आने वाले ज्वर को विशेष करके दूर करती है तथा अन्य ज्वर में भी अत्यन्त गुण करती है, पित्तातिसार, प्रवाहिका, रक्तपित्त तथा रक्तातिसार को भी दूर कराती है ॥ २४१ ॥

गोदन्त की मात्रा

एक रत्ती से लेकर तीन रत्ती तक वल काल आदि की अपेक्षा करके गोदन्त का सेवन कराना चाहिए । (२४२ ॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रस तरंगिणी के भाषानुवाद में यह तालकादि विज्ञानीय नाम का एकादश तरंग समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

अथ शंखादि विज्ञानीय नाम का द्वादश तरंग

अथ शंख के नाम

शङ्ख, शङ्खक, कम्बु, त्रिरेख, समुद्रज, सुनाद, दीर्घनाद, तथा कम्बोज ये सब नाम शंख के हैं ॥ १ ॥

ग्राह्यशंख का स्वरूप

जो गोल हो, स्निग्ध हो, सूक्ष्म मुख वाला हो, निर्मल हो, चन्द्रमा के समान सुन्दर हो, दीर्घक अर्थात् लम्बा चौड़ा हो और भारी हो, उसे श्रेष्ठ शंख समझो ॥ २ ॥

शंख के दो भेद

शंख दो प्रकार का होता है, दक्षिणावर्त्त तथा वामावर्त्त जिसके आवर्त्त या चक्कर दायीं ओर को हों वह दक्षिणावर्त्त होता है, जिसके चक्र बाँयी ओर को हों वह वामावर्त्त कहाता है) ॥ ३ ॥ दक्षिणावर्त्त शंख को देवपूजा में अच्छा माना है। त्रिदोषनाशक है, कोप बढ़ाने वाला है तथा दग्धता का नाश करने वाला है ॥ ४ ॥ वामावर्त्त शंख सर्वत्र सुगमता से मिल जाता है, अतएव वैद्य उसे ही मारने में काम लेते हैं ॥ ५ ॥

शंख का प्रथम शोधन प्रकार

शंख को टुकड़े २ करके एक कपड़े की पोटली में डाले फिर दोलायंत्र में बांधकर १२ घंटे तक जम्बीरी नीबू के रस में पकावें ॥ ६ ॥ फिर तेज गरम जल से शंख के टुकड़ों को धो लें। इस प्रकार शंख सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥ ७ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

दोलायंत्र में जयन्ती के स्वरस में शंख को ३ घंटे पकावें । इस प्रकार एक पहर पकाने से ही शंख भली प्रकार शुद्ध हो जाता है ॥ ८ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

चौलाई के स्वरस में शंख के टुकड़ों को दोलायंत्र द्वारा एक पहर तक पकावें तो शुद्ध हो जाता है ॥ ९ ॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

दोलायंत्र द्वारा ही शंख को काँजी में पकाले (एक पहर तक पकावे) फिर गरम जल से धो लें । इस प्रकार शंख शुद्ध हो जाता है ॥ १० ॥

पञ्चम शोधन प्रकार

निम्बुकाम्ल में जल मिलाकर उसमें शंख के टुकड़ों को दोलायंत्र द्वारा डेढ़ घण्टा पकालें तो सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥ ११ ॥

विशुद्ध शंख के प्रयोग

त्रिरेखा बर्तिका

पिप्पली १ माशा, मिरच २ माशा, मनसिल ४ माशा, शंख चूर्ण ८ माशा ले । सब को बारीक पीसकर जल से बत्ती बनाकर आंखों में लगावे । इसे जल में घिसकर लगावें तो तिमिर नाश होता है । दही के जल से घिसकर लगावें तो अबुद नाश होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ मधु से घिसकर लगावें तो

पिच्छट नाश होता है। नारी के दूध से घिसकर लगावें तो अर्जुन नाश होता है। इसे त्रिरेखावर्तिका कहते हैं। यह नेत्र रोगों को नाश करती है ॥ १४ ॥

अर्जुन हर शंख चूर्ण

शुद्ध किये हुए शंख का सूक्ष्म चूर्ण शहद के साथ मिलाकर आंख में लगावें तो शीघ्र ही अर्जुन का ऐसे नाश करता है जैसे सूर्य अन्धकार को नाश करता है ॥ १५ ॥

शंखवर्ति

शुद्ध शंख, सेंधा नमक, समुद्र फेन तथा सोहांजने के बीज, इन्हें सम भाग लेकर पीसकर जल से बत्ती बना लेवें। इसको आंखों में अञ्जन करने से शुक आदि आंख के रोग नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

शंख का मारण

शुद्ध शंख के टुकड़ों को दो प्यालों में रख सन्धि बन्द करके धूप में सुखा लेवें। उसे गजपुट में रखकर अग्नि देवे। स्वांगशीतल हान पर सम्पुट से निकाल कर खरल में चूर्ण कर लेवें। इस चूर्ण को फिर सम्पुट में रख पुट देवे। इस प्रकार दो पुटों से ही शंख की भस्म हो जाती है ॥ १७-१८ ॥

मृत शंख के गुण और मात्रा

शंख भस्म शीतल है, क्षार है तथा अम्लपित्त को नाश करती है। अग्निमान्ध को हरती है। बलदायक, आही तथा प्रदहणी को नाश करती है ॥ २० ॥ परिणाम शूल, विषदोष, यौवन

पिटिका इन सब को नाश करती है । तथा वर्ण को निखारती है । इसकी मात्रा २ रत्ती की है ॥ २१ ॥

मृत शंख का आमयिक प्रयोग

नीबू के स्वरस के साथ शंख भस्म सेवन की जाय तो अतीसार तथा अति भयङ्कर ग्रहणी को शीघ्र ही नाश करता है ॥ २२ ॥ त्रिकुटों के साथ शंख का सेवन अग्निमान्ध नाशक है । आंवले के चूर्ण के साथ मिलाकर शंख भस्म अम्लपित्त को नाश करती है ॥ २३ ॥ यवक्षार और त्रिकटु के साथ शंख भस्म का सेवन गुल्म रोग को जल्दी नाश करता है । त्रिकुटा, संधानमक तथा हींग के साथ शंख भस्म त्रिदोषज शूल को नाश करती है ॥ २४ ॥ पांचों लवण, शंख भस्म मिलाकर पुराने गुड़ के साथ अथवा त्रिकुटे के साथ सेवन की जाये तो परिणाभज शूल का नाश होता है ॥ २५ ॥ भारंगी के चूर्ण के साथ शंख भस्म सेवन करें तो भयङ्कर श्वास दूर होता है । सोंठ के साथ शंख भस्म जाटराग्नि को दीप्त करती है ॥ २६ ॥ मोथा, जायफल अफीम, सुहागा, इनको सम भाग लेकर, इनमें एक रत्ती शंख भस्म मिलाकर सेवन करें तो तत्क्षण सब प्रकार का अतीसार दूर होता है ॥ २७ ॥ हल्दी सुपारी और शंखभस्म मिलाकर सेवन करें तो भयंकर वमन को नाश करता है ॥ २८ ॥ मूली की भस्म के साथ शंख भस्म मिलाकर लेप करने से कफाबुर्द तथा विशेष करके ग्रंथियां शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं ॥ २९ ॥

अथ शंख का कल्प

कज्जली और कौड़ी भस्म १, १ भाग, शंख भस्म २ भाग, पिप्पली ४ भाग लेकर नीबू के स्वरस में घोटकर प्रयत्नपूर्वक

१, १ रक्ती की गोली बना ले । और फिर मिर्च और घी के साथ एक एक गोली खाने से पुरानी ग्रहणी १५ दिन में ही शान्त हो जाती है । घी मिली हुई खांड के साथ सेवन करने से यह शरीर की वृद्धि करता है तथा चीते के साथ सेवन किया हुआ शूल और विशेष कर गुल्म को हरता है ॥ ३०-३३ ॥ पथ्यों के सेवन से और भी बहुत से रोगों को नाश करता है । यह अत्युत्तम शंख कल्प है ॥ ३४ ॥

प्रथम शङ्ख द्रावक

शंख चूर्ण, सुहागा, फिटकरी, जौखार, सज्जी, नौसादर तथा पांचों नमक इनमें से प्रत्येक वस्तु समान भाग लेकर बहुत बारीक चूर्ण कर ले । फिर एक ऐसी काँच की कुप्पी में जिसका बाहर का भाग मिट्टी से लिप्त हो इस औषध को डाल दें । फिर इसको चूल्हे पर अग्नि पर रखे । अब इस कुप्पी के मुख में से एक नली तिरछी ले जाकर पृथ्वी पर रखी हुई एक काँच की कुप्पी में जोड़ देवे । यह दूसरी काँच की कुप्पी एक जल वाले बर्तन में रखी हुई होनी चाहिए ॥ ३५-३७ ॥ अब इसे मन्द २ आँच पर पकावें । यह सारा भाप बनकर दूसरी शीशी में जल रूप हो जायेगा इसी का नाम शंखद्राव इसलिये है कि इसमें शंख, शुक्ति, कौड़ी आदि यदि डालें तो यह डेढ़ घण्टे में ही सब को गला देता है ॥ ३८-३९ ॥

इसके गुण

यह अग्निमान्द्य को नाश करता है तथा अति भयंकर विसूचि को नाश करता है । ग्रहणी मूत्रकृच्छ्र गुल्म, प्लीहा, उदर रोग, आठों प्रकार के शूल तथा सब प्रकार की बवासीरों

को नाश करता है। इसकी १ बूँद मात्रा भोजन के अन्त में बहुत अधिक पानी डालकर पीनी चाहिए ॥ ४०-४१ ॥ इसके प्रयोग से पेट भरकर खाया हुआ होने पर फिर खाने की इच्छा करता है। यह शीघ्र ही उदरस्थ कृमियों का नाश करता है तथा भयंकर छर्द को नाश करता है ॥ ४२ ॥

द्वितीय शंख द्रावक

फिटकरी १ तोला, सेंधानमक १ तोला जौखार २ तोला शुद्ध नौसादर दो तोला शोरा ४ तोला, कासीस ४ तोला इन सब को एकत्र कर कांच की कुपी में डालकर चूल्हे पर रखें। उसी प्रकार एक शीशे की नाली उसके मुख में जोड़कर जल में रखी हुई दूसरी शीशी के मुँह के साथ तिरछी जोड़ देवे। फिर इसको मदाग्नि से पकावे। यह वीर्य में अग्नि के समान, महागर्भ जल रूप में हुआ २ शंखद्राव तैयार होता है। ४५—४६। क्योंकि यह शंख, शुक्ति तथा स्वर्ण आदि को भी जला देता है इसलिय इसे शंख द्राव कहा जाता है। (कासीस, शोरा आदि के डालने से यह स्वर्ण आदि को गलाने वाला बनता है ॥ ४७ ॥

इसके गुण

गुल्म, प्लीहा, सर्व प्रकार के उदर रोग, वातिक शूल तथा अग्निमान्द्य आदि को नाश करता है ॥ ४८ ॥

तृतीय शंखद्रावक

चुटिलका लवण (नौसादर), सेंधा नमक जौ खार इनमें से प्रत्येक वस्तु १, १ पल ले। शोरा २ पल ले। फिटकरी ४ तोला कासीस दो तोला ले। सबको इक्का करके कांच की कुपी में

ढालकर उमी प्रकार तिरछी नली लगाकर मन्दाग्नि से खैर की लकड़ियां जलाकर चूल्हे पर पका लेवे । इस प्रकार अग्नि के समान गर्म धीरे वाला जल वत् द्राव तैयार हो जाता है । यह सब प्रकार के धातुओं को गलाने में परमोत्तम है ॥ ४६—४७ ॥

चतुर्थ सजल शंख द्रावक

डेढ़ भाग सोरक द्रावक, दो भाग लवण द्रावक 12½ भाग जल का अर्क (ग्विचा हुआ पानी) सबको इकट्ठा मिलाकर एक कांच की बोतल में रखे । यह शंख तथा स्वर्णादि धातुओं को गलाने में सर्वोत्तम है) यह उष्णावीर्य है तथा गुल्म लीहा आदि को भस्म करने वाला है ॥ ४३—४४ ॥

इसकी मात्रा

पाँच बूँद ले लेकर के १६ बूँद तक १ पल (८ तोला) जल मिला करके प्रयोग करना चाहिये ॥ ४६ ॥

अथ क्षुद्रशंख के नाम

क्षुद्रशंख, शंखक, शम्बूक, स्वल्पशंखक, क्षुल्लक, नखशंख, ये सब नाम छोटे शंख के हैं ॥ ४७ ॥

क्षुद्रशंख का शोधन

क्षुद्रशंख को दोला यन्त्र द्वारा किसी भी अम्लरस में आधा पहर पकाने से वह शुद्ध हो जाता है ॥ ४८ ॥

तुद्रशंख का मार्ग

इस को शंख के समान ही भस्म करना चाहिये । अथवा
घी कुमार के स्वरस से इसे घोटकर मम्पुट में बन्द कर भस्म
करलें ॥ ४६ ॥

तुद्रशंख के गुण

तुद्रशङ्ख शूल को नाश करता है, नेत्र रोगों को हरता है ।
रक्तातिसार को शान्त करता है तथा दीपन तथा पाचन है ॥ ६० ॥

इसका आमयिक प्रयोग

तुद्रशङ्ख की भस्म गरम जल से सेवन करने से परिणाम
शूल को शीघ्र ही नाश करती है ॥ ६१ ॥ शम्बूक की भस्म के
साथ मिर्च चूर्ण तथा पांचों लवणों का चूर्ण मिला कर सेवन करे
तो परिणाम शूल का नाश होता है ॥ ६२ ॥ शम्बूक की भस्म
समभाग सेंधालवण से मिलाकर शहद से सेवन करे तो शीघ्र
ही वातग्रहणी नष्ट होती है ॥ ६३ ॥

अथ शुक्ति के नाम

शुक्ति, शुक्तिका, मुक्तामाता, मुक्तागृह, महाशुक्ति, मौक्तिक-
प्रसवा, मुक्ताशुक्ति, मुक्तागेह तथा मौक्तिक मन्दिर ये सब नाम
मोती के सीप के हैं ।

शुक्ति का प्रथम शोधन प्रकार

दोला यन्त्र में शुक्ति को जयन्ती के स्वरस में एक पहर तक पकालें । इससे शुक्ति (सीप) शुद्ध हो जाती है ॥ ६५ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

दोला यन्त्र में किसी अम्ल रस में डालकर सीपी को एक पहर तक पका कर शुद्ध करलें ॥ ६६ ॥

शुक्ति का मारण

शुक्ति को टुकड़े टुकड़े करके सम्पुट में बन्द कर गजपुट में रखकर फूंक लेवे । इस प्रकार बर्फ, कुन्द के फूल तथा चन्द्र के समान श्वेत रंग को शुक्ति की भस्म मिलती है ॥ ६७ ॥

शुक्ति के गुण और मात्रा

शुक्तिक शूल को शान्त करती है, हृदय रोग को आराम करती है ॥ ६८ ॥ स्निग्ध, रुचिप्रद, श्वासनाशक, अग्निदीपक तथा मधुर है ईंट के रंग के समान आने वाली मूत्रशर्करा (urates) को यह नाश करती है ॥ ६९ ॥ प्लीहा को यह शीघ्र नाश करती है तथा अतीसार संग्रहणी आदि उदर रोगों को नाश करती है । शुक्तिभस्म की मात्रा दो रत्ती की है । ७० ॥

इसका आमयिक प्रयोग

त्रिफला मुलहठी के साथ मिला कर शुक्ति भस्म सेवन करे वा त्रिकुटा के चूर्ण के साथ मिलाकर शुक्तिभस्म सेवन करे तो निश्चय ही शूल को शीघ्र ही नाश करती है ॥ ७१ ॥ आंवले का चूर्ण, शुक्ति भस्म में मिलाकर मकोय स्वर के साथ देवें तों

शङ्घ ही हृदय रोग को नाश करती है ॥ ७१ ॥ शुक्ति भस्म में त्रिकुटा तथा शहद मिलाकर बांसे के रस से सेवन करे तो यह श्वांस रोग को ७ दिन में ही नाश कर देती है ॥ ७२ ॥ त्रिकुटा, चीता, यवक्षार इनके सम भाग चूर्ण के साथ शुक्तिभस्म मिलाकर मधु से सेवन की जावे तो अग्नि दीपन करती है ॥ ७३ ॥ पंचतणुमूल के क्वाथ से यदि शुक्ति भस्म सेवन की जावे तो पुरानी मूत्रशर्करा को भी नाश करती है ॥ ७४ ॥ त्रिकुटा, सज्जी तथा सुहागा, सेंधा लवण तथा सोंचल लवण से मिलाकर शुक्ति भस्म शहद से सेवन करें तो अति भयानक प्लीहा का भी नाश करती है । ७५ ॥ शिलाजीत, वंगभस्म, राल का चूर्ण इन सबको सम भाग लें, सीप की भस्म एक भाग लें । सबको एकत्र पीसकर घी कुमारी के रस से चाटे तो श्वेत प्रदर का नाश होता है ॥ ७६ ॥ सीप की भस्म एक भाग, यवक्षार एक भाग, सेंधालवण एक भाग तीनों को एकत्र पीसकर गौ के दही के साथ पीवे तो अतीसार ग्रहणी आदि उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ ७७ ॥

अथ जल शुक्ति के नाम

जलशुक्ति, लुद्रशुक्ति, तोयशुक्ति, कृमिशुक्ति, शम्बूका पुष्टिका तथा ह्रस्वशुक्तिका ये सब नाम जलशुक्ति के हैं ॥ ७८ ॥

जल शुक्ति का शोधन और मारण

मुक्ताशुक्ति के समान ही जलशुक्ति का शोधन तथा मारण करें । अथवा कोयलों की आग पर रखकर ही जलशुक्ति को भस्म करें ॥ ८० ॥

इसके गुण

जलशुक्ति शूल को हरती है, चरपरी स्निग्ध तथा अग्नि को दीपन करने वाली है। बलदायक, गुल्मनाशक, रुचिकारक, तथा विष दोषों को हरने वाली है ॥ ८१ ॥

अथ वराटक के नाम

वराटक, वराट, वराटी, वराटिका, कपर्दक, कपर्द, कपर्दी, कपर्दिका ॥ ८२ ॥ बालक्रीडनक, चर, वर्य, चराचर, तथा कपर्द ये नाम कौड़ी के हैं ॥ ८२-८३ ॥

वराटक के भेद

वराटिका तीन प्रकार की है पीली, श्वेत तथा धूमरे रंग की। पीली उत्तम होती है। श्वेत रंग की मध्यम होती है। धूमरे रंग की अधम होती है ॥ ८४ ॥

ग्राह्यवराटिका का स्वरूप

जिसका वृन्तभाग लंबा हो, जो सुनहरे (पीला) रंग की हो, पीठ पर गांठदार हो, डेढ़शाणभर भार में हो वह कौड़ी उत्तम होती है ॥ ८५ ॥ शाण के बराबर भार हो तो मध्यम, आधा शाण भार हो तो वह अधम होती है। रसशास्त्रियों ने उत्तम कौड़ी ही भस्म करने में श्रेष्ठ मानी है ॥ ८६ ॥

वराटिका का शोधन

दोस्त्रायंत्र में एक पहर तक कांजी में कौड़ियों को उबाल कर गरम जल से धोले तो कौड़ी शुद्ध हो जाती है ॥ ८७ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

दोलायंत्र में एक पहर तक कुलथी के क्वाथ में कौड़ी को स्वेदन करें तो शुद्ध हो जाती है ।

तृतीय शोधन प्रकार

दोलायंत्र में किस्मी अम्लरस में डालकर कौड़ी को १ पहर तक स्वेदन करें तो कौड़ी शुद्ध हो जाती है ॥ ८६ ॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

निम्बुकाम्ल के द्रव (जल मिले हुए निम्बूकाम्ल) में दोलायंत्र द्वारा कौड़ी को स्वेदन एक पहर तक करें तो कौड़ी भली प्रकार से शुद्ध हो जाती है ॥ ८७ ॥

वराटिका का मारण

(कौड़ी का मारना)

शुद्ध कौड़ियों को एक मिट्टी के पात्र में डाल कर ऊपर से दूसरा पात्र रखकर संधि बंद कर दे ॥ ८१ ॥ फिर धूप में सुखा ले फिर उपलों की आग में पकावे ॥ ८२ ॥ स्वांगशातल होने पर खरल में डालकर इन्हें पीसे । इस प्रकार शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान श्वेत रंग की भस्म हो जाती है । इसे सब योगों में प्रयोग करे ॥ ८३ ॥

दूसरा प्रकार

शुद्ध वराटिका को कोयलों की आग में डाले । जब फूल जायें तो मरी हुई समझें । इसे सब प्रकार के खाने योग्य रस आदियों में प्रयोग करें ॥ ८४ ॥

इसके गुण तथा मात्रा

वराटिका भस्म आग्नि को दीप्त करती है, उष्ण है, नेत्र रोगों को नाश करती है। कान की पीप को निश्चित दूर करती है तथा मन्दाग्नि को नाश करती है ॥ ६५ ॥ परिणाम आदि शूलों को, ग्रहणी, ज्वर तथा स्फोटों को नाश करती है। यह वृष्य है। इसकी मात्रा दा रत्ती है ॥ ६६ ॥

वराटिका का आमयिक प्रयोग

वराटिका भस्म को बारीक पीसकर सम भाग समुद्र फेन के चूर्ण में मिलाकर रखें। इस चूर्ण का कान के अन्दर डालकर किसी फूंकनी द्वारा फूंक मारें तो यह पीप बहने को रोकती है ॥ ६७ ॥ त्रिकुटे के साथ वराट भस्म सेवन करने से अग्निमान्द्य को नाश करती है। बांसे के स्वरस के साथ कौड़ी भस्म खावें तो खांसी को नाश करती हैं ॥ ६८ ॥ निम्बुकाम्ल के साथ त्रिकुटा मिलाकर यदि कौड़ी सेवन की जाय तो शीघ्र ही भयंकर शूल को नाश करती है ॥ ६९ ॥ वराटिका को बारीक पीसकर मुर्दासंग के चूर्ण के साथ मिलाकर यदि छालों पर छिड़की जाय तो विविध प्रकार के छालों को हरती है ॥ १०० ॥ शंखभस्म, त्रिकुटा चूर्ण तथा वराटिका भस्म प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर उचित मात्रा में सात दिन खावें तो ग्रहणी का नाश निश्चित होता है ॥ १०१ ॥ रस सिन्दूर और वराटिका भस्म को मिला कर गुल्म के रस के साथ खाने से रक्तपित्त का नाश होता है ॥ १०२ ॥

अथ मृगशृंग के नाम ।

मृगशृंग, एण शृंग, मृग विषाणक, हरिण शृंगक—ये सब नाम हरिण के सींग के हैं ॥ १०३ ॥

ग्राह्य मृगशृंग का स्वरूप

जो कीड़ों से न खाया गया हो, लम्बा हो, भारवाला हो, अत्यन्त दृढ़ हो, जिसमें अनेक सींग लगे हुए हों ऐसा मृगशृंग अच्छा माना है ॥ १०४ ॥

मृगशृंग का मारण

हिरण का सींग लेकर आरी से काट २ कर छोटे २ टुकड़े करले । फिर कोयलों की आग पर खूब जला लेवे ॥ १०५ ॥ जब अच्छी प्रकार से दग्ध हो जाय तो फिर खरल में चूर्ण कर लेवे । उसे फिर आकके दूध से पीस कर टिकियां बना लेवे । फिर उन्हें धूप में सुखा कर शरावसम्पुट में रखकर संधि बन्द करके तीव्र अग्नि से पका लेवे । इस प्रकार तीन बार आक के दूध से घोट २ कर पुट देने से हिरण के सींग की भस्म हो जाती है । ॥१०६॥१०७॥

इसका रोगों पर प्रयोग

हिरण के सींग की भस्म गौ के घी के साथ मिलाकर खाने से अतिदारुण हृदय का शूल भी क्षणभर में नष्ट हो जाता है ॥ १०८ ॥ १ रत्ती शृंगभस्म शहद के साथ मिलाकर खाने से हृदय के शूल और पार्श्वशूल को निश्चित नाश करती है ॥१०९॥

अथ समुद्रफेन के नाम ।

समुद्रफेन, फेन, सुफेन, फेनक, अध्वफेन, डिएडीर तथा अध्वकफ ये सब नाम समुद्रभाग के हैं ॥ ११० ॥

समुद्रफेन का शोधन

समुद्रफेन की पीठ की हड्डी को छील कर उस पर से उतार देवे ॥ शेष भाग को खरल में बारीक पीस लेवे ॥ १११ ॥ फिर इसके चूर्ण को निम्बू के स्वरस में एक बार भावना देदे । इस प्रकार यह समुद्रफेन शीघ्र ही अतिशुद्ध हो जाती है ॥ ११२ ॥

इसके गुण और मात्रा

समुद्रफेन शीतल, लेखन, पाचन, दस्तावर, आँखों के लिए हितकारी, अग्निदीपक, तथा कानों के घावों से पीप बहने को (अत्यन्त दूर करने वाला है) ॥ ११३ ॥ यह विषदोष नाशक है । कसैले रस वाला तथा कफ को नाश करता है । कुष्ठ रोग को हरने में श्रेष्ठ है । इसकी मात्रा दो रत्ती है ॥ ११४ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

समुद्रफेन के चूर्ण को सम भाग मिश्री के साथ बारीक पीसकर आँख में लगावें तो देर का हुआ २ शुक्र (फोला) भी निश्चित नष्ट हो जाता है ॥ ११५ ॥ शंख चूर्ण, सैधानमक, समुद्रफेन इन तीनों को समभाग पीसकर ताँबे की सलाई से

आंखों में अंजन लगावें तो शुक्रादि रोगों को शस्त्र के समान ाट देता है ॥ ११६ ॥ पिप्पली और सेंधानमक के चूर्ण को मिलाकर शहद में घिसकर आंखों में लगाव तो आंखों का पुगना शुक्रदोष भी शीघ्र नष्ट होता है । हरड़ का चूर्ण १ भाग, नीला थोथा १ भाग, समुद्र फेन ६ भाग, इन सब को पीसकर जल से बत्ती बना लें । इस बत्ती को घिसकर आंखों में अंजन लगावें तो पोथकी अर्थात् कुकुरे आदि को नाश करता है ॥ ११७ ॥ राल, सेंधानमक, रसौत तथा समुद्रफेन इन सब को सम भाग लेकर पीसकर गोला बना लेवें । इसको आंखों में अंजन करने से क्लिन्नवर्त्म रोग नष्ट होता है तथा पद्मों के रोम पैदा होते हैं ॥ ११८ ॥ समुद्रफेन के चूर्ण को कान के अन्दर जोर से फूंक मारकर भर देवें तो शीघ्र ही पुगाने से पुगाने कान से पीर आदि स्राव के बहने को बन्द कर देता है ॥ १२० ॥

शुद्ध पाग, शुद्ध गन्धक इन दोनों से मिलाकर अथवा केवल शुद्ध शिंगरफ के साथ मिलाकर शुद्ध समुद्र फेन ग्वाया जावे तो कफ, तथा पित्त के ज्वरों को नाश करता है ॥ १२१ ॥ यदि मुर्दा संग के चूर्ण के साथ समुद्र फेन का चूर्ण सम भाग मिलाकर शहद के साथ घोटकर ब्रणों पर लेप करें तो ब्रणों का उत्तम प्रकार से रोपण कर देता है ॥ १२२ ॥ तालमस्ताना, पीला चन्दन, कायफल, खस, तथा गज्जा इन सब को सम भाग कलेकर इनके काढ़े अथवा चूर्ण के साथ मिलाकर समुद्रफेन भक्षण किया जाय तो वीर्य को शुद्ध करता है ॥ १२२-१२३ ॥

समुद्र फेन की उत्पत्ति का स्थान

समुद्र के अन्दर गोलाकार का छोटा दस हाथ लंबा एक मीन जाति में उत्पन्न हुआ द्रिलक्ष्ण जन्तु होता है। जिसकी आंखें बड़ी भयंकर होती हैं। पीठ कल्लुण जैसी होती है। वह जब समुद्र में मर जाता है तो उसके पीठ को हड्डी सूख कर समुद्र के ऊपर सफेद भाग के समान तैरती हुई दीखती है। बार बार तरंगों से फेंकी हुई यह समुद्र के बीच में तैरती रहती है। क्योंकि ये समुद्र के अन्दर फेन के समान तैरता रहा है अतः इसे समुद्रफेन कहते हैं ॥ १२४-१२६ ॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी के भाषानुवाद में शंखादि विज्ञानीय नाम का यह बारहवां तरंग समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

अथ चार-त्रिक विज्ञानीय त्रयोदश तरङ्ग

अथ यवक्षार के नाम

यवक्षार, यवापत्य, यवक्ष, यवशूकज, यव्य, यवाग्रज, यवाह्व, यवनालज, यवशूका यावशूक, शूकजा, यावशूकज, याव्य पाक्य ये सब नाम जौखार के हैं ॥ १—२ ॥

यवक्षार का निर्माण प्रकार

यवशूकों अर्थात् जौके वालों से होने वाली भस्म लेकर निर्मल पात्र में ढालकर आठ गुना जल में घोले। फिर मोटे कपड़े

में सात बार घोल २ कर छान लेवे । उस छुने हुए जल को चूल्हे पर रखकर तीव्र अग्नि पर पकावे । जब जल सारा जल जावे तब पात्र के नीचे लगे हुए सफेद से रङ्ग के यवक्षार को यत्न पूर्वक खुरच कर निकाल लेवे ॥ ३—५ ॥

यवक्षार के गुण

यवक्षार लघु, स्निग्ध, दीपन तथा परम पाचन है । गुल्म, प्लीहा, कफ, वात, शूल, आनाह, उदराध्मान मूत्र कृच्छ्र, कठ रोग, तथा अम्लपित्त, को नाश करता है । यह हृदय के लिए हितकारी—सर अथत् दस्तावर, मूत्र लाने वाला तथा वेद लाने वाला और औपसर्गिकमेह (सूजाक) जन्य अण्ड कापों की सूजन को नाश करता है ॥ ६—८ ॥

यवक्षार की मात्रा

३ रत्ती से १० रत्ती तक इसकी मात्रा है । जो बलकाल आदि देख कर प्रयोग करनी चाहिए ॥ ९ ॥

यवक्षार का आमयिक प्रयोग

यवक्षार का चूर्ण गर्म जल से अथवा घी से पीने से प्रसूता नारियों का मक्कल शूल नष्ट होता है ॥ १० ॥ सफेद जीरा और त्रिकुटे के चूर्ण के साथ मिलाकर यवक्षार भोजन के आदि और अन्त में सेवन करें तो दीपन और पाचन होता है ॥ ११ ॥ रोहेड़े के चूर्ण के साथ अथवा सरफोंके के चूर्ण के साथ यवक्षार का सेवन करें तो गुल्म और प्लीहा को नाश करता है ॥ १२ ॥ मिर्च और सोंठ के चूर्ण के साथ जौखार का चूर्ण गर्म जल के साथ दो तीन बार सेवन करने से भयङ्कर वातशूल नष्ट होता है

छोटी इलायची और मिश्री के साथ यवक्षार सेवन करने से दाह और सूजन आदि से युक्त मूत्र कृच्छ्र का नाश होता है ॥ १३-१४ ॥ गाखरु के क्वाथ के साथ जौखार सेवन किया जाय तो शौच के वेग का रोकने से जो मूत्र कृच्छ्र होता है उसे शीघ्र ही नाश करता है ॥ १५ ॥ लग्न के साथ यवक्षार यथेच्छ सेवन करने से शीघ्र ही पथरी तथा मूत्रकृच्छ्र का नाश करता है ॥ १६ ॥ जौखार को खाँड के साथ मिलाकर पेट के रस के साथ सेवन कराया जाय तो मूत्र कृच्छ्र आदि रोगों का शीघ्र नाश करता है ॥ १७ ॥ अजवायन त्रिकुटा और पिप्पली के चूर्ण के साथ मिला कर सेवन करें तो शीघ्र ही वातज उदर रोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥ हींग, त्रिकुटा, कूठ, सेंधानमक इनके साथ मिलाकर जौखार बिजौरे नीबू के रस में मिलाकर पिया जाय तो प्लीहा के शूल को नाश करने में श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥ जौखार को नीबू के रस के साथ सेवन करें तो मूत्र लाता है, पसीना लाता है तथा उवर को नाश करता है ॥ २० ॥ शंख भस्म, जौखार, त्रिकुटा, सेंधानमक इन सब को मिलाकर गर्म जल से पिया जाय तो त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ २१ ॥ जौखार को बांसे के स्वरस के साथ सेवन करें तो बहुमूत्र को हटाता है ॥ २२ ॥ बबूल के स्वरस से या बबूल की गोंद के साथ मिलाकर जल के साथ जौखार पीने से औपसर्गिक मेह (सूजाक) नष्ट होता है ॥ २३ ॥ जौखार को सुहांजने की छाल के काढ़े के साथ शहद मिलाकर पिया जाये तो पार्श्वशूल, हृदयशूल तथा बस्तिशूल नष्ट होता है ॥ २४ ॥ यवक्षार को लगातार सरसों के तेल में मिलाकर लेप किया जाय तो एक मास में सिध्म कुष्ठ (थिम्ब या श्वेत दागों) को नष्ट करता है ॥ २५ ॥ यवक्षार को सफेद

पुनर्नवा के स्वरस के साथ सेवन किया जाय तो हृदय रोग से उत्पन्न हुये २ उरस्तोप (छाती के जल Wet Pluricy, Hydrothorex) को दूर करता है ॥ २६ ॥ निम्बुक द्राव के साथ तिलक्षार और जौखार मिलाकर सेवन किया जाय तो शीघ्र ही बस्ति शूल का नाश होता है तथा मूत्र की रुकावट दूर होती है ॥ २७ ॥ सोंठ, गोखरु और वरुण के क्वाथ के साथ जौखार और गु ढाल कर पीने से शीघ्र ही बातज अशमरी का नाश होता है ॥ २८ ॥ पेट के स्वरस में गुड़ और जौखार ढालकर पीने से मूत्राघात तथा शुकाशमरी नष्ट होती है ॥ २९ ॥ पाषाणभेद, वरुण की छाल तथा गोखरु के काढ़े में जौखार मिलाकर सेवन किया जाए तो बस्ति शूल तथा अशमरी नष्ट होती है ॥ ३० ॥ सारिवा के क्वाथ के साथ जौखार सेवन किया जाय तो औपसर्गिकमेह (सूजाक) की पीड़ा शीघ्र दूर होती है । (यदि इसमें पथरी बढ़ी हुई हो तो मकोय के रस का भी प्रयोग करें) ॥ ३१ ॥ दशमूल के काढ़े में सेंधानमक और जौखार सेवन करें तो गुल्म, शूल, हृद्रोग, कास तथा श्वास का नाश होता है ॥ ३२ ॥

निम्बूकाम्लीय यवज (Citrate of Potash) के नाम

निम्बूकाम्लीय यवज, निम्बूकाम्लीय शूकज तथा निम्बूकाम्लीय यवक्षार ये सब नाम (Citrate of Potash) के हैं ।

इसका निर्माण प्रकार

एक कांच के पात्र में २४ भाग यवक्षार ढालकर उसमें सम भाग शीतल जल ढाले । इसका घोल बनाले ॥ ३४ ॥ फिर

एक दूसरे पात्र में शुद्ध निम्बूकाम्ल को बीस भाग डालकर बीस भाग जल में घोल बना लेवे ॥ ३५ ॥ फिर कांच जिसमें लिपा हुआ हो ऐसे किसी मिट्टी या चीनी के पात्र में अथवा बंग आदि के पात्र में इन दोनों घोलों को डाल दे । और चूल्हे पर रखकर पकावे । इस प्रकार जल का सर्वथा सुखा देवे ॥ ३६ ॥ अब पात्र में लगे हुये कर्पूर के समान सफेद रंग के चूर्ण को निकाल कर शीशी में डट लगाकर रख लेवे इसे ही निम्बूकाम्लीय शूकज या (citrate of potash) कहते हैं ॥ ३७ ॥

इसके गुण

निम्बूकाम्लीय यवज मूत्र लाने वाला, कफ को काटने वाला, ज्वर नाशक, स्वेदजनक तथा जलोदर को नाश करने वाला है ॥ ३८ ॥ यह गुर्दे की सूजन को दूर करता है तथा गुर्दे की दर्द को विशेष करके नष्ट करता है । मूत्र की रुकावट को दूर करता है तथा कफज कास को नाश करता है ॥ ३९ ॥

इसकी मात्रा

५ रत्ती से लेकर १० रत्ती तक अधिक से अधिक इसकी मात्रा मानी गयी है ॥ ४० ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

निम्बूकाम्लीय यवज को उन २ विशेष रोगों में जल आदि के अनुपान से उचित मात्रा में वैद्य प्रयोग करें ॥ ४१ ॥

अथ सर्जिद्वार के नाम

स्वर्जिक, स्वर्जिक', स्वर्जि, स्वर्ज, स्वर्जो, सुवर्चिका, स्वर्जिका, स्वर्जिकाद्वार, सर्जि, सर्जो तथा सजिका ॥ सुवर्चक, सुर्चि, सुवर्च, सुवर्चिक, सुखोर्जिक, कपोत, सुखवर्च, सुखार्जिक रुचक, सृजिकाद्वार, स्वर्जिद्वार, सौवर्चल तथा सुवर्चा ये सब नाम सज्जी के हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

सर्जिद्वार का निर्माण प्रकार

उष्ट्रप्रिया अर्थात् छोटा जवासा (लाना "बूटी) के पौधे को जलाकर यत्न से उसकी द्वार (राख) को इकट्ठा करके आठ गुणा जल मिलाकर एक साफ पात्र में रखे ॥ ४५ ॥ फिर मोटे कपड़े से सात बार ऊपर से नितार २ कर छान लेवे । इस छाने हुए जल को पकावे । जल के जल जाने के बाद पात्र के तल में रही हुई हिम, कुन्द तथा चन्द्र के समान श्वेत रंग की सर्जिद्वार को ले लेवे । यही सज्जीखार कहाता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

सर्जिद्वार के गुण

सर्जिद्वार तीक्ष्ण, कटु, उष्ण, पाचन, वातनाशक, कास, श्वास, गुल्म, आध्मान, व्रण, अतीसार तथा कृमिरोग को नाश करता है तथा अग्नि को दीपन करता है ॥ ४८—४९ ॥

सर्जिद्वार की मात्रा

तीन रत्ती से १२ रत्ती तक की मात्रा में सर्जिद्वार को बलकाल आदि देखकर प्रयोग करना चाहिये ॥ ५० ॥

सर्जित्तार का रोगों पर प्रयोग

सर्जित्तार ३ रत्ती, पीपली तथा श्वेत जीरे के चूर्ण के साथ मिलाकर सेवन की जाये तो अत्यग्निदीपक तथा पाचक है ॥ ५१ ॥ बासा के सत के साथ सज्जीत्तार को शहद मिलाकर चाटें तो वार्तिक तथा कफज श्वास को नाश करती है ॥ ५२ ॥ सज्जीत्तार चार रत्ती लेकर शीतल जल में सेवन करें तो अम्लपित्त तथा अम्लोद्गार (खट्टी डकारों) को नाश करने में नाश करती है ॥ ५३ ॥ अजवायन, त्रिकुटा, इनके चूर्ण के साथ सज्जीत्तार को तीन दिन सेवन करें तो आध्मान युक्त, गुद मार्ग में होने वाले, कीड़ों (चलूनों) को तथा कीड़ों से होने वाले रोगों को नाश करती है ॥ ५४ ॥ सज्जीत्तार में केवड़े का जार तथा कूठ का चूर्ण मिला लें, फिर तिल के तेल में पीवें तो वातगुल्म का शीघ्र ही नाश होता है ॥ ५५ ॥ सज्जीत्तार में गुड मिलाकर गरम जल में पीवें तो नयी २ गुल्म पीड़ा शीघ्र ही नष्ट होती है ॥ ५६ ॥ सज्जी को बिजौरे नीबू के रस से थोड़ी मात्रा में यदि कान में डालें तो कान के बहने को, कान की दाह तथा पीड़ा आदि को नाश करती है ॥ ५७ ॥

निम्बूकाम्लीयसर्जिका (Citrate of Soda)

का निर्माण प्रकार

सज्जी ४१ भाग, जल ८२ भाग ले। घोल बनाले ॥ ५८ ॥ निम्बूकाम्ल २० भाग ले, जल २० भाग में इसको पृथक् पात्र में घोलकर इसका भी घोल बनालें ॥ फिर एक ऐसे पात्र में जिसके अन्दर काँच लिपा हुआ हो इन दोनों घोलों को डालकर

मन्दाग्नि पर पकावे । जल के सूख जाने पर श्वेत रंग के चूर्ण को सम्भाल कर रखे । इसे ही निम्बूकाम्लीय सर्जिका या साईट्रेट आफ़ सोडा (Citrate of Soda) कहते हैं ॥ ५६—६१ ॥

इसके गुण

यह निम्बूकाम्लीय सर्जिका दूध की वमन को शान्त करती है, अग्निमांद्य को नाश करती है । आध्मान, शूल तथा विष्टम्भ को नाश करती है, कान्ति बढ़ाती है ॥ ६२ ॥ ग्राहिणी है, शीतल है, विशेष करके दूध को पचाती है तथा प्यास को शान्त करती है ॥ ६३ ॥

इसकी बालकों के योग्य मात्रा

एक रत्ती से लेकर दो रत्ती तक इसकी मात्रा जाननी चाहिये ॥ ६४ ॥

पूर्ण मात्रा

पांच रत्ती से दस रत्ती तक इसकी पूर्ण मात्रा जाननी चाहिये ॥ ६५ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

निम्बूकाम्लीय सर्जिका दो रत्ती लेकर १६ तोले गौ के दूध में मिलाकर प्रति दिन पिलावे तो बालकों की दूध की वमन दूर हो जाती है तथा अग्निमांद्य का नाश होता है ॥ ६६—६७ ॥ इससे अफ़ारा तथा शूल शान्त होता है, अनीसार तथा ज्वररोग नाश

होते हैं। विशेष करके काग्नि बढ़ती है तथा देह पुष्ट होती है ॥ ६८ ॥ जो बालक माता से हीन हैं, जो कृश हैं जिन्हें अजीर्ण रोग की प्रबलता है, जो दूध की वमन करते रहते हैं, उनके लिये तो यह अत्युत्तम औषधि है ॥ ६९ ॥ छोटे दूध पीने वाले शिशुओं के लिये, इसकी इतनी मात्रा (दो रत्ती) ही प्रयोग करनी चाहिए ॥ ७० ॥ जो युवा पुरुष तथा बूढ़े पुरुष दूध को पचा नहीं सकते तथा दूध पीने से जिन्हे अजीर्ण हो जाता है उनके लिये रस वैद्यो न यः निम्बुकामलीय सर्जिका उत्तम मानी है ॥ ७१ ॥

अब टङ्कण के नाम लिखते हैं।

टङ्कण, टङ्कन, टङ्क, टङ्ग, टङ्गण, ट्रावक, टङ्कणक्षार, टङ्कक्षार, रंगक्षार, रंग, रंगद, लोहशोधन, लोहश्लेषणक, स्वर्णशोधन, सौभाग्य, सितक्षार, श्वेतक्षार, टङ्गक, क्षारराज ये सब नाम सुहागे के हैं । ७२—७४ ॥

टङ्कण का निर्मल करना

सुहागे को चूर्ण करके २४ गुणा जल में घोले ले। फिर वस्त्र से छान कर चूल्हे पर रखकर तीक्ष्ण अग्नि पर पकावे। जब जल प्रायः सूख जावे और नाम मात्र को थोड़ा सा जल शेष रह जाये तो इसे आग पर से उतार लेंगे। यही शुद्ध सुहागा है ॥ ७५—७६ ॥

टङ्कण का शोधन

सुहागे को चूर्ण करके ४० ताले ले। खूब मंजी हुई चमकदार लोहे की कढ़ाई में इसे डाले। फिर चूल्हे पर रखकर एक कड़ली से

इसे हिलाता जाये । जब अच्छी प्रकार से फूल जाये तथा इसका जल नष्ट हो जाये तो इसे शुद्ध समझे ॥ ७७—७८ ॥

इसके गुण

सुहागा कटु, उष्णवीर्य, रूक्ष, तीक्ष्ण, दस्तावर, कफ को काटने वाला, हृदय के लिए हितकर, वातरोगनाशक है । काम, श्वास, स्थावरगदि विष, अफारा, विविध व्रण इन सब को नाश करता है । अग्नि को दीपन करता है, बलदायक है, स्त्री को मासिक धर्म ला देता है, पित्तकारक तथा मूद्गर्भ को प्रवृत्त करता है ॥ ७९- ८१ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

कायफल की छाल, त्रिकुटा, कटेली, जौग्वार, इनके चूर्ण के साथ शहद मिला कर सुहागा चाटा जावे तो कफ को काट कर या पतला कर के निकालता है ॥ ८२ ॥ सुहागा, त्रिकुटा, दोनों समभाग लें । दोनों के समान शुद्ध जमालगोटा लें । इसे सेवन करें तो मृदुरेचन करता है तथा सब प्रकार के उदर रोगों को नाश करता है ॥ ८३ ॥ सुहागा १ माशा लेकर २४ माशे जल में घोलकर मुख में गरारे करें तो पारा खाने के विकार से जो लालास्राव होता है, उसे दूर करता है ॥ ८४ ॥ बोल (myrrh) के साथ सम भाग सुहागा मिलाकर बार २ यदि मला जाये तो ममूहों के घोर व्रण को नाश करता है ॥ ८५ ॥ शुद्ध सुहागा शनैः २ चूसें तो कण्ठ के म्वर रुक जाने (गला बैठ जाने) को अति शीघ्र ही नाश करता है ॥ ८६ ॥ त्रिकुटा, सुहागा, इनको एकत्र पीसकर

शहद से चाटें तो अत्यन्त बड़े हुए अफारे को क्षण भर में ही नाश कर देता है ॥ ८७ ॥ दींग, जौखार, सुहागा इन तीनों को मिलाकर (जल से) दोनों सन्ध्या समयों में खावे तो मात दिन में ही स्नायुकुरोग (नहरुवा) नष्ट हो जाता है ॥ ८८ ॥ लौंग, सोंठ, मिरच, अपामार्ग का क्षार इनके सम भाग चूर्ण से मिलाकर सुहागा खाया जाये तो खाये हुए मांसादि को भी पचा देता है ॥ ८९ ॥ सुहागे का बारीक चूर्ण ब्रणों पर छिड़कने से तुल्य है भयंकर रुधिर बहने को बन्द करता है ॥ ९० ॥ सुहागे को आग पर भूनकर शहद से मिलाकर लेप करें तो दाह, शोथदि से युक्त मुखपाक को दूर करता है ॥ ९१ ॥ सुहागे का चूर्ण निर्मल जल में घोल लें । इसे बास्तिनयंत्र (अनीमे) द्वारा योनि में प्रयोग करें तो पिडिका (फुन्सी) आदि रोगों को नाश करता है ॥ ९२ ॥ सुहागे का चूर्ण पुराने गुड़ से मिलाकर ब्रणों पर छिड़कें तो ब्रणों को रोपण करता है ॥ ९३ ॥ अग्नि पर भुना हुआ सुहागा श्वेत चंदन के लेप में मिला लें । फिर इसे मिध्मों (थिम्बों) पर लगावें तो शीघ्र ही इन्हें यह नाश करता है ॥ ९४ ॥ मकोय के स्वरस में सुहागा मिलाकर सेवन किया जाये तो शीघ्र ही भयंकर वमन को नाश करता है ॥ ९५ ॥

टङ्कणामृत मलहर

सुहागे की खील दो तोला, सिक्थ तेल १२ तोला, शुद्ध सजी आधा तोला, पुष्पकासीस आधा तोला, पिप्पल की छाल का क्षार (राख) दो माशा । सब को मिलाकर शीशी में रखें । दुष्ट ब्रणों के शोधन करने के लिये (ब्रण फाड़ने के लिये भी)

यह मल्हम अच्छी है । इसका नाम टङ्कणामृत मल्हम है ॥ ६६-६६ ॥

टङ्कलाम्ल के नाम

टङ्काम्ल, टङ्कणाम्ल, टङ्काम्ल, टङ्कणाम्लक, सुभगाम्ल ये सब नाम टङ्कणाम्ल या (Boric Acid) के हैं ॥ १०० ॥

टङ्कणाम्ल (Boric Acid) को बनाने की विधि

टङ्कण का चूर्ण एक भाग, अत्यन्त गरम जल आधा भाग ले । इस गरम जल में अनियन्त से टङ्कण को घोलकर एक शीशे के प्याले में डाल रखे ॥ १०१ ॥ फिर इस पात्र को अग्नि पर तपावे । फिर उसमें लवणद्रावक (नमक का तेजाब बूंद २ करके) डालें । (यह इतना डाले कि जितने में सारा टङ्कण प्याले के तल पर बैठ जावे) द्राव को डालने के बाद पात्र को अग्नि से उतार कर भूमि पर रख दें ॥ १०२ ॥ शीतल होने के बाद ऊपर के जल का धीरे से नितार कर गिरा दें । नीचे पड़े हुए टङ्काम्ल (Boric Acid) को पृथक् कर ले ॥ १०३ ॥ अब इसी टङ्काम्ल को फिर तीन गुणे गरम २ जल में डालें । इसे घोलकर टिका दें । फिर ऊपर के पानी को नितार दें ॥ १०४ ॥ इस प्रकार तल में नीचे पड़े हुए टङ्कणाम्ल को निकाल ले । यह अत्यन्त शुद्ध होता है । इसे सुखाकर प्रयोगों में प्रयुक्त करे । (इसे ही बोरिक एसिड कहते हैं) ॥ १०५ ॥

इसके गुण

टङ्कणाम्ल सूक्ष्म कीटाणु नाशक है । नेत्राभिध्यन्द, अग्नि

दग्ध व्रण, श्वेतप्रदर तथा कान के बहने को दूर करता है। यह मूत्र लाता है, व्रणों को रोपण करता है। औपसर्गिकमेह (सूजाक) के जख्म की पीड़ा को नाश करता है ॥१०६-१०७॥

टङ्कणाम्ल की मात्रा

दो रत्ती से लेकर आठ रत्ती तक बल, काल देखकर टङ्कणाम्ल को दे ॥ १०८ ॥

टङ्कणाम्ल का रोगों पर प्रयोग

टङ्कणाम्ल (बोरिक एसिड) को तीन रत्ती लेकर जल से खावें तो सड़ी हुई गंध वाला तथा पीप वाला मूत्र आना शीघ्र ही ठीक हो जाता है ॥ १०९ ॥ टङ्कणाम्ल एक रत्ती लेकर आठ रत्ती शर्द में मिलाने तथा (२१ बार) जल से धुले हुए एक माषा भर मक्खन से मिलावें तो ॥ ११० ॥ इसे स्तन के घाव पर लगावें तो शीघ्र ही स्तनका घाव, कान की विचर्चिका (सूखी खुजली), अग्निदग्धव्रण तथा अन्य विविध व्रणों का नाश होता है ॥ १११ ॥

टङ्कणाम्लमलहर

सिक्थतेल ६ तोला, उत्तम टङ्कणाम्ल एक तोला लें ॥ ११२ ॥ खरल में दोनों को मिला कर काच की प्याली में रखें। इसका नाम टङ्कणाम्ल मलहर (Boric ointment) है ॥ ११३ ॥

इसके गुण

इसका प्रयोग विशेष करके व्रणों को शुद्ध करता है, अग्नि-दग्ध व्रण को नाश करता है तथा जीवाणु नाश करने में (Antiseptic) परम श्रेष्ठ है ॥ ११४ ॥

टङ्कणाम्लद्रव की निर्माण विधि

टङ्कणाम्ल (Boric Acid) इस रत्ती लें । परिस्तुत जल या जल का अर्क ५ तोला लें । इसे परस्पर घोलकर शीघ्र ही शीशी में डालकर डाट लगाकर रखें । वही टङ्कणाम्लद्रव (Boric Solution बोरिक सौल्यूशन) कहा जाता है ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

इस टङ्कणाम्लद्रव से आंखों को धोवें तो भयंकर नेत्राभिष्यन्द चाहे पुराना भी हो, वह भी दूर होता है ॥ ११७ ॥ इसी प्रकार से बने हुए द्रव से यदि विधिपूर्वक उत्तरबस्ति बोनि में दें ॥ ११८ ॥ तो सात दिन में ही देर की भी श्वेतप्रदर की पीड़ा दूर हो जाती है ॥ ११९ ॥ इसी से कान को धोवें तो कान के गाढ़े पुराने ब्रण को तथा कर्णस्राव को नाश करता है ॥ १२० ॥ इसी मान से बनाये हुए इस द्रव से नाक को धोवें तो पीनस रोग अच्छा होता है ॥ १२१ ॥ एक भाग टङ्कणाम्ल लें, एक सौ भाग जल लें । दोनों को घोलकर लिंग में उत्तर बस्ति दें तो इससे बस्ति की सूजन नष्ट होती है ॥ १२२ ॥

कविराज श्री विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी के भाषानुवाद में द्वारभिक विज्ञानीय नाम त्रयोदश तरङ्ग समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

अथ चार विशेषादि विज्ञानीय चतुर्दश तरङ्ग

अथ नवसार के नाम

नवसार, नव्यसार, नवसादर, नृसादर, नृसार, नरसार, किट्टितार, नरसादर, चूलिकालवण चुल्लिकालवण ये सब नाम नवसादर के हैं ॥ १-२ ॥

नवसादर का शोधन

नौसादर को तिगुने जल में घोलकर कपड़े में से छानकर पात्र को चूल्हे पर रखकर तेज आंच से पकावे । पानी सूख जाने पर जल में लगे शुद्ध नौसादर को उतार लेवे ॥ ३-४ ॥

इसके गुण

यह त्रिदोषघ्न, स्निग्ध, सूक्ष्म, तथा लघु है । भोजन को पचाने वाला, दस्तावर, तीक्ष्ण, जठराग्नि को उद्दीपन करने वाला, उष्ण, प्लीहा को शान्त करने वाला, मांस भक्षण से हाने वाले अजीर्ण को निवारण करने वाला है । गुल्म तथा अफारे को नाश करता है । कफ को अत्यन्त काटने वाला है, बिच्छू काटे के विष को नाश करता है तथा लांहे को गला देता है । हृद्भोगों का नाश करता है, नेत्र के लिये हितकारी है और श्वेतकुष्ठ का नाश करता है ॥ ५-७ ॥

इसकी मात्रा

बलकान आदि को देखकर २ रस्ती से लेकर ८ रस्ती तक की मात्रा में वैद्य नौसादर को देवे ॥ ८ ॥

रंगों पर प्रयोग

जीरा और त्रिकुटे के साथ शुद्ध नौसादर सात दिन सेवन करें तो जठराग्नि का उद्दीप्त कर देता है ॥ १६ ॥ हींग और त्रिकुटे के साथ सेवन करने से शुद्ध नौसादर बहुत पुराने तथा भयंकर प्लीहादर को नाश करता है ॥ १७ ॥ मीष की भस्म के साथ सेवन करने से शुद्ध नौसादर प्लीहा तथा शकृत के दाँषों को नश करता है ॥ १८ ॥ मिर्च, सेंधानमक तथा मौफ के साथ सेवन किया हुआ शुद्ध नौसादर अफारं तथा अर्जाणों को नाश करता है और खायें हुये मांस को पचाता है ॥ १९ ॥ अनन्तमूल के काढ़े के साथ नौसादर नियम पूर्वक सेवन करने से यक्ष्मवृद्धि को नाश करता है ॥ २० ॥ मुलहटी, बच्च तथा छोटी कटेली के काढ़े के साथ नौसादर लेने से जल्दी ही कफ को नाश कर देता है ॥ २१ ॥ यक्ष्मा के दाँष से उत्पन्न जलोदर में वैद्य नौसादर को अपामार्ग के काढ़े के साथ दें ॥ २२ ॥ काञ्जी के साथ नौसादर बहुत थोड़ी मात्रा में लेने से फुफ्फुस से होने वाले रक्तस्राव को शीघ्र ही रोक देता है ॥ २३ ॥ १ तोले नौसादर को १० तोले पानी में डालकर कपड़े को उमसे गीला करके उपर शूल आदि से युक्त ब्रध्न (बध) की सूजन पर बांध देंगे । इस प्रकार सात दिन में ब्रध्नशोथ दूर हो जाता है ॥ २४-२५ ॥ जौखार के साथ तीन रत्ती नौसादर लेकर सारिवा के क्वाथ से पीने से व्रणमेह (सूत्राक) को नष्ट करता है ॥ २६ ॥

नौसादर का सत्व पातन

शुद्ध खड़िया चूर्ण ३ तोला और विशुद्ध नौसादर ४ तोला खरल में डालकर, पीसकर डमरु यन्त्र में पकावे। और ऊपर लगे हुवे नौसादर के सत्व को उतार लेवे ॥ २०-२१ ॥

इसके गुण

नौसादर का सत्व रुचिकारक है, अम्लपित्त का परम नाशक है। कफ को कम करने वाला, हृदय की दुर्बलता को नाश करने वाला, वमन कराने वाला, दस्त, वर तथा फुफ्फुस की शोथ को हरने वाला है। पाचन है, दापन है तथा सूंघने पर मूच्छा को हरने वाला कहा गया है ॥ २२-२३ ॥

इसकी मात्रा

नौसादर के सत्व की मात्रा १ रत्ती से लेकर ५ रत्ती तक है ॥ २४ ॥ नौसादर का सत्व १ माशा लेने पर वमनकरक कहा गया है ॥ २५ ॥

इसके सत्व की प्रयोग विधि

नौसादर के सत्व को शुद्ध जल (Distilled Water) में धोलकर निदिष्ट रोगों में प्रयोग करे ॥ २६ ॥

अथ सोरक के नाम

अथ शोरे के नाम लिखते हैं

सोरक, सोरा, सोरका, सूर्यक्षार, मृत्क्षार तथा बन्दिक्षार ये सब नाम शोरा के हैं ॥ २७ ॥

सोरक के गुण

शोरा कटु अर्थात् चरपरा, तीक्ष्ण, विशेष करके लवण रसवाला, सर, अग्निदीपक, अतिउष्ण है। आग्नेयास्त्र अर्थात् बारूद में काम आता है तथा आतिशबाजी में काम आता है ॥ २८ ॥

सोरक का निर्मल करना

शोरा आठ तोला ले। उसे ३२ तोले जल में डालकर घोल ले। फिर वस्त्र से छान ले और अग्नि पर पकावे ॥ २९ ॥ जब थोड़ा सा जल शेष रह जाये तो पात्र को अग्नि पर से उतार ले। कुछ देर के बाद नीचे तल में लगे हुए चूर्ण के सदृश बने हुए शोरे को लेले ॥ ३० ॥ यदि थोड़ा जल रहने पर अग्नि पर रखोगे तो जल के जलते ही शोरा भी जलने लग पड़ेगा। इसलिये तब आग पर न रखें। अत्यन्त सावधानता से जल स्वल्पमात्रा में रहने पर ही अग्नि से उतार कर सूखने दें। कुछ ही देर के बाद स्वयं जल उड़कर शेष शोरा बच जायेगा ॥ ३१—३२ ॥

सोरक का सुगमता से निर्मल करना

शोरा चार तोला ले, अत्यन्त गरम जल दो तोला लेकर, उसमें डालकर घोलें ॥ ३३ ॥ फिर एक निर्मल पात्र में वस्त्र से छान कर ठण्डा करे। इसे शलाकाकार हो जाने पर निकाल कर रखे ॥ ३४ ॥

सोरक का शोधन

शोरे का चूर्ण करके छाटी इलायची के जल अर्थात् कवाथ

में ३ बार भावना देंगे । इस प्रकार शोरा उत्तम रीति से शुद्ध हो जाता है ॥ ३४ ॥

शुद्ध सोरक के गुण

शोरा कटु चर्थात् चरपरा है, तीक्ष्ण है । विदग्धाजीर्ण (धुँए केसे डकार आत, भ्रम, मूर्छाद उपद्रव सहित अजीर्ण) का नाश करता है । पथरी, मूत्रकृच्छ्र, अग्निमांश, पाण्डु तथा प्रमेह को नाश करता है ॥ ३६ ॥

सोरक की मात्रा

शोरा दो रती से लेकर दस रत्ता तक ब न कालादि को देख कर प्रयोग करना चाहिए ॥ ३७ ॥

सोरक का रोगों पर प्रयोग

गोखरु के क्वाथ में शोरा को भाधित करके शुद्ध करले । इसे खाने से मूत्रकृच्छ्र तथा भयङ्कर पथरी नष्ट होती है ॥ ३८ ॥ फिटकरी के साथ शोरे को मिलाकर (जल से) खावें तो आध्मान तथा मूत्रकृच्छ्र को निश्चय ही शीघ्र नाश करता है ॥ ३९ ॥ आक की जड़ के चूर्ण से शोरा पीवें अथवा चौलाई के क्वाथ से शोरा पीवें तो आमवात को नाश करता है ॥ ४० ॥ विड्मलवण, अजबयन, मौफ, आँवला इन सबको एक २ भाग लें, शोरा एक भाग लें । सबको एकत्र करके नीम्बू के रस के साथ खावें तो विदग्धाजीर्ण का नाश करता है ॥ ४१ ॥ शोरे का पानी में घोल ले । उसमें स्याहीचूम कागज को भिगोले । उस धूप में सुखाकर रखें । इसका धुँआ पीने से शीघ्र ही श्वास रोग

नष्ट होता है ॥ ४२ ॥ सुग (शगव), नौशादर, तथा शोरे को समभाग लेकर जलमें घोलले । इसमें वस्त्र को भिगो र कर मिर पर रखे तो ज्वर के प्रलाप को दूर करता है ॥ ४३ ॥ ५ रत्ती शोरा, मिश्री ५ रत्ती मिलाकर जल में घोल कर पिलाया जाये तो ज्वर, दाह तथा प्यास से व्याकुल रोगियों को इन उपद्रवों से शान्ति मिलती है ॥ ४४ ॥ इससे अन्यन्त स्वेद आता है, रुका हुआ मूत्र खुलकर होता है, दाह, तृष दि को नाश करके ज्वर कोभी नाश करता है ॥ ४५ ॥ सोरा तथा वटपत्री अर्थात् पाषाण भेद की जड़ इन दोनों को शिलातल पर पीस लें । इस लेप को बस्ति प्रदेश पर लगावें तो मूत्र की रुकावट दूर हो जाती है ॥ ४६ ॥

अब सोरक द्राव के नाम लिखते हैं

सोरकद्राव, सोरकद्रावक, सोराद्राव, ये सभी नाम (Nitric Acid) के हैं ॥ ४७ ॥

सोरक द्राव (Nitric Acid) बनाने की विधि

शुद्ध किए हुए शारे को एक भाग ले । इसमें गंधकद्राव (गंधक का तेजाव) आधा भाग डालकर एक कांच कुप्पी में रखे ॥ ४८ ॥ इस कुप्पी को सुराप्रदीप (Spirit lamp) पर रखकर एक शीशे की नली इस के मुंह में जोड़कर उस नली का दूसरा सिरा एक दूसरी कांच की शीशी में लगादे । वह दूसरी शीशी एक पानी के पात्र में रखी हुई हो ॥ ४९ ॥ इसे मन्दाग्नि से पकावे । फिर तिरछी नली से भाप बनकर जाता हुआ दूसरी शीशी में वह पतला पानी के सदृश द्रावक (तेजाव) बन जायेगा

इसे ही सोरक द्रावक या शोरे का तेजाब कहते हैं ॥ ५० ॥

सजल सोरक द्रावक का निर्माण प्रकार

शोरे का तेजाब ६ भाग लेकर एक काँच पात्र में डाले । उस में जल का अर्क २५ भाग धीरे २ डाले । इसे ही सजल सोरक द्राव (Dilute Nitric Acid) कहते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

सोरक द्रावक के गुण

सोरक द्रावक उष्णवर्त्य, दाह करने वाला, विविध प्रकार के दूषित, गले सड़े बढ़ने वाले व्रणों को शोधन तथा रोपण करता है ॥ ५३ ॥ फिङ्ग रोग के आरम्भ में ही जो घोर व्रण हो जाता है उसे (तिनके पर लगाकर इसे व्रण पर लगावें) आराम करना है । सांप तथा कुत्ते के विष को तथा अन्य विषैले प्राणियों के काटने पर उनके बिषों को भी लगाने से दूर करता है ॥ ५४ ॥

सजल सोरक द्रावक के गुण

सोरक द्रावक सजल (Dilute Nitric Acid) पीने से बल देता है, यकृद्दोष को नाश करता है । अग्निमाँद्यनाशक है, मूत्र दोष को नाश करता है ॥ ५५ ॥ मधुमेह, स्तीहावृद्धि, उप-दंश के विकार, कामला, और पाण्डुरोग इन सब रोगों में विशेष लाभ करता है ॥ ५६ ॥ अति कफ जिसमें बढ़ा हो ऐसी पुरानी खांसी को यह दूर करता है । अतिसार को नाश करता है तथा पित्त को हरता है ॥ ५७ ॥

सजल सोरक द्रावक की मात्रा

सजल सोरक द्राव को ५ बूंद में लेकर ३० बूंद तक की मात्रा में ८ तोले जल में घोलकर प्रयोग करें ॥ ५८ ॥

अब सामान्य रूप से चारों के बनाने की विधि लिखते हैं

जिस क्षार वृक्ष का क्षार बनाना हो, उस वृक्ष या पौधे की लकड़ी को जलाकर राख बनाले। उस राख को एक शुद्ध पात्र में डाल कर चौगुना जल डालकर घोल लें। ३ घण्टे मिलाकर फिर तीन तर्हों वाले वस्त्र में से छान लेवें ॥ ५९-६० ॥ इस छने हुए जल को फिर अग्नि पर रखकर पकावे। जब जल सारा जल जाये तो पात्र के नीचे लगे हुए क्षार को सुर्च कर निकाल ले ॥ ६१ ॥

सामान्य से चारों के गुण

सभी क्षार तीक्ष्ण हैं, अति उष्ण हैं, अति दाह करने जलाने वाले हैं। गुल्म, अर्श, ग्रहणी, प्लीहा, मूत्रकृच्छ्र तथा पथरी को हरने वाले हैं ॥ ६२ ॥ कृमिनाशक, पाचन, (व्रणशोथादि को) फाड़ने वाले, शरीर में फैल र कर रच जाने वाले (Absorb) हो जाने वाले, तथा व्रणों के शोधन तथा रोपण करने वाले और मूत्र लाने वाले होते हैं ॥ ६३ ॥

सामान्य रूप से चारों की मात्रा

दो रस्ती से लेकर आठ रस्ती तक चारों की मात्रा प्रयोग करनी चाहिए ॥ ६४ ॥

अथ अपामार्ग क्षार के नाम लिखते हैं

अपामार्गक्षार, मयूरक्षारक, खरमञ्जरिकाक्षार तथा किण्-

क्षार ये सब नाम अपामार्ग के क्षार के हैं ॥ ६५ ॥

इसके गुण

अपामार्ग का बनाया हुआ क्षार तीक्ष्ण होता है, श्वास को नाश करता है, गुल्म तथा शूलदि रोगों को नाश करता है । तथा बहरेपन को नाश करता है ॥ ६६ ॥

अपामार्ग क्षार का रोगों पर प्रयोग

अपामार्ग के क्षार को शहद से मिलाकर सेवन करें तो पुराना भयङ्कर श्वास दूर होता है ॥ ६७ ॥ अपामार्ग के क्षार से पकाया हुआ तेल कान में डालने से बहरापन (कान का ढोल Drum जब मोटा हो तब अपामार्ग तेल दें । परदा फट जाये तो शम्बूक तेल दें) शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ६८ ॥ त्रिकुटा का चूर्ण, अपामार्ग का क्षार, अजनायन का चूर्ण इन सब को एकत्र मिलाकर सेवन करें तो शूल को तथा भयङ्कर आध्मान को शीघ्र ही नाश करता है ॥ ६९ ॥ अपामार्ग का क्षार हड़ताल के साथ मिलाकर लेप करें तो पुराने भयङ्कर लिंग के मस्मो को भी नाश करता है ॥ ७० ॥ अपामार्ग के क्षार का चूर्ण मनसिल के साथ मिलाकर गौ मूत्र में पीसकर लेप करे तो शीघ्र ही शिवत्रकुष्ट को नाश करता है ॥ ७१ ॥ अपामार्ग के क्षार का चूर्ण जौखार के साथ मिलाकर खावें तो अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र का शीघ्र ही नाश होता है ॥ ७२ ॥ अपामार्ग का क्षार, त्रिकुटा, सेंधालवण

[इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करने से गुल्म तथा भयङ्कर प्लीहा दूर होती है ॥ ७३ ॥

अथ अर्कक्षार के नाम लिखते हैं

अर्कक्षार, रविक्षार, भस्करक्षार, खड्गजूर्धनक्षार तथा मित्रक्षार ये सभी नाक आर्क के क्षार के हैं ॥ ७४ ॥

अर्कक्षार के गुण

अर्कक्षार तीक्ष्ण है, गुल्म, प्लीहा आदि तथा कास श्वास को नाश करता है । यह पाचन तथा दीपन है ॥ ७५ ॥

अर्कक्षार का रोगों पर प्रयोग

आककाक्षार, सेंधालवण, नौसादर इन्हें एकत्र करके प्रयोग करें तो इससे अजीर्ण का शीघ्र ही नाश होता है तथा जाठराग्नि दीप्त होती है ॥ ७६ ॥ आक के पत्तों को सेंधानमक के साथ एक हांडी में बंद करके अन्तर्धूम भस्म कर लें । इस क्षार को दही के जल से (या द्वाछ से) पिया जाये तो गुल्म तथा प्लीहा को नाश करता है ॥ ७७ ॥ त्रिकुटा चूर्ण, अर्कक्षार समभाग लेकर शहद में मिलाकर खावें तो काम तथा भयंकर श्वास को नाश करता है ॥ ७८ ॥ आक का खार, सेंधालवण, जौखार इन सब को एकत्र कर सेवन करें तो यकृत की वृद्धि (जिगर बढ़ने) को शीघ्र ही दूर करता है ॥ ७९ ॥

अथ तिलक्षार के नाम लिखते हैं

तिलक्षार, तिलभूति, होमधान्याविभूति तथा पवित्र क्षार ये

सब तिल के क्षार के नाम हैं ॥ ८० ॥

तिलक्षार के गुण

तिलक्षार तीक्ष्ण है, मूत्ररोध को नाश करता है। पथरी को नाश करता है, प्लीहा का नाश करता है तथा ब्रणों को फाड़ देता है ॥ ८१ ॥

इसका रंगों पर प्रयोग

त्रिकुटाचूर्ण, तिलक्षार, सेंधालवण इन्हें एकत्र करके सेवन करें तो जाठराग्नि को शीघ्र ही दीप्त करना है ॥ ८२ ॥ अङ्गोल (डेग यू० पी० नाम) का क्षार, तिल का क्षार इन दोनों को सम भाग लेकर शहद में खावें ऊपर से जल पीवें तो मूत्र की रुकावट दूर हो जाती है ॥ ८३ ॥ तिलक्षार, जौखार इन दोनों को नींबू के स्वरस से सेवन करें तो वृक्कशूल (गुर्दों के दर्द) को ऐसे नाश करता है जैसे सूर्य अन्धकार को ॥ ८४ ॥ तिलक्षार, यवक्षार, केले का क्षार तीनों को मिलाकर मधु से खावें तो शीघ्र ही अश्मरी (पथरी) नष्ट होती है ॥ ८५ ॥ तिलक्षार एक माशा, सौचल लवण के माथ मिलाकर तक्र से या शहद से खावें तो अश्मरी को शीघ्र नाश करता है ॥ ८६ ॥ तिलक्षार, आंवले का क्षार इनको गोखरु के क्वाथ से पीवें तो मूत्र शर्करा दूर होती है ॥ ८७ ॥ तिलकाक्षार, जौखार दोनों को मिलाकर जल से लेप करें तो ब्रणशोथ को फाड़ने में परमोत्तम है ॥ ८८ ॥ तिलक्षार एक माशा (जल से) खावें तो मांस भोजन से होने वाले अजीर्ण का नाश करती है ॥ ८९ ॥ सरफौंका का क्षार से तिलकाक्षार मिलाकर एक माशा भर सेवन किया जाये तो

गुल्म रोग को नाश करता है ॥ ६० ॥

अथ स्नुहीक्षार के नाम लिखते हैं

स्नुहीक्षार, स्नुहीक्षार, स्नुकक्षार, वज्रक्षार तथा सेंहुंडक्षार ये सब नाम थोहर के क्षार के हैं ॥ ६१ ॥

इसके गुण

स्नुहीक्षार तीक्ष्ण है, सब उदर रोगों को नाश करता है । गुल्मशोथ, विपूची, अजीर्ण, शूल, यकृद्दोष, श्वाम इन रोगों को नाश करता है तथा अग्नि को दीपन करता है ॥ ६२-६३ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

स्नुहीक्षार, शंखभस्म, मज्जा तथा जौखार इन सब को मिलाकर सेवन करें तो भयंकर अजीर्ण तथा विषूचका का शीघ्र नाश होता है ॥ ६४ ॥ पुराने पांच प्रकार के गुल्मों का नाश हो जाता है । ग्रहणी का नाश होता है तथा भयंकर शूल का भी नाश हो जाता है ॥ ६५ ॥ स्नुहीक्षार, सेंधालवण, मौंचललवण, त्रिडलवण, मज्जी, जौखार, सुहागा इन के साथ मिलाकर सेवन किया जावे तो थोथ, प्लीहा तथा उदर रोगों का नाश होता है ॥ ६६ ॥ त्रिकुटा चूर्ण, स्नुहीक्षार इन दोनों को मधु से मिलाकर सेवन करें तो शीघ्र ही भयंकर श्वास नष्ट होता है ॥ ६७ ॥ थोहर का क्षार, त्रिफला चूर्ण, सेंधालवण, चीता इन सबका चूर्ण खाने से अग्निमाँद्य, यकृत प्लीहा और उदर रोगों का नाश होता है ॥ ६८ ॥

अथ पलाशक्षार के नाम लिखते हैं

पलाशक्षार, किंशुकक्षार, पर्णक्षार तथा त्रिपर्णक्षार यह सब

नाम ढाक के क्षारके हैं ॥ ६६ ॥

इसके गुण

पलाश का खार अग्निदीपक, गुल्म प्लीहादि नाशक, यकृद्-
वृद्धिनाशक तथा मूत्रकृच्छ्र और पथरी को नाश करता है ॥ १००

इसका रोगों में प्रयोग

पलाशक्षार, पीपली का चूर्ण, शद्ध से मिलाकर
खावें तो अग्निदीप्त करता है, गुल्म और प्लीहा को
नाश करता है ॥ १०१ ॥ पलाशक्षार के जल से गौ का
घी पका लेवे । इसे सेवन करने से भयंकर रक्तगुल्म शान्त होता
है ॥ १०२ ॥ केले का क्षार से मिलाकर पलाशक्षार यदि सेवन किया
जाये तो अशमरी को तथा भयंकर मूत्रशर्करा को शीघ्र ही नाश
करता है ॥ १०३ ॥ पलाशक्षार के जल से गौ का घी पकालें । उसे
सेवन करने से गांठदार वीर्य शीघ्र ही अच्छा होकर सन्तान का-
रक हो जाता है गांठदार या अति गाढ़े वीर्य से भी सन्तान उत्पन्न
नहीं होती । क्यों कि उसमें कीटाणुगति नहीं कर सकते । इसी
लिये ऐसे गाढ़े वीर्य से गर्भाधान (भोग) करने के बाद योनि के
मध्य में गरम जल डालें । इस से वे वीर्य के कीटाणु गति
करेंगे और तब गर्भाशय में पहुँच कर सन्तान हो सकेगी)
॥ १०४ ॥ यवक्षार , पलाशक्षार दोनों को समभाग लेकर जल आदि
से सेवन करे तो ये अति भयंकर प्लीहा को शीघ्र ही दूर करता
है ॥ १०५ ॥ अपामार्गक्षार पलाशक्षार इन दोनों को सेवन करने से
अत्यन्त ही कठिन हुआ २ अग्रमांस (पेट के ऊपर के भाग में
जो मांस आगे को बढ़कर उठा रहता है) नष्ट हो जाता है ॥ १०६ ॥

अथ चिञ्चा(इमली)क्षार के नाम लिखते हैं ।

चिञ्चाक्षार, अम्लिकाक्षार, चिञ्चिकाक्षार, अम्लीकाक्षारक चिञ्चाभूति, चिञ्चकाभसित, चिञ्चाभस्म, अम्लिकाभसित, तथा तिलिन्डी भस्म ये सब नाम इमली के खार के हैं ॥ (इमली की छाल को जलाकर उसकी राख से विधि पूर्वक क्षार बनाले इसी प्रकार पलाश की संपूर्ण लकड़ी पत्ते आदि को जलाकर तथा थोहर, आक, अपामार्ग, तिल, इनके सारे पौधे को लेकर जला कर, विधि पूर्वक जल में घोले , छान, अग्नि पर पकाकर क्षार बनाले । इसी प्रकार केले के पौधों को खण्ड २ कर यत्न से सुखाकर जला लें और क्षार बना लें ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

इसके गुण

इमली का क्षार अग्निमांघ नाशक है , गुल्म तथा शूल को हरता है , मूत्र कृच्छ तथा अश्मरी को नाश करता है ॥ १०६ ॥

इसका आमयिक प्रयोग

रुन्दीक्षार , आक का क्षार ,इमली का क्षार , तथा शंखभस्म मिलाकर सेवन करे तो विषूची को शीघ्र नाश करता है ॥ ११० ॥ शूल अग्निमांघ , अजीर्ण तथा विशेषकर गुल्म रोगों को नाश करता है ॥ १११ ॥ पांचों लवण, जीरा चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण इन सब को एक भाग लेकर एक भाग इमली का खार मिलाकर सेवन करे तो ग्रहणी रोग का नाश करता है ॥ ११२ ॥ अरुचि भयंकर शूल, आध्मान, परिणामशूल, विष्टब्धाजीर्ण को नाश करती है ॥ ११३ ॥ इमली का क्षार, दाख, खण्ड इन को मिलाकर चाटें तो विशेष करके अरुचि के नाश करता है ॥ ११४ ॥ इमलीक्षार

त्रिकुटा चूर्ण से मिलाकर सेवन करें तो यह अग्निमांश तथा भयङ्कर वाताजीर्ण को शीघ्र ही नाश करती है ॥ ११५ ॥ इमली का जार, मरच का चूर्ण तथा शंख भस्म मिला कर सेवन करें तो शिशुओं के अतिसार ग्रहणी को नाश करता है ॥ ११६ ॥

अथ सैधवलवण के नाम लिखने हैं

सैधव, सिन्धुलवण, सिन्धूत्थ, सिन्धूदेशज, सिन्धूपल, सिन्धुभव, सिन्धुमन्थज, शीतशिव, शीतशीवनादय, शिलात्मक, शिव, सिताशिव, तथा वशिर ये सब नाम सैधानमक के हैं ॥ ११७—११८ ॥

इसके गुण

सैधवलवण हृदय को हितकारी, वृष्य, नेत्र हितकर, रुचिप्रद, पाचन, दीपन, त्रिदोषनाशक, व्रणदोषहर, शीतवीर्य, स्निग्ध, लघु, विबन्धनाशक है । मृदुवीर्य है तथा पित्त नाश करता है ॥ ११९—१२० ॥

सैधव का उत्पत्तिस्थान

पंजाब में सिन्धु नदी के पूर्व भाग में विशेष करके, पर्वतों के अन्दर खान में से यह सिन्धूपल या सैधालवण उत्पन्न होता है । (यह खान से पत्थर रूप में निकलता है, यह बनावटी नहीं है) ॥ १२१ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

सैधालवण का धतूरे की जड़ से पीसकर गरम कर्क के लेप करें तो व्रणशोथ को नाश करने में अति श्रेष्ठ है ॥ १२२ ॥

नारिकेल लवण

एक खूब पका हुआ, पानी से भरा हुआ नारियल लें। उसकी जटाओं (बालों) को छीलकर वृद्धिपत्र से (सुए आदि से) उसकी आंख को फोड़ लें ॥ १२३ ॥ छिद्र में से नारियल का सारा पानी निकाल दें। फिर दस तोला सेंधा लवण चूर्ण करके उसमें भर दें ॥ १२४ ॥ उस छिद्र में से नमक भर चुकने के बाद उस छिद्र को रोककर बन्द कर दें। फिर एक कपड़ा उस पर लपेट दें और उस पर जल से भीगी हुई मिट्टी का लेप करके घूप में सुखालें। फिर उसे मट्ठापुट में रखकर फूंक लें। स्वाँग-शीतल होनेपर उसे सावधानीसे निकाल लें ॥ १२५-१२६ ॥ फिर नारियल के कपाल (ऊपर के कठोर गले हुए छिलके) को छोड़कर शेष काले रंग के सेंधा लवण को संभाल कर पीसकर रख लें। इसे ही नारिकेल लवण कहा जाता है ॥ १२७ ॥

इसके गुण

नारिकेललवण पाचक, पित्तनाशक, अम्लपित्तहर, पित्त-शोष से होने वाले शूल (gall stone colic) को नाश करता है ॥ १२८ ॥ वातज, पित्तज, कफज तथा सन्निपातज शूल तथा परिणामशूल इन सब शूलों को यह नाश करता है ॥ १२९ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

यह नारिकेललवण दो माशा ले, नौसादर दो रत्ती तथा यव-चारतीन रत्ती लें। इनको मिलाकर खावें तो पित्तशोष से होने वाले शूल को नाश करता है (gall stone) पित्ताशय की पथरी को सदा के लिए नाश करने वाली ऐसी दवा और कोई नहीं है।

यह शून्य यकृत के नीचे पित्ताशय में पित्त के सूख जाने पर होता है । (अनुपान में जलादि देना चाहिये) ॥ १२० ॥

अर्कलवण

सैन्धालवण का बारीक चूर्ण, आक के पत्ते दोनों को सम भाग लेकर एक पात्र में डालकर मन्धि तन्दकरके भस्म करले इसे स्वांगशीतल होने पर निकाल ले ॥ १३१ ॥ इसे खरल में पीसले । यही मैल रंग का लवण वैद्यों ने अर्कलवण कहा है ॥ १३२ ॥

इसके गुण

यह यकृत्प्लीहा, और उदर रोगों को नाश करता है, रुचि-प्रद है तथा मल को भेदन करता है । इसे विद्वानों ने अर्कलवण कहा है ॥ १३३ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

अर्कलवण आधा माषा लें । इसे गरम जल से सेवन करें तथा पथ्य भोजन करें तो वातिक, श्लैष्मिक, ज्वर सहित या ज्वररहित कोष्ठ बद्धता को, जिसमें शौच करते समय चीखें मारनी पड़ें तथा जो स्पर्शमें कठिन हो अतीसारादि रहितहो, ऐसे यकृद्वात्युदर, तथा नये प्लीहोदरको नाश करता है ॥ १३४-१३५ ॥

अब सामुद्रलवण के नाम लिखते हैं

सामुद्रलवण, समुद्रजलसंभव, समुद्रज, सागरज, सामुद्रक

ये सब नाम समुद्रलवण के हैं ॥ १३७ ॥

इसके गुण

सामुद्रलवण हृदय के लिये हितकर, रुचिदायक, स्निग्ध, दीपन, क्षारयुक्त, भेदक, वातनाशक है तथा न अति गरम न अति ठण्डा है ॥ १३८ ॥

सामुद्र लवण का परिचय

सामुद्र जलके सूख जाने से जो लवण शेष रह जाता है उसे ही सामुद्र लवण कहते हैं ॥ १३९ ॥

अब विडलवण के नाम लिखते हैं

विड, कृत्रिम, सुपाक्य, द्राविड, आसुर, विट धूर्त, तथा कृतकलवण ये सब विडनमक के नाम हैं ॥ ४० ॥

इसके गुण

विडलवण, रुचिदायक, तीक्ष्ण, उष्ण, सूक्ष्म, लघु, अग्नि-दीपन, क्षारयुक्त, हृदयके लिये हितकर, ऊपर को कफ को लेआता है तथा नीचे की वात को अनुलोमन करता है ॥ १४१ ॥ अजीर्ण आनाह, विष्टम्भ इनको नाश करता है। शूल तथा विबन्ध को नाश करता है। हृदय के गौरव को दूर करता है तथा वात को नाश करता है ॥ १४२ ॥

विडलवण का प्रथम निर्माण प्रकार

रोमक नमक २८ सेर, आँवला चूर्ण ५० तोला, दोनों को

भली प्रकार पीस कूटकर घोटकर मिला ले । फिर इस सारे मित्तल चूर्ण का चौथाई भाग लेकर एक तंग गले की हांडी में जिस पर कपड़ मिट्टी की हुई हो, डालकर चूल्हे पर रखे ॥ १४३-१४४-१४५ ॥ फिर तेज अग्नि जलाकर दो घण्टे पकावे । जब हांडी का मध्य भाग लाल रंग का हो जावे ॥ १४६ ॥ तो शेष चूर्ण को क्रमशः उसमें डाले, फिर ६ घण्टे तक तेज आँच से पकावे ॥ १४७ ॥ लगातार तेज आँच देता जावे । स्वांगशीतल होने पर २४ सेर विडलवण को निकाल लेवे ॥ १४८ ॥ अब इसे सब योगों में प्रयुक्त करे ॥ १४९ ॥

विडलवण का द्वितीय निर्माण प्रकार

रोमक लवण ८० तोला, आँवला चूर्ण दस तोला ॥ १५० ॥ उसी प्रकार से कपड़ मिट्टी की हुई हांडी में डालकर तेज आँच से दो पहर (६ घंटे तक) पकावे । स्वांगशीतल होने पर निकाल लेवे ॥ १५१ ॥ विडलवण के बनाने का यह सुगमउपाय अनुभव करके प्रकाशित किया गया है ॥ १५२ ॥

अब सौवर्चल लवण के नाम लिखते हैं

सौवर्चल, रुचक, रुच्यक, हृद्यगंधक, अक्ष, कृष्णलवण तथा काललवण ये सब नाम सौचललवण के हैं ॥ १५३ ॥

इसके गुण

सौचलवण हृदय के लिये हितकर, अति पाचन, तथा दीपन है, रुचिकारक, मलभेदक, विशद तथा वातनाशक हैं ॥ १५४ ॥

स्नेहयुक्त, लघु, गुल्मनाशक, ऊर्ध्ववात का अनुलोमक, विबन्ध, आनाह तथा शूलनाशक है । कृमि तथा अरुचि को नाश करता है ॥ १५५ ॥

सौचललवण की निर्माण विधि

शुद्ध मज्जीक्षार चार पल ले, उसे आठ पल जल में यत्न से घोल लेवे । जितना घुल जाये उतना सेंधालवण इस मज्जा के द्रव में घोल लेवे ॥ १५७ ॥ फिर इस घोल को शुद्ध पात्र में रख कर आग पर रखे । तीव्राग्नि में पानी को जला देवे ॥ १५८ ॥ जब जल मारा सूख जाय उसके बाद भी थोड़ा देर और पकावे । पाक शेष हो जाने पर हचक लवण (सौचल लवण) को निकाल लेवे ॥ १५९ ॥

अथ रोमक लवण के नाप

रोमक, रोमलवण, रौम, रौमक, शाकम्भरीय, गड, साम्भर तथा सम्भरोद्भव ये नाम रोमक लवण के हैं ॥ १६० ॥

रोमक लवण की उत्पत्ति का स्थान तथा निरुक्ति

पहले यह क्योंकि रोमा नदी (राजस्थान की नदी) के पास ही उत्पन्न होता था । इसलिए इसे रोमक लवण कहते हैं ॥ १६१ ॥ क्योंकि शाकम्भर भील (सांभर भील) के जल से निकाला जाता है, इसलिए वैद्यों ने इसे शाकम्भरीयलवण कहा है ॥ १६२ ॥

इसके गुण

यह सांभर लवण मलका भेदक, अति अग्नि दीपक है । अतिउष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण पित्ताकारक तथा पाक में कटु है ।

॥१६३॥ मल दोष को हरने वाला, सूक्ष्म, अर्शनाशक, वात-नाशक, कफनाशक, विशद तथा कोष्ठ शुद्धि करने वाला है।
१६४॥

अथ लवणद्रावक के नाम लिखते हैं

लवणद्रावक, लवणाम्ल, पटुद्राव, पटुकद्रावक ये सब नाम लवणद्रावक के (Hydrochloric Acid) या नमक के तेजाब के हैं ॥ १६५ ॥

लवणद्रावक का निर्माण प्रकार

बारीक चूर्ण किये हुए सेंधालवण को एक पात्र में डालकर आग पर भूतलें। जब जल का अंश सूख जाये तो चूल्हे से उतार लेवे ॥ १६६ ॥ भुने हुए चूर्ण रूप इस सेंधालवण को छः भाग लेकर एक कांच कुप्पी में डालकर शुद्ध गन्धकद्राव को ११ भाग लेकर धीरे धीरे उसमें डाल दे। फिर उसे चूल्हे पर रखे ॥ १६८ ॥ फिर इस कुप्पी में एक शीशे की नाली का मुंह जोड़ देवे, उस नाली का दूसरा मुंह एक ऐसे शीशे के घड़े में लगा देवे कि जिसका आधा भाग पानी से भरा हो। यह शीशे का घड़ा एक और पानीसे भरे हुए पात्र के मध्यमें रखा हो। फिर उस कुप्पी को अत्यन्त मन्दाग्नि से पकावे ॥ १७० ॥ इस प्रकार तिरछी होकर नाली में से आती हुई भाफ नीचे शीशे के घड़े में जाकर जल रूप में बदल जायेगी। यही लवणद्राव कहाना है ॥ १७१ ॥ (इसे ही नमक का तेजाब या Hydrochloric Acid कहते हैं।

सजल लवणद्रावक का निर्माण प्रकार

२३ भाग शुद्ध ग्विचे हुए जल को एक कांच पात्र में डाले ॥ १७२ ॥ फिर १० भाग शुद्ध लवण द्राव उपमें डाले ॥ १७३ ॥ यही सजल लवण द्राव (Dilute Hydrochloric Acid) कहाता है जो विविध रोगों को दूर करता है ॥ १७४ ॥

सजल लवणद्रावक के गुण

सजल लवण द्रावक तीक्ष्ण, जाठराग्नि दीपक, बलदायक, मूत्रदोष नाशक तथा यकृद् दोष का दूर करता है ॥ १७५ ॥

सजल लवणद्रावक की मात्रा

५ बून्द से १६ बून्द तक लवणद्रावक को लेकर अत्यधिक जल में मिलाकर सेवन करावें ॥ १७६ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

आमाशय के अन्दर पहुँचे हुए अन्न के दूसरे विपाक में जब लवणाम्ल की आमाशय में कमी होती है तब । अजीर्ण उत्पन्न होता है । उस अजीर्ण में भोजन खाये हुए रोगी को दस बून्द तक लवणद्राव [सजल] देवे ॥ १७८ ॥ इसके पीते ही गात्रों का गौरव तथा अजीर्ण नाश होता है तथा शीघ्र ही अन्यन्त भूख लगती है ॥ १७९ ॥ लवणद्रावक की अधिकता से यदि आमाशय में अजीर्ण हो तो भोजन के आरम्भ में लवणद्राव को प्रयोग करे । १८० । जब मूत्र में क्षार आते हो तथा क्षार मेह होता लवणद्राव को युक्ति से सेवन करें । इससे वे रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १८१ ॥ लवणद्राव के सेवन करने से वह आंत्रिक

ज्वर typhoid fever] नष्ट होता है जिसमें जिह्वा सूखती हो, स्वर बैठ गया हो, मृदुप्रलाप हो, हृदय दुर्बल हो, नाड़ी स्पष्ट न अनुभव हो कभी कभी नाड़ी तेज चल पड़ती हो तथा मूत्र के साथ दुर्गन्धादि निकलती हो ॥ १८३ ॥ लघणद्राव को लगातार उचित मात्रा में सेवन करें तो अफीम खाने से होने वाली दुर्बलता निश्चित नाश होती है ॥ १८४ ॥ सजललवणद्राव को अत्यधिक जल मिलाकर सेवन करें तो अरूचि तथा अग्नि-मांश को निश्चित नाश करता है ॥ १८५ ॥

श्रीविद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी के भाषानुवाद में द्यारादि विज्ञानीय नामक यह चौदहवां तरंग समाप्त हुआ ।

अथ सुवर्ण विज्ञानीय पंचदश तरङ्ग

धातु शब्द का निर्वचन

क्योंकि खालित्य अर्थात् गंजापन पालित्व अर्थात् बालों का श्वेत होना, कृशता तथा बुढ़ापा इन सब को दूर करके ये देह को धारण किये रहती है इसलिए ही इन्हें 'धातु' कहते हैं । १

धातुओं के नामों की गिनती

सुवर्ण, चांदी, ताम्बा, बंग, सीसा, यशद, तथा लोह के ये सात धातुयें हैं । २ ॥ सुवर्ण, चांदी, ताम्बा, बंग, सीसा जस्त तथा लोहा ये लोहसप्तक या सप्त लोह भी कहात हैं ॥ ३ ॥

धातुओं का सामान्य प्रथम शोधन प्रकार

सभी धातुओं के सूचीबद्ध बारीक बारीक पत्र बनाले ।

जब तक वे अग्नि के समान लाल रंग के न हो जायें तब तक आग में तपावै ॥ ४ ॥ तपा तपा कर उन्हें कांजी में तीन २ बार बुझावें । फिर तपा तपा कर तीन तीन बार तक्र में, कुलथी के क्वाथ में, गोमूत्र में तथा तित के तेल में क्रमशः बुझालेव । इस प्रकार से स्वर्णादि सातों धातुओं का शोधन हो जाता है । यह संक्षेप से सामान्यशोधन कहा है ॥ ५-६ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

सातों धातुओं को तपा तपा कर केले की जड़ के स्वरस में सात सात बार बुझावें तो सभी धातुएँ शुद्ध हो जाती है ।

धातुओं का सामान्य मारण प्रकार

मनसिल, गन्धक, आक कादूध इन तीनों को सम भाग लेकर एक भाग शुद्धधातु से मिलाकर खरल में खूब पीस लें, फिर संपुट कर बनोपलों की आग में पुट दें । इसी प्रकार बारह बार करें तो उत्तम रूप से अवश्यही सातों धातुओं की भस्म होती है ॥ ८ ॥

स्वर्ण के नाम

स्वर्ण, सुवर्ण, द्रविण हिरण्य, कल्याणक, कांचन, अग्निवर्ण, मनोहर, हेम भूष्यणार्ह, अग्निबीज, कनक, कौन्त भृङ्गार मार्ग ल्यक, जाम्बव, जाम्बूनद, भर्म जातरूप, चाम्पेयक, लोहवर, रुक्म, चामीकर, हाटकसंज्ञा, ये सभी नाम सुवर्ण के हैं ॥ ९-१० ॥

ग्राह्य सुवर्ण के लक्षण

जो आग में तपाने से उदय होते हुए सूर्य के समान लाल रंग का हो जो कसौटी के पत्थर पर घिसने से केसर के चूर्ण

के समान रंग का हो, जो तुला पर रखने से भारी हो, जो भिगध हो, ऐसा स्वर्ण उत्तम माना है । ११

दूसरा लक्षण

जो केमल हो, लाल पीली आभा वाला हो, स्निग्ध हो, तांबा तथा चांदी से मिला हुआ न हो, सब धातुओं से भारी हो, ऐसा स्वर्ण उत्तम होता है । इसे ही ग्रहण करना चाहिए ॥१२॥

अग्राह्यस्वर्ण का स्वरूप

जो स्वर्ण कठिन हो, हल्का हो, रूखा हो, कसौटी पर घिसने से श्वेत रंग का हो । काटने से श्वेत रंग का हो, आग में तपाने से भी श्वेत रंग का हो । चांदी तथा तांबे से युक्त हो, ऐसा स्वर्ण ग्रहण करना उचित नहीं है ॥१३॥

स्वर्ण शोधन का प्रयोजन

क्योंकि अशुद्धस्वर्ण बुद्धि बलादि का नाश करता है तथा बहुत से रोगों को उत्पन्न करता है । इसलिए स्वर्ण को शुद्ध करना चाहिए ॥१४॥

स्वर्ण का प्रथम शोधन प्रकार

स्वर्ण को एक कर्ष लेकर उसके पतले पतले सुई से छेदने योग्य लंबे चौड़े पन्ने बना ले ॥१५॥ फिर पंचमृत्तिकाओं को (बांशी की मिट्टी, धुआ, गेरु, ईट और नमक को) नीबू आदि की खटाई से पीस कर उन पत्तों पर लीप दे । अब इन पत्तों को कपोतपुट में रख मर पुट देवे ॥१६॥ इस प्रकार सात पुट देने से ही स्वर्ण उत्तमता से शुद्ध हो जाता है । चांदी तथा तांबा आदि को खोट (श्यामता) भी दूर हो जाती है ॥१७॥

द्वितीय शोधन प्रकार

सोने के पत्र एक कर्ष के लेकर संधानमक, अरने उपलों की भस्म तथा खट्टे नीबू आदि के रस में पीसकर इन्हें सुखालें। फिर कोयले की आग में इन पत्रों को शराब में संपुट करके रख दें फिर इस प्रकार कुक्कुट पुट में आग दें। इस प्रकार स्वर्ण षोडशवर्ण अर्थात् १६ आने सर्वथा शुद्ध हो करजाता है (24 Carrot) का नैशनल बैंक के सदृश निर्मल हो जाता है) ॥१८॥१६॥

तृतीय शोधन प्रकार

सोने के सूची बेध्य (अति बारीक) पत्ते बनाकर, कैची से काट कर अत्यन्त छोटे २ कणों बना लेवे ॥२०॥ फिर एक कांच पात्र में उन को डाल दे। इस कांच पात्र के बाहर मिट्टी लिपी हुई हो। इस पात्र को अब एक तिपाई पर रख कर सुगादीप से नीचे से अग्नि दे ॥२१॥ फिर लवणद्राव (नमक का तेजाब) एक भाग तथा सारकद्राव (शोरे का तेजाब) चौथाई भाग मिला कर रखले इन द्रावों को धीरे २ उस प्याले में [वृंद २ कर के] डाले तब तक डालता जावे जब तक कि वह सारा सुवर्ण द्रव हो जावे। फिर कुछ काल तक पकावे जब तक कि आर्थिक जलका अंश सूख जावे ॥२३॥ फिर उस में जल डाल कर कुछ देर पकावे फिर सजल चणकाम्ल (oxalic Acid dilute) उस में डाले। इस अम्ल को धीरे २ तब तक डालता जावे जब तक कि अत्यन्त सूक्ष्म २ स्वर्ण के कण उस पात्र में नीचे न बैठ जावें ॥२५॥२५॥ उस के बाद इसे स्वर्ण कणों को जल से तब तक धोता जावे जब तक कि स्वर्ण कणों में से अम्लता दूर न हो जावे। (litimeus paperr वर्णकपत्र डाल कर परीक्षा कर ले कि अम्ल उस में अभी है

या नहीं) फिर अच्छी प्रकार से धूप में सुखा कर विशुद्ध स्वर्ण को संभाल कर रखें ॥२६॥

॥ विशुद्ध सुवर्ण का प्रयोगक्रम ॥

विशुद्ध स्वर्ण को चाहे तो (शिला आदि पर) घिस कर अथवा मंडल (पत्र, वर्क) बना कर नाना रोगों में प्रयोग करे ॥२७॥

॥ घिसे हुए विशुद्ध सुवर्ण के गुण ॥

विशुद्ध स्वर्ण को घिसकर सेवन करे तो विष की बाधा को दूर करता है । मधुर है, शीतल है, नेत्र हितकारक है, गर्भस्थापकों में उत्तम है ॥२८॥ पित्तरोग शान्त करता है, हृदय की दुर्बलता को हरने में श्रेष्ठ है, अन्य औषधियों के साथ मिलाकर देन से विविध गुणों को दूर करता है ॥२९॥

सुवर्ण मण्डल के नाम

सुवर्ण मण्डल , सुवर्ण बण्डल , सुवर्ण पत्रक, सुवर्ण पटल, स्वर्ण दल ये सभी नाम सोने के वर्क के हैं ॥३०॥

सुवर्ण मण्डल के गुण

सोने के वर्क आयुरक्षक, अग्निमांश नाशक आक्षेप राग को शान्त करने वाले, नेत्रहितकारी बीर्यवृद्धि करने में अत्यन्त श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ अम्लपित्तनाशक, हृदय के लिये हितकर, विपाक में मधुर तथा शीतल या शीतवीर्य है । हिचकी, आनाह, विष, श्लेष्मा, क्षय, शूल तथा व्रणों को नाश करने वाले हैं ॥ ३२ ॥

सुवर्ण पटल की प्रयोग विधि

सुवर्ण के वर्कों को भली प्रकार से मिथ्री के साथ पीसलें

तो उन उन रोगों पर उन उन रोगों की दवाईयों के साथ मिला-
कर इन्हें दे तो वे वे रोग नष्ट होते हैं ॥ ३३ ॥

अब स्वर्णलवण के नाम लिखते हैं

सुवर्णलवण, स्वर्णलवण, हिरण्यलवण ये सब नाम स्वर्ण-
लवण Aurum et sodium chloridum gold chloride)
के हैं ॥ ३४ ॥

स्वर्ण लवण बनाने की विधि

स्वर्ण शोधन का तापरा विधि से शुद्ध किये स्वर्ण चूर्ण को
तीन भाग लें । इसे एक उत्तम कांच पात्र में डालकर सुराप्रदाप
(Spirit lamp) पर रखें । नीचे मन्द मन्द अग्नि दें ॥ ३५ ॥
फिर लवणाम्ल चार भाग, शाराम्ल एक भाग इन दानों को
मिला लें । इस अम्ल को अब धीरे धीरे बूंद बूंद करके परन्तु
लगातार उस सुवर्ण पर डालते जायें । जब तक सोना द्रव हो
जावे तब तक डालते जायें ॥ ३६ ॥ जब सुवर्ण पिघल कर
द्रव हो जाये तो उसमें दशभाग शुद्ध सेंधानमक डाले फिर
आग पर तथा कुछ धूप से जल के सूख जाने पर शेष नारङ्गी रंग
के (लाल पीले अर्थात् नारंगी रंग के) स्वर्णलवण (gold-
chloride) को उतार कर रखें ॥ ३७ ॥ इसे कांच की शीशी में
डालकर रखें । जब किसी योग में डालें या रोग पर प्रयोग करें
ता इसे जल में घालकर प्रयोग करें ॥ ३८ ॥

सुवर्ण लवण के गुण

सुवर्ण लवण वृष्य है, त्रिदोषों के कोप को नाश करता है,
कसैला है, मधुर है, कड़वा है । यह जल में घुल जाता है ॥ ३९ ॥

इसे सेवन करें तो नारियों के आर्तव की रुकावट को दूर करता है, मधुमेह को दूर करता है, पुराने किरंग रोग को दूर करता है। अपस्मार, उप्रवेग वाता श्वास, नपुंसकता तथा उन्माद रोग को नाश करता है ॥ ४० ॥

सुवर्ण लवण की मात्रा

रक्ती के ५०वें भाग से लेकर रक्ती के २०वें भाग तक स्वर्णलवण को बलकालादि की अपेक्षा से प्रयोग करना चाहिये ॥ ४१ ॥

इसका प्रयोग क्रम

सुवर्ण लवण एक रक्ती ले, इसे ढाई तोला (एक औंस) जल में मिलाकर घोल ले ॥ ४२ ॥ उम जल में से १२ बूँदें लेकर (फिर जल में मिलाकर) प्रथम निर्दिष्ट रोगों में देवे ॥ ४३ ॥ इस सुवर्ण लवण को आसव (सारस्वतारिष्ट) शर्बत, जलादि में मिलाकर (कांच पात्र में डालकर) देवे। इसे रसौषधों में मिलाकर कभी न देवे (धातु में इसे मिलाकर दोगे तो यह Decompose या विश्लिष्ट होकर निर्गुण बन जायेगा) ॥ ४४ ॥

नोट—सुवर्ण लवण को सदा अकेले ही जलादि में घोलकर देना चाहिये, किसी अन्य औषध आदि से मिलाकर देना हानिकारक है।

अब सुवर्णमारण का प्रथम प्रकार लिखने हैं—

शुद्ध स्वर्ण एक कर्ष (दो तोला) लें। एक प्याली में ठाली में) डालकर बंकनाल से कोयलों की अग्नि प्रदीप्त

करके उसपर रख स्वर्ण को पिघलावे ॥ ४५ ॥ जब सुवर्ण पिघल जावे तो उसमें पारे की भस्म दो तोला डाल दें। फिर दोनों को नीचे उतार खरल में डालकर घोटें। अब इसमें जम्बीरी नीबू का रस डाल २ कर खूब घोटकर बारीक चूर्ण कर लें ॥ ४६ ॥ फिर स्वर्ण के बराबर शुद्ध हिंगुल का चूर्ण डाल दे। खूब घोट कर सम्पुट में रखी २ बार कुक्कुटपुट में फूंक देवे। (प्रतिवार हिंगुल तो डालता जावे पर फिर कभी पारे की भस्म न डाले)। इस प्रकार १२ पुट देने से ही सुवर्ण की भस्म अति शीघ्र हो जाती है और वह अत्यन्त बारीक तथा केसर के रङ्ग की निश्चन्द्र भस्म होती है ॥ ४८ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

विशुद्ध स्वर्ण के पत्र एक कर्ष (दो तोला) लें। हिंगुल से से निकाला हुआ पारा या शुद्ध किया हुआ पारा दो तोला लें। दोनों को एकत्र करके दृढता से मर्दन कर लें ॥ ४९ ॥ फिर नीबू के जल से अच्छी प्रकार घोटें और शुद्ध जल से बार २ धोकर नीबू की खटाई निकाल दें (इससे सांभे की रंग की चमक बढ़ जाती है)। फिर शुद्ध हिंगुल, शुद्ध गंधक, शुद्ध मनसिल तथा शुद्ध नौसादर (प्रत्येक दो तोला) लेकर स्वर्ण में मिलाकर खूब घोटें। फिर नीबू का रस या खटाई अम्लवर्ग की) डालकर खूब घोटें। फिर धूप में सुखा लें। फिर घोटें और बारीक चूर्ण कर लें ॥ ५०-५१ ॥ फिर तब तक लघुपुट देते जावें जब तक कि वह निश्चन्द्र भस्म न हो जावे। इस प्रकार थोड़े से (सात आठ) पुटों में ही स्वर्ण की भस्म हो जाती है ॥ ५२ ॥ (यहाँ

प्रत्येक बार पारा, हिंगुल आदि डालकर घोटें ने तो ही ठीक भस्म बनेगी यह स्मरण रखना चाहिए) ॥

तृतीय मारण प्रकार

शुद्ध स्वर्णपत्र लेकर कैची से काट २ कर सूक्ष्म २ कण कर लेवे । फिर स्वर्ण एक भाग, शुद्ध पारा एक भाग लेकर दोनों को खूब घोटें । ॥५३॥ फिर नीबू का रस डाल कर घोटें, फिर बार २ जल डालकर धोता जावे (जिससे रंग निखरेगा) ॥ ५४ ॥ फिर शुद्ध मनसिल एक भाग तथा रस मिन्दुर एक भाग डाले, स्वर्णमालिक की भस्म चौथाई भाग डाले ॥ ५५ ॥ सबको एकत्र पीसे । फिर आक का दूध डालकर पीसे । फिर पुट देवे । इसी प्रकार बार बार द्रव्यों में घोट कर पुट देता जावे । और निश्चन्द्र चिकनी स्वर्ण भस्म हो जावे तभी पुट देना बन्द करै ॥ ५६ ॥ जब द्वितीय पुट और उसके आगे के पुट देने हों तो उनमें मालिकभस्म न डाले । अन्य द्रव्य डालता जावे । यही बात यहां रहस्य की है ॥ ५८ ॥

चतुर्थ मारण प्रकार

शुद्ध स्वर्णपत्र एक भाग, शुद्ध पारा एक भाग दोनों को एकत्र घोटले । फिर नीबू का रस (या कोई खटाई) डालकर घोटें । फिर जल से बार २ धोवें ॥ ५९ ॥ फिर खूब सुखा लेवे । अब शुद्ध गन्धक दो भाग डाल कर घोटें । फिर (३० उपलों की आग में) विधि पूर्वक सम्पुट में बन्द कर पुट देवे । इस प्रकार चौदह बार पुट देने से स्वर्ण भस्म हो जाती है ॥ ६० ॥ जब २ पुटदे तो प्रत्येक पुटमें १/१६ (सोलहवां भाग) पारा कम

करके डालता जाये । (अर्थात् पहली बार एकभाग पारा, दूसरी बार १५/१६ भाग पारा, तीसरी बार १४/१६ भाग पारा इत्यादि प्रकार से कम करके डाले ।) यदि ऐसा न करके पूरा एक एक भाग ही पारा डालते जायेंगे तो स्वर्ण की भस्म नहीं बनेगी । यह बात रहस्य की है जो यहां कही गयी है ॥ ६१ ॥

पञ्चम मारण प्रकार

सुवर्ण के सूचीबेध्य बारीक पत्र एक भाग लें । शुद्ध पारा एक भाग लें । दोनों को एकत्र तीन दिन तक मर्दन करें ॥ ६२ ॥ फिर नीबू के स्वरस से भली प्रकार मर्दन करके जल से बार २ धोवें । अब इसमें गोरे पत्थर अर्थात् संगमर्भर का चूर्ण आधा भाग मिला लें ॥ ६३ ॥ फिर जम्बीरी नीबू का स्वरस डालकर तीन दिन तक इसे पीसें । जब सूख जावे ता बारीक चूर्ण करलें ॥ ६४ ॥ फिर शुद्ध गन्धक एक भाग डालकर घोटें । शराब में रखकर सम्पुट में संधि बन्द करके लघुपुट (८, १० उपलों) में रखकर पुट दें । इस प्रकार जब तक निश्चन्द्र न हो जाये पुट देते जायें । फिर कचनार की छाल के स्वरस में भावना देकर लघुपुट में तीन बार पुट दें । स्वांग शीत हो तो निकाल ले । इस प्रकार जामुनी रंग की स्वर्ण भस्म हो जाती है ॥ परम पूज्य श्री धन्वन्तरी महर्षि ने वैद्यों के हित के लिये (अन्यरस ग्रंथों में) यह विधि कही है ॥ ६५—६८ ॥ (यहां पारागन्धक तो बार बार डालकर पुट देना चाहिए परन्तु संगमर्भर पहले पुट में ही डालना है । बार बार नहीं डालना । इस प्रकार संगमर्भर (Calciam) चूना होने के कारण स्वर्ण को अच्छी प्रकार से

भस्म कर देता है । इस भस्म का रंग जामुनी बनता है)
॥ ६५—६८ ॥

मृत सुवर्ण के गुण

स्वर्ण भस्म मधुर, वृष्य, हृदयहितकर, नेत्र हितकर, परम मेधावर्धक, रसायन, पुंसवनकारक (पुत्रदाता) विष को नाश करने वाली तथा कान्तिकारक होती है ॥ ६९ ॥

और भी कहा है

स्वर्णभस्म स्निग्ध है, अति मधुर अथवा रस में मधुर तथा विपाक में मधुर है । वृष्य, आयुवर्धक, वर्णकारक, बलदायक, विष तथा संयोगज विषनाशक, अन्त्रशोषनाशक, अन्त्रशोष जन्यक्षयनाशक, रुचिकारक, पुण्यकारक, वातनाशक, अग्नि-दीपक, केशों के लिये अति हितकारी तथा सभी रोगों को नाश करने वाला है ॥ ७० ॥

विशिष्ट गुण

मृतसुवर्ण शीत है, आयु स्थापन में उत्तम है, स्मृति प्रद है, त्रिदोषज ज्वर को नाश करता है ॥ ७१ ॥ नागियों का सौन्दर्य तथा मुख का लावण्य बढ़ाता है । विशेष करके उनके अंगों को सुडौल बनाकर सुन्दरता तथा उनके अन्दर आकर्षण को बढ़ाता है ॥ ७२ ॥ स्वर्ण भस्म अति स्निग्ध, वाणी को परम शुद्ध करने वाली, चिंता, शोक, भय, क्रोध, इनसे उत्पन्न होने वाले रोगों को नाश करती है ॥ ७३ ॥ शिर में रक्त संचार अधिक होता हो (आँखें लाल हो रही हों) आत्मघात की प्रबल इच्छा

उठ रही हो, तो स्वर्ण देने से आराम होता है ॥ ७४ ॥ अस्थि-
क्षत, अस्थिशोथ, जङ्घास्थि (Shiu bone) की (फिरंगजनिन)
पीड़ा, पुगनी फिरंगजनिन अण्डकोषों के मांस की वृद्धि
(अण्डकोषों का कठोर भाग बढ़ जाया करता है । इसमें पारा
पड़ले दें बाद में सोना देना लाभ करता है ॥ ७५ ॥ उन्माद,
चित्त का स्थिर न रहना, योषापस्मार (Hystira), चित्तो-
द्वेग, भ्रम, लानि इन्हें यह निश्चित नाश करता है ॥ ७६ ॥
हृदय की धड़कन (Pelpitatin of heart) अण्डकोषों की
सृजन को नाश करता है । हड्डियों के शोष को नाश करता है ।
मूर्च्छा को दूर करता है ॥ ७७ ॥ कास, श्वाँस को शांत करता है ।
ओज को बहुत अधिक बढ़ाता है, अतिमार, ग्रहणी तथा पाण्डु-
रोग को नाश करता है ॥ ७८ ॥

स्वर्णभस्म बहुत बड़ी हुई प्रसादवायु को शमन करती है ।
प्रसादवायु यदि क्षीण हो तो उसे बढ़ाती है । सम अवस्था में
यदि वायु हो तो उसे समअवस्था में ही रखती है तथा उसे
सम रख कर शरीर को पुष्ट करती है ॥ ७९ ॥ मेधा, स्मरण-
शक्ति तथा चातुर्य में क्षीण हुए बालकों तथा युवा पुरुषों को,
मूख तथा मूर्खाने हुए शिशुओं तथा युवाओं को, शास्त्र को न
समझ सकने वाले युवकों की सब कमजोरियों को दूर करके
उनके शरीर को हरा भरा तथा बुद्धि, स्मृति, मोक्ष, प्रतिभावी
आदि को बढ़ाता है ॥ ८० ॥

स्वर्ण भस्म की मात्रा

बलकालआदि को देखकर रत्ती के आठवें भाग से रत्ती
के चौथाई भाग तक स्वर्ण भस्म का प्रयोग करें ॥ ८१ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

बिल की त्वचा के स्वरस के साथ रस सिन्दूर १ भाग, स्वर्णभस्म एक भाग मिलाकर खावें तो बात उबर नाश होता है ॥८२॥ रस सिन्दूर, स्वर्ण भस्म सम भाग लेकर पित्त पापड़े के स्वरस से खावें तो पित्त उबर नष्ट होता है ॥ ८३॥ रस सिन्दूर स्वर्ण भस्म सम भाग लें तुलसी के स्वरस से खावें तो कफ उबर नाश होता है ॥ ८४ ॥ अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म सम भाग लें शङ्ख से खावें तो जीर्ण उबर नाश होता है ॥ ८५ ॥ बेल का गूदा, जीरा, सुवर्ण भस्म मिलाकर खावें तो अतिसार शीघ्र नाश होता है ॥ ८६ ॥ रस पर्पटी के साथ सुवर्ण भस्म खावें तो चिरकाल से हुई ग्रन्थी अवश्य दूर हो जाती है ॥ ८७ ॥ गिलाय का सत, लोह भस्म, स्वर्ण भस्म मिलाकर खावें तो नया और बहुत पुराना पाण्डु रोग अति शीघ्र अच्छा होता है ॥ ८८ ॥ स्वर्ण को अभ्रक भस्म से अथवा रस सिन्दूर से मोती भस्म से मिलाकर खावें तो भयंकर राजयक्ष्मा को नाश करता है ॥ ८९ ॥ क्षारकाकोली, चोप चीनी, स्वर्णभस्म मिला कर खावें तो शीघ्र ही गर्भाशय को शुद्ध करता है ॥ ९० ॥ गिलाय देसर, सारिवा (चोपचीनी) आदि रक्तशोधक काष्ठौषधीसे स्वर्ण तथा रस पुष्प मिलाकर खावें तो पुरा फिरींग रोग को भी शीघ्र नाश करता है ॥ ९१ ॥ चरक में कहे हुए श्वास-नाशक कचूर (शठी आदि गण) आदि औषधों केक्वाथ से स्वर्ण भस्म खाने से भयंकर श्वास भी शीघ्र ही नाश होता है ॥ ९२ ॥ आंवले के चूर्ण के साथ सुवर्ण भस्म सेवन करें तो भयंकर पुराना अम्लपित्त भी नाश हो जाता है ॥ ९३ ॥ रस सिन्दूर, अभ्रक भस्म, सुवर्ण भस्म को शंखपुट पुष्पी के चूर्ण के

साथ खाए तो अपस्मार तथा योषा/पस्मार को शीघ्र नाश करता है ॥ ६४ ॥ रस सिन्दूर, स्वर्णभस्म कोवला (खिरेटी) के क्वाथ से पीवे तो सिर के कांपने को दूर करता है ॥ ६५ ॥ कज्जली, स्वर्ण भस्म पुनर्नवा का चूर्ण इन्हे गौमूत्र से सेवन करें तो अण्डकोषों को सूजन को नाश करता है ॥ ६६ ॥ दाख, पिप्पली कायफल, मुलहठी, इनको सम भाग ले चूर्ण करलें । इस चूर्ण की ३ माशे मात्रा में सुवर्ण भस्म चौथाई रत्ती मिला कर खाये तो मस्त कोयल से भी बढ़ कर मीठी वाणी हो जाती है ॥ ६७ ॥ लाल चन्दन, पद्मकेसर, नीलोत्पल, मुलहठी, मजीठ, केसर अथवा दिगुल या रस सिन्दूर तथा चोपचीनी आदि के साथ स्वर्ण भस्म खाये तो नागियों के सौन्दर्य का अत्यधिक बढ़ाती है ॥ ६८ ॥ सौंठ, लोंग, मिरच इनको सम भाग ले चूर्ण करें । इस चूर्ण के साथ शहद मिलाकर स्वर्ण भस्म खाने से त्रिदोषज उन्माद शीघ्र ही दूर होता है ॥ ६९ ॥ खैर के रस में भावित किया हुआ स्वर्ण भस्म आवले के चूर्ण के साथ मिला कर अन्त काल में खाये तो सभी रिष्टों (मृत्यु के चिन्हों) को दूर कर देता है ॥ १०० ॥ बच, गिलोय, सौंठ शतावर इनके चूर्ण के साथ सुवर्ण चूर्ण ६ मास सेवन करें तो मेधा को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ १०१ ॥ शालपर्णी, विदारिकन्द, अमगन्ध, कोंच के चूर्ण के साथ सुवर्ण भस्म सेवन करें तो तीन मास में ही कृश पुरुष भी पुष्ट देह वाले तथा बहुत सन्तान उत्पन्न करने वाले बन जाते हैं ॥ १०२ ॥ आंवला, शालपर्णी, सौंठ पुनर्नवा इनके चूर्ण के साथ सुवर्ण भस्म को सेवन करें तो देह, स्थिर-बल युक्त, तारुण्य तथा लावण्य युक्त हो जाती है ॥ १०३ ॥ जीवनी यगण (जीवन्ती काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा,

मुद्गपणी माषपणी ऋषभक जीवक, मुलहठी के चूर्ण के साथ सुवर्ण भस्म सदा खाने से जीवन देती है ॥ १०४ ॥ सुवर्ण भस्म को नागकेसर के चूर्ण के साथ ऋतुकाल में खाये तो नारियों को गर्भधारण कराने में श्रेष्ठ है ॥ १०५ ॥ काकोल्यादि गण (काकोली, क्षीर काकोली, मुलठी, काकड़ामिही, मेदा, महामेदा जीवक ऋषभक, पुण्डरीक काष्ठ, मुनक्का ऋद्धि, वृद्धि, वंशलोचन, मुद्गपणी माषपणी क्षीरविदारी, पद्माख, गिलोय, के क्वाथ से स्वर्ण भस्म खावे तो दूध बढ़ाता है । जितनी औषधि मिले उतनी ही ले ले ॥ १०६ ॥ स्वर्णमाक्षिक भस्म, स्वर्णभस्म खांड से मिलाकर खावे तो नाना यगों से मिलाकर बनी हुई पिघों की बाधा को नाश करता है ॥ १०७ ॥ निर्विषी के चूर्ण के साथ मिलाकर स्वर्ण भस्म दें तो विषबाधा को शीघ्र ही नाश कर देता है ॥ १०८ ॥ पाद के फल के स्वर्गस में शहद तथा सुवर्ण भस्म मिलाकर खावे तो त्रिदोषजनित हिचकी को शीघ्र ही नाश करता है ॥ १०९ ॥ मिश्री के साथ सुवर्ण भस्म सेवन करें तो अस्थिशोष, अस्थिशोथ तथा हड्डियों के नासूर तथा व्रणों को नाश करता है ॥ ११० ॥ दूध पीने वाले बच्चों की विशेष करके हड्डियों को टेढ़ा होने (Rickets) को तथा भयङ्कर अस्थि पीड़ा को नाश करता है ॥ १११ ॥

जटामांसी के चूर्ण के साथ सुवर्ण खावे तो सिर में फैली हुई प्रसाद वायु को शान्त करता है ॥ ११२ ॥ अभ्रक-भस्म ३ भाग, लोह भस्म ३ भाग, स्वर्ण २ भाग मिलाकर वरुण के क्वाथ से खावे तो दाह शोथ युक्त वृक्क को अच्छा करता है ॥ ११३ ॥ शिलाजीत, लोहभस्म, चाँदीभस्म, सुवर्णभस्म मिल

कर खावे तो जरायु में होने वाली उपद्रवों सहित सूजन दूर होती है ॥ ११४ ॥ अभ्रक भस्म, लोहभस्म, स्वर्ण भस्म, मिलाकर खावे तो पेट की मलवात नष्ट होती है ॥ ११५ ॥ हल्दी, पुनर्नवा के साथ सुवर्ण भस्म अदरक के रस से खावें तो अण्डकोष की सूजन को नाश करती है ॥ ११६ ॥

श्री विद्याधर विद्यालङ्कार भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी के भाषानुवाद में यह सुवर्ण विज्ञानीय नाम का पंद्रहवां तरंग समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

अथ रजत विज्ञानीय नाम का षोडश तरङ्ग

रजत के नाम

रजत, रुविर, रौप्य, तार, सौध, शुभ्रक, चन्द्रलोह, चन्द्रहास रूपक, तथा चन्द्रके सभी नाम चांदी के नाम हैं ॥ १ ॥

ग्राह्य रजत का स्वरूप

जो छेदने अर्थात् काटने से, कसौटी पर घिसने से, अग्नि में तपाने से उज्ज्वल रहे, जो शरदऋतु के चन्द्रमा के मण्डल के समान उज्ज्वल हो। जो तुला पर रखने से भारवाली हो, जो

स्निग्ध हो, ऐसी चाँदी (रजत) अच्छी कही है ॥ २ ॥

त्याज्य रजत का स्वरूप

जो आग में तपाने से अत्यन्त मैली हो, जो पीले रंग की, लाल रंग की, रूखा (खरखरी), हल्की, फटी हुई सी, कठोर तथा पत्रों वाली हो, वह चाँदी त्याज्य है। उसे रस कर्म में ग्रहण नही करना चाहिये ॥ ३ ॥

दूसरे ढङ्ग से जात्य रजत का स्वरूप

जो चाँदी निर्मल हो, पिच्छिल (फिसलने वाली) हो, स्निग्ध, मृदुल, पत्र रहित, घन (सघनी) हो, जो शरत्काल के चन्द्र के समान उज्ज्वल वर्ण की हो वह उत्तम चाँदी कहाती है ॥ ४ ॥

रजत शोधन का प्रयोजन

यदि चाँदी को शुद्ध न किया जाये तो वह अशुद्ध चाँदी चाहे थोड़ी भस्म (कच्ची भस्म) हो चाहे पूरी भस्म हो दोनों ही अवस्थाओं में शरीर के स्वाभाविक ताप को बढ़ाती है, वीर्य को नाश करती है, शरीर की पुष्टि को नाश करती है, मल को बांध कर रोकती अर्थात् कब्ज कर देती है, तथा अंगों को सन्न (सुस्त, ढीला, अक्रियाशील,) कर देती है ॥ ५ ॥

रजत का प्रथम शोधन प्रकार

चाँदी के पत्रे बनाले। आग में तपाकर उन्हें अगस्त्य पत्रों के स्वरस में तीन बार बुकावे। इस प्रकार से चाँदी शुद्ध निर्मल हो जाती है। इसे भस्म करने के लिये प्रयोग में लावे ॥ ६ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

चून्हे में अग्नि जलाकर उमपर लोहेकी कड़ाही रखे । उसके अन्दर जंगली उपतों (अरले उतलों) की राख का थांवला था घेरा बनादे ॥ ७ ॥ उम घेरे के मध्य भाग में चाँदी डाल दे । चाँदी के समान भाग ही शुद्ध किया हुआ मीमा डाल दे । फिर कड़छी में दोनों को हिलाता रहे । नीचे तीक्ष्ण आँच देवे ॥ ८ ॥ जब चाँदी और मीमा दोनों पिघल जावें तो उममें सुड़ागा डाले । चुटकी २ करके सुड़ागा डालना जावे और कड़छी से हिलाता जावे । नीचे नेत्र आग देता रहे । सुड़ागा तब तक डालता जावे जब तक मोसे का धुआँ निकलना बन्द न हो जावे । जब धुआँ निकलना बन्द हो जावे तो मोसा भी भस्म हो कर राखमें मिल जायेगा । फिर शुद्ध हुई चाँदी को निकाललेवे ॥ ९ ॥

नोट—इस मीमे की भस्म को जल से धो धो कर राख दूर करके पृथक् रखलें फिर मनशिलआदि के योग से इसकी भस्म कर डालें ॥ ३ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

चाँदी के चपटे पत्रे बनाले । फिर बंकनाल से प्रदीप्त हुई अग्नि पर खूब तपा तपाकर नीबू के स्वरस में या चांगेरी बूटी (खट्टी बूटी या तिपतिया बूटी) के स्वरसमें बारप्रयत्न पूर्वक भिगोये ॥ ११ ॥ जब तक ये पत्रे कोमल नहीं होजाते तब तक तपा २ कर रसमें डुबोता जाये । कोमल होने पर इन्हें शुद्ध समझे । फिर भस्म करने के लिये इन्हें प्रयोग में निश्शङ्क लावे ॥ १२ ॥

रजतदल [चाँदी के वर्क के नाम]

चन्द्रलौहदल, रजतमण्डल, तारपटल, तारदल ये सब नाम चाँदी के वर्क के हैं ॥ १३ ॥

चाँदी के वर्कों के गुण

चाँदी के वर्क शीतल, कसैले तथा अम्लरस वाले हैं । सर हैं, विपाक में मधुर, बलदायक, स्निग्ध, रुचिकारक तथा लेखन हैं ॥ १४ ॥ शुक्रमेह को नाश करने वाले, आयुवर्धक, आयु-स्थिरता कारक, वृष्य, मेधावर्धक तथा वातपित्त को नाश करने वाले हैं ॥ १५ ॥

रजत पटलों का प्रयोग

पान की बीड़ी पर लपेट कर या मिष्टान्नों [मिठाई] पर लगाकर आजकल चाँदी के वर्क खाये जाते हैं ॥ १६ ॥

रजत का प्रथम मारण प्रकार

विशुद्ध चाँदी दो कर्ष [४ तोले] ले । शुद्ध पारा ४ तोले ॥ १७ ॥ दोनों को खरल में डाल यत्न से पीस कर पिट्टी बनाले । फिर नीबू का स्वरस डालकर एक दिन घोटले ॥ १८ ॥ फिर जल डाल २ कर बार २ धोकर निर्मल कर लेवे । इसमें शुद्ध गंधक तथा शुद्ध हड़ताल एक २ भाग डाल कर पीस ले । फिर शराब सम्पुट में सन्धि बन्द करके स्वल्प पुट [२४, २५, उपलों की आग] देवे ॥ २० ॥ इस प्रकार तीन पुट देने से चाँदी की

भस्म हो जाती है । इसका रंग लाल कमल के समान लाल होता है ॥ २१ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

शुद्ध चांदी के पत्र लेकर कैची से कतर कर सूक्ष्म २ कण करले ॥ २२ ॥ इस चूर्ण को एक भाग ले । शुद्ध हड़ताल एक भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग ले । सब को एकत्र पीस कर दो शराबों में ढाल कर सन्धि बन्द करके सुखाले ॥ २३ ॥ फिर कुचकुट पुट में यत्नपूर्वक आग देवे । इसीप्रकार तीन बार करने से चांदी भस्म हो जाती है ॥ २४ ॥ इस भस्म का रंग काले अंजन के समान होता है । इस भस्म को निःसंकोच सर्वत्र प्रयोग करे ॥ २५ ॥

तृतीय मारण प्रकार

चांदी के शुद्ध पत्र ले । कैची से काट कर सूक्ष्म २ कण कर लें । इस चूर्ण को एक भाग ले शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गंधक एक भाग लें । सब को पीस कर घीकुमार के रस से पीस लें । ॥ २७ ॥ फिर शराब सम्पुट में बन्द करके ३० उपलों की आग में पुट दें । इस प्रकार थोड़े से (५, ६) पुटों में ही चांदी भस्म हो जाती है ॥ २८ ॥

चतुर्थ मारण प्रकार

शुद्ध चांदी के पत्र ४ तोला, अच्छी प्रकार से भस्म हुआ २ स्वर्ण मात्ति क दो तोला लें ॥ २९ ॥ थोहर के दूध में ३ घण्टे तक

दोनोंको मिलाकर पीसें । फिर धूपमें सुखाकर बारीकचूर्ण करलें ॥३०॥ फिर शराब सपुंठ में बन्द करके (३०) जंगली उपलों की आग में फूक देवें । इस प्रकार थोड़े से (५, ६) पुटों में ही चांदी की भस्म हो जाती है ॥ ३१ ॥ दूसरे पुट में तथा उससे आगे के पुटों में स्वर्ण माक्षिक भस्म न डालें । यही रहस्य की बात यहां समझें । (यह भस्म पेट के रोगों को दूर करती है तथा भूख लगाती है) ॥ ३२ ॥

पञ्चम मारण प्रकार

शुद्ध चांदी के पत्रों एक भाग लें । शुद्ध हिंगुल एक भाग लें ॥३३॥ सुवर्ण माक्षिक की भस्म एक भाग ले । सब को एकत्र मिलाकर खूब पीसे । फिर नीबू का स्वरस डालकर खूब घोंटे और धूप में सुखाकर चूर्ण करलें ॥ ३४ ॥ फिर सम्पुट कर पुट दें । इस प्रकार थोड़े से पुटों [५, ६] में ही चांदी भस्म हो जाती है । ॥ ३५ ॥ दूसरे तथा आगे के पुटों में स्वर्ण माक्षिक की भस्म सर्वथा न डालें । यह रहस्य की बात समझें ॥ ३६ ॥ इस भस्म के सेवन से भूख बहुत लगती है ।

षष्ठ मारण प्रकार

शुद्ध चांदी के पत्रों का चूर्ण एक भाग लें । नीबू के स्वरस में घोटकर जलसे धोकर खटास रहित किया हुआ शुद्ध हिंगुल दो भाग लें । दोनों को घोटकर ऊर्ध्वपातन यंत्र से विधि पूर्वक पाक करें ॥ ३७ ॥ इस प्रकार ऊपर से लगा हुआ शुद्ध पारा निकालते जावें । नीचे चांदी की भस्म होती जायगी । जब तक चांदी भस्म पूरी तरह से न हो जाये तब तक हिंगुल मिलाकर ऊर्ध्वपातन

करते जायें ॥ ३६ ॥ इस प्रकार नीचे के पात्र में काले से रंग की चांदी की अति सुन्दर भस्म मिलेगी ॥ ३६ ॥ ऊपर के पात्र में लगा हुआ अति निर्मल पारा मिलेगा । इसे पृथक् करके रखते जायें । इस प्रकार से इस चांदी की भस्म को भिन्न २ योगों में डालकर प्रयोग करें ॥ ४० ॥ [इस एक कार्य में दो फल निकले । एक तो पारा शुद्ध होकर मिल गया दूसरा चांदी की भस्म हो गयी । यहाँ ऐसा समझें कि यदि चांदी के पत्र ८ तोला हों, हिंगुल १५ तोला हो तो ऊर्ध्वपातन यन्त्र में अग्नि ६ घण्टे देनी चाहिए । चार पांच बार ऊर्ध्वपातन करने से ही चांदी की भस्म हो जाता है ।]

सप्तम मागण प्रकार

चांदी के शुद्ध पत्र एक भाग, शुद्ध पारा एक भाग लेकर दोनों को पीसकर पीठी बनाले ॥ ४१ ॥ इसमें सखिया दो भाग डालकर पीसकर रखें । धूप में सुखाकर चूण करके रखें ॥ ४२ ॥ फिर सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंक दें । एक पुट देकर फिर खरल में पीसलें ॥ ४३ ॥ इस चूर्ण के समान शुद्ध हिंगुल मिलादे । इस प्रकार करके दो पुट और देवें ॥ ४४ ॥ इस प्रकार तीन पुट देने से ही चांदी की भस्म हो जाती है । इस प्रकार की रजत भस्म को निश्शङ्क प्रयोग करें ॥ ४५ ॥

मृतरजत के गुण

चांदी भस्म अत्यन्त शीतल, कसैली, रुचिकारक, स्निग्ध, विपाक में मधुर, परममेध्य, वर्णकारक, परम वातनाशक, कफ

नाशक, अम्लरस वाली, सर [दस्तावर], अत्यन्त लेखन तथा वृष्य है ॥ ४६ ॥ चाँदी की भस्म आयु को स्थिर करने में श्रेष्ठ है, बलदायक, अति दाह नाशक, स्मृति वर्धक तथा कान्तिवर्धक है ॥ ४७ ॥ तृष्णा, शोष रोगोंको नाश करने वाली उत्तम रसायन है । भ्रम रोग को दूर करने वाली तथा गर्भाशय को शुद्ध करने वाली है ॥ ४८ ॥ पित्तरोग, प्रमेहादि रोग विष्टब्धाजीर्ण, मदात्यय, अग्निमांश, बिष, ज्वर, प्लीहं दर, क्षय, नाड़ीशूल, अपस्मार, उदरामय [दस्त] तथा उदर सम्बन्धी अनेक रोगों को नाश करती है । आयु को बढ़ाती तथा हृदय के लिये विशेष हितकर है ॥ ४९—५१ ॥

विशिष्ट गुण

प्रकोष्ठों के अन्दर अति बढ़ी हुई वात को रजत भस्म अत्यन्त शान्त करती है । हाथ पैर आदि शाखाओं में बढ़ी हुई पित्त की जलनआदि को नाश करती है । जत्रु संधि से ऊपर के सिर आदि प्रदेश में बढ़ी हुई मल नामक कफ को नाश करती है ॥ ५२ ॥ जिनकी बुद्धि, स्मरण शक्ति तथा साहस क्षीण होगया हो, जो शिरोभ्रम से अति व्याकुल हो रहे हों, जो पढ़ाने आदि कर्मों में बहुत काल से फंसे हुए हों, ऐसे युवा तथा शिशुओं के लिये चाँदी भस्म अति लाभ देती है ॥ ५३ ॥

चाँदी भस्म की मात्रा

चौथाई रत्ती से लेकर एक रत्ती तक की मात्रा में चाँदी की भस्म को बल, काल आदि को देखकर प्रयोग करना चाहिए ॥ ५४ ॥

इसका गेगों पर प्रभाव

अजवायन, लौंग के चूर्ण के साथ चाँदी की भस्म प्रयोग करने से देर से रहने वाली पुगनी कोष्ठवात शीघ्र नष्ट होती है ॥ ५५ ॥ चाँदी की भस्म में छोटी इलायची का चूर्ण मिलाकर सेवन करें तो अजीर्ण रोग से उत्पन्न हुआ हृदय स्पन्दन दूर होता है ॥ ५६ ॥ छोटी इलायची का चूर्ण तथा मिश्री का चूर्ण मिलाकर चाँदी की भस्म सेवन की जावे तो सूर्यवार्त्त तथा अर्धावभेदक (सिर का दर्द) दूर होता है ॥ ५७ ॥ रस सिन्दूर लोहभस्म, शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म, चाँदी भस्म सबको एकत्र करके त्रिफला के जल से सेवन करलें तो वाम अण्डाधार (बाजाशय या left ovary) में होने वाली तीव्र पीड़ा तथा गर्भाशय की भयङ्कर च्युति [स्थान भ्रष्टता] को तुरन्त ही नाश करता है ॥ ५८ ॥ सुदागा अभ्रक भस्म, रस सिन्दूर तथा चाँदी भस्म इन सबको सम भाग लेकर उचित मात्रा में खाकर ऊपर से बला (खिरेटी) तथा त्रिफला का काढ़ा पियें । इस से तीव्र जाँघों की पीड़ा , वाम तथा दाहिने दोनों ही डिम्बाशय में होने वाली पीड़ा तथा अण्डाधार में होने वाले सब रोग तथा उनके उपद्रव विशेष करके दूर होते हैं । अति मैथुन, अतिशीत, अभिघात, विष तथा अन्य अहित भोजनों से अण्डाधार का रोग हो जाता है जो कष्टसाध्य होता है । इसमें पेट तथा जाँघाओं में तीव्र पीड़ा होती है, मूत्र थोड़ा २ तथा लाल रंग का होता है ।

उग्र, अरुचि, तथा जीमनलाना, बेवैनी तथा बलका नाश होता है। नाड़ी वेग से चलती है। तथा जुद्ध चलती है, जीभा लाल हो जाती है, ये सभी लक्षण अण्डाधार रोग के कहे गये हैं ॥ इन सब उपद्रवों सहित इस रोग पर चाँदी भस्म का पूर्वकथित प्रयोग अच्छा माना है ॥ ६१ ॥ रस सिन्दूर, सुहागा, चाँदी, भस्म इन सब को सम भाग पीस कर उचित मात्रा में हल्दी के जल से दो सप्ताह सेवन किया जावे तो उस गर्भाशय के संकोच को, जिसमें अति क्षत जखम) हो गये हों तथा बद्धवार सड़ा हुआ स्त्राव निकलता हो, यह योग निःसंशय दूर करता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ चाँदी भस्म, लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, रस सिन्दूर सब को सम भाग ले। इसे उचित मात्रा में अजवायन तथा चीते के क्वाथ से सेवन करें ॥ ६४ ॥ तो गृधुसी, विश्वाची त्रिकस्थान [कमर] की पीड़ा विविध स्थानों में होने वाला नाड़ी शूल नाश होता है ॥ ६५ ॥ पित्तपाण्डु खस, धनिया लाल चन्दन आदि पित्तनाशक क्वाथ से चाँदी की भस्म खावें तो हाथ पैर आदि शाखाओं में रहने वाला पित्त [दाह] आदि शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६६ ॥ राजावर्त्त लाजवर्द की भस्म के साथ चाँदी की भस्म सेवन करें तो विशेषकर मदात्यय रोग का नाश होता है। चोबचीनी के साथ चाँदी की भस्म सेवन करें तो बहुत पुराने आध्मान अफारे के रोग को निश्चित नाश करती है ॥ ६८ ॥ मिथ्री के साथ चाँदी भस्म सेवन कर तो शाखाओं

हाथ पैर उंगलियाँ आदि शाखा व शाखाओं में रहने वाला दाढ़ निश्चित नाश होता है ॥६६॥ खांड, घी, छोटी इलायची के साथ चांदी भस्म सेवन करें तो शीघ्र ही भयंकर उन्माद नष्ट होता है, यह निश्चित है ॥७०॥ चांदी भस्म को त्रिजात (दार, चीनी, इलायची, तेजपत्र) सम भाग लें, इन का चूर्ण मिला कर सेवन करें तो प्रमेहादि रोग शीघ्र ही नष्ट होते हैं ॥७१॥ क्षीरकाकोली, चोप चीनी, रस सिंदूर तथा चांदी भस्म मिलाकर सेवन करें तो गर्भाशय से होने वाला शूल सहित, ऋतुकाल का रक्तस्राव जिसमें श्लैष्मिक कला (छिछड़े, भी आते हैं) शीघ्र ही दूर होता है। इसी का नाम Membranous Dysmenorrhoea रोग पाश्चात्य चिकित्सा में कहा गया है ॥७२॥ ॥७३॥ शालपर्णी, कौंच के बीज, शतावरी इनको सम भाग लेकर चूर्ण करले। इस चूर्ण से चांदीभस्म सेवन करें तो दो मास में ही कृशता दूर होकर बल तथा वीर्य अत्यन्त बढ़ता है ॥७४॥ विडंग, शुद्ध भिलांवा, सोंठ, केसर के चूर्ण के साथ चांदी भस्म उचित मात्रा में एक मास सेवन करें तो सुन्दरी नारियों के सौन्दर्य की अत्यन्त वृद्धि करता है ॥७५॥

सोरकाम्लीयजत (Silver Nitrate) बनाने की विधि

चाँदी के सूचीवेध्य पत्र लेकर कैंची से काट २ कर सूक्ष्म कण बनालें ॥७६॥ इन्हें एक काच के प्याले में डालकर रखें उसमें शुद्ध सोरकाम्ल बूंद २ करके तब तक डालता जावे जब तक सारी चांदी द्रव होकर घुल न जावे ॥७७॥ सोरकाम्ल के टपकाने से अतितीक्ष्ण धुआँ निकलता करता है। इसलिये उसे डालते समय अपना मुँह दूसरी दिशा की ओर फेर लेना चाहिये ॥७८॥ यदि चांदी में ताँबा मिला हुआ होगा तो घुल कर द्रव (घोल) नीले रंग का बनेगा। यदि

शुद्ध चाँदी ही होगी तो द्रव (घोल) श्वेत रंग का बनेगा ॥७६॥
 इस द्रव हुई चाँदी में तीक्ष्णलवणद्रावक को (धीरे २) तब तक
 डालते जावे जब तक चाँदी (तल में) नीचे मावे या पनीर के
 समान गाढ़ी होकर न बैठ जावे ॥८०॥ जब वह गाढ़ा २ भाग
 गिरना सर्वथा बंद हो जाये तब लवणद्राव डालना भी सर्वथा
 बंद कर देवे ॥८१॥ थोड़ा काल बीत जाने पर उस प्याले के ऊपर
 के भाग में जल का अंश आजायगा उसे अति प्रयत्न से नितार
 कर (किसी पथक पात्र में गिरा कर) रखे ॥८२॥ अब एक पील
 रंग की कनेर के फूल के सदृश आकार वाली नाली (Funel या
 पीक) में एक सारक पत्र (Filter Paper पतला स्याही चूस)
 रख कर उस द्वारा इस चाँदी को निर्मल जल से बार बार धाल
 कर छाने ॥८३॥ उस सारक पत्र के मध्य में से निकला हुआ जल
 नीचे रखे हुए पात्र में आजायगा । इस जल की पहली परीक्षा
 करे ॥८४॥ इस जल को दूसरे प्याले में थोड़ा सा लेकर इसमें
 नृसारवाष्प संयुक्त द्रव (Amonia अमोनियाँ का जल) थोड़ा
 सा डालें ॥८५॥ अमोनिया के जल डालने से यदि प्याले का
 जल नीले रंग का होजाय तो यह धोया हुआ चाँदी का द्रव
 भाग अभी ताँबे वाला है ऐसा समझें । फिर चाँदी में और
 जल डालकर धोवें और सारक पत्र से छानें । इस छन हुए
 पानी की फिर अमोनिया द्रव से परीक्षा करें । जब नीला न हो
 तो समझें कि अब शेष धुली हुई चाँदी शुद्ध चाँदी रह गई है,
 इसमें ताँबा नहीं है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ अब इस ताँबे के अंश से
 रहित हुई चाँदी को फिर एक शीशे के प्याले में डाल दें ।
 इसमें इतना जल डालें कि चाँदी उसमें डूब जाये । अब इस
 पर अति थोड़ा लवण द्राव डालें ॥ ८८ ॥ साथ ही थोड़े से

जस्त के पत्र भी इस प्याले में डाल देवें । थोड़ा काल बीत जाने पर ताँवे आदि धातुओं से सर्वथा रहित हुई चांदी राख या भस्म के समान दीखती हुई शीशे के पात्र के तल में बैठ जायेंगी ॥ ८६ ॥ इस प्रकार सात आठ दिन पड़ी रहने दे । बाद में चांदी को प्रयत्न से बचाता हुआ उसके ऊपर का जलीय अंश संभाल कर नितार कर गिरा देवें ॥ ८७ ॥ फिर उस भस्म के रंग की चांदी को सारक पत्र द्वारा वर्षा के जल में धो धो कर उसी तरह तुरन्त छान लेवें । इस सारक पत्र से छुने हुए पानी की फिर परीक्षा करें । ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ इसमें से थोड़ा सा जल एक काँच के प्याले में लेकर फिर नृसार वाष्प युक्त जल (Amonia के घोल) को थोड़ा सा डालें । यदि इससे नीचे पड़े प्याले का जल सफेद हो जाये तो समझें कि इस चांदी में अभी द्राव (लवण द्राव) का अंश है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इस तब तक धोते जायें जब तक इसका जल सफेद होना बन्द हो जाये । अब इस द्राव के (तंजाव के) अंश से रहित हुई २ चांदी को एक काँच के प्याले में रखें ॥ ९३ ॥ फिर उसमें सारक द्राव (बूंद २) डाल कर उसे घोल लेवे । फिर सुरा प्रदीप पर रख कर यत्न पूर्वक पकावे ॥ ९४ ॥ इस तरह मन्त्राग्नि से संभाल कर पकावें कि जल पकत समय उछल २ कर बाहर न गिरे । इस तरह जल को सुखा लेवें । जब जल सर्वथा नष्ट हो जावे तो यह शलाका के आकर का श्वेत चूर्ण (crystals) बन जाता है ॥ ९५ ॥ इस ही वैद्य सारका म्लीथ रजत (डाक्टर लोग Silver Nitrate सिल्वर नाई टेट) कहते हैं । इसे नीले रंग की कांच की शीशी में रखे ॥ ९६ ॥ इसे यदि श्वेत कांच की शीशी में रखें तो सूये की किरणों के संयोग होते ही यह काले रंग की हो जाती है । इस लिए

इसे श्वेत रंग की शीशी में न रखें ॥ १०० ॥

प्रसंगवश नवसादरवाष्पद्रव की निर्माण विधि

चूने के पत्थर को भली प्रकार दग्ध करके (अनबुझे चूने को) जल से बार २ बुझावें । सूखने पर यह चूना दो भाग लें । नवसादर एक भागलें ॥ १०१ ॥ दोनों को प्रयत्न पूर्वक (कपड़े से नाक बन्द कर रखें) चूर्ण करके एक कांच की कुप्पी में डाल दें । इस कुप्पी को त्रिपादिका (तिपाई) पर रखकर उसके मुंह में एक कांच की नाली लगा दें । इस नाली का दूसरा मुख (सिरा) दूसरी ओर रखे हुए एक शीशे के पात्र में डाल दें, जिसमें कि पानी भरा हो । नली का मुंह पानी में डूबा हुआ रहे ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ फिर तिपाई के नीचे सुरा-प्रदीप जलायें ॥ १०४ ॥ जब तक नौसादर का भाप सारा जल में घुल नहीं जाता तब तक सुराप्रदीप से आंच (मन्द २) देते जावें ॥ १०५ ॥ यह कांच पात्र का जल अब स्वच्छ जल के समान रंग वाला श्वेत सुतीक्ष्ण तथा अति सुन्दर बन कर तैयार हो जाता है । इसे ही वैद्य लोग नृषार वाष्पद्रव [Amonia water] कहते हैं ॥ १०६ ॥

नवसादर वाष्प द्रव के गुण

नवसादर वाष्पद्रव भिड़, बिच्छु आदि के विष को लगाने से विशेष कर के नाश करता है ॥ १०७ ॥ रसायना-चार्य यदि किसी वस्तु की इस द्रव से परीक्षा करने लगे तो इसमें बहुत सा जल मिला लिया करें ॥ १०८ ॥

इसका गेगों पर प्रयोग

इसी नवसादर वाष्प द्रव [Thig Amonia Fort] में

जल मिला कर युक्ति से [शीशी का डाट थाड़ा खोलकर] यदि बार बार सुंघावें तो अनेक रोगों के कारण हुई २ मृच्छा शीघ्र दूर हो जाती है ॥१०६॥

सोरकाम्लीय रजत [Silver Nitrate] के गुण

सोरकाम्लीय रजत [सिल्वर नाईट्रेट] द्रव शक्ति [अर्थात् Strength of the Liquid कम अधिक पतला करके प्रयोग करने से] के भेद से यदि प्रयोग करें तो नेत्रों के अभिष्यन्द को दूर करता है तथा पोथकी या कुकरो [Trachoma] आदि को नाश करता है ॥११०॥ विसर्प स्फोट (छालों) को शान्त करता है । व्रणमेह (सूजाक) के जख्मों को दूर करता है । इसी प्रकार श्वेत प्रदर को नाश करता है ॥ १११ ॥

सोरकाम्लीय रजत द्रव का निर्माण प्रकार

जल का अर्क २० तोला लेकर एक निर्मल शीशे के प्याले में डालें । उसमें सोरकाम्लीय रजत ८ रत्ती डाल दें । जब घुल जाय तो नीली शीशी में डाल कर रखे ॥ ११३ ॥ इसे सोरकाम्लीय रजत द्रव कहा जाता है । इस बाहर से लगावें तो आंखों के अभिष्यन्द तथा कुकरो आदि को दूर करता है ॥ ११४ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

रोगी को ऊपर को मुंह करके लिटा दो । आंखों को अच्छी प्रकार खोलकर बिन्दु क्षेपक यंत्र (Dropper ड्रॉपर) से दो तीन बुंदें आंखों में डालो । इस प्रकार लगातार कई दिन करने से आंखों के अभिष्यन्द (जल बहना, आँख दुखना) तथा पोथकी अर्थात् कुकरो आदि रोगों का शीघ्र नाश होता

है ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

द्वितीय सोरकाम्लीय रजत द्रव

सोरकाम्लीयरजत ३२ रत्ती लै 'इसे ढाई तोले जल के अर्क [बिचे हुए जल या Distilled water] में डाल दें । इसे काँच के पात्र में घोलें । अच्छी प्रकार से घुल जाने पर शीघ्र ही इसे नीली शीशी में डालकर रखें । यह सोरकाम्लीयरजतद्रव स्फोटक [छालों] आदि को नाश करता है ॥ ११८ ॥

इसकी प्रयोग विधि

विसर्प के शोथ पर इस द्रव को चारों ओर लगा दें तो विसर्प का फैलना शीघ्र ही रुक जाता है ॥ ११९ ॥ इसी प्रकार विस्फोट की सूजन में इसी द्रव को बार बार लगावें तो विस्फोटों (फुंसियों, छालों) के फैलने को रोकता है ॥ १२० ॥

तृतीय सोरकाम्लीयरजत द्रव

जल का अर्क ५ तोला, सोरकाम्लीयरजत एक रत्ती अथवा आधी रत्ती ले दोनों को काँच पात्र में घोलकर नीली शीशी में डाले रखें । इस द्रव से धोवें (उत्तरवस्ति दें Douche करें) तो नारियों के प्रदर आदि को दूर करता है ॥ १२२ ॥

इसकी प्रयोग विधि

इसी द्रव को उत्तरवस्ति (Douche डूश) द्वारा प्रयोग करें तो श्वेत प्रदर का रोग दूर होता है तथा (पिचकारी देने से) व्रणमेह (सूजाक) का नाश होता है ॥ १२३ ॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालङ्कार भिषगाचार्य कृत रस-तरंगिणी के भाषानुवाद में रजत विज्ञानीय नाम का पौडश तरंग समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

अथ ताम्र विज्ञानीय सप्तदश तरङ्ग ।

ताम्र के नाम

ताम्र, शुल्ब, रक्तक, म्लेच्छवक्त्र, नेपालीय, त्र्यम्बक, सूर्यलोह, त्वाष्ट्र, अर्क, सूर्यके सभी नाम, द्विष्ट, द्वयष्ट तथा अम्बक ॥१॥
उदुम्बर (उडुम्बर), अरविन्द, सूर्याग, लोहितायस, रविप्रिय, भास्वर, ताम्रक ये सभी नाम ताँबे के हैं ॥ २ ॥

ग्राह्यताम्र का स्वरूप

जो ताँबा घन की चाट को सहार सके, जो खूब चिकना हो, जो निर्मल हो, जपा के फूल के समान लाल हो, जो मृदु हो तथा उत्तम खान से निकला हो, वह ताँबा उत्तम होता है ॥ ३ ॥

दूसर प्रकार से उत्तम ताँबे के लक्षण

जो स्निग्ध, मृदु, घन, स्वच्छ, गुडहल के फूल के समान लाल, लोहे तथा सीसे आदि से रहित हो, उस ताम्र को उत्तम समझो ॥४॥

त्याज्य ताम्र का स्वरूप

जो दलों (पत्रों) वाला हो, श्वेत रंग का हो, कठिन, हल्का (लघु), टूट जाने वाला हो, मलयुक्त हो, ऐसे ताँबे को रसकर्म में प्रयोग न करे ॥५॥ जो घन की चाट को न सहे, जो काला अथवा श्वेत रंग का हो, जो लोहादि धातुओं से युक्त हो, जो अति स्तब्ध (काठिन) हो, जो रूक्ष हो, ऐसा ताँबा त्यागन योग्य होता है ॥६॥

ताँबे के दो भेद

नेपाल तथा म्लेच्छक ये दो भेद ताँबे के हैं । नेपाल उत्तम है, म्लेच्छक हीन गुण वाला है ॥ ७ ॥

नेपाल का लक्षण

जो घन की चोट को सह सके, जो स्निग्ध, कोमल, गुरु अर्थात् भारी तथा लाल रंग का हो, जो निर्मल हो वही तांबा गुणदायक है। उसे ही नेपाल ताम्र कहते हैं ॥ ८ ॥

म्लेच्छक का स्वरूप

काली सी छाया वाला, अति कठिन, श्वेत तथा लाल रंग वाला, अच्छा प्रकार से धोने पर भी जो काला हो जाये, उसे म्लेच्छकताम्र कहते हैं ॥ ९ ॥

तांबे के शोधन का प्रयोजन

यदि तांबा अशुद्ध हो और उसे भस्म करके खावें तो वह भस्म शरीर के सौन्दर्य को नाश कर देती है, शीघ्र ही वमन को लगातार अवश्य ही कराती रहती है, भ्रम उत्पन्न करती है तथा बेचैनी उत्पन्न करती है ॥ १० ॥ यह शरीर के स्वाभाविक ताप [९८°४] भाग को अधिक बढ़ा देती है। सभी धातुओं को शीघ्र ही सुखा देती है। अत्यन्त विरेचन कराती है तथा मूर्च्छा को उत्पन्न कराती है। इसलिये ताम्र को शुद्ध करके भस्म करें ॥ ११ ॥

तांबे का प्रथम शोधन प्रकार

तांबे के पत्र बनाकर आग में तपा तपाकर चांगीरी के पत्तों के [खट्टी बूटी के] स्वरस में बार बार बुझावें। इस प्रकार शुद्ध किये हुए तांबे की भस्म बनावे ॥ १२ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

तांबे के पत्तों को एक हांडा में डालकर नीले-संभालु के पत्तों के स्वरस में एक दिन पकावें तो शुद्ध हो जाता है ॥ १३ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

नेपाल तांबे के सूक्ष्म पत्रों को आठवां भाग सेंधानमक मिलाकर कांजी में [एक दिन] पकावें तो उत्तम शुद्ध हो जाते हैं ॥ १४ ॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

सेंधानमक, थोहर का दूध, आक का दूध, इन सब को सम भाग लेकर एकत्र करके तांबे के पत्तों पर लेप करे। फिर तपा तपाकर सात बार संभालु के पत्तों के स्वरस में बुभावे। इस प्रकार शुद्ध हुए तांबे को निशंक होकर भस्म करे ॥ १५ ॥

पञ्चम शोधन प्रकार

एक भाग सेंधानमक, नेपाल तांबे के पत्र ८ भाग, गौमूत्र में डाल ६ घण्टे पकावें तो शुद्ध होते हैं। इस में कुछ सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥

षष्ठ शोधन प्रकार

चार तथा अम्ल [नीबू रस] को घोटकर उन्हें तांबे के पत्रों पर मलें। इन्हें तपा तपाकर तक्र में बुभावे। फिर कुलथी के क्वाथ में बुभावे। इस प्रकार करने से तांबा सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥ १८ ॥

तांबे का प्रथम मारण प्रकार

शुद्ध शिंशेरफ एक भाग, तांबे के पत्र एक भाग, नीबू का स्वरस डाल डालकर सब की पीठी बनावे। फिर धूप में अच्छी प्रकार सुखालें। इसको बैरीक चूर्ण करलें ॥ १९ ॥ फिर ऊर्ध्व-पातन यन्त्र में रखकर अग्नि पर उड़ावें। ऊपर के पात्र में शुद्ध

पारा लनेगा । उसे निकालकर संभालकर रखें । नीचे तांबेकी भस्म हो रही होगी । इसी प्रकार फिर २ उसी तांबे में शुद्ध द्विगुल मिलाकर तथा नाबू के रस में घोटकर दो तीन बार ऊर्ध्वपातन करलें ॥ २०—२१ ॥ फिर जितनी तांबे की भस्म नीचे के पात्र में निकले उसी के बराबर शुद्ध गंधक डालकर घोटें । इस चूर्ण को फिर सम्पुट में रखकर पुट दें । ऐसा ही दो बार या तीन बार पुट देते रहें । इस प्रकार ताम्र भस्म हो जायेगी । फिर इस ताम्र भस्म को अमृती करण करलें । [बिना अमृती करण किये ताम्र भस्म कभी भी प्रयोग न करना चाहिए ॥ २२ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

शुद्ध तांबेके सूक्ष्म पत्तों को चार भाग लें, शुद्ध पारा एकभाग लें, दोनों को घोटकर पिट्टी बनालें । फिर गन्धक ५ भाग लें सब को एकत्र पीसकर चांगरी के रस में घोट लें ॥ २३ ॥ धूप में सुखाकर सम्पुट में बन्दकर तीन बार इसी प्रकार से गजपुट देवे इस प्रकार तांबे की भस्म हो जाती है । इस भस्म को फिर अमृती करण करे ॥ २४ ॥

तृतीय मारण प्रकार

शुद्ध तांबे के पत्र १ भाग लें । शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक की सम भाग कज्जली एक भाग लें । दोनों को एकत्र पीस कर नाबू के स्वरस में घोटलें । फिर धूप में सुखा लें । इसे सम्पुट कर पुट दें । इसी प्रकार तीन बार गजपुट दें तो तांबे की भस्म हो जाती है ॥ २५ ॥

चतुर्थ मारण प्रकार

शुद्ध तांबे के सूक्ष्म २ पत्र १० पल्लें । शुद्ध गन्धक २० पल

लेकर दोनों को बारीक पीस लें ॥ २६ ॥ फिर सम्पुट कर मिट्टी से संधि लेपकर बालुका यंत्र में रख एक दिन रात पकावे ॥ २७ ॥ रुध्रगंशीत होने पर सम्पुट को निकाल लें । फिर इसमें से तांबे को निकाल कर उसमें सम भाग गन्धक डालकर स्वरल में पीसले ॥ २८ ॥ इस प्रकार प्रत्येक बार तुल्य गंधक डालकर तीन पुट दें । इस प्रकार से की हुई ताम्र भस्म को अंजन आदि में प्रयोग करें । खावे नहीं ॥ २९ ॥

पञ्चम मांस्य प्रकार

एक भाग शुद्ध नेपाल ताँबे के पत्र लें । पारे गन्धक को सम भाग लेकर की हुई कज्जली भी एक भाग लें । चौथाई भाग शुद्ध मनःशिला लें ॥ ३० ॥ शुद्ध हडताल मनःमल से आधा भाग डालकर सबको एकत्र पीस कर घी कुमार के रस से घोट लें । धूप में भली प्रकार सुखाकर सम्पुट में रख कर पुट दें । इस प्रकार ताम्र शीघ्र ही (एक दो पुट में ही) उत्तम प्रकार से भस्म हो जाता है ॥ ३१ ॥

षष्ठ मांस्य प्रकार

एक भाग सूची वेध्य बारीक तांबे के पत्रों को लेकर उसी के समान भाग कज्जली (पारा आधा भाग, गंधक आधा भाग, की कज्जली कर लें) दोनों को घोट लें । फिर घी कुमार के स्वरस में घोटें । फिर धूप में सुखाकर सम्पुट में रख लवण यंत्र में भस्म करे । इस प्रकार आधा दिन (६ घंटे) भली प्रकार पका लेने से तांबे की उत्तम भस्म हो जाती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अमृती करण का प्रयोजन

तांबा चाहे भस्म हो जाये तो भी अमृती करण के बिना

सेवन करे तो विष के सदृश वान्ति भ्रान्ति आदि आठों दोषों को उत्पन्न करता है ॥ ३४ ॥ इस लिए ताम्र भस्म के आठों दोषों को निकालने के लिए वैद्य को पहले अमृती करण अवश्य ही कर लेना चाहिये ॥ ३५ ॥

आठों दोष

वान्ति या वमन, भ्रम (चक्कर आने) चित्त का सन्ताप, शोष, अत्यन्त जी मतलाना अरुचि, दाह, मोह ये आठों दोष ताँबे में कष्ट देने वाले पूर्वाचार्यों ने माने हैं ॥ ३६ ॥

अमृती करण का प्रथम प्रकार

उत्तम ताम्र भस्म एक भाग, शुद्ध गन्धक आधा भाग, दोनों को पन्चामृत के द्रव्यों से पीस लें । इस की टिकियां बनाकर धूप में सुखा लें । फिर शराव सम्पुट में भरकर संधि बन्द कर पुट दे दें । इसी प्रकार तीन बार पुट दे ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ फिर खरल में पीसकर शीशी में भर लें । इस प्रकार अमृतीकरण से ताँबा अमृत के समान गुणकारी हो जाता है ॥ ३९ ॥

अमृती करण का द्वितीय प्रकार

ताम्र भस्म एक भाग, शुद्ध गन्धक चूर्ण आधा भाग । दोनों को घोटें । फिर नाबू के रस में तीन घण्टे घोटें ॥ ४० ॥ फिर गोला बनाकर जिमीकंद (सूरण कंद) में रखकर उसी कंद के खंड से ढक दें । फिर कपड़ मिट्टी कर इसे गज पुट में रखकर भस्म कर दें ॥ ४१ ॥ ऐसा अमृती करण किया हुआ ताँबा वान्ति आदि दोषों को कभी नहीं करता है तथा अमृत के समान गुण करता है ॥ ४२ ॥

अमृती करण का तृतीय प्रकार

ताम्र भस्म घीकुमार के रस में घोटकर धूप में खूब सुखालो फिर सम्पुट में रख चराह पुट में पुट देदें । इसी प्रकार घोट घोट कर सात बार पुट देदे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार अमृती करण से तांबा अमृत के समान गुण करता है, चाहे कितने दिन तक सेवन करें । इससे आठों दाष नहीं होते ॥ ४४ ॥

मृनताम्र के गुण

तांबा तिक्त, कसैला तथा मधुर रस वाला है । उष्णवीर्य है । विपाक में अम्ल है स्निग्ध है । यह विषनाशक, लेखन तथा दस्तावर (मर) है । पित्तज, कफज, कफ पित्तज पुराने सभी घोर रोगों का नाश करता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

और गुण

ताम्र भस्म अग्नि दीपन करने में श्रेष्ठ है । यह किमिनाशक, कुष्ठनाशक कामश्वास नाशक, क्षयनाशक, पाण्डुरोग नाशक है । अर्श, प्रदहणी, नेत्र रोग तथा स्थूलता को नाश करता है । तथा अन्य अनेक रोगों को नाश करता है ॥ ४७ ॥ ताम्र भस्म ज्वर नाशक, व्रणों को रोपण करने वाली, रुचिप्रद संयोगज विषों को नाश करने वाली, उदरामय [दस्त] को नाश करने वाली है । आयु वर्धक, दोनों मार्गों से (वमन, विरेचन के मार्गों द्वारा) दोषों को शान्त करती है, ऐसा रसायन शास्त्रियों ने माना है ॥ ४८ ॥

और गुण

उत्तम प्रकार की तांबे की भस्म शूल नाश करने में श्रेष्ठ है,

अम्लपित्त को नाश करती है, यकृत तथा प्लीहोदर को नाश करती है ॥ ४६ ॥ अपस्मार विसूची, दमन, को नाश करती है । आक्षेप को नाश करने में अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा खल्ली को नाश करती है ॥ ५० ॥ अग्निमान्द्य, परिणाम शूल, अन्त्र शोष इन सब को नाश करती है ॥ ५२ ॥

विशिष्ट गुण

हाथ पैर आदि शाखा में, आमाशय आदि कोष्ठों में (सारे उद्गर में) जत्रु संधि अर्थात् गर्दन से ऊपर के भाग में यदि मलपित्त या मल कफ बढ़ गयी हो तो ताम्रभस्म उसे अवश्य नाश करती है ॥ ५१ ॥

ताम्र की मात्रा निरूपण

ताम्र भस्म को रक्ती के आठवें भाग से लेकर आधी रक्ती तक अधिक से अधिक मात्रा में रोगी को उसका बल तथा काल आदि को देखकर दे सकते हैं ॥ ५३ ॥

ताम्र भस्म का रोगों पर प्रयोग

सम भाग पारा गंधक की कज्जली में नीबू का रस मिलाकर जो ताम्बे की भस्म बनाई जाती है (तीसरी विधि से बनायी हुई ताम्बे की भस्म) उसे आधी रक्ती लेकर त्रिकुटे के चूर्ण तथा काली मिरच के चूर्ण [सांठ मिरच पीपल एक २ भाग, काली मिरच एक भाग और ले] के साथ मिलाकर सेवन करे तो हस्तकम्प पादकम्प, शिरः कम्प (सिर का कांपना) आदि को तथा पक्षाघातादि रोगों को सर्वथा नष्ट करती है ॥ ५४ ॥ ताम्र भस्म आधी रक्ती, खस का चूर्ण २ रक्ती, नाग केसर २ रक्ती इन सब को एकत्र करके शीतल जल से पीवें तो शीघ्र ही

पित्तकफज मूर्छा को दूर करती है ॥ ५५ ॥ ताम्र भस्म को घी से मिलाकर सेवन करे ऊपर से जवासे का क्वाथ पीवे तां भ्रम रोग को ऐसे दूर करती है जैसे मेघ वृन्द को वायु नाश करती है ॥ ५६ ॥ करंजवे कं बीजों का चूर्ण के साथ ताम्र भस्म आधी रत्ती सेवन करावे तो पित्तज शूल तथा कफज शूल को निश्चित नाश करती है ॥ ५७ ॥ त्रिकुटा चूर्ण ३ माशे, शंख भस्म १ रत्ती, ताम्र भस्म आधी रत्ती मिलाकर एक मास तक सेवन करे तो अतिउग्र पीड़ा युक्त भी तिल्ली नष्ट हो जाती है ॥ ५८ ॥ ताम्र भस्म चौथाई भाग से आधी रत्ती ले, जीरा चूर्ण दो रत्ता लें, कौड़ी भस्म १ रत्ती लें। सब को मिलाकर देने से सूत का रोग दूर होता है ॥ ५९ ॥ पिपली का चूर्ण १ माशा, ताम्र भस्म आधा रत्ती मिलाकर सेवन करे तां अग्निदीपन करने में उत्तम है ॥ ६० ॥ पांवल्ले का चूर्ण ६ मासा, तांबा भस्म आधी रत्ती मिलाकर [शीतल जल से] सेवन करे तो अम्ल पित्त को ऐसे नाश करती है जैसे वृक्ष को बिजली ॥ ६१ ॥ भारंगी चूर्ण, बेहड़ा चूर्ण दोनों को तीन २ माशे लेकर ताम्र भस्म आधी रत्ती से मिलाकर शहद से चटावे तो कास तथा श्वास को नाश करती है ॥ ६२ ॥ नाग केसर चूर्ण दो माशा हरड़ का चूर्ण २ माशा, तांबा भस्म आधी रत्ती मिलाकर शहद से सेवन करे तो एक मास में सभी प्रकार की बवासीरों को दूर करदेता है ॥ ६३ ॥ ताम्र भस्म चौथाई रत्ती, पीपल की छाल की भस्म ३ माशा जल में घालकर पीवे तो भयंकर वमन को दूर करती है ॥ ६४ ॥ ताम्र भस्म आधी रत्ती को बिजौर नीबूके रस तथा शहद से मिलाकर चटावे या पिलावे तो पांचों प्रकार की भयंकर हिचकियों को दूर करता है ॥ ६५ ॥ केवल गन्धक से मारा हुआ तांबा आंखों

में अंजन करें तो पटल में होने वाले आंख के रोगों को दूर करता है ॥ ६६ ॥

त्रिकुट चूर्ण ३ माशे, पिप्पलामूलका चूर्ण १ माशा, ताम्र-भस्म आधी रत्ती सबको मिलाकर शहद से चाटें तो एक सप्ताह में ही यकृद्वाल्गुदरको दूर करता है ॥ ६७ ॥ त्रिकुटा चूर्ण ३ माशा, घी ६ माशा, ताम्रभस्म आधा रत्ती शहद एक तोला मिलाकर सेवन करें तो गुल्मों तथा विशेष कर अति सार को दूर कर देता है ॥ ६८ ॥ ताम्रभस्म १ भाग, शुद्ध वत्स नाभ १ भाग, धतूरे के पत्तों के रस में भावित कर के अदरक के स्वरस से सेवन करें तो सात्रपात को दूर करता है ॥ ६९ ॥ ताम्रभस्म को अदरक के स्वरस में मिलाकर पान के पत्ते के बीच में रखकर सेवन किया जावे तो गुल्मरोग का नाश होता है ॥ ७० ॥ रस मिन्दूर १ रत्ती, ताम्रभस्म आधा रत्ती छोटी कटेली के फल का चूर्ण ३ माशा इन सबको मिलाकर (शहद से) यदि लगातार सेवन किया जाये तो यह ऐसी खांसी को दूर करता है जिस में शब्द होता, हो आक्षेप होता हो, मुंह नीला हो जाता हो तथा श्वास का आना जाना रुक २ कर होता हो ॥ ७१ ॥ अत्यन्त थोड़ी मात्रा में यदि ताम्रभस्म (रत्ती का सोलहवां भाग) लेकर पीपल की छाल की राख के पानी से मिला कर या मोर के पंख की राख से मिला कर खायें तो भयंकर वमन को दूर करता है ॥ ७२ ॥ त्रिकुटा, चीता, पीपलामूल, जटामांसी तथा भारंगी के काठे के साथ ताम्रभस्म दें अथवा पिप्पल्यादिगणः पिप्पली, पिप्पलीमूल, मिरच, गजपीपल, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुका, छेटी इलायची, अलमोदा, सरसों, हींग, भार्गी, पाठा, इष्ट्र जौ, जीरा, बकायन, मूर्बा, अतीस, कुटकी, बिडंग इनका

कवाथलवण डालकर प्रसूता स्त्रिये पीवें यह पिप्पल्यादिगण कहाता है) के काटे के साथ ताम्रभस्म दें तो शीघ्र तीव्र हृदय शूल सहित, आक्षेप सहित, मक्कलशूल (सूतिका का जो शूल होता है को शीघ्र ही नाश कर देता है ॥७४॥ ताम्रभस्म, स्वर्ण भस्म, दोनों को चौथाई २ रत्ती लेकर जटामांसी के १ मांसा चूर्ण के साथ मिला कर दें तो अति भयंकर आक्षेप रोग को दूर करता है ॥७५॥ इस आक्षेप में चाहे मुट्टियें बंधी हों, मुंह नीलापड़ जाता हो, पीने या खाने के समय कण्ठ में घुर्घुरी होती हो चाहे थोड़ी देर का ही दौरा हो, चाहे अत्यन्त लंबा दौरा होता हो, चाहे रोग नया हो चाहे पुगना दोनों अवस्थाओं में इससे आराम होता है। साथ ही पैरों और उदर में होने वाली भयंकर खल्ली बात या ऐंठन को भी यह नाश करता है ॥७५॥

रेणुका अर्थात् संभालु का बीज, सोंठ, मुसब्बर, दार चीनी इनके समभाग चूर्ण को दों माशे लें, ताम्र भस्म आधा रत्ती लें इसे लगातार सेवन करें ता पेट के नीचे के भाग में, छाती में आक्षेप के सहित, चीखें मारते हुए, प्रलाप करते हुए, घोर पीडा से युक्त, वमन हो या वमन की इच्छा होरही हो, खल्ली (ऐंठन) पड़ रही हों, ऐसे बाधक रोग या रजोरोध को शीघ्र नाश करता है ॥ ७६—८० ॥ उत्तमतया भस्म हुआ तथा अमृता करण किया हुआ ताम्र आधी रत्ती, रत्न सिंदूर एक रत्ती, कपूर एक रत्ती, कस्तूरी आधी रत्ती मिलाकर सेवन करावे तो श्वेत रंग का अति पतला माण्ड की तरह का मल (दस्त), प्यास का बार २ लगना, पैरों तथा पेट में बार बार खल्ली या ऐंठन होना, नाड़ी का अति क्षीण होना, मुख नीला पड़ जाना, इन सब लक्षणों से युक्त बिषूचिका को नाश करता है ॥ ८१—८३ ॥

कज्जली, रम सिंदूर, प्रत्येक एक २ रत्ती लें, ताम्रभस्म आधी रत्ता मिलाकर सेवन करें तो उम मृगा का नाश करता है जिस में दौरे के समय होंठ नीले पड़ गये हों, मुख से अतिफेन निकलता हो, पुतलियां घूम (फिर) गयी हों ॥ ८४ ॥ रोता हो चिल्लाता हो, भयङ्कर आक्षेप (हाथ पैर फेंकना) करता हो, दाँतों को कट २ करके चलाता हो ॥ ८५ ॥ गन्धक द्वारा भस्म किया हुआ ताम्र आधी रत्ती, लोहभस्म १ रत्ती, स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती मिलाकर सेवन करें तो परम भयङ्कर उम श्वांस को शीघ्र ही नाश करता है ॥ ८६ ॥ जिसके साथ २ अत्यन्त आक्षेप हो रहा हो, मुखमण्डल नीला पड़ गया हो, श्वांस की प्रणाली के अन्दर सङ्कात्र प्रतीत हो तथा सांस लेने में कष्ट प्रतीत होता हो ॥ ८७ ॥ कुटकी, गिलोय, पित्तपापड़ा, चिरायता मोथा इन सबके क्वाथ के साथ ताम्र भस्म दें ता पुनरावर्तक ज्वर [छूटकर फिर २ आन वाला ज्वर (Relapsing Fever) नष्ट होता है ॥ ८८ ॥ पुनर्नवा, मेढासिंगी तथा हल्दी के स्वरस या क्वाथ से भावित किया हुआ ताम्र भस्म जिसे गन्धक के साथ मारा गया हो व्रणों पर लगावें तो व्रणों को शोधन तथा रोपण करता है ॥ ८९ ॥ ताम्रभस्म जो गन्धक से की गयी हो, एक तोला लें, घिमा हुआ लाल चन्दन ८ तोला ले । दोनों को एकत्र पीसलें और भांगरे के स्वरस में चौबीस बार भावना दें । फिर सुखाकर रखें । उसे शहद से मिलाकर आंखों में लगावें तो तिमिर रोग का नाश करता है ॥ ९१ ॥ चांदी भस्म, सुवर्ण मालिक भस्म, ताम्र भस्म सबको एक २ भाग लेकर पीसलें और चीते के रस में भावित करलें इसे १ रत्ती की मात्रा में सेवन करें तो सूर्यावर्त्त अधविभेदक

आदि धाराम्बर के रोगों को नाश करता है ॥६२॥ यवक्षार हडताल, तथा पारद गंधक के मेल से भस्म किया हुआ ताम्र सेवन करने से कुष्ठ को नाश करता है ॥६३॥

रविताण्डवरम

शुद्ध ताम्बे के पत्र बनाकर एक पल लें। पारा एक भाग, गंधक दो भाग मिलाकर कज्जली कर लें। यह कज्जली भी एक पल लें ॥६४॥ दोनों को घोट कर घी कुम्बार के रस से मर्दन करें। तीन दिन तक घोट २ कर एक गोला बना लें और उसे धूप में सुखा लें ॥६५॥ तब उसे मम्पुट में बंद करके एक हांडी में रखें। उस हांडी को गले तक उपलों की राख से भर कर चूल्हे पर धर दें ॥६६॥ फिर तेज आंश से ६ घण्टे तक पकावें। स्वांग शीतल होने पर ताम्बा निकाल लें ॥६७॥ फिर इसमें नीबू का स्वरस डाल २ कर घोटें तथा सातवार इसी रस में घंटकर पुट दें (कपात पुट दें) इससे ताम्र का भस्म हो जाती है जोकि कपिश (भूरे) वर्ण की हो जाती है ॥ नीबू से घोट कर पुट देना ही अमृतीकरण करना है।

इसके गुण

इसे रविताण्डव रस कहते हैं। इसे विशेष कर भगन्दर नाश करने के लिये श्रेष्ठ माना जाता है ॥ इसे खाने से भगन्दर के व्रण में से निकलने वाली पीप आदि घटती है ॥६८॥

हृदयार्णव रम

पारे गन्धक की समभाग कज्जली १ भाग, अमृतीकरण किया हुआ ताम्रभस्म दो भाग लें। दोनों को पीसकर पहले त्रिफला के क्वाथ में फिर मकोय के क्वाथ में घोटें ॥१००॥

फिर चौथाई रस्ति की गोलियां बना लें। यह हृदयार्णव रस हृदय रोग को नाश करता है ॥१०१॥

ज्यम्बकेश्वर रस

ताम्र के सूक्ष्म २ पत्रों को तपा २ कर तीन बार गोमूत्र में बुझा २ कर शुद्ध कर लें। इस चूर्ण को ८ तोला लें ॥१०२॥ शुद्ध पारा ४० तोला लें। दोनों को घोटकर मिलाकर नीबू के स्वरस से अनियत्न पूर्वक घांटे। ॥ १०३ ॥ शुद्ध गंधक ४० तोला लें। पान के पत्तों के स्वरस में सबको एकत्र कर दो दिन तक पीसे ॥ १०४ ॥ फिर गोला बना कर सम्पुट में रख सन्धि लेपकर भूधर यंत्र में रखकर अतिमन्द २ अग्नि से १५ घंटे पकावे। स्वांग शीतल होने पर ताम्र को निकाल लें ॥ १०३ ॥ इस ताम्र भस्म को त्रिहुटे के चूर्ण के साथ मिलाकर खावें तो अग्नि मांघ का नाश होता है तथा अर्द्धांग वात को नाश करने में परम श्रेष्ठ है तथा कम्पवात को नाश करने में भी अति श्रेष्ठ है १०७ ॥

सूर्यावर्त्त रस

उत्तम ताम्र भस्म ८ तोला, शुद्ध पारे से आधा भाग शुद्ध गन्धक डालकर बनाई हुई कज्जली ८ तोला लें। धीकुमारी के रस में दोनों को मिलाकर अति यत्न से घाट लें। फिर गोला बनाकर अच्छी प्रकार से धूप में सुखावें ॥ १०६ ॥ फिर सम्पुट में रखकर बालुका यंत्र में ६ घंटे पकावे [मन्दान्नि से पकावें] स्वांग शीतल होने पर ताम्र भस्म निकाल लें ॥ ११० ॥ यह सूर्यावर्त्त रस कहाता है। विशेषकर यह श्वास को नाश करता है ॥ १११ ॥

शूलेभकेशरी रस

शुद्ध ताम्र १ पल, शुद्ध पारा १ पल, गंधक शुद्ध २ पल, शुद्ध हड़ताल ३ पल, सबको अतिथत्न से मिलाकर ६ घंटे तक विधि पूर्वक घोटें । फिर धूप में सबको सुखाकर सम्पुट में करलें । ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ऊपर से बकरी के दूध में सुहागा पीसकर सम्पुट की संधिलेपन कर । इसे ऊपर नीचे से नमक के चूर्ण में रखकर ढांडी में भरदे ॥ ११४ ॥ फिर गजपुट में रख दें । इस प्रकार तेज आंच देने से एक पुट में ही ताँबा भस्म हो जाता है ॥ ११५ ॥ इसे शूलेभकेशरी कहते हैं । यह शूल को नाश करने के लिए अन्वयर्थ अस्त्र माना जाता है ॥ ११६ ॥

भूनाग के सत्वपातन का प्रकार

वर्षा ऋतु में केंचुओं में (गण्डियों) का लें । फिर इनके समान भाग ही मकड़ी का जाला, गूगल, गुड़, सुहागा, लाख मछलियां, तिल की खली का चूर्ण, इन सबको मिलाकर पामलें । फिर एक भूषा में रखकर आग दें । तेज आंच में तपावे, धौंकनी से हवा देते जाय । तो शीघ्र ही ताँबे के सदृश इनका सत्त्व निकल आता है ॥ ११८ ॥ (यह शुद्ध ताँबा होता है)

भूनाग सत्व का मागण

भूनागों का सत्त्व १ पल (८ तोला) लें । शुद्ध पारा दो अक्ष (चार तोले) लें । शुद्ध गन्धक का चूर्ण ८ तोला लें । सब को विधि पूर्वक पीसकर सम्पुट कर जंगला उपलों का आग में पुट देदे ॥ ११६ ॥ इस प्रकार इस सत्त्व को तीन बार पुट देदे तो यह उत्तमता से मर जाता है । इसे ताँबे के सदृश ही अमृती करण के रोगों पर ताम्बे की भस्म के स्थान पर प्रयोग

करें ॥ १२० ॥

इसके गुण

भूनाग सत्त्व की भस्म कर्मैली, कुष्ठ नाशक, विशेष करके विषों का नाश करने वाली है तथा ताम्र के समान गुणकारी है ॥ १२१ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

भूनाग सत्त्व को ताम्र के समान प्रयोग करें । ताम्रभस्म के समान ही अनुपान तथा सहपान देने चाहिए ॥ १२२ ॥

मयूर पक्ष का सत्त्वगतन

भूनाग सत्त्व बनाने की रीति से उनही द्रव्यों का मिला कर मोर के पंखों का सत्त्व भी बनाले । इस सत्त्व को उसी सत्त्व की तरह फिर भस्म भी करले । इसके गुण भी वैसे ही जानें तथा ताम्र के समान ही इस मोर पंखों के सत्त्व को रोगों पर प्रयोग करें ॥ १२४ ॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रस तरंगिणी के भाषानुवाद में ताम्रविज्ञानीय नाम का सप्तदश तरंग समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

अथ वङ्गविज्ञानीय नाम का अष्टादश तरङ्ग ।

वंग के नाम

वंग, वंगक, रंग, रंगक, शुक्लोह, कुरुप्य, त्रपुस, त्रपुष, त्रपु
ये नाम वंग (कली) धातु के हैं ॥ ११ ॥

वंग के दो भेद

खुरक तथा मिश्रक के भेद से वंग दो प्रकार की है । खुरक
वंग श्रेष्ठ है, मिश्रक हीन है ॥ २ ॥

खुरक का लक्षण

जो कोमल, निर्मल, चांदी के समान चमकदार श्वेत, शीघ्र
पिघलने वाली तथा आग पर पिघलते समय शब्द न करे वही
खुरक वंग कहाती है ॥ ३ ॥

मिश्रक का लक्षण

जो पिघलने में अति कठिन हो, रूखी हो, अन्य धातुओं
से मिली हुई हो, दूसरे रंग की हो, कठिन हो उसे मिश्रक वंग
कहते हैं ॥ ४ ॥

वंग का ग्राह्य अग्राह्यपन

खुरक नामकी वंग मारण के लिये उत्तम है । मिश्रक त्याज्य
है, ऐसा रसायन शास्त्रियों ने माना है ॥ ५ ॥

वंग शोधन का प्रयोजन

अशुद्ध वंग सेवन करने से अथवा भस्म किये बिना वंग

सेवन करने से शरीर की सारी कान्ति नष्ट हो जाती है, कुष्ठ तथा किलास (श्चित्र) हो जाता है ॥ ६ ॥ गुल्म, प्रमेह, क्षय, पाण्डु, शोथ, कफज्वर, भगन्दर, शुक्राश्मरी और रक्तविकार से होने वाले अनेक रोगों को उत्पन्न करती हैं ॥ ७ ॥ [एक मनुष्य को बंग के कच्चे पत्रों का चूर्ण खाने से नपुंसकता हो गयी तथा जननेन्द्रिय सिकुड़ते २ एक इंच रह गई थी । अनुवादक] ।

बंग शोधन का प्रथम प्रकार

सुरक बंग को एक लोहे के कड़छे में रख आग पर पिघला कर शुद्ध चूने के पानी में बुझावे ॥ ८ ॥ चूने का पानी जिस हांडी या घड़े में पड़ा हो उसके मुंह में एक छिद्र वाला ढक्कन लगादे । इस छिद्र में से पिघली हुई बंग डालें । इस प्रकार गला २ कर सातवार चूने के पानी में बुझाने से बंग सर्वथा शुद्ध हो जाती है ॥ ९ ॥ [दवा डालने के बाद छिद्र पर भी कोई ईंट पत्थर रख कर उसे ढक दें]

द्वितीय शोधन प्रकार

बंग को लोहे की कड़छी में रख अग्नि पर पिघलावे । इसे आक के दूध में कई (३ या ७) बार बुझावे । उमी प्रकार ढक्कन के छिद्र में से डालें । इस प्रकार बंग शीघ्र शुद्ध हो जाती है ॥ १० ॥

तृतीय शोधन प्रकार

बंग को गलाकर पूर्व विधि से हल्दी के चूर्ण मिले हुए संभालु के पत्तों के रस में तीन बार बुझावे । शेष कर्मों को पहले लिखी हुई विधि के समान ही करें । इससे बंग उत्तम

रसतराङ्गणा

प्रकार से शुद्ध हो जाती है ॥ ११ ॥ बंग को पिघला कर जब किमी द्रव पदार्थ में डालना हो तो उचित ढंग से छिद्र में से डालकर छिद्र को ईंट आदि से बंद कर दे जिससे कि वह उछल कर बाहर न जा गिरे और शरीर को न जलादे ॥ १२ ॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

बंग को लोहे की कड़ड़ी में पिघला कर खट्टी छाल में पूर्वोक्त विधि से बुझावे ॥ १३ ॥ फिर गोकुमार के रस में बुझावे ॥ १३ ॥ इस प्रकार (तीन २ बार दोनों में बुझाने से) बंग सर्वथा शुद्ध हो जाती है ॥ १४ ॥

बंग मारने का प्रथम प्रकार

एक लोहे की कड़ाही को अग्नि पर रखे । उसमें शुद्ध बंग डाल दे । चूल्हे में अग्नि तेज कर दे ॥ १५ ॥ बंग यदि १६ भाग हो तो उसमें शुद्ध पाग एक भाग डाल दे । अब शुद्ध दड़ताल का चूर्ण थोड़ा २ कड़ाही में बार २ छोड़ता जाये और जंगली कपास की लकड़ी से चलाता जाये । जब तक सारे बंग की भस्म न हो जाये तब तक दड़ताल का चूर्ण (जितना पड़ सके) डालता जाये ॥ १७ ॥ तब एक प्याले से बंग की उस भस्म को ढक दे और नीचे तीव्र आंच देकर पकावे । इस प्रकार बंग उत्तम रीति से भस्म हो जाती है ॥ १८ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

शुद्ध बंग को लेकर चूल्हे पर रखी हुई कड़ाही में डाले और नीचे आग को तेज कर दे ॥ १९ ॥ बंग जब गल जाये तो बंग से चौथाई भाग अपामार्ग का चूर्ण लेकर पास रख ले । इसमें

से थोड़ा (चुटकी २ भर) चूर्ण बार २ कड़ाही में छोड़े ॥ २० ॥ बंग को लोहे की मूसली से घोटता जाये । बंग भस्म होने तक उस चूर्ण को ढाल २ कर समाप्त कर दे ॥ २१ ॥ फिर उम भस्म को इकट्ठा करके एक प्याले में ढक दे । फिर एक दिन भर तेज आंच देवे ॥ २२ ॥ जब बंग की भस्म जलने हुए आंगार के सदृश लाल हो जाये तब अग्नि बंद करके स्वांगशीतल होने दे । इस बंग भस्म को लेले ॥ २३ ॥ यह भस्म शंख कुन्दफूल या चन्द्रमा के समान श्वेत रंग की होती है । इस बंग भस्म को निश्शंक होकर सर्वत्र प्रयोग करें ॥ २४ ॥

[इसमें तेज आंच दें जो कड़ाही का तला भी लाल हो उठे तभी भस्म ठीक बनेगा । नहीं तो नहीं बनेगा ।]

तृतीय मारण प्रकार

शुद्ध बंग चार भाग लेकर कड़ाही में पिघलावे । उममें एक भाग शुद्ध पारा मिला दे ॥ २५ ॥ इसमें यत्नपूर्वक घोटकर मिलाने ही नीचे उतार लेवें । फिर बंग की आधी शुद्ध हड़ताल ढालकर खरज में पीस लें ॥ २६ ॥ फिर बारक चूर्ण बनाकर आक के दूध से घोट लें । फिर पीपल की छाल की भस्म की छनी हुई चार के मध्य में इस रखें और शरावपुट में विधिपूर्वक (तालक प्रकरण में कही हुई तालक मारने की विधि से) रख कर संधि बंद करके लावकपुट में रखकर भस्म करें । इस प्रकार दो पुट में ही बंग भस्म हो जाती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

चतुर्थ मारण प्रकार

शुद्ध बंग को कड़ाही में पिघलाकर सूखी पीपल की छाल के चूर्ण को सम भाग लेकर थोड़ा २ करके बार २ कड़ाही में

डाले तथा लोहे की मूमली से घोटता जाये । बंग भस्म होने तक चूर्ण समाप्त कर दे ॥ २६ ॥ ३० ॥ फिर कड़ाही के मध्य में भस्म को इकट्ठा करके एक प्याले से ढक दे । नीचे तेज अग्नि देवे । जब बंग भस्म देर तक जलते हुए अंगारों की तरह लाल होकर देर तक जल चुके तो समझो कि बंग भस्म हो गयी । एक दिन भर आग देनी पड़ेगी । स्वांगशीतल होने पर बंग भस्म को निकाल लें । फिर जल से कई बार धोकर चार रहित कर ले और निःशंक होकर सब रोगों पर प्रयोग करें ॥ ३३ ॥

नोट—कड़ाही तेज अग्नि पर लाल होकर जल रही हो । लगानार घोटते जायें तो बहुत देर में बंग भस्म बनेगी । जल्दी न बनेगी । यदि चार पांच स्र बंग बनानी हो तो चार पांच दिन में बनेगी । आज जितनी बन जाये कल आगे बनानी चाहिये । शेष भाग डला बन जायेगा । फिर अगले दिन बनायें । घबरायें नहीं । धैर्य से मन रथ मिद्ध होगा ।

प्रपङ्ग से चार शून्यता की परीक्षा

चार से रहित बंगादि धातु तथा द्रव्यों को करने की विधि यहां नव्य रसायन वर्तमान (Chemistry) शास्त्र के अनुसार लिखते हैं जिससे वैद्यों को भी इस विधि का ज्ञान हो सके ॥ ३४ ॥ लाल वर्णक पत्र (Red Litimus paper) को यदि बंग के धुले हुए जल में डाल दें और वह नीले रंग का न होवे तो समझो इस जल में चार नहीं है परन्तु यदि नीला हो जाये तो समझो इस जल में चार है ॥ ३५ ॥

पञ्चम मागण प्रकार

शुद्ध बंग को गल कर उसके कोमल पत्र कर लें । फिर

आक के दूध से हड़ताल को पीमकर इन पत्रों पर लेप कर दें ॥ ३६ ॥ उन पत्रों को धूप में सुखाकर डमली के छाल के द्वार के मध्य में उनको रखकर पुट दे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार तीन पुट देने से बंग भस्म हो जाती है। इस भस्म को निःशंक प्रयोग करें ॥ ३८ ॥

मृत बंग के गुण

बंग भस्म लघु, दस्तावर, शीत, रुक्ष, मेध्य, कड़वी, कसैली तथा कुछ लवण रस वाली है। मेद नाशक, रुचिकारक, रसायन, कफ रोग नाशक है ॥ ३९ ॥ वमननाशक, अत्यन्त व्रणनाशक, सर्वप्रमेहनाशक, नेत्र दृष्टि के लिये हितकर, सुमतिदायक, क्षयनाशक, अतिवीर्यवर्धक, श्वेतप्रदग्नाशक, व्रणनाशक, कृमिरोगनाशक, कामवर्धक, धैर्यदायक, बर्णशोधक, कामदेव का उत्पादक, स्वप्नदोषनाशक, कासश्वासनाशक, कृशों को मोटा करने वाली वृष्य, बलदायक, वातनाशक, पाण्डुरागनाशक है। यह बंग देहधारियों को सर्वथा सुखदायक है ॥ ४१ ॥ गर्भाशय के लटकन या टेढ़े होने को दूर करता है, श्वास कष्ट को दूर करता है। शोष रोग में उत्पन्न होने वाले रक्त के पसने का तथा कफ को नाश करता है ॥ ४०-४२ ॥

विंशष्ट गुण

श्वाम नली में लगे हुए बड़े हुए मल नाम के कफ को जो पुराना भी हो यह बंग शीघ्र दूर करता है ॥ ४२ ॥

और भी

बंग भस्म सेवन करने से सर्वांग में होने वाली मन की

विकृतिजन्य प्रसाद नाम की पवन भी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥ ४४ ॥

बंग को उष्ण या शीत बनाने का कारण

गन्धकादि के योग से मारी हुई बंग भस्म उष्ण होती है । क्षारार्द्र द्वारा की हुई भस्म शीतल होती है ॥ ४५ ॥

बंग की मात्रा

एक रत्ती से दो रत्ती तक बंग भस्म का प्रयोग करना चाहिये ॥ ४६ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

बंग भस्म २ रत्ती, मतगिलोय ४ रत्ती, मधु ३ माशा मिलाकर सेवन करें तो शीघ्र ही प्रमेह ऐसे नष्ट होत हैं जैसे मिट्ट से हाथी ॥ ४७ ॥ बंग २ रत्ती, शिवाजीत ४ रत्ती, मधु ३ माशा मिलाकर एक मास सेवन करें तो क्षणशुक्र, अल्पशुक्र, शुष्क तथा कृश रागियों के बीज दोषों को दूर करके वीर्य को शुद्ध करती है तथा बढ़ाती है ॥ ४८ ॥ घा के साथ बंग भस्म सेवन करें तो पाण्डुरोग को शीघ्र ही नाश करती है । सुहागे के चूर्ण के साथ बंग भस्म सेवन की जाये तो गुल्म रोग को नाश करती है ॥ ४९ ॥ विषप्ली चूर्ण ४ रत्ती, बंग १ रत्ती सेवन करें तो अग्निमांश को नाश करती है । बंग भस्म १ रत्ती सुपारी का चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो अजीर्ण को नाश करती है ॥ ५० ॥ बंग भस्म को हल्दी के चूर्ण के साथ सेवन करें तो ऊर्ध्ववात तथा रक्तपित्त को नाश करती है ॥ ५१ ॥ रस मिन्दूर १ रत्ती बंग भस्म २ रत्ती मिलाकर ताजी

हल्दी के स्वरस से सेवन की जाये तो ब्रणमेह को नाश करती है ॥ ५२ ॥ बंगभस्म को वरुणादिगण की औषधों के क्वाथ से सेवन करें तो ब्रण नाश करने में परमश्रेष्ठ है ॥ ५३ ॥ बंगभस्म को चम्पा के स्वरस से वा कपूर के साथ सेवन करें तो मुख की दुर्गन्ध को नाश करती है ॥ ५४ ॥ बंग को कस्तूरी के साथ खावे तो वीर्यस्तम्भन के लिये परमोत्तम है । जायफल तथा शहद से बंगभस्म खावे तो शुक्रपुष्टि के लिये परमोत्तम है ॥ ५५ ॥ बंगभस्म को खैर के क्वाथ से दे तो चर्मरोग को नाश करती है । बंग भस्म को समुद्रफेन के चूर्ण के साथ खिलावे तो दुष्ट वीर्य का शुद्ध करती है ॥ ५६ ॥ अपामार्ग की जड़ के चूर्ण के साथ बंगभस्म दे रत्ती खावे तो नपुंसकता को शीघ्र ही नाश करती है ॥ ५७ ॥ सीमल का जड़ के चूर्ण के साथ दे रत्ती बंगभस्म मिलाकर हल्दी के चूर्ण तथा शहद से खावे तो वीर्य वृद्धि करने में श्रेष्ठ है ॥ ५८ ॥ लघुशाल्मली (सीमल का छोटा सा पौधा जो एक दो साल का हो) का जड़ का चूर्ण १ माशा, अभ्रकभस्म १ रत्ती, बंगभस्म २ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो वीर्य को उत्पन्न करने में परमोत्तम है ॥ ५९ ॥ बंगभस्म को खांड से मिलाकर सेवन करें तो पित्त को नाश करती है । नीबू के स्वरस से बंगभस्म सेवन करें तो देह के दाह को हरती है ॥ ६० ॥ तुलसी के पत्तों के साथ बंगभस्म प्रमेहों को नाश करती है । पान के पत्तों के रस से बंगभस्म विबंध (कब्ज) को निश्चित नाश करती है ॥ ६१ ॥ लाडभस्म रत्ती शुक्तिकाभस्म १ रत्ती, बंगभस्म १ रत्ती, राल चूर्ण १ रत्ती मिलाकर इसे दो रत्ती की मात्रा में दो बार दिन में सेवन करें तो श्वेतप्रदर को दूर करती है ।) इसी प्रयोग को श्रीयुत कविराज नरेन्द्रनाथजी मित्र का एक स्वर्गवासी शिष्य पंजाब का प्रामद्ध वैद्य

“वंगचतुष्टय” नाम से वर्षों विज्ञापन द्वारा बेचना रहा था । प्रथमवार की छुपी रसतरंगिणी में “त्रिगुणंगल महितं” पाठ है । राल ३ रत्ती ले । ६ रत्ती की मात्रा दिन में दो बार दें । मित्राजी ऐसे ही देते थे न कि दो रती कुल मात्रा) ॥ ६२ ॥ बंगभस्म को शशक के खून से मिलाकर मुख पर लगावे अथवा बंगभस्म को हल्दी, केसर श्वेतचंदन, मिलाकर भैंस के दूध से मिलाकर मुख पर लेप करें तो मुख पर की काली नीली छायाएं तथा झाड़ये दूर होती है ॥ ६३ ॥ रससिन्दूर १ रत्ती बंगभस्म दो रत्ती मिलाकर सेवन करें तो शीघ्र ही प्रमेह तथा शुक्ल-क्षणाता दूर होती है ॥ ६४ ॥ १ माशा मूसली के चूर्ण के साथ बंगभस्म २ रत्ती सेवन की जावे तो एक मास सेवन करने से वीर्य का पतलापन निश्चित दूर हो जाता है ॥ ६५ ॥ राजावर्त्त (लाजवर्द) मणि की भस्म १ रत्ती, (आगे रत्नों में भस्म विधि कहेंगे) रससिन्दूर १ रत्ती दोनों को मिलाकर लाल चंदन के कवाथ से पीबें तो जीर्ण उ्वर नष्ट होता है ॥ ६६ ॥ स्वर्ण-मार्क्षिकभस्म १ रत्ती, चांदीभस्म १ रत्ती, बंगभस्म २ रत्ती सेवन करें तो ऊर्ध्वजत्रु (गरदन से ऊपर के भाग) में होने वाले नाड़ीशूल (Neurelgia) को नाश करती है ॥ ६७ ॥

स्वर्णबंग का प्रथम निर्माण प्रकार

एक लोहे का कड़्छी में शुद्ध बंग ६ तोला लेकर अग्नि पर गलावें । बंग के पिघल जान पर शुद्ध पारा ६ तोला उसमें डाल दें और तुरन्त ही खरल में डालकर अतियत्न से पीस लें । जब एक प्राण चूर्ण हो जाये तो किसी अम्लरस (या नींबू के रस) को डालकर खूब घोंटें । फिर सेंधालवण का चूर्ण डालकर खूब घोंटें और फिर जल डाल २ कर घोंटें । (जिस समय

काला पानी निकलना बंद हो जाये तब धोना बंद कर दें। इस समय शुद्ध गंधक ६ तोला डालें, नौशादर ६ तोला डालें। सब को अतियत्न से पीसकर बागीक चूर्ण कर लें ॥ ७१ ॥ फिर कपड़मिट्टी की हुई एक कांच की कुप्पी में (या शराब की काली, पीली या लाल बोतल, जिसके ऊपर का ढाट लगाने का गर्दन का तंग स्थान काट दिया हो) सब चूर्ण डाल दें। इस कुप्पी को बालुकायंत्र में रखकर यत्न से पकावे। १२ घंटे की मन्द-मध्यम तीक्ष्ण क्रमाग्न से पकावे। जब शीशी के मुख में से धुआं निकलना बंद हो जावे तो मंडासा से कुप्पी या शीशी को दृढ़ता से पकड़ कर रेत में से निकाल कर एक दम भूमि पर रख दे। गरम २ निकल कर ठण्ड में आते ही बंग के सुनहरी कण Crystals उत्तम बनेंगे। यही इसका भेद है। इसे बालुकायंत्र में ही स्वांगशीतल न करे। ॥ ६३ ॥ फिर शीशी को तोड़कर कुप्पी के तल पर लगे हुए सुनहरी रंग के स्वर्णवंग को निकाल लेवे ॥ ७४ ॥ कुप्पी को तोड़ने से जो सूक्ष्म २ शाश के कण उसमें मिल गये हों उन्हें संभाल कर चुन २ कर अलग करता जाये। शेष सुनहरी बंग को अलग संभाल लेवे। क्योंकि यह बंग सुनहरी रंग की हो जाती है तथा मोने के कणों की तरह चमकती है इसीलिये रसायनाचार्यों ने इस स्वर्णवंग नाम से पुकारा है ॥ ७५-७६ ॥

नोट— शुद्ध गंधक ऐसी ले जिसमें चिकनापन न होवे।

द्वितीय निर्माण प्रकार

शुद्ध बंग १२ भाग लेकर अग्नि पर पिघला कर उसमें शुद्ध पाग ६ भाग डालकर तुरन्त खरल में पूर्ववत् घोट ले। फिर अम्लरस से घोटें। (पूर्ववत् सेंधालवण डालकर घोटें और

धोवें ।) फिर शुद्ध चिकनाइट रहित गंधक आठ भाग डालें । नौसादर ६ भाग डालें । सबको एकत्र पीसलें । कुप्पी में डाल बालुका यंत्र में रख उसी प्रकार पकावें । जब धूम निकलना बन्द हो जावे तो संडासी से पकड़ कर कुप्पी को रेंता में से निकालकर भूमि पर रख दें । ठण्डा हो जाने के बाद कुप्पी को तोड़कर पूर्ववत् ही सावधानता से सुवर्ण के समान सुन्दर चमकती हुई सुवर्णवंग को निकाल लेवे ॥७८॥ यह विधि आयुर्वेद सागर के कुशलतम मल्लाह गुरुवर श्री कविराज नरेन्द्रनाथजी मित्र ने आविष्कृत करके लोक कल्याण के लिये अपने शिष्यों को बनलायी थी । वही विधि मैंने भी जग कल्याणार्थ यहाँ लिख दी है ॥७७—८०॥ (यह विधि पहली से सुगम तथा अधिक उत्तम है । “रसकौ-मुदी” “सिद्धभेषज-मणिमाला” आदि में भी इससे मिलता हुआ योग है)

इसके गुण

सुवर्णवंग शीतल, रूक्ष, मर (दस्तावर), तिक्त, लवण तथा अम्लरस वाली है । रसायन है, प्रमेहनाशक, मेधावर्धक, बल-वर्धक तथा नेत्र के लिये अति हितकर है ॥८१॥ लावण्यदायक, अग्निवर्धक, कफनाशक, तथा परम वृष्य है । मेदनाशक, वीर्य-वर्धक, आदि अनेक गुण वाली है ऐमा वैद्यों ने कहा है ॥८२॥

इसकी मात्रा

सुवर्णवंग को १ रत्ती से २ रत्ती की मात्रा में बलकालादि को देखकर प्रयोग करें ॥८३॥

इसका रोगों पर प्रयोग

वंग के अनुपानों के सदृश ही स्वर्णवंग को उन २ रोगों में देवें ॥८४॥

गीतिका

बड़ी इलायची का चूर्ण ४ रत्ती, नाग केशर का चूर्ण ४ रत्ती यशदभस्म १ रत्ती, सुन्दर सुवर्णवंग २ रत्ती मिलाकर सेवन करे। पथ्य से रहें तो सात दिन में श्वेत प्रदर को दूर करती है ॥८५-८६॥ इसी योग को यदि एक मास तक सेवन किया जाये तो पुराना शुक्रमेह भी दूर हो जाता है ॥८७॥ कंकोल (शीतलचीनी) का चूर्ण १ माशा, स्वर्णवंग २ रत्ती मिलाकर शीतल जल से पीवें तो व्रणमेह को नाश करती है ॥८८॥ स्वर्णवंग २ रत्ती हल्दी का स्वरस १ तोला, मधु तीन मासे मिलाकर पीवें तो व्रणमेह (सूजाक) को नाश करने के लिये यह अचूक अस्त्र है ॥८९॥ श्वेत शारिवा के क्वाथ से सुवर्णवंग २ रत्ती खावें तो उग्रव्रणमेह को नाश कर डालती है ॥९०॥ सुवर्णवंग २ रत्ती, शीतलचीनी १ माशा मिलाकर शीतल जल से खावें तो रात्रिमेह (स्वप्नदाष या Night Discharges) को शीघ्र ही नाश करती है ॥९१॥ लघुसामल की जड़ के चूर्ण को ३ माशा के साथ सुवर्णवंग २ रत्ती खावें तो बल तथा वीर्य को बढ़ानी है ॥९२॥

और भी

स्वर्णवंग २ रत्ती, यशदभस्म १ रत्ती, शहद १ माशा मिलाकर एक मास तक खावें। खटाई और अपथ्य त्याग दें पथ्य से

रहें तो (शुक्रतारल्य) वीर्य का पतलापन दूर करके कामी मनुष्यों के अन्दर बल की अति वृद्धि उत्पन्न करती है ॥६३॥ सुवर्णवंग १ रत्ती, रससिन्दूर १ रत्ती दोनों को पीसकर शहद से मिलाकर प्रातः सायं दो बार खावे पथ्य से रहें तो एक मास के प्रयोग के बाद प्रबल शुक्र की कमी तथा शुक्रतारल्य भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥६४—६५॥

अथ सुवर्णवंग पञ्चक रसायन

उत्तम सुवर्णवंग २ तोला, शुद्ध शिलाजीत दो तोला, तीक्ष्णलौह (फौलाद) की भस्म एक तोला, अभ्रकभस्म आधा तोला लें ॥६६—६७॥ मकरध्वजभस्म आधा तोला लें । सबको एकत्र पीसकर तीन रत्ती की गोली बनालें ॥६८॥ इन्हें शीशी में रखकर दिन में दो बार रोगानुसार अनुपानों से दें ॥६९॥ बलवान तथा निर्बल रोगी को देखकर मात्रा अधिक तथा कम करके इस रसायन को सेवन करावे । इस रसायन का नाम सुवर्णवंग पञ्चक रसायन है ॥१००॥ बंगाल के सुप्रसिद्ध वैद्य श्रीरमानाथ सेनजी ने बड़ा विचार करके यह सुन्दर रसायन पहले पहल निकाली थी ॥१०१॥ संसार के कल्याण के लिये इसे गुरु संप्रदाय से प्राप्त करके मैंने यहां छाप दिया है । श्री कविराज रमानाथसेन जी के शिष्य श्री कविराज अमृतलालजी थे । श्री अमृतलाल जी के शिष्य श्री नरेन्द्रनाथ मित्र थे । श्री कविराज मित्र जी से पं० सदानन्दजी ने तथा अन्य मेरे जैसे अनेक शिष्यों ने इस रसायन को सीखा था । इस प्रकार गुरु परंपरा से प्राप्त करके ही श्री पं० सदानन्द जी ने इस अपनी रसतराङ्गिणी “पुस्तक में लिखा है ।) यह औषध शुक्रमेह के नाश करने में अचूक अस्त्र है ॥१०२॥ यह बल, वण, बढ़ाने

वाली, वृष्य, बुद्धि को अत्यन्त बढ़ाने वाली तथा विशेष करके शुक्रतारल्य (वीर्य का पतला पड़ जाना) रोग को नाश करती है ॥१०३॥ खांड, मलाई, घी, इनके साथ मिले हुए गरम कढ़े हुए दूध के साथ इस सुवर्ण वंग पञ्चक रसायन को दो मास खावें तो बहुत पुराना तथा अत्यन्त बढ़ा हुआ भी शुक्रमेह नष्ट होता है तथा मनुष्य में नारियों को प्रमत्त करने की विषय-सामर्थ्य भरपूर उत्पन्न हो जाती है ॥१०४॥ (मूत्रमल करते समय वीर्यपात होना ही लुक्रतारल्य का लक्षण है) ॥

श्री विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी के भाषानुवाद में वंग विज्ञानीय नाम का अष्टादश तरंग समाप्त हुआ ॥१॥

अथ सीसकादि विज्ञानीय नाम एकोनविंश तरङ्ग ।

सीसक के नाम

सीसक, शीषक, सीस, नागक, नाग नाम वाले सभी नाम (मर्ष, भुजग, भुजंग, आदि), कुवंगक, कुरंग, सिन्दूर कारण (अर्थात् जिससे सिन्दूर बनाया जाता है) ये सभी नाम सीसा धातु के हैं ॥१॥

ग्राह्य सीसक का स्वरूप

जो सीसा भारी हो, कोमल हो, स्निग्ध हो, छेदन करने से मैले से रंग का अर्थात् काला सा हो पर चमकदार हो, बाहर से साँवले या काले रंग का हो, शीघ्र ही अग्नि पर पिघल जाता हो उसे उत्तम सीसा कहते हैं ॥२॥

अग्राह्य सीसक का स्वरूप

जो सीसा बाहर से श्वेत रंग का हो, भार से हीन हो, रूखा हो, काटने से चमकदार न निकले, मंल युक्त हो, देर में पिघले वह सीसा त्याज्य है ॥१॥

सीसे के शुद्ध करने का प्रयोजन

सीसे को यदि शुद्ध न किया जाय और भस्म करली जाये तो उस भस्म को सेवन करने से शरीर की कान्ति नष्ट होजाती है, कुष्ठ को तथा क्लृप्त (श्वित्र) कुष्ठ को अवश्य उत्पन्न करना है । संधियों में पीड़ा करता है, पक्षाघात करता है ॥४॥ जो मनुष्य अशुद्ध तथा बिना भस्म हुए २ सीसे को सेवन करते हैं उन्हें गुल्म, प्रमेह, आनाह, सूजन, भगंदर, अग्निमांद्य, कंधों की सूजन, भुजाओं की निश्चेष्टता, शूल, क्षय आदि रोगों को अवश्य उत्पन्न कर देता है । इसलिए सीसा शुद्ध करके भस्म करके खाना चाहिये ॥५—६॥

सीसे का प्रथम शोधन प्रकार

सीसे को एक लोह की कड़ई में डालकर आग पर पिघलावें ॥७॥ एक घड़े को सभालु की जड़ के स्वरस से आधा भाग भरें । ऊपर से छिद्र वाला ढक्कन रखें, जिसमें शीघ्र ही किसी भारी पदार्थ (ईंट, लोहे के बट्टे) आदि से बंद किया जा सके । अब उस पिघले हुए सीसे को इस ढक्कन के छिद्र में से घड़े में डालते ही ऊपर से ईंट आदि से ढक दें [जिस से सीसा उछले नहीं] ॥८॥ इसी प्रकार ७ बार सीसे को पिघला २ कर इस स्वरस में इसी विधि से डालें तो इस प्रकार शुद्ध हुए २ सीसे को

भस्म करने के लिए प्रयोग करें ॥६॥

द्वितीय शोधन प्रकार

सीसे को लोहे के कड़हें में पिघला कर स्वच्छ चूर्णोदक (चूने के जल) में सात बार बुझावें तो शुद्ध हो जाता है ॥१०॥

सीसे का प्रथम मागण प्रकार

शुद्ध सीसे को लोहे की कड़ाही में डालकर आग पर पिघलावे । सूखे हुए पीपल की छाल के चूर्ण को समभाग ले ॥११॥ बार बार इस चूर्ण को थोड़ा २ करके कड़ाही में डालते जायें और मूसल से घोटते जाय । सीसे की भस्म होने तक चूर्ण को समाप्त कर दें ॥१२॥ फिर उप भस्मको कड़ाही के मध्यभागमें एकत्र करके उसे एक प्याले में ढव दें । नीचे तेज आंच दें जिससे सीसा भस्मभी अंगारे के समान देर तक जलता रहे ॥१३॥ फिर स्वांग शीतल होनेपर सीसेकी भस्मको निकाल लें । अब इसे एक खरल या थाली आदि में डालते और जल से बार २ धोकर जारहीन कर ले (जारहीनता की परीक्षा पहले वंग प्रकरण में लिख चुके हैं) ॥ १४ ॥ सीसे की भस्म के तुल्य शुद्ध मनसिल का चूर्ण लेकर दोनों को एकत्र मिलावें । नींबू के स्वरस या कांजी से इसे पीसें । फिर मस्पुट में बंद करके मध्यम पुट देकर इसे अतिथन से (महापुट न दें, नहीं तो सीसा पिघल जायगा और फिर भस्म कठिनता से ही होगा । इसलिये मध्यपुट की आंच दें) तीन बार पुट दें और भस्म कर लें ॥ १५-१६ ॥ द्वितीय तथा तृतीय पुट में भी सम भाग मनसिल डालते रहें । इस प्रकार सीसा भस्म हो जाता है । अब इस भस्म को

निश्शंक होकर प्रयुक्त करें ॥ १७ ॥ यह भस्म बारीक बिशद तथा कज्जल के समान काली होगी । इस भस्म के सेवन करने से पक्षाघात आदि रोग जो ठोक भस्म न हुए २ सीसे से होते हैं—नहीं होते ॥ १८ ॥

द्वितीय मागण प्रकार

शुद्ध सीसे को कड़ाही में डालकर चूल्हे पर रखें और तेज अग्नि दें ॥ १९ ॥ शुद्ध मनमिल का चूर्ण सीसे के बराबर भाग लेकर अपने पाम रख लें । जब वह सीसा अच्छी तरह पिघल जावे तो उस मनमिल के चूर्ण को थोड़ा २ करके बार २ उसमें डालता जावे ॥ २० ॥ जब तक सीसे की भस्म हो जावे तब तक वह चूर्ण समाप्त कर दे । स्वांगशीतल होने पर सीसे की भस्म निकाल लेवे ॥ २१ ॥ इस सीसे की भस्म में समान भाग शुद्ध गंधक डालकर नीबू के स्वरस में मर्दन करें । धूप में सुखाकर मम्पुट में बंद करके फिर पुट मध्यपुट दे ॥ २२ ॥ इसी प्रकार गंधक मिला २ कर तीन बार पुट देने से सीस की भस्म हो जाती है । इस प्रकार की बनी हुई भस्म को निश्शंक होकर प्रयोग करें ॥ २३ ॥

तृतीय मागण प्रकार

शुद्ध सीसे को कड़ाही में रखकर तेज अग्नि पर गलावे । पिघलने पर शीघ्र ही उसमें धीरे २ अपामार्ग के चूर्ण को डालता जावे ॥ २४ ॥ फिर सूखे हुए अडूसे के चूर्ण को डालता जावे तथा ताजे अडूसे की (शाखा) से सीस को दिलाता जावे । (अपामार्ग का चूर्ण सीसे के बराबर लें तथा बांसे का चूर्ण भी सीसे के बराबर लें । जब सब भस्म हो जावे तो

शुद्ध जल से धोकर क्षार शून्य कर लें ॥ २५ ॥ फिर शुद्ध मनसिल उस चूर्ण के तुल्य लेकर दोनों को बांसे के स्वरस से घोटकर तीन बार मध्य पुट देवे ॥ २६ ॥ प्रत्येक बार मनसिल सीसे के चूर्ण के समभाग डालें तथा बांसा का स्वरस डाले ॥ २६ ॥ इस प्रकार मुलायम, विशद, काले रंग की भस्म हो जाती है । इसके सेवन से नाग से होने वाले पक्षाघातादि दोष नहीं होते ॥ २७ ॥ देर तक सेवन करने पर भी इससे रोग नहीं होते न कोई और ही विकार होते हैं । इसलिये इस भस्म को निश्शंक होकर प्रयोग करें ॥ २८ ॥

चतुर्थ मारण प्रकार

१ भाग शुद्ध नाग को कड़ाही में रख तेज अग्नि पर गलावें । गलते ही चौथाई भाग शुद्ध पारे को उसमें डाल देवे ॥ २९ ॥ भूमि पर तुरंत ही उतार खरल में डालकर घोटे । यत्नपूर्वक घुट जाने पर अम्लरस (नींबू रस या कांजी आदि से धोवे । फिर जल को सुखाकर चूर्ण कर ले ॥ ३० ॥ फिर सीसे से दुगुनी शुद्ध गंधक डालकर ६ घंटे यत्नपूर्वक घोट लें । कज्जल के समान चूर्ण हो जाने पर शराब में रख सम्पुट कर ले । फिर लघुपुट दे दें । स्वांगशीतल होने पर शराब निकाल लेवे ॥ ३२ ॥ (गंधक से तीन बार पुट देना अच्छा है । इसे तोड़कर इसके भीतर से कज्जल के समान काले रंग की भस्म को रसायनाचार्य निकाल लेवे ॥ ३३ ॥

पञ्चम मारण प्रकार

अपामार्ग आदि के चूर्णों से आग पर पिघले हुए सीसे को

चूर्ण करके, क्षारशून्य करके रखे । इसमें सीसे से आधा भाग शुद्ध हड़ताल का चूर्ण डालें ॥ ३४ ॥ दोनों को पीसकर शराब में डालकर मध्यपुट दें । स्वांगशीतल होने पर निकाल लें । ऐसे तीन बार (गजपुट दें तो ३ बार, नहीं तो ३० थापी का पुट दें तो अधिक बार) पुट देने से सीसे की उत्तम निर्दोष भस्म हो जाती है । इसे रसों में सर्वत्र निस्संशय होकर प्रयोग करे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

षष्ठ मारण प्रकार

सीसे को कड़ाही में रखकर आग पर गला लें । फिर सम-भाग शुद्ध मनसिल का चूर्ण लेकर थोड़ा २ बार २ इसमें डालते जायें । लोहे के डण्डे से चलाते जायें । भस्म होने तक चूर्ण समाप्त कर डालें ॥ ३८ ॥ फिर सीसे के समान शुद्ध मनसिल डालकर आक के दूध से पीस ले ॥ ३९ ॥ इस प्रकार शीघ्र (तीन पुट देने से) ही नाग भस्म हो जाता है । इस प्रकार की नाग भस्म को निश्शंक होकर सभी योगों में प्रयोग करे ॥ ४० ॥

सप्तम मारण प्रकार

सीसे को कड़ाही में पिघलाकर समभाग शुद्ध गंधक का चूर्ण थोड़ा २ करके सीसा भस्म होने तक डालता रहे ॥ ४१ ॥ जब सीसा सर्वथा भस्म हो जावे तो स्वांगशीत होने पर निकाल कर रखे । इसे बाहर के प्रयोगों में निर्भय होकर प्रयोग करे । (परन्तु खाने को न दें) ॥ ४२ ॥

मृत सीसक के गुण

सीसे की भस्म मधुर, तिक्त रसवाली, स्निग्ध, उष्णवीर्य,

गुरु, लेखन, दस्तावर (सर) और अग्निवर्धक वैद्यों ने मानी है ॥ ४३ ॥

और गुण

प्रमेह रूपी हाथी को सिंह के समान, वातरोगों को कालाग्नि के समान ग्रहणी रूपी रात्रि को सूर्य के समान, अर्श रूपी हाथी को अंकुश के समान नाश करती है। यह कफ नाशक तथा व्रणों को नाश करती है ॥ ४४ ॥

और गुण

नागभस्म शीघ्र ही मनुष्य को हाथी के समान बलवान बना देती है, देह से शरीर में रहने वाले गुल्म रूपी मस्त हाथी का नाश कर देती है। रक्तप्रदर को तथा अन्य रोग समूहों को शीघ्र ही नाश करती है ॥ ४५ ॥

सीमक भस्म का मात्रा

चौथाई रत्ती से एक रत्ती तक बल तथा काल को देखकर सीसे की भस्म का प्रयोग करना चाहिये ॥ ४६ ॥

मृत सीमक का रोगों पर प्रयोग

सीसे की भस्म १ रत्ती, हल्दी का चूर्ण १ मासा, आंवला-चूर्ण १ मासा सब को एकत्र करके शब्द से चाटे तो शीघ्र ही प्रमेहों का नाश होता है ॥ ४७ ॥ सीसा भस्म १ रत्ती, रक्त अशोक की छाल का क्वाथ दो छटांक मिलाकर पीये तो शीघ्र ही पुराना रक्तप्रदर रोग अच्छा होता है ॥ ४८ ॥ सीसा भस्म १ रत्ती, नागकेसर चूर्ण १ १/२ माशा मिलाकर सेवन करने से रक्तार्श ऐसे नष्ट होता है जैसे वज्र गिरने से धुल्ल नष्ट होते

हैं ॥४६॥ जो गिलोय का सत १ माशा, सीसा भस्म १ रत्ती मिलाकर शहद से खावे तो शीघ्र ही वात कफ से होने वाले प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ ५० ॥ सुवर्णभस्म, रससिन्दूर, ताम्रभस्म प्रत्येक आधी रत्ती, सीसाभस्म १ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो भयंकर अन्नशोथ (Appendicitis अपैण्डिसाईटिस रोग) भी शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥५१॥ कौंच के बीज, खिरैंटी की जड़, जठामांभी इनको समभाग लेकर क्वाथ करें । इस क्वाथ के साथ सीसे की भस्म सेवन की जाये तो वृक्कशोथ से उत्पन्न हुए २ आक्षेपराग (हाथ पैर आदि पटकना या फड़कना Convulsions) को दूर करता है ॥ ५२ ॥ रससिन्दूर १ रत्ती, ताम्रभस्म १ रत्ती, सीसाभस्म एक रत्ती मिलाकर (दिन में दो बार आधी मात्रा करके लें) सेवन किया जाये तो सर्वांगकम्प से आरम्भ होने वाले पक्षाघात रोग को नाश करता है ॥ ५३ ॥ प्रसारणी, खिरैंटी, रास्नाकौंच इनके क्वाथ से चाँदी, यशद तथा सीसक भस्म प्रत्येक एक २ रत्ती मिलाकर सेवन की जाये तो अंगों को प्रसारण करने वाली जो मांस पेशी है उनमें रहने वाले वात के दोष से होने वाले भयंकर पक्षाघात को नाश करते हैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अन्नशोषान्तक रस

मनसिल द्वारा भस्म किया हुआ सीसा दो तोला लें । कान्तपाषाण की भस्म दो तोला लें ॥ ५६ ॥ निश्चन्द्रक स्वर्ण भस्म १ तोला, खपरभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला लें । सब को एकत्र करके पीस लें । शुद्ध गंधक ४ तोला लें । सब को एकत्र करके धीकुंवार के स्वरस से घोट कर बराह पुटमें पुट दें । इसी प्रकार गन्धक तथा धीकुंवार का

स्वरस डाल २ कर ३ बार पुट दें ॥ ५७—५८ ॥ फिर स्वरल में पीमकर कांच की शीशी में रखें । इसे अन्त्र शोषान्तकरस कहते हैं ॥ ५६ ॥ यह रस गुरुवर श्रीमान नरेन्द्रनाथजी मित्र का स्वयं नया २ आविष्कृत है इसमें मैंने लोगों को भस्त्रे के लिये यहां लिख दिया है ॥ ६० ॥

इमके गुण

इस रसको सेवन करने में अन्त्रशोष नष्ट होता है, ग्रहणी नष्ट होती है, पुराना अजीर्ण तथा राजयक्ष्मा नष्ट होता है ॥ ६१ ॥ अरुचि आदि उपद्रवों से युक्त भयङ्कर पुराना अति सार भी जिम में राजयक्ष्मा के लक्षण भी हों (आंतों का तपेदिक जिममें दस्त ज्वरादिमहित उदरशूल, गिल्टियां तथा यक्ष्मा के कीटाणु T.b. या B.colii नाम के काट होते हैं) इससे नष्ट होता है ॥ ६२ ॥ आध्मान को दूर करने में अत्युत्तम है । गुल्म तथा सीता को दूर करता है । जीर्ण ज्वर को नाशकरता है तथा बल को उत्पन्न करने में अति उत्तम है ॥ ६३ ॥ इस रस की मात्रा आधी रस्ती से एक रस्ती तक है । प्राणाचार्य वैद्य को चाहिए कि रोगी को बलाबल देखकर तथा शीतोष्ण ऋतु का तथा कालका ध्यान रख कर इस रस का प्रयोग करे ॥ ६४ ॥

अथ आरनालीय सीमक के नाम

काञ्जीकाम्लीय सीम, आरनालीयसीमक, तथा काञ्जीकाम्लीय नाग ये सब पर्यायवाचक नाम (Acitrate of Lead एसिटेट आफ लैड) के हैं ॥ ६५ ॥

आरनालीय सीमक (एसिटेट आफ लैड) का निर्माण प्रकार
अतितीक्ष्ण काञ्जीकाम्ल (Acitic acid) ४० भाग लें ।

जल का अर्क २० भाग लें ॥ ६६ ॥ मुर्दामंग का चूर्ण २४ भाग लें । इन सबको निर्मल शीशे के पात्र में रखकर मन्दाग्नि से चूल्हे पर पकावें । जब सब पिघल कर एक हो जावें तो चूल्हे से उतार लेवें ॥ ६८ ॥ फिर सारक पत्र [Filter Paper] से ध्वस्तपूर्वक छान लें । फिर इस छाने हुए द्रव को मन्दाग्नि से पकावें ॥ ६९ ॥ जब कुछ जल का अंश रह जावे तो शीघ्र ही अग्नि से नीचे उतार ले । स्वांग शीतल हो जाने पर पात्र के तल भाग में पड़े हुए बर्फ, कुन्द पुष्प तथा चन्द्रमा के समान श्वेत रंग के सूक्ष्म - कणों को संभालकर रख लेवें ॥ ७१ ॥

आरनालीयक मीसद्रव (Sub Acetate of Lead) का

निर्माण प्रकार

आरनालीय मीसा शुद्ध ५ भाग लें, जल से धोकर पीसा हुआ शुद्ध मुर्दामंग साढ़े ३ भाग लें ॥ ७२ ॥ शुद्ध ग्विचा हुआ जल का अर्क २० भाग लें । सब को एकत्र कर शीशे के पात्र में डालकर चूल्हे पर रखें ॥ ७३ ॥ जब तक पिघल न जावे तब तक मन्दाग्नि से पकाता जावे । पिघलने के समय जितना जल का भाग सूख जावे (अग्नि से उड़ जावे) उतना ही नापकर जल और डाल देवे । इस प्रकार सारा द्रव हो जाने पर नीचे उतार कर शीशी में रख लेवें । इसे प्रयोग में लावे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ अल्पार्थेकन् से कप्रत्यय हुआ है । = Sub

प्रमङ्ग से सुतोत्र कार्बजिकाम्ल (Acetic Acid) का बनाना

अत्यन्त खट्टा निर्मल शुक्त [मिरका] लेवें अथवा कांजी लेवें । इसे ५ सेर लें ॥ ७६ ॥ फिर एक मिट्टी के पात्र में जिसके अन्दर काँच लिपा हुआ हो इसे डाल दें और नाड़िकायंत्र से (भभके से) मन्दाग्नि पर अर्क खींच लें । ५ सेर तक अर्क खींचें ॥ ७७ ॥ इस अर्क को फेंक दें । (क्योंकि इसमें जल भाग अधिक रहता है) । शेष भाग जो पात्र में है वही जलांश से रहित सुतोत्र कार्बजिक (Acetic Acid) है ॥ ७८ ॥

मज्जलआरनालीयक सीसद्रव का निर्माण प्रकार

[Dilute Sub Acitrate of Lead]

आरनालीयक सीस द्रव को एक भाग ले, इसमें एक भाग निर्मल सुरा डालें । जल का अर्क ७८ भाग डालें । सब शीशी में मिलाकर रखें ॥ ७९ ॥ ८० ॥ इसे ही वैद्यों ने मज्जल आरनालीयकसीस द्रव कहा है ॥ ८१ ॥

मज्जल आरनालीयक सीस द्रव का प्रयोग

[Liq Plumbi Sub Acitatus Dilutus]

इस मज्जल आरनालीयक सीसद्रव को सातगुना जल में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए ।

इसका रोगों पर प्रयोग

जिन व्रणों में दाह हो, पीप तथा जल सा बढ़ता हो, उन

त्रणों को धोने के लिये इसी सीस द्रव का प्रयोग करें ॥ ८३ ॥
 यदि मूत्रमार्ग से त्रण मेह (सूज़ाक) के कारण पीपादि वह रही
 हो तो वस्तिर्कर्म में चतुर वैद्य (लिंग की जड़ को फीने से कस
 कर बांध ले फिर उत्तर वस्ति करें) इस सजल आग्नातीय द्रव में
 ऊपर कहा हुआ सात गुना जल मिलाकर प्रयोग करें । इसे उत्तर
 वस्ति द्वारा प्रयोग करने से त्रण मेह दूर हो जाता है ॥ - ५ ॥
 अफीम का मत (मार अर्थात् शुद्ध अफीम) दो रत्ती, ६० बृंह
 सजल काँजिकाम्लीयकसीस द्रव ढाई ताला जल मिलाकर इसे
 विसर्पजन्यत्वचा के शोथपर अथवा अभिघातजन्य शोथ पर या
 घृष्ट पिच्छित (मांस हट्टी आदि के चिकले हुए पिसे हुए)
 हड्डियों पर लगावें । इसमें धोवें और पिचुधारण करें ॥ ८८ ॥
 अभिघात अर्थात् चोट पोट लगने से होने वाली दाह तथा
 खुजली को भी यह निश्चय दूर करता है । योनि तथा गुदा में
 होनेवाली खुजलीको भी यह दूर करता है ॥ ८९ ॥ सूत्रेन्द्रिय
 की मणि तथा अगले चर्म के बीच में यदि काँच की वस्ति से
 इस द्रव को शल्यवेत्ता (Surgeon) द्वारा प्रयोग किया जावे
 ॥ ९० ॥ तो फिरङ्ग रोग से होने वाला महाघोर शोथ, दाह,
 पीड़ादि युक्त निरुद्धप्रकष नाम के रोग को शीघ्र ही दूर करता है ।
 (निरुद्धप्रकष रोग पर इसे पिचकारी से प्रयोग करें तो ५, १०
 दिन में सूजन हटकर चमड़ा खुलने लगता है तथा दाह पीड़ादि
 दूर होती है । यह चमड़ा फिरंग या आतशक से प्रायः सूज

जाता है तथा लिंग पर चिपट जाता है, पोछे को हटता नहीं ।)

॥ ६१ ॥

इसके प्रयोग का निषेध

इस द्रव को कभी भी आंखों में न डाले । इसे आंखों में डालने से मनुष्य अन्धा हो जाता है तथा ब्रणशुक आंखों में हो जाता है ॥ ६२ ॥

अशुद्ध तथा ठीक भस्म न हुए २ सीसे के सेवन

से हुए २ विकारों का उपाय

अशुद्ध तथा ठीक प्रकार से भस्म न हुए २ सीसे के सेवन करने से जो विकार हो जाते हैं, उन सब की शान्ति के लिए विशुद्ध गंधक का चूर्ण सेवन करना चाहिए ॥ ६३ ॥

अथ यशद के नाम

यशद, यसद, जशद, जसद, रीतिहेतु, स्वर्परज ये सब नाम जस्त धातु के हैं ॥ १ ॥

ग्राह्ययशद का स्वरूप

जो काटने से चमकदार, स्निग्ध, कोमल, निर्मल, शीघ्र पिघल जाने वाला, अति भार वाला हो, वही जस्त ग्रहण करने योग्य है ॥ ६४ ॥

अग्राह्ययशद का स्वरूप

जो स्पर्श में कठिन, देर से पिघले, रूखा, रूखी सी रंगत वाला, दृक्का, मैला हो वह जस्त ग्रहण करने योग्य नहीं है ॥ ६६ ॥

यशद शोधन का प्रयोजन

यदि अशुद्ध जस्त की भस्म की जाये, अथवा शुद्ध किये हुए जस्त की ठीक भस्म न की गयी हो तो उसे सेवन करने से गुल्म, प्रमेह, क्षय तथा कुष्ठादि विकार होते हैं ॥ ६७ ॥

यशद का प्रथम शोधन प्रकार

उत्तम ग्राह्य जस्त को लेकर लोहे की कड़छी में रखें । तीव्र अग्नि से पिघला कर चूने के जल से भरे हुए छिद्रयुक्त ढक्कन वाले घड़े में विधिपूर्वक सात बार बुझावें (बुझाते समय ढक्कन दे दिया करें) तो जस्त शुद्ध हो जाता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

जस्त को पिघला कर उसी विधि से सात बार संभालु की जड़ के क्वाथ में वैद्य बुझावे । इस प्रकार जस्त उत्तम रीति से शुद्ध हो जाता है । ऐसे शुद्ध हुए २ जस्त को मारने के लिये प्रयोग करे ॥ १०१ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

यशद को पिघला कर पूर्वोक्त सावधानता से गौ के दूध में इक्कीसवार बुझावें तो शुद्ध होता है ॥ १०२ ॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

यश को चाहिये कि यशद को पिघला कर थोहर के दूध में सातवार पूर्वलिखित विधि से बुझावें तो अच्छी प्रकार से शुद्ध होता है ॥ १०३ ॥

यशद का प्रथम मारण प्रकार

शुद्ध जस्त को कड़ाही में डालकर तेज आंच से गलावे । जब पिघल जावे तो एक खरल में जिसमें सम भाग पारद डाल रखा हो इसे उल्टा देवे ॥ १०४ ॥ फिर यस्तपूर्वक इसे शीघ्र २ घोंट लेवे । इस प्रकार पीठी बनाकर नीबू के स्वरस से बार २ धोवे ॥ १०५ ॥ (जब मैला जल निकलना बंद हो जावे, जस्त साफ हो जावे) फिर जस्त के बराबर शुद्ध गंधक डालकर चूर्ण कर ले । शगब संपुट करके अति यस्त से पुट दे) (मध्यम-पुट या गजपुट दे) इस प्रकार एक पुट में ही यह जस्त भस्म हो जाता है । इस जस्त भस्म को सर्वयोगों में प्रयोग करें ॥ १०७ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

शुद्ध जस्त को कड़ाही में पिघला ले । अति तीव्र आंच देने से जब गल जावे ॥ १०८ ॥ तो एक कठिन नीम के डण्डे से (कड़छी की तरह नीम का सोटा आगे से मोटा बना लें) घोटते जावें । जस्त को अच्छी प्रकार से भस्म हुए २ देखकर कड़ाही को आग से उतार लेवे ॥ १०९ ॥ फिर जस्त से चौथाई भाग शुद्ध हड़ताल डालकर पीस लें । फिर सम्पुट में बंद करके (एक या दो बार पुट देदे । इस प्रकार जस्त की सर्वथा भस्म हो जाती है । विविध अनुपानों से इसे भिन्न २ रोगों पर प्रयोग करें ॥ ११०-१११ ॥

तृतीय मारण प्रकार

शुद्ध जस्त को कड़ाही में पिघलावे । फिर अपामार्ग के चूर्ण को थोड़ा २ करके बार २ डालता जावे तथा लोहे की कड़छी

से जलाता जावे । जब तक भस्म हो जावे तब तक उस चूर्ण को भी समाप्त कर दे ॥ ११३ ॥ फिर उस भस्म को एकत्र ठेरी करके एक प्याले से ढक दे । नीचे से तेज आंच दें । जब वह कड़ाही लाल हो जाये तथा भीतर पड़ी हुई भस्म भी जलते हुए अंगारे के सदृश हो जाये और देर तक इसी प्रकार जलती रहे तब तक आग्न दे । कम से कम तीन घंटे तक जलते हुए अंगार के समान यशद भस्म रहनी चाहिये इतनी अग्नि देते रहें । फिर स्वांगशीतल होने पर यशद भस्म को निकाल लें ॥ ११४-११५ ॥

चतुर्थ मागण प्रकार

शुद्ध जस्त को कड़ाही में डालकर नीचे तीव्र आंच दे और लोहे के ढण्डे से धीरे २ घोटते जायें ॥ ११६ ॥ जस्त चूर्ण हो जाये तो वस्त्र में से छान लें । जो मीटा अंश बच गया हो उसे फिर कड़ाही में डालकर उसी प्रकार पका लें । लोहदण्ड से घोटते जायें ॥ ११७ ॥ इस प्रकार शीघ्र ही जस्त की भस्म हो जाती है जो कुन्द पुष्प या चांद के समान श्वेत रंग की होती है ॥ ११८ ॥ इस प्रकार से मारा हुआ जस्त नस्य या आंख के अंजन आदि बाह्यकार्यों में ही प्रयुक्त होता है ॥ ११९ ॥

सुमृत्त जस्त के गुण

जस्त भस्म कर्सेला, शीत, चर्परी, नेत्र रोगों को नाश करने में उत्तम है । कफ पित्तजन्य रोगों को हरती है, बल तथा वीर्य बढ़ाती है तथा विवेक बुद्धि को बढ़ाती है ॥ १२० ॥ यशदभस्म पाण्डु रोग को शान्त करती है तथा बहुमेह अर्थात् अनेक

प्रकार के प्रमेहों को नाश करती है । काम तथा श्वास को शान्त करती है । रात के पसीने आने को रोकती है ॥ १२१ ॥ यशद श्लेष्मकला को संकोच करने में परमश्रेष्ठ है । विशेष करके प्रण के छावों को रोकता है ॥ १२२ ॥ श्रम की अवसन्नता (थकावट) को दूर करता है, रज स्त्राव को रोकता है, विशेष करके कम्पवात को नष्ट करता है ॥ १२३ ॥

(रात के पसीने को रोकना आदि ये सब नये गुण अनुभव करके लिखे गये हैं ।)

यशद के विशेष गुण

यशद भस्म सेवन करने से प्रमाद नाम की बड़ी हुई पचन को नाश करती है वह फिर चाहे एक अंग में हो, चाहे सर्वांग में हो ॥ १२४ ॥

मृत यशद की मात्रा

आधी रस्ती से लेकर एक रस्ती तक यशद भस्म का बलकाल आदि की अपेक्षा से प्रयोग करना चाहिये ॥ १२५ ॥

यशद का रोगों पर प्रयोग

छोटी इलायची, दारचीन, तेजपत्र, इन सब को समभाग लेकर चूर्ण कर लें । इस चूर्ण को १ कृ माशा लेकर यशदभस्म १ रस्ती मिलाकर खावे तो त्रिदोष का नाश होता है ॥ १२६ ॥ अरणी की जड़ की छाल के चूर्ण के साथ यशदभस्म सेवन की जाये तो शीघ्र ही जाठराग्नि का प्रदीप करती है ॥ १२७ ॥ गौ के पुराने घी (१ माल से तीन साल तक का पुराना घी लें) के साथ अस्त भस्म सेवन का जाये तो शीघ्र ही दृष्टि को

वृद्धि होती है ॥ १२८ ॥ अग्नि में भस्म किया हुआ (चतुर्थ प्रकार की भस्म लें) श्वेतजस्त घी के साथ मिलाकर प्रतदन नश्य लें। एक मास तक नश्य लेते रहें तो बार-बार होने वाले प्रतिश्वाय (जुकाम) से उत्पन्न हुई २ नाक की श्लैष्मिककला की दुर्बलता (नाक के अन्दर की हड्डी की सूजन) का निश्चित नाश करता है। (डाक्टर औप्रेशन करते हैं पर इसके लगाने से औप्रेशन का जरूरत ही नहीं रहती) ॥ १२९-३० ॥ यशद-भस्म १ रत्ती प्रवालभस्म १ रत्ती दोनों का मिलाकर मधु से खायें तो क्षयरोग में रान को आने वाला पसना दूर होता है ॥ १३१ ॥ जस्त का गौ के घी से मिलाकर एक सप्ताह तक लगाने से पुरानी विचर्चिका (सूखी खजली या Dry Eczima) शीघ्र ही नाश होता है ॥ १३२ ॥ अभ्रकभस्म १ रत्ती, जस्तभस्म १ रत्ती दोनों को मिलाकर शहद से खावें तो शीघ्र ही भयंकर श्वास तथा कास दूर होते हैं तथा विशेष करके राजयक्ष्मा से उत्पन्न हुई खांसी नष्ट होती है ॥ १३३ ॥

यशद भस्म १ रत्ती शहद तथा अदरक के स्वरस के साथ मिलाकर खावें तो पथ्य भयंकर, श्वास भी नष्ट होता है ॥ १३४ ॥ कौंच की जड़, रास्ना, खिरौंटी तथा एरण्ड की जड़ को समभाग लेकर दवाय करें। इस दवाय से यशदभस्म खावें तो कम्पयुक्त पक्षाघात रोग दूर होता है ॥ १३५ ॥ लाहभस्म, अभ्रकभस्म, जस्तभस्म, प्रत्येक एक रत्ती लें पिप्पली का चूर्ण १ माशा मिलाकर शहद से खावे तो प्रथमक श्वास को नाश करता है ॥ १३६ ॥ स्वर्णबंग १ रत्ती, यशदभस्म १ रत्ती दोनों को मिलाकर सेवन करें तो स्वप्नमेह के साथ जो चित्त का अवसाद

होता है वह भी दूर हो जाता है ॥ १३७ ॥ यशदभस्म १ रत्ती, अशोक की छाल के क्वाथ के साथ यदि सेवन करायें तो तीन चार मास के रजोरोध हो जाने के कारण उत्पन्न हुए २ रजः स्त्राय को जिसमें तीव्र घोर वेदना होती है रोक देता है ॥ १३६ ॥ लोहभस्म १ रत्ती, राल ३ रत्ती तथा जस्तभस्म १ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो रज के रुक जाने से होने वाला श्वेतप्रदर नष्ट होता है ॥ १४० ॥ यशदभस्म १ रत्ती, रससिन्दूर १ रत्ती, कर्पूर $\frac{1}{2}$ रत्ती मिलाकर देने से प्रलाप सहित कम्पवात को दूर करता है जो कि सन्निपात में हो जाती है ॥ १४१ ॥ सुहागा, अभ्रकभस्म, बंशलोचन, के साथ जस्तभस्म सेवन की जाये तो उस श्वास को दूर करती है जिसमें कष्ट से कफ निकलता है ॥ १४२ ॥ रससिन्दूर १ रत्ती, यशदभस्म १ रत्ती दोनों को मिलाकर शहद में ग्वावे तो विषाद तथा थकावट से युक्त जो मस्तिष्क की दुर्बलता है इसे दूर करता है ॥ १४३ ॥ सुवर्णभस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती, यशदभस्म १ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो योषापस्मार को विशेष करके नाश करता है ॥ १४४ ॥ चांदी भस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती, सुवर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, जस्तभस्म १ रत्ती सबको एकत्र करके चीते के क्वाथ से सेवन करें तो अर्धावभेदक तथा सूर्यावर्त्त रोग को नाश करती है ॥ १४५ ॥

यशदामृत मलहर

पूर्वलिङ्गित विधि से बनाया हुआ सिक्थ तेल ६ तोला, अग्नि में जलाया हुआ जस्त १ तोला मिलाकर खरल में खूब पीस लें। इसे ही यशदामृत मलहर (Zinc Ointment) कहते हैं ॥ १४६-१४७ ॥

इसके गुण

यह मलहम विविध व्रणों को रोपण करने वाली है । विचर्चिका को नाश करती है तथा अग्निदग्ध व्रणों को भी अच्छा कर देती है ॥ १४८ ॥

गंधकाम्लीय यशद (Sulphate of zinc) का निर्माण प्रकार

शुद्ध जस्त क चूर्ण को एक शीशे के प्याले में डाले उसमें सजल गन्धकद्राव (Sulphuric Acid dilute) डालता जावे । इतना द्राव डाले जिसमें वह चूर्ण सारा गल जावे ॥ १४९ ॥ फिर मारकपत्र Filter paper या स्याहीचूस में छानले । अब इस रसको शीशे के प्याले में डालकर मन्द २ अग्नि से पका लेगे ॥ १५० ॥ जलीयांश को सुखाकर जब कुछ नाममात्र का जल रह जावे तो पात्र को उतार कर भूमि पर रखदे ॥ १५१ ॥ तो पात्र के तल में अति चमकदार श्वेत रंग का गंधकाम्लीय यशद का चूर्ण (Sulphate of zinc) मिलेगा ॥ १५२ ॥

गन्धकाम्लीय यशद (सल्फेट आफ़ जिंक) के गुण

गंध काम्लीय यशद का चूर्ण पीप नाश करने में उत्तम है । व्रणों के (संसृव) बहने को बन्द करता है । नेत्रों के अभिष्यन्द (पानी आना) को बन्द करता है ॥ १५३ ॥ ब्रणमेह और श्वेत प्रदर को नाश करता है रसशास्त्रियों ने इसे विशेष करके संकोचकारक माना है ॥ १५४ ॥ यदि इसे सवेथा सुखा लिया जावे तो वह क्षार-कर्म करने में श्रेष्ठ है । इसी लिये इसे क्षारकर्म के कामों में प्रयोग किया जाता है ॥ १५५ ॥ प्राय करके गन्धकाम्लीय यशद सूखा योग नहीं किया जाता है :

इस लिये इसे द्रव करके ही प्रयोग करना चाहिए ॥ १५६ ॥

गन्धकाम्लीय यशद द्रव का प्रथम निर्माण प्रकार

गन्धकाम्लीय यशद एक रत्ती, जल का अर्क ढाई तोला, दोनों को घोल कर एक शीशी में रखे । इसे ही गन्धकाम्लीय यशद द्रव (Solution of zinc Sulphate) कहते हैं ॥ १५८ ॥

इसके गुण

यह यशद द्रव व्रणमेह को हरता है, नेत्राभिष्यन्द को नाश करता है । व्रणों को रोपण करता है तथा भूतों (सूक्ष्म जीवाणुओं (Bactirias) को नाश करता है ॥ १५९ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

विन्दुक्षेपकयन्त्र (Dropper) से इस द्रव को आंखों में डालें तो यह शीघ्र ही नेत्राभिष्यन्द की पीड़ा को दूर करता है ॥ १६० ॥ लिङ्गेन्द्रिय की जड़को एक फीते से दृढ़ता से विधि-अनुसार बांध दें फिर यशद से इस द्रव की उत्तर वस्ति (पिचकारी) दें तो १४ दिन में व्रणमेह को दूर कर देता है ॥ १६२ ॥ (यदि एक रत्ती फिटकरी मिलालें तो अति शीघ्र लाभ होता है) ॥

गन्धकाम्लीय यशद द्रव का द्वितीय निर्माण प्रकार

गन्धकाम्लीय यशद ३६ रत्ती हो तो ६० तोला जल का अर्क हो । दोनों को घोलकर एक शीशी में रखें । यह भी गन्धकाम्लीय यशद द्रव कहाता है ॥ १६४ ॥

इसके गुण

यह गन्धकाम्लीय यशद द्रव ग्रणों को रोपण करता है । विशेष करके संकोच करता है । श्वेत प्रदर को नाश करने में उत्तम है ॥ १६५ ॥

इसकी प्रयोग विधि

पूर्वोक्त विधि में यन्न पूर्वक उत्तर बस्ति में इस द्रव को योनि में दें तो वह भयंकर श्वेत प्रदर को भी नाश करता है ॥ १६६ ॥

यशदामृत द्रव का निर्माण प्रकार

गन्धकाम्लीय यशद दो रत्ती लें । फिर एक शीशी में सुन्दर स्वच्छ (Boric Solution) टंकणाम्लद्रव पाँच तोला डालें । इन दोनों को मिलाकर हिला दें । यही यशदामृतद्रव है ॥ १६८ ॥

इसके गुण

यह यशदामृतद्रव शोथ को नाश करता है शीतल है तथा रक्तार्म तथा अभिष्यन्द रोगों को नाश करता है ॥ १६९ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

बिन्दुक्षेपक यन्त्र (Dropper) से इस द्रव को आँखों में डालें तो शीघ्र ही रक्तार्म, अभिष्यन्दादि आँखों के रोगों को नष्ट करता है ॥ १७० ॥

श्री विद्याधर विद्यालङ्कार भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी के भाषानुवाद में यह सीसकादि विज्ञानीय नाम का १६ वाँ तरंग समाप्त हुआ ॥ १७० ॥

अथ लौहादि विज्ञानीय नाम का विंश तरंग

लोहे के भेद तथा उनकी विशेषता

मुण्ड, तीक्ष्ण, कान्त ये तीन प्रकार के लोहे हैं । मुण्ड से तीक्ष्ण तथा तीक्ष्ण से कान्त अधिक उत्तम होता है ॥ १ ॥

मुण्डलोह के नाम

मुण्ड, मुण्डलोह, कृषिलोह, शिलात्मज, कृष्णायस, दृषत्सार, आयस ये सब मुण्डलोह के नाम हैं ॥ २ ॥

तीक्ष्ण लोह के नाम

लोह, लौह, लोहक, शस्त्रलोह, तीक्ष्णक, सारलौह, काललोह तथा अयः ये सब नाम तीक्ष्णलोह के हैं ॥ ३ ॥ (यही फौलाद कहाता है)

कान्तलोह के नाम

कान्तलोह, कान्त, अयस्कान्त, कान्तायस, महालोह ये सभी नाम कान्तलोह के हैं ॥ ४ ॥

मुण्ड लोहादि का पञ्चिय

कड़ाही, तवा, खरल आदि बनाने में विशेष करके आजकल मुण्डलोह प्रयुक्त होता है ॥ ५ ॥ कृपाण, तलवार आदि बनाने में तीक्ष्णलोह प्रयुक्त होता है । कान्तलोह (जो कान्तं चुम्बक संभवं चुम्बक पत्थर को तपा २ कर सत्त बनाया जाता था) तो परम दुर्लभ है ॥ ६ ॥

मारण के योग्य लौह

मुण्डलौह मल वाला होने से मारण कर्म में प्रयुक्त नहीं होता है । तीक्ष्ण लौह या कान्तलौह जो मिल सके उसकी हा भस्म बनावें ॥ ७ ॥

ग्राह्य तीक्ष्ण लौह के लक्षण

लोहे की तलवार आदि वस्तु साफ माँज कर उज्ज्वल करली जाये । उसपर फिर आंवला तथा कसीस का लेप कर दिया जाये । यदि उस लोहे पर थोड़ी देर में पहाड़ों की चोटियों जैसे चिन्ह पड़ जायें तो जानला कि वह उत्तम तीक्ष्ण लोह (फौलाद) है ॥ ८ ॥

कान्त लौह का लक्षण

कान्त पाषाण से निकाला हुवा (सतरूप) लौह कान्तलौह कहाता है । कान्तपाषाण को आग में तपा तपाकर सत बनाया जाता है उमी मत को कान्तलौह कहते हैं ॥ ९ ॥

लोहे के शोधन का प्रयोजन

लोहा यदि अशुद्ध हो और उसे सेवन किया जावे तो हृदय रोग, कुष्ठ, शूल, दाह, अंगों की गुरुता, षण्ढ भाव अथवा नपुंसकता, मल को अति गाढ़ा करना, अश्मरी इन सब रोगों को उत्पन्न करता है ॥ १० ॥

शोधन के लिये ग्राह्य लोहे का निरूपण

तीक्ष्ण लौह अर्थात् फौलाद (Steel) के फलक (फले या

टुकड़े) लेकर लोहारों से रेती से रितवाले । इस चूर्ण को शुद्धि के लिये प्रयोग करें ॥ ११ ॥

अथवा

कृपाण आदि बनाने वालों से अथवा बड़े बड़े कारखानों से अथवा इसी प्रकार के अन्य स्थानों (शास्त्रागारों आदि) से तीक्ष्ण लोहे का रेता हुआ चूर्ण शुद्ध करने के लिये लेलें ॥ १२ ॥

अथवा

लोहार से कण्टक से भा बिंध जाने वाले लोहे के सूक्ष्म पत्रे बनवा ले फिर उन्हें शुद्धि के लिये प्रयोग करें ॥ १३ ॥

शोधन के लिए लोह का परिमाण

एक सेर से तीन सेर तक लोहे को शोधन तथा मारने के लिये लेवें ॥ १४ ॥

लोह शोधन का प्रथम परिमाण

तीक्ष्ण लोह का सूक्ष्म चूर्ण लोहे की कड़खी में डालकर आग पर खूब तपावें, त्रिफला के क्वाथ में बुझावें । इस प्रकार तपा २ कर सात बार इस क्वाथ में बुझाने स लोहा शीघ्र ही अति शुद्ध हो जाता है ॥ १५ ॥

जल, क्वाथ द्रव्य तथा लोहे का परिमाण

त्रिफला मिलित १६ भाग लें, पकाने के लिये जल, १२८ भाग लेवें । पकाकर शेष ३२ भाग रखें । इसे छानलें । यह त्रिफला का क्वाथ हुआ । इसमें ५ भाग लौह चूर्ण को तपा तपाकर बुझावें ॥ १६ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

लोहे के बारीक चूर्ण को आगमें तपा २ कर केले के नये कंद [जड़] के रसमें बुझावें । इस प्रकार सात बार बुझाने से लोहा शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

त्रिफला का पूर्व लिखित क्वाथ एक भाग, गौ का मूत्र एक भाग दोनों को मिलाकर रखें । इसमें लोहे को तपा २ कर सात बार बुझावें तो लोहा शुद्ध हो जाता है ॥ १८ ॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

लोहे के पत्र या चूर्ण को शशक के रक्त से लीप दें या आक के दूध से लीप दें फिर तपा तपाकर त्रिफला के क्वाथ में बुझावें तो शुद्ध हो जाता है ॥ १९ ॥

लोहे की शुद्धि के बाद उसके पाक का क्रम

प्रथम भानुपाक से, फिर स्थालीपाक से फिर पुट पाक देने से पका हुआ लोहा उत्तम प्रकार से मर जाता है ॥ २० ॥

अन्न भानुपाक का लक्षण लिखते हैं

त्रिफला के क्वाथ में लोहे के शुद्ध चूर्ण को डालकर सूर्य की तेज धूप में रखने से सूख २ कर जो लोहा पकता रहता है इसी लिये उसे भानुपाक कहा जाता है ॥ २१ ॥

भानुपाक का विधान

शुद्ध हुआ २ लोहा जल से धो लेवे । उसे त्रिफला के

क्वाथ में डालकर खरल में रखें ॥ २२ ॥ ग्रीष्मऋतु में इस खरल को सूर्य की तेज धूप में रखें । इस प्रकार जल को सुखा दें इसी तरह सात बार त्रिफला जल डाल २ कर धूप में लोहे को सुखा लें ॥ २३ ॥ भानुपाक के लिये लोहा जितना हो त्रिफला चूर्ण भी उतना ही हो । त्रिफले से दुगुना जल हो । पकाकर चौथाई क्वाथ बच जावे तो उम क्वाथ को प्रयोग करें ॥ २४ ॥

स्थालीपाक का लक्षण

लोहे के चूर्ण को त्रिफला के क्वाथ से मिलाकर एक हांडी में डालकर आग पर पकावें । इस प्रकार सूखकर पकनेके कारण ही उसे स्थालीपाक कहा जाता है ॥ २५ ॥

स्थाली पाक विधान

भानु पाक से पके हुए लोहे को जल से धो लें फिर हांडी में डालकर चूल्हे पर रखें ॥ २६ ॥ त्रिफला के क्वाथ में उसे तीक्ष्णाग्नि पर पकावें । सारा जल यत्न पूर्वक सुखा दें ॥ २७ ॥ इस स्थाली पाक में लोहा एक भाग हो तो त्रिफला तीन भाग हो जल १६ भाग हो । पका कर आठवां भाग शेष रहने दें । इस प्रकार क्वाथ बना लें ॥ २८ ॥ अथवा याशतावर, भांगरा, हस्तिकर्ण-पलाश की जड़ के स्वरसों को लोहे के समान २ भाग लेकर इनमें लोहे को पका लें । तोभी स्थाली पाक हो जाता है ॥ २९ ॥ अथवा जिन रवातात्रि दोषों को नाश करना हो उन २ दोषों की नाश करने वाली औषधी के स्वरसों वा क्वाथ में लोहा डालकर पका लें तो लोहे का स्थाली पाक हो जाता है ॥ ३० ॥

पुट पाक को स्वरूप

लोहे को खरल में डालकर औषधों के रस से मर्दन करें। इसे फिर सम्पुट में रखकर गजपुट में पकाते हैं इसीलिए इसे पुट-पाक कहते हैं ॥ ३१ ॥

पुट पाक का विधान

स्थाली पाक से पके हुए लोहे को फिर जल से धोवे। फिर घातादि दोषों के दूर करने वाली औषधों के स्वरस से वाक्वाथ से लोहे को एक लोहे के खरल में डालकर घोंटे और टिकियां बनाले। धूप में सुखाकर मिट्टी के प्याले में इन्हें रखदे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ऊपर से दूसरा प्याला धरकर संधि बन्द अच्छी प्रकार से कर दे। फिर धूप में सुखालें। अब जंगली उपलों की या हाथ से बनाये हुए उपलों को आग में गजपुट द्वारा फूंक दें। जब स्वांगशीतल हो जायें तब उस सम्पुट को निकालकर लोहे को चूर्ण कर लें ॥ ३४ ॥ फिर पहली तरह काथ आदि में या औषधों के स्वरस में ही अच्छी तरह पीसकर उमी प्रकार सम्पुट में रख, संधि बन्द कर गजपुट में फूंक दें ॥ ३५ ॥ इस प्रकार एक हजार बार या एकसौ बार पुट दें। अथवा ६० बारही पुट दें, तो गुणों की वृद्धि होती है ॥ ३६ ॥ बार २ पुट देने से गुणों का उदय होता है। इस प्रकार पुटों से पका हुआ लोहा उत्तम रीति से भस्म हो जाता है ॥ ३७ ॥

पुट पाक में औषधों का परिमाण

पुट पाक करने के लिए त्रिफला आदि दोष नाशक औषधों को लोहे के समान भाग ही लेवे ॥ ३८ ॥ जिस २ प्रकार से उत्तम

विधि से इसमें घुट देंगे उसी २ प्रकार से अवश्य ही लोहे में गुणों की वृद्धि हो जाती है ॥ ४० ॥ इन अधिक पुटों के देने से लोहा ऐसा उत्तम भस्म हो जाता है कि फिर इसे चिरकाल तक भी खावें तोभी न तो कोष्ठवृद्धता करता है न सूखा २ कठोर मल लाता है । साधारण तथा उचित प्रकार का मललाता है (अन्य हीन पुटों धाले लोह भस्म के खाने से मल बंधकर सूख कर गांठदार सुहों वाला आया करता है ।) ॥ ४१ ॥

लौह मारक गण

त्रिफला, शतावर, बड़ी कटेली, तालमूली या मूसली, नीला कमल, हीवेर, दशमूल, पुनर्नवा, विधारे की जड़, भांगरा, सौंठ, विडंग, करंज, सुहांजना, संभालु, तुलसी, एरण्ड की जड़ हस्तिकर्णपलाश, पित्त पापड़ा, लालचन्दन, खिरेंटी, ये सब औषध लोहे को मारने वाली हैं । इसी लिए इन्हें लोहे मारक गण कहा जाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

वातहर गण

एरण्डभूल, रास्ना, दशमूल, गन्धप्रसारणी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शतावरी, पुनर्नवा, ॥ ४५ ॥ असगंध, गिलोय, जटां-मांसी, खिरेंटी, नागबाला, ये सब औषध वात नाशक हैं इसलिए इसे वात हर गण कहा गया है ॥ ४६ ॥

पित्त नाशक गण

खस, नेत्रबाला, बड़ी कटेली, चिरायता, शतावर, पटोल पत्र, लालचन्दन, गिलोय, कमल, मूसली ॥ ४७ ॥ पित्त पापड़ा, सीमल की जड़, खांड, लाख ये सब सारा गण पित्त रोगों को

नाश करने वाला है तथा पित्त नाशक गण कहाता है ॥ ४८ ॥

कफ नाशक गण

रास्ना, कालीमिरच, चव्य, पान, मांठ, एरण्डमूल, पिप्पली मूल, तुलसी, अदरक, भारंगी, लाल आक के फूल, मूर्वामूल सुहांजना, बहेड़ा, ये गण कफ को नाश करने वाला है और कफ नाशक है ॥ ५० ॥

लौह मारक गण विशेष वक्तव्य

वैद्य को चाहिए वातादि दोषों को नाश करने के लिए उस २ गण की जितनी भी औषधें मिल सकें उतनी ही लेकर उनमें घोट २ कर पुट देता जाय ॥ ५१ ॥ यदि वातहर गणादि की औषधों से लोहा नाहीं मार सके अथवा भिन्न भिन्न रोगों को नाश करने वाली औषधों से लोहा नाहीं मार सके तो त्रिफला के क्वाथ से पुट देते जावें । इस त्रिफला से पुट दिये हुए लोहे की भस्म को सर्वत्ररोगों पर प्रयोग करना चाहिये ॥ ५२ ॥

लोहे का द्वितीय माण्य प्रकार

शुद्ध लोहे का चूर्ण लें । इसके समान शुद्ध शिंजरफ लेकर मिलावें । फिर घी कुंवार के रस से खूब देर तक घोटते रहें । फिर धूप में सुखायें और फिर चूर्ण कर लें । अब इसे सम्पुट में बन्ध करके गजपुट में फूंक दें ॥ ५३ ॥ स्वांग शीत होने पर लोहे को निकालकर पीस लें । फिर उसमें लोहे का २० वां ($\frac{1}{20}$) भाग शुद्ध शिंजरफ मिलावें । फिर त्रिफला के क्वाथ से अथवा भांगरे के रस से लोहे को घोट लें । फिर गोल २ टिकियां बना कर धूप में सुखाकर सम्पुट में रत्न गजपुट से फूंक दें । इसी

प्रकार २० बां भाग शिंगरफ डाल २ कर ४० पुट दें तो लोहे की भस्म लाल कमल के समान हो जाती है। इस प्रकार तीक्ष्ण लोह तथा कान्तलोह की शीघ्र ही उत्तम प्रकार से भस्म हो जाती है ॥ ५५ ॥

तृतीय मागण प्रकार

शुद्ध लोहे का चूर्ण एक सेर लें, शुद्ध हिंगुल एक सेर लें। दोनों को खरल में डालकर नीबू के स्वरस से दो दिन पीम लें और टिकियां बना लें ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ फिर धूप में सुखाकर विधि पूर्वक गजपुट में फूंक दें। इसी प्रकार तीन बार सम भाग हिंगुल में घोट कर टिकियां बनाकर सुखाकर गजपुट में फूंक लें ॥ ५८ ॥ इसके बाद चौथीवार केवल नीबू के स्वरस में घोट २ कर पुट देता जावे। जब तक पद्म के समान लाल रंग का न हो जाये तब तक पुट देता जावे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार से लोहे की उत्तम भस्म हो जाती है। इसे सर्वत्र प्रयोग करे ॥ ६० ॥ (शिंगरफ से बने लोहे के संवन से कभी २ खून भी आजाता है इसीलिये उसके बाद दो पुट अन्य द्रव्यों के स्वरसादि की दे देनी चाहिए।

चतुर्थ मागण प्रकार

शुद्ध लोहे के चूर्ण को नीबू के स्वरस में घोट कर टिकियां बनाकर सम्पुट में बन्द करके गज पुट में फूंक देवे। ५० पुट देने से इस प्रकार लोहा भली प्रकार से भस्म हो जाता है ॥ ६२ ॥ इस प्रकार भी लाल कमल के समान भस्म हो जाती है। इसे सर्वत्र प्रयोग करें ॥ ६३ ॥

पंचम मारण प्रकार

शुद्ध किया हुआ लोहे का चूर्ण एक सेर लेकर लोहे के एक दृढ़ खरल में डालें । फिर उसके समभाग शुद्ध मनसिल डालें । फिर दोनों को पीसकर मिलालें इसमें शालिञ्ज की जड़ (चौलाई का एक भेद) के स्वरस से खूब पीसलें ॥ ६५ ॥ फिर सुखाकर चूर्ण करके सम्पुट में रख गज पुट में फूंक दें ॥ ६६ ॥ इस प्रकार समभाग शुद्ध मनसिल के साथ लोहे को तीन बार पुट देदे तो यह अत्यन्त सूदन चूर्ण हो जाता है ॥ ६७ ॥ फिर पीसकर कपड़े में से छान लें । जो मोटा लोहा न छाने उसे फिर उमी के समभाग शुद्ध मनसिल मिलाकर पुट दें ॥ ६८ ॥ फिर छान कर उस लोह चूर्ण को त्रिफला, अदरक, चीता, भांगरा, केशराज, हस्ति कर्ण पलाश, थोहर, जिमीकन्द (सूरणकंद) के स्वरस तथा भिनावे के स्वरस वा काथों से तथा पुनर्नवा के स्वरस में (जिसका काथ बन सके काथ करें, स्वरस मिल सके तो स्वरस ले लें) पृथक् २ बार २घोटकर पुटदेते जायें । इस प्रकार लोह भस्म हो जाता है ॥ ६९ ॥ इस प्रकार से बनाई हुई लोहे की भस्म बवासीर के मसों को नाश करने के लिये अति उत्तम मानी है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

षष्ठ मारण प्रकार

शुद्ध कान्त लोह ५ पल (४० तोले) लें । स्वर्ण मार्त्तिक की भस्म $१\frac{1}{2}$ पल (१० तोले) लें । दोनों को मिलाकर नीबू के स्वरस से घोटते रहें । फिर सुखाकर चूर्ण करलें । इसे दो प्यालों में बन्द करके गज पुटमें भस्म करलें ॥ ७२, ७३ ॥ जब स्वांग शीतल हो जावें तो निकालकर पीसकर वस्त्र में से छान

ले। इसीप्रकार स्वर्ण माक्षिक की भस्म डाल २ कर तीन पुट देवे ॥ ७४ ॥ प्रत्येक पुट में स्वर्ण माक्षिक की भस्म अवश्य डालनी चाहिए। छान कर जो मोटा २ लोह चूर्ण रह जावे उस में स्वर्ण माक्षिक भस्म चौथाई भाग डाल कर पुट देदे ॥ ७५ ॥ फिर पित्तनाशक गण की औषधों में से जितनी मिल सकें लेकर उनके रसमें लोहे का घोट २ कर पुट देता जावे जबतक कि लोहा भस्म न हो जावे। यदि पित्त नाशक औषधें न मिल सकें तो आंवले का स्वरस डाल २ कर ही घोटें और पुट देते जावें। जब तक कि लोहे की भस्म न हो जाये ॥ ७६ ॥ यही माक्षिक-घातुद्वारा भस्म किया हुआ कान्त लोह है जो कि विशेष २ रोगों में विधिपूर्वक प्रयुक्त किया जाता है ॥ ७७ ॥

सप्तम माग्न प्रकार

शुद्ध कान्त लोह को आंवले के स्वरस में पीस घोट कर टिकियां बना धूप में सुखाकर सम्पुट में बन्द करें और गजपुट में फूंकले। इस प्रकार आंवले के स्वरस से एक सौ बार पुट दें। तो कान्त लोहे की अत्युत्तम भस्म हो जाती है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

लोहे का निरुत्थी करण

लोह भस्म, गौ का घी, शुद्ध गन्धक तीनों को समभाग मिला कर पीस ले। फिर घीकुंवार के स्वरस में पीसकर सुखालें और चूर्ण बनाले ॥ ८० ॥ इसे सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक द। ऐसा करने से एकबार में ही लोहा निरुत्थ भस्म हो जाता है ॥ ८१ ॥

निरुत्थ किये हुए लोहे की परीक्षा

अनेक प्रकार से भस्म किया हुआ तीक्ष्ण या कान्त लोहा, यदि घी, शहद, गुग्गुलु, रत्तिधां तथा सुहागे के समभाग चूर्ण से मिलाकर अग्नि में पुट दिया जाए और वह फिर से लोहे के रूप में न (जी जावे) बन आवे तो यह उत्तम लोहभस्म कही जाएगी । तथा इसे सर्वत्र योगों में उपयोग किया जाएगा ॥ ८२ ॥

मृत लोहे के गुण

लोह रूक्ष है तथा रूक्षता उत्पन्न करता है, विपाक में मधुर है, तिक्त तथा कषायरस वाला है, शीतवीर्य है, गुरुपाक है, लेखन है, तथा नेत्र हितकारी है । बलदायक है, वृष्य है, उदर रोग नाशक, कफ, पित्त नाशक है । वर्ण के लिये हितकारी, मेघाजनक तथा नाना रोगों को नाश करता है ।

तथा

लोहा उत्तम अग्नि दीपक है । तथा क्षय कुष्ठ, गुल्म प्लीहा क्रिमिरोग, पाण्डुरोग, मेद, प्रमेह, संयोगज विष, बवासीर, यमन, श्वांस, आदि अनेक रोगों को भिन्न २ अनुपानों से नाश करता है ॥ ८४ ॥

तथा

विधि पूर्वक भस्म किया हुआ लोहा विसर्प रूपी गज को नाश करने में केमरी सिंह के समान है । प्रबल शूल को, क्षय को नाश करता है पुरानी सूजन को कम करता है, यकृत के रोगों को नाश करता है । गुदा के रोग, बवासीर आदि हाथियों को अंकुश के समान ठीक करने वाला है ॥ ८५ ॥

और भी

श्वास, क्रिमिरोग, क्षीणता, शोष, भ्रम, शूल, कास, क्षय, भ्रम, स्थूलता तथा कफ के रोगों को लोहभस्म नाश करती है ॥ ८६ ॥

अन्य गुण

पुराना अतीसार, नखी गण्डमाला, रजोरोध, वृक्कशोथ, हृद्रोग, विषम ज्वर ॥ ८८ ॥ फिरंगजनित पाण्डुरोग, कामला, हर्लीमक, घोषापस्मार, श्वेत प्रदर ॥ ८० ॥ मधुमेह, माँसतान (जो सूजन फैलकर गले को बन्द करदे उस लटकने वाली सूजन को माँसतान कहते हैं) भयकर प्रकार का लब भेदों वाला शोष रोग (जराशोष, अध्वशोषादि), ताण्डव रोग (बांयी बाहु से प्रायः आरम्भ करके सारे अंग काँपते हैं । न किसी वस्तु को मनुष्य पकड़ सकता है न भोजनादि को मुँह में डाल सकता है । ऐसे कंप को ताण्डव रोग कहते हैं) सूत का ज्वर ॥ ८६ ॥ गलके क्षत, आमवात, यकृद्रोग, भगंदर, पीनस, अम्लापत्त इनको शीघ्र ही अवश्य नाश कर देता है ॥ ६० ॥ सामान्य रूप से कान, नाक, गर्भाशयादि से थोड़े २ होने वाले रक्तस्राव को दूर करता है ॥ ६१ ॥ यौवनारंभ के समय जो कन्याओं को पाण्डुरोग हो जाता है उसे दूर करता है । आमाशय तथा पक्वाशयगत व्रण से निकलने वाले रक्तस्राव को दूर करता है ॥ ६२ ॥ नाडी शूल अनिद्रा जो पाण्डुरोग से उत्पन्न हुई हो तथा आमवात से हुई हो अस्थिवक्रता आदि अस्थि रोगों को नाश करता है ॥ ६३ ॥ वृद्धावस्था में नारियों का रजः स्राव बन्द होकर जो उन्हें शरीर पीड़ा तथा मन की उदासी सी होती है उसे यह लोहभस्म दूर करती है ॥ ६४ ॥ अनेक रोगों से हुई २ वात संस्थान का

दुर्बलता (Nervous debility) अर्थात् नाड़ी जालकी निर्बलता को शीघ्र ही लोहभस्म दूर कर देनी है ॥ ६५ ॥ किसी भी रोग के अच्छा होने के समय लोह भस्मका सेवन करना अच्छा माना जाता है । विशेष करके रोग हटन के बाद में बल को बढ़ाने के लिये यह अति उत्तम होता है ॥ ६६ ॥

इसके विशिष्ट गुण

जैसे वायु मेघों को नष्ट करता है उसी प्रकार लोहे की भस्म शाखाश्रित तथा कोष्ठाश्रित बढ़े हुए मल नाम के पित्त को नाश करता है ॥ ६८ ॥

इसकी मात्रा

चौथाई रत्ती से दो रत्ती तक लोह भस्म की मात्रा प्रयोग करें ॥ ६७ ॥

इसको रोगों पर प्रयोग

लोह भस्म १ रत्ती, दारचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नाग केसर इन चारों के सम भाग द्रव्यों का चूर्ण १ मासा, खांड ३ मासा मिला कर सेवन करें तो शाघ्र हां रक्तपित्त का नाश होता है ॥ ६६ ॥ बांसा, दाख, पिप्पली इनका समभाग चूर्ण करके ३ मासे ले, लोह भस्म १ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो पांचों प्रकार की खांसो नष्ट होती है ॥ १०० ॥ भारंगी, त्रिकुटा इनमें से प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर चूर्ण करें उसमें लोह भस्म १ रत्ती मिलाकर खावें तो उग्रश्वास ऐसे बेग से नष्ट होता है । जैसे वायु से मेघ ॥ १०१ ॥ कज्जली १ रत्ती, पिप्पली चूर्ण १ माशा, लोह भस्म १ रत्ती सबको मिलाकर शहद से सेवन करें तो कफ के रोगों को विशेष करके नष्ट करता है ॥ १०२ ॥

सोंठ का चूर्ण १ माशा, लोह भस्म १ रत्ती मिलाकर खावें तो वात रोग नष्ट होते हैं । रस सिन्दूर १ रत्ती, लोहा १ रत्ती खांड १ माशा मिलाकर सेवन करें तो पित्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १०३ ॥ लोह भस्म एक रत्ती, त्रिफला चूर्ण ६ माशा लगा-तार १ वर्ष तक सेवन करे (पथ्य से रहें) तो बलित भुग्विं तथा पलित (श्वेत वाला होन) दूर होते हैं ॥ १०४ ॥ पान के बीड़े में लोह १ रत्ती तथा रस सिन्दूर १ रत्ति डाल कर सेवन करें तो वर्ण शोधक तथा वृष्य हैं ॥ १०५ ॥ हींग १ रत्ती, त्रिकुटा १ माशा, घी से मिलाकर १ रत्ती लोहभस्म सेवन करें तो शूल को ऐसे नाश करता है जैसे मेघ वृन्द को वायु नाश करती है ॥ १०६ ॥ आमला चूर्ण ३ माशे, शिप्ली चूर्ण ४ रत्ती लें खांड या बूरा ४ माशा मिलावें, लोह भस्म १ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो रक्त पित्त तथा अम्लपित्त का नाश होता है ॥ १०७ ॥ वायविडंग, मोथा, त्रिफला, अपामार्ग के बीज इन सबको समान भाग ले चूर्ण करें इस चूर्ण को ६ माशा लें । इसमें लोह भस्म १ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो भस्मक रोग (अत्यन्त भूख बार २ लगना) नष्ट होता है ॥ १०८ ॥ यदि लोह भस्म १ रत्ती को शिलाजीत ४ रत्ता से या ताजे कुशा और कासके काथ से सेवन करे तो अनेक कारणों से उत्पन्न हुआ २ भयंकर मूत्र कृच्छ्रभी अत्यन्त शीघ्र दूर हो जाता है ॥ १०९ ॥ लोह भस्म १ रत्ता, पुनर्नवा का चूर्ण ३ मासा या स्वरस १ तोला मिलाकर सेवन करें तथा ऊपर सं गौ का दूध अधिक मात्रा में पीवें तो तीन मास में ही बुढ़ापे से कृश हुए पुरुषों के शरीर को फिर से नया (जवान) कर देता है ॥ ११० ॥ पारद भस्म १ रत्ती (या रस सिंदूर १ रत्ती)

लोह भस्म १ रत्ती, दोनों को कुटकी के काथ से भावित कर के दो मास सेवन करे तो सर्वांगवात तथा एकांगवात नष्ट होती है ॥ १११ ॥ लोह भस्म १ रत्ती भो घी, मधु से खावें अथवा हल्दी के स्वरस से खावें या कुटकी तथा हरड के चूर्ण से खावें तो एक मास के सेवन करने से ही भयंकर पाण्डु तथा कामला रोग दूर होता है ॥ ११२ ॥ लोह भस्म १ रत्ती, शुद्ध गंधक, १ रत्ती, शहद, गौ का घी मिलाकर खावें ऊपर से त्रिफला का क्वाथ पीवें । उचित पथ्य से रहें तो एक वर्ष में बूढ़े भी जवान हो जाते हैं ॥ ११३ ॥ लोहभस्म १ रत्ती, गोखरु तथा छोटी इलायची का चूर्ण ३ माशा मिलाकर (जल से) खावें तो भयंकर मूत्रकृच्छ्र भी दूर होता है ॥ ११४ ॥ कत्था तथा विजैसार के रस से सात बार लोहभस्म को भावित करें तो कुष्ठादि विविध रोगों को (त्वचागत रोगों को) नाश करता है ॥ ११५ ॥ गंधक से मारे हुए ताम्र भस्म $\frac{1}{2}$ रत्ती के साथ लोहभस्म १ रत्ती सेवन करके ऊपर से खिरैटी तथा कौंच का क्वाथ पीवें तो सर्वांगवात तथा एकांगवात नष्ट होते हैं ॥ ११६ ॥ कान्तलोह भस्म जो आंवले के स्वरस से बनायी हो १ रत्ती लेकर त्रिफला चूर्ण ६ माशा से १ वर्ष तक सेवन करें तो आयु को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ११७ ॥

प्रदरान्तक लौह

लोहभस्म दो तोला, बंगभस्म एक तोला, गौ के घी में भुना हुआ सुनहरीगेरु १ तोला, श्वेत राल का चूर्ण चार तोला, मोच-रस का चूर्ण १ तोला, सब को एकत्र पीसकर शीशी में रखें । इस का नाम प्रदरान्तक लोह है ॥ १२० ॥ भिन्न २ अनुपानों से सर्व

प्रदरों को नाश करता है । यदि लाल चन्दन के क्वाथ से या अशोक की छाल के क्वाथ से उसे पीये तो विविधसूत्र सहित रक्तप्रदर (पीला, काला या नीला श्वेत) को नाश करता है । श्वेत चन्दन के घिसे हुए रस से लोह भस्म १ रत्ती सेवन करें तो श्वेत प्रदर को नाश करता है ॥ ११८ — १२२ ॥

अथ मण्डूर का स्वरूप

लोहे को प्रतप्त करके घन की चोटों मारने से जो मल गिरता है वही कुछ समय बाद पिण्ड बनकर भूमि पर पड़ा रहता है, उसे ही मण्डूर कहते हैं ॥ १२३ ॥

मण्डूर के नाम

लोहे के मैल या किट्ट को मण्डूर कहते हैं । लोडकिट्ट, लह-मल तथा लोहोच्छिष्ट भी इसके नाम हैं ॥ १२४ ॥

मण्डूर की श्रेष्ठता

६० साल का अधम, ७० साल का मध्यम तथा १०० साल का पुराना मण्डूर उत्तम कहाता है ॥ १२५ ॥

दूसरी प्रकार से ग्राह्य मण्डूर का स्वरूप

जो स्निग्ध, गुरु, दृढ़, काले रंग का तथा छिद्ररहित हो, जो जीर्ण शीर्ण तथा टूटे हुए नगर में से मिले उस मण्डूर को ग्राह्य कहते हैं ॥ १२६ ॥

मण्डूर की शोधन विधि

बहेड़े के अंगारों (जलते हुए कोयलों) पर मण्डूर को तल

तपाकर गोमूत्र में सात बार बुझायें तो मंड़ूर उत्तम प्रकार से शुद्ध हो जाता है ॥ १२७ ॥

दुमर प्रकार से मण्डूर की शोधन विधि

तेज अग्नि में तपाये हुए पुराने मण्डूर को सात बार बहुत से गोमूत्र में बुझायें तो मण्डूर की शुद्धि होती है तथा वह मारने योग्य हो जाता है ॥ १२८ ॥

मण्डूर का मागण प्रकार

चूर्ण हुए शुद्ध मण्डूर को त्रिफला के क्वाथ में पीम २ कर सम्पुट में रखकर पुट दे । इस प्रकार ३० पुट देने से शीघ्र ही मण्डूर की लालचन्दन के रंग की सी भस्म होजाती है । इसे अब मर्व योगों में प्रयुक्त करें ॥ १२९—१३० ॥ लोहे के मारकगण की औषधों से पीम २ कर मण्डूर को सम्पुट करके पकावें तो भी भस्म हो जाता है ॥ १३१ ॥

मण्डूर भस्म के कारण

मण्डूर भस्म वृष्य है । यह शीतवीर्य, रुचिकारक, अग्नि-दीपक, पित्तनाशक, अति रक्तवर्धक है ॥ १३२ ॥ पाँडुरूपी मस्त हाथी के मद् का नाश करने में केशरी है । विशेष करकेकामलारूपी दीवार को तोड़ने में बज्ररूप है ॥ १३३ ॥ शोष रोग, शोथ रोग, हलीमक तथा प्लीहा को मण्डूर भस्म सर्वथा नाश करती है ॥ १३४ ॥

मण्डूर की मात्रा

चौथाई रत्ती से दो रत्ती तक मंड़ूर की मात्रा है । अर्थात् लोहे की मात्रा के सदृश हा इसे समझना चाहिए ॥ १३५ ॥

मण्डूर का औषधिक प्रयोग

मण्डूर भस्म को पुनर्नवाष्टक के क्वाथ से सेवन करें तो सूजन के महान रोगको दूर करती है ॥ १३६ ॥ कुटकी त्रिफला हल्दी, दारु हल्दी के चूर्ण के साथ मण्डूर भस्म सेवन की जावे तो कामला को निश्चित नाश करती है ॥ १३७ ॥ विडंग, त्रिफला पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता तथा सोंठ ये पंचकोल कहाते हैं), मोथा इनको समभाग लेकर चूर्ण करके मण्डूर भस्म से सेवन करें तो कृमि, शोथ, अर्श, ग्रहणी, लीहा, तथा पांडुरोग नाश होते हैं ॥ १३८ ॥ रस सिन्दूर एक रत्ती मण्डूर भस्म २ रत्ती मिलाकर (शहद से) सेवन करें तो एक मास में रक्त वृद्धि खुब होती है ॥ १३९ ॥ मण्डूर भस्म को दश-मूल के क्वाथ से सेवन करें तो सूजन, ज्वर तथा अतिसार युक्त पांडुरोग को नाश करती है ॥ १४० ॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालङ्कार भिषगाचार्य कृत रस-तरंगिणी के भाषानुवाद में यह लौहादि विज्ञानीय नाम का विंश तरंग समाप्त हुआ ॥ २० ॥

अथ उपधात्वादि विज्ञानीय नाम का एकविंश तरंग

सुवर्ण माक्षिक के नाम

सुवर्णमाक्षिक, स्वर्णमाक्षिक, हेममाक्षिक, माक्षिक, ताप्य धातुमाक्षिक, माक्षिकधातु, तापीज ये सब नाम सुवर्ण माक्षिकके हैं ॥ १ ॥ कुछ २ स्वर्ण के सहित होने से (नव्य विज्ञान स्वर्ण

का अंश मात्र भी माक्षिक में नहीं मानता है । पर प्राचीन मतमें स्वर्ण का अंश स्वर्णमाक्षिक में माना जाता है ।) अथवा सुवर्ण के गुणों के सदृश स्वर्ण माक्षिक के गुण होने से अथवा सुवर्ण के समान चमक होने से इसे स्वर्णमाक्षिक कहने हैं ॥२॥ तापी नदी के किनारे पर उत्पन्न होने के कारण इसे ताप्य या तापीज भी कहते हैं ॥ ३ ॥

ग्राह्य सुवर्णमाक्षिक के लक्षण

जो स्निग्ध, भारी, काली सी (सांवली) कान्तिवाला, कसौटी पर घिसने से सुवर्ण के समान चमक दे । जिसके कारण न हों, जिसका रंग स्वर्ण के समान (सांवले रंग में सुनहरी चमक) हो, वह सुवर्णमाक्षिक उत्तम होता है ॥ ४ ॥

त्याज्य सुवर्णमाक्षिक के लक्षण

जो खरखरा हो, जो भारी न हो, जो कोणवाला हो, जो खर लोहे के सदृश हो ऐसा सुवर्णमाक्षिक त्याज्य होता है ॥५॥

सुवर्णमाक्षिक शाधन का प्रयोजन

यदि स्वर्णमाक्षिक अशुद्ध हो या अशुद्ध को भस्म कर लिया जाये तो उसे सेवन करने से आंख के रोग, मन्दाग्नि, कुष्ठ, हलीमकादि रोग तथा कोष्ठ में वायु को अत्यन्त उत्पन्न करता है ॥ ६ ॥

स्वर्णमाक्षिक का प्रथम शोधन प्रकार

सुवर्णमाक्षिक को लोहे के हमामदस्ते में कूटें फिर छालनी से छान लें ॥ ७ ॥ फिर इस चूर्ण को कड़ाही में रखे और नींबू का स्वरस डाल २ कर चूल्हे पर पकावे । कड़खी से तब तक

चलाता रहे जब तक स्वर्णमाक्षिक का रंग कमल के समान लाल न हो जाये ॥ ८ ॥ ९ ॥ सुवर्णमाक्षिक जब तक लाल रंग का न हो जाये तब तक नींबू का स्वरस डाल २ कर तीक्ष्णाग्नि से पकावे ॥ १० ॥ दो दिन या तीन दिन तक लगातार पकाने से माक्षिक शुद्ध हो जाता है ॥ ११ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

उत्तम सुवर्णमाक्षिक को अच्छी प्रकार चूर्ण करके एक पोटली में बांधकर दोलायंत्र में लटका दें। हांडी के अन्दर मर्मा माग का (जो श्वेत रंग का न हो) का स्वरस डाल दें। और नीचे आग दें फिर पोटली में से छन २ कर स्वर्णमाक्षिक धातु नीचे हांडी में गिर जायेगी। (पत्थर का भाग कपड़े की पोटली में ही रह जायेगा) इस प्रकार से एक दिन अग्नि पर पकाने से सुवर्णमाक्षिक धातु निस्संदेह शुद्ध हो जाती है ॥ १२-१४ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

उत्तम सुवर्णमाक्षिक को तेज अग्नि में तपाकर नींबू के स्वरस में बुझावें। २१ बार इसी प्रकार तपा २ कर बुझावें तो स्वर्णमाक्षिक शीघ्र ही सर्वथा उत्तमता से शुद्ध हो जाता है ॥ १६ ॥ इस प्रकार सुगम उपाय से ही सुवर्णमाक्षिक में रहने वाला खान का दोष नष्ट हो जाता है इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १७ ॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

सुवर्णमाक्षिक को सूक्ष्मचूर्ण करके केले की जड़ के स्वरस में दो घड़ी पकावें तो निस्सन्देह शुद्ध हो जाता है ॥ १८ ॥

सुवर्णमाक्षिक का प्रथम मारण प्रकार

सुवर्णमाक्षिक को नीबू के स्वरस में पकाकर फिर नीबू के स्वरस से घोटकर सम्पुट करके टिकियां बनाकर पुट दें ॥ १६ ॥ इस प्रकार से १० पुटों में स्वर्णमाक्षिक की भस्म हो जाती है । इस भस्म का रंग लाल कमल के पत्र जैसा लाल होता है और अतिसुन्दर होता है ॥ २० ॥

द्वितीय मारण प्रकार

विशुद्ध स्वर्णमाक्षिक एक भाग, शुद्ध गंधक १ भाग दोनों को खरल में पीसकर नीबू के स्वरस से घोटें ॥ २१ ॥ फिर टिकियां बनाकर धूप में सुखाकर सम्पुट में रखकर पुट दें । इस प्रकार ५ पुट देने से ही स्वर्णमाक्षिक भस्म हो जाता है ॥ २२ ॥

तृतीय मारण प्रकार

शुद्ध स्वर्णमाक्षिक का चूर्ण ८ भाग, शुद्ध हिंगुल १ भाग लेकर दोनों को नीबू के रस से पीसें । फिर आतिछांटी ० टिकियां बनाकर सम्पुट में बंदकर गजपुट में फूंक दें । इसी प्रकार बार २ हिंगुल एक भाग डाल २ कर नीबू के रस से घोट २ कर छांटी २ टिकियां बना २ कर आठ बार पुट दें तो हिंगुल की भस्म हो जाता है ॥ २३-२४-२५ ॥

स्वर्णमाक्षिक के गुण

सुवर्णमाक्षिक भस्म वृष्य है, मधुर है, तिक्त है तथा रसायन है । स्वरयंत्र तथा आँखों के लिये हितकारी है । त्रिदोषनाशकों में उत्तम है ॥ २६ ॥ क्षय, अर्श, प्रमेह, विविध प्रकार की

वस्ति की पीड़ाएं, पाण्डु, शोथ, कुष्ठ तथा विषदोषादि को हरती है ॥ २७ ॥ जीर्णज्वर, अपस्मार (मृगी) मन्दाग्नि और अरुचि इन रोगों को दूर करती है । अनिद्रा को शीघ्र ही नाश करती है । यह अत्यन्त योगवाही है ॥ २८ ॥

स्वर्णमाक्षिक की मात्रा निरूपण

बल, कालादि को देखकर स्वर्णमाक्षिक भस्म की $\frac{1}{2}$ रत्ती से दो रत्ती तक की मात्रा का प्रयोग करना चाहिये ॥ २९ ॥

स्वर्णमाक्षिक का रोगों पर प्रयोग

स्वर्णमाक्षिक की भस्म शालसारादिगण (शालसार, अजकर्ण, खैर, कदर, कालस्कन्ध, सुपारी, भोजपत्र, मेढासिंही, तिनिश, चन्दन, कुचन्दन, शीशम, सिरिस, बिजैसार, धव, अर्जुन, ताड़, शाक, करंज, पूतीक, अश्वकर्ण, अगर तथा कालायक ये सुश्रुत में कहा हुआ शालसार आदिगण है जो नानामेहों तथा मधुमेह को नाश करने में परमोत्तम माना है) के जितने द्रव्यमिल सकें उतने द्रव्यों से भावित करके सेवन करें तो तो सान्द्र मेह (गाढ़ा चिपचिपा मूत्र) को नाश करती है ॥ ३० ॥ शिलाजीत, अभक- भस्म, विडंग, स्वर्ण माक्षिक भस्म सब को एक २ भाग लेकर शहद सं खावें तो एक मास में राज-यक्ष्मा दूर होता है ॥ ३१ ॥ स्वर्ण माक्षिक भस्म को यवक्षार के साथ सेवन कर तो भयंकर मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ३२ ॥ पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ तथा दारु हल्दी के क्वाथ से स्वर्ण माक्षिक भस्म सेवन करें तो शीघ्र ही सूजन को नष्ट करता है ॥ ३३ ॥ स्वर्ण माक्षिक भस्म को कचनार की छाल के क्वाथ से सेवन करें तो अन्दर की मसूरी का (शीतला के दानों या चेबक

के दानों) को बाहर निकाल देती है ॥ ३४ ॥ अतीस, करंज-
वा को समभाग लेकर चूर्ण करें । यह चूर्ण १ माशा लें, स्वर्ण
माक्षिक १ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो शीघ्र ही विषमज्वर
निश्चित नाश हो जाता है ॥ ३५ ॥ स्वर्ण माक्षिक १ रत्ती, पिप्पली
चूर्ण ४ रत्ती, बहेड़े का चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर शहद से (दो-
वार इसी तरह) सेवन करें तो खांसी का नाश होता है ॥ ३६ ॥
पारा, गन्धक की कज्जली के साथ स्वर्णमाक्षिक भस्म शहद में
सेवन करें तो शीघ्र ही रक्तपित्त को नाश करता है ॥ ३७ ॥
वंश लोचन १ माशा, स्वर्ण माक्षिक १ रत्ती (दोवार) मिलाकर
खावें तो दो मास में अत्यन्त बल देता है ॥ ३८ ॥ रस सिन्दूर
१ रत्ती, अभ्रकभस्म १ रत्ती, स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती,
त्रिकुटा चूर्ण ३ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो गर्भिणी के भयंकर
ज्वर को शीघ्र दूर करता है ॥ ३९ ॥ रससिन्दूर १ भाग,
स्वर्ण माक्षिक २ भाग दोनों को मिलाकर शहद से चाटें तो
बलवीर्य को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ४० ॥ स्वर्ण माक्षिक १ रत्ती
पिण्डर खजूर १ मासा मिलाकर सेवन करें तो गर्भवती नारी
के रक्त स्राव को निश्चित दूर करता है ॥ ४१ ॥ अतीस, बिल
का गूदा, खिरंटी, सोंठ, जलबेत, नेत्रबाला, इनके फवाथ से
स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती खिलायी जाये तो गर्भवती के
ज्वरातीसार को दूर करती है ॥ ४२ ॥

स्वर्णमाक्षिक के सत्त्वपातन का प्रकार

शुद्ध स्वर्ण माक्षिक के चूर्ण को गौमूत्र, एरण्ड का तैल
केले की जड़ के स्वरस, घी, मधु से सातवार भावित करके
मूषा में रखें और अत्यन्त तेज आंच धौंकनी से दें ॥ ४४ ॥

इस प्रकार शीघ्र ही ताव खाकर स्वर्ण माक्षिक सत्त्व का छोड़ देता है यह सत कोमल (मुलायम) सुन्दर तथा तांबे के रंग का होता है ॥ ४५ ॥

द्वितीय सत्त्व पातन प्रकार

स्वर्ण माक्षिक चूर्ण को चार भाग लें, सुहागा एक भाग लेकर खूब घोटें। फिर मूषा में बन्द करके धौंकनी से तीक्ष्ण आंच दें तो निश्चित ही सत को छोड़ देता है ॥ ४६ ॥

तृतीय सत्त्व पातन प्रकार

शुद्ध स्वर्ण माक्षिक १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग दोनों को पीसलें। फिर १२ घंटे तक सम्पुट में रखकर पकायें। फिर निकाल लें। अब आधा भाग गन्धक तथा भुना हुआ सुहागा (सुहागे की खील) आधा भाग मिलाकर घांटकर एक अन्ध मूषा में रखे और अति तेज् अग्नि में रखकर धौंकनी से वायु देवे। इस प्रकार भी शीघ्र ही स्वर्णमाक्षिक का तांबे के से रंग का सत्त्व निकल आता है ॥ ४६ ॥ ४८ ॥

स्वर्ण माक्षिक सत्त्व का मागण प्रकार

स्वर्ण माक्षिक का सत ५ तोला, शुद्ध पारा ५ तोला, शुद्ध गन्धक ५ तोला लें। प्रथम कज्जली करें। फिर सबको एकत्र पीस लें ॥ ४९ ॥ जम्बीरी (खट्टे या किम्ब नींबू) के रस से एक दिन घोटें। फिर सुखा कर सम्पुट में डालकर तीव्र अग्नि से पुट दें ॥ ५० ॥ इसी प्रकार तीन बार नींबू के रस में कज्जली को पीसकर महा पुट दें (या गजपुट दें) तो स्वर्ण माक्षिक का सत्त्व भरम हो जाता है ॥ ५१ ॥

स्वर्ण माक्षिक सत्त्व के गुण

स्वर्ण माक्षिक के सत की भस्म शीतल है, परम रुचिदायक है। वृष्य, बलदायक, मेधा जनक, जीर्ण उ्वर नाशक है। रक्तपित्त, क्षय, कास, भयंकर दाह को नाश करता है। यह परम योग चाहि है तथा उत्तम रसायन है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

मृतस्वर्ण माक्षिक सत्त्व का आमयिक प्रयोग

दोषानुसार अनुपानों के साथ यदि स्वर्ण माक्षिक का सत्त्व भी सेवन किया जाये तो यह स्वर्ण माक्षिक के समान ही गुण करता है तथा उन २ दुःसाध्य रोगों को नाश करता है। इसकी मात्रा तथा अनुपान भी स्वर्ण माक्षिक भस्म के सदृश ही है ॥ ५४ ॥

अथ रजत माक्षिक के नाम

रौप्यमाक्षिक, तारज, तारमाक्षिक, विमल, श्वेत माक्षिक, रजत माक्षिक, ये सब नाम रूपा माखी के हैं ॥ ५५ ॥ कुछ चांदी के अंश होने के कारण (नव्य रासायनिक लोग चांदी का अंश रूपामाखी में नहीं मानते हैं) अथवा रूपे (चांदी) की तरह गुणों के होने के कारण, अथवा रूपे के सदृश चमकने के कारण इसे रौप्यमाक्षिक (रूपामाखी) कहा जाता है ॥ ५६ ॥

जात्य रजत माक्षिक का स्वरूप

जो स्निग्ध हो, कोण वाला हो, भारी हो, गोल हो, चांदी के सदृश श्वेत रंग का हो, चांदी के समान चमकदार हो, उसे उत्तम रूपा माखी समझो ॥ ५७ ॥

हेय रौप्य माक्षिक का स्वरूप

जो मलवाला, लघु, रुक्ष, कसौटी पर घिसने से अति मलिन छवि वाला हो, गोल न हो, उत्तम रंग का न हो, मैला से रंग का हो, उस स्वर्ण माक्षिक को त्याज्य समझो ॥५८॥

रूपमाखी को शुद्ध करने का प्रयोजन

अशुद्ध रौप्यमाक्षिक भी अशुद्ध स्वर्ण माक्षिक के समान ही मन्दाग्नि तथा कुष्ठादि को करती है ॥ ५९ ॥

रौप्य माक्षिक का प्रथम शोधन प्रकार

(गीतिका)

उत्तम रूपामाखी को लोहे के खरल में कूटकर सूक्ष्म चूर्ण करें । फिर नीबू के स्वरस को डालकर एक लोहे की कड़ाही में रख दें ॥ ६० ॥ फिर लोहे के चूल्हे पर कड़ाही को चढ़ा दें । नीचे तेज आग्नि दें । कड़छी से अन्दर के पदार्थ को हिलाते रहें ॥ ६१ ॥ जब तक रूपामाखी कुछ २ लाल रंग का कीचड़ सा नहीं बन जाता तब तक नीबू का स्वरस डाल डाल कर पकावें ॥ ६२ ॥ जब लाल कमल के समान रंग हो जाये तब रूपामाखी को शुद्ध समझकर कड़ाही को चूल्हे से उतार लेबे । इस रूपामाखी को शुद्ध समझकर भस्म आदि में प्रयोग करें ॥ ६३ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

उत्तम रूपामाखी को एक पोटली में बांधले और बांसे के पत्तों के स्वरस में दोलायन्त्र द्वारा पकावे ॥ ६४ ॥ छः घण्टे पकाने के बाद रूपामाखी शुद्ध हो जाता है ॥ ६५ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

मेढ्रासिही के स्वरस में दोला यंत्र द्वारा पकाने से भी रूप-माखी शुद्ध होता है ॥ ६६ ॥

रूपामाखी का मारणप्रकार

४ भाग रूपामाखी तथा १ भाग शुद्ध गन्धक को बड़हल (ढेऊ) के स्वरस में घोटकर पुट दे दे । इस प्रकार सात बार पुट देने से रूपामाखी की भस्म हो जाती है ॥ ६७ ॥

रूपामाखी का सामान्य मारण

रूपामाखी की भस्म भी स्वर्ण माक्षिक के समान ही बनानी चाहिये । क्योंकि इसका प्रयोग कम किया जाता है । इसलिये यहां इसके विषय में अधिक नहीं लिखा है ॥ ६८ ॥

रौप्य माक्षिक के गुणादि का निरूपण

रौप्य माक्षिक के गुण भी स्वर्ण माक्षिक के समान ही जानने चाहियें । इसकी मात्रा तथा रोगों पर प्रयोग भी स्वर्ण माक्षिक के समान ही जानने चाहियें ॥ ७६ ॥

रौप्य माक्षिक का सत्त्व पातन

रौप्य माक्षिक ४ भाग, सुहागा १ भाग लें । दोनों को बड़हल के स्वरस में घोट लें । फिर मूषा में रखकर देर तक तीक्ष्ण अग्नि दें तो सीसे के सदृश ही उसका भी सत्त्व निकलता है ॥ ७० ॥

अथ तुत्थक के नाम

(स्वर्ण, रजत के बाद तांबा धातु आती है । दोनों माक्षिकों

के बाद उपधातु भी तुत्थ आती है । अतः उसे आगे लिखते हैं ।)

तुत्थ, तुत्थक, तुथाञ्जन, मयूरक, सस्यक, ताम्रगर्भ तथा शिखिग्रीव ये सब नाम नीलेथोथे के हैं ॥७१॥

ग्राह्य तुत्थक का स्वरूप

जो मोर की गर्दन के समान नीला, भारी, स्निग्ध, अति चमकदार होता है वही तुत्थ ठीक होता है । दूसरा हीन गुण वाला होता है ॥७२॥

तुत्थक को निर्मल करना

नीले थोथे का सूक्ष्म चूर्ण दस तोला लेबे, अत्यन्त गरम जल ५ तोला में मिला दें । घुल जाने पर सारक पत्र से या कपड़े से छान लें । छने हुए पानी को कांच पात्र में तब तक रखे जब तक वह कण २ नहीं हो जाता । इस प्रकार कण २ हो जाने पर उस तुत्थ को शुद्ध करने में प्रयोग करें ॥७३॥७४॥७५॥

निर्मल किये हुए नीले थोथे के गुण

निर्मल किया हुआ तुत्थ त्वचा और नेत्र रोगों के लिए हितकारी है ।

यह ग्राही, अति वमन कारक, कफनाशक, आंखों के लिए हितकारी, उपदंश तथा फिरंग रोग के व्रणों को आतिशोधन करने वाला है, अन्य व्रणों के दोषों को दूर करता है । आंख के क्लिष्ट वर्त्म रोगों को शान्त करता है तथा क्षार कर्म को करने वाला है । इसका रस तिक्त है ॥७६॥७७॥

तुत्थक द्रव का निर्माण प्रकार

निर्मल किया हुआ थोथा दो या चार रत्ती लें । ५ तोले जल के

अर्क में डालकर घोल ले ॥७८॥ घुल जाने पर इसे सर्व स्थानों पर प्रयोग करे। इसे ही तुत्थ द्रव कहते हैं ॥७९॥

तुत्थक द्रव का रोगों पर प्रयोग

जिन व्रणों का मांस गल सड़ गया हो, जो व्रण देर से भरते न हों, जिनका मांस अति ऊंचा उठ गया हो, जिनमें से सड़ी हुई दुर्गन्धि निकलती हो ॥८०॥ जो उपदंश तथा फिरंग के हों तथा फुंसियों या छाले हों और न भरते हों, उन सबके सब दाँषों को दूर करके उन्हें भरने के लिये इसी तुत्थ द्रव का प्रयोग करना चाहिए (२ रक्ती वाला पतला घोल कोमल व्रणों पर, ४ रक्ती वाला तीक्ष्ण घोल बिगड़े हुए व्रणों पर लगावें)। इस तुत्थ द्रव से धोये हुए व्रण निश्चित रूप से भर जाते हैं ॥८१॥ ८२॥ नेत्रों के दोनों वत्सों (पलकों) में युक्ति पूर्वक इस तुत्थ द्रव को लगावें तो क्लिन्नवर्त्म रोग तथा पोथकी (कुकरो) को शीघ्र ही नाश करता है ॥८३॥

गीतिका

उपसर्गज मेह (सूजाक) में या सफेद प्रदर में इस तुत्थ द्रव को उत्तर बस्ति द्वारा प्रयोग करे तो दोनों रोगों का नाश होता है ॥ ८४॥८५॥

निर्मल किये हुए तुत्थ का आमयिक प्रयोग

तुत्थकोदया वटी

निर्मल थोथा एक भाग, हरड़ १ भाग, मुलहटी चूर्ण १ भाग ले। सबको पीसलें। काला मिरच का चूर्ण सोलहवाँ भाग मिलावें। सबको जल से पीसकर एक माशा भरकी गोली-

यां बनाले' । इसका नाम तुत्थकोदया वटी है । इसे जल में घिस कर लगावे' तो पोथकी (कुकुरे) आदि रोगों को नाश करती है ॥८६॥८७॥

तुत्थकोदया वर्त्तिः

विधि पूर्वक निर्मल किया हुआ नीला थोथा ५ तोला ले' । निर्मल किया हुआ शोरा ५ तोला, फिटकरी ५ तोला ले' ॥८८॥ कर्पूर आधा तोला ले' सबको यत्न पूर्वक जल से पीसकर दो रत्ती की बत्तियों बनाले' ॥ ८६ ॥ (इन्हें शीशी में बन्द करके रखे') । इनमें से एक वर्त्ती को ५ तोला जल में घोल ले' । फिर ऊँट के बालों की बनी हुई कूची (ब्रुश) को लेकर इस द्रव में भिगोकर आंख के वर्त्म को उलटा कर (टेढ़ा करके) उसमें धीरे से लगावे' । इस द्रव के वहां लगाने से क्लिबर्त्म की घोर पीड़ा तथा पोथकी (कुकुरे) नष्ट हो जाते हैं ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥

तुत्थकादिवर्त्तिः

निर्मल किया हुआ नीला थोथा, कूठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दारुहल्दी, दन्ती की जड़, त्रिवी, काले तिल, पिप्पली सेंधालवण, शहद, इन सबको सम भाग लेकर पृथक २ चूर्ण करके एकत्र करे' । फिर नीम के पत्तों के स्वरस में घोट ले' । इनकी ऐसी पतली बत्तिये' बनाले' जैसी कि एषणी (नासूर में डालने का यन्त्र या सलाई या Probe) होती हैं । फिर इन बत्तियों को युक्ति से नाड़ी ब्रण आदि में तथा भगंदर में प्रयुक्त करे' ॥६२॥ ६३॥

शिखिग्रीवादिवर्तिः

नीला थोथा एक माशा, मिरच १ कर्ष (२ तोला) ले' । दोनों को पीसकर कांजी में खरल करे' ॥ ६४ ॥ इसकी बत्तिये' बनाकर रखें । इस बत्ती को जलादि में घिसकर वर्त्म पर लगावें तो पुराने अतिशय गीले रहने वाले (गिजगिजे, गिड्ड आदि युक्त) १८ प्रकार के पिल्ल रोगों (आंख की पलकों के अन्दर होने वाले कुकरे, कुकूणक, क्लिष्ट वर्त्मादि १८ पिल्ल रोग होते हैं) को नाश करती है ॥ ६५ ॥

केवल नीला थोथा अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण करके यदि यत्न से अति थोड़ी मात्रा में प्रति सारण कर्म से भिन्न हुई हुई लगण या गुहांजनी (Stye) पर लगावें तो उसकी पीड़ा शान्त हो जाती है ॥ ६६ ॥

तुत्थामृतमलहर

उत्तम सिक्थतेल १० तोला ले', निर्मल नीला थोथा २० रत्ती ले' ॥ ६७ ॥ दोनों को खरल में पीसकर शीशी में रखें । इसे तुत्थकामृत मलहर कहते हैं ॥ ६८ ॥

इसके गुण

यह तुत्थकामृत मलहम यदि नित्य लेप की जाये तो शीघ्र पुरानी पामा को दूर करती है ॥ ६९ ॥

तुत्थकाद्यमलहर

एक कड़छी में घी दो तोला डालकर आग पर पकायें । तोले से आठवां या चौथाई भाग राल पीसकर डाल दें । राल को पिघलते हुए देखकर तुरन्त ही खरल में डाल दें । इसमें १/८

तोला निर्मल तुत्थ का चूर्ण डाल दें ॥ १०० ॥ १०१ ॥ खड़िया मिट्टी, कौड़ी की भस्म तथा सुहागा एक २ तोला डाल दें । अब इसे घोट लें । पानी डाल डाल कर घोटते जायें, जब तक कि उस पानी का नीलापन दूर न हो जाये । जब नीला पानी हो उसे फेंक दें । फिर ताज़ा पानी डालकर घोटें । जब नीला पानी न निकले तब उस मल्हम को एक चौड़े मुंह की शीशी में रख दें ॥ १०३ ॥ यह तुत्थकाद्यमलहर कहाती है । यह ब्रणों के शोधन करने में, पीप निकालने में तथा विविध ब्रणों के नाश करने में अत्युत्तम है ॥ १०४ ॥

विशुद्ध तुत्थक का प्रयोग

सम भाग सुहागे की खील के साथ नीला थंथा शुद्ध मिला लें । दोनों को अदरक के रस से पीस लें । दा रत्ती मात्रा वमन कराने को दें । साथ में अदरक का स्वरस या गरम जल दें तो वमन होकर निस्संज्ञ (बेहोश) पुरुष भी चेतन होकर संज्ञा में (होश में) आजाता है ॥ १०५ ॥

“अन्दर के प्रयाग करने क लिए तुत्थ शोधन को प्रथम”

प्रकार

नीबू के ताजे स्वरस में तुत्थ को पीस लें । ६ घंटे पीस लेने से तुत्थ सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

लाल चन्दन तथा मंजीठ को सम भाग लेकर विधि पूर्वक काथ करें । इस क्वाथ से तुत्थ को सात भावना दें तो यह तुत्थ उत्तमता से शुद्ध हो जाता है ॥ १०८ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

एक मिट्टी के पात्र में गोमूत्र डालकर उसे चूल्हे पर रखें । तुत्थ को कपड़े की थोड़ी बांधकर बीच में लटका दें । ६ घण्टे तक दोला यन्त्र से पकाते रहें । जब तुत्थ गोमूत्र में घुल जाये तो गोमूत्र को आग पर रखकर सुखालें । जब अत्यल्प जलांश शेष रह जाये तो पात्र को आग पर से उतार कर भूमि पर रख लें । पात्र ठण्डा हो जाने पर तुत्थ के कण बन जायेंगे । इस प्रकार विशोधित करने से तुत्थ अत्युत्तम शुद्ध हो जाता है ॥ १०६-११० ॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

अम्ल वर्ग में कही हुई औषधों में से किसी एक के स्वरस से भी यदि तुत्थ को सात बार भावित कर लें तो उत्तम प्रकार से शुद्ध हो जाता है ॥ ११२ ॥

शोधित तुत्थक का आमयिक प्रयोग

तुत्थामृतावटी

विधि पूर्वक शुद्ध किया हुआ तुत्थ १ तोला, छौटी (जंग) हरड़ का चूर्ण १६ तोला लें ॥ ११३ ॥ दोनों नीबू के स्वरस में ७ दिन घोटें । फिर दो २ रत्ती की गोलियें बना लें और शीशे के डाट वाली शीशी में डाल कर रख लें । इनका नाम तुत्थामृतावटी है ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

इसके गुण

इसकी एक २ गोली शीतल जल से यदि प्रति दिन खावे तो २१ दिन में ही अति भयंकर फिरंग रोग को नाश करती है

॥११६॥ पहले कहे हुए रस पुष्पादि से बने हुए अथवा अन्या-
न्य पारद से बने हुए योगों की अपेक्षा यह तुत्थामृतावटी कहीं-
२ (पैत्तिक फिरंग में विशेष करके) अधिक लाभ करती है
॥११७॥ इसके सेवन करने से दन्त वेष्टों (मसूढ़ों) में
सूजन भी नहीं होती है । इसके सेवन के समय शालि, गेहूं, मूंग
तथा घी का सेवन पथ्य माना गया है ॥११८॥

अब तुत्थ मारण का प्रथम प्रकार लिखते हैं—

नींबू के ताजे रस से शुद्ध किया हुआ नीला थोथा टिकियां
बनाकर धूप में सुखाले ॥११९॥ फिर सम्पुट में बन्द करके
लघुपुट (७, ८ उपलों) में रखकर भस्म करें । फिर इस भस्म
को दही के जल से तीन दिन प्रयत्न पूर्वक भावना देबें ॥१२०॥
इस प्रकार से तुत्थ वमनादि दोषों से रहित हो जाता है तथा
शीघ्र ही मर जाता है ॥१२१॥

द्वितीय मारण प्रकार

निर्मल थोथा ५ तोला, शुद्ध सुहागा ५ तोला, शुद्ध गन्धक
५ तोला सबको पत्थर के खरल में डाल बड़हल के स्वरस में
घोटते रहें । फिर मूषा में बन्द करके कुक्कुटपुट में भस्म करें
॥१२३॥ फिर केवल गन्धक से ही दो पुट दें । इस प्रकार वमन
भ्रमआदि दोषों से रहित नीले थोथे की भस्म हो जाती है
॥ १२४ ॥

तृतीय मारण प्रकार

तुत्थ ८ तोला, गन्धक ४ तोला दोनों को पीसकर शरावों
के सम्पुट में रख कपड़ मिट्टी से सन्धि बन्द करके थोड़े से

जंगली उपलों की आग में फूंकलें। इसी तरह तीन बार करे तो तुत्थक की भस्म हो जाती है और वान्ति भ्रान्ति आदि दोष भी नहीं होते हैं ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

सुमृत तुत्थक के गुण

तुत्थभस्म लेखन, भेदी, कसैली, मधुर, लघु, क्रिमिनाशक, चक्षुहितकर, मेहनाशक, मेद नाशकों में श्रेष्ठ, कफ पित्तनाशक बलदायक, शूलहर, कुष्ठनाशक, शिवत्रनाशक, अम्लपित्तहर तथा रसायन है ॥ १२८ ॥ तुत्थभस्म नाड़ियों को संकुचित करती है तथा परम बलदायक है। त्वचा के दोषों को शान्त करती है, तथा विशेष करके अत्वन्त रुचिवर्धक है ॥ १२९ ॥

मृत तुत्थ का मात्रा निरूपण

१/८ रत्ती से १/४ रत्ती तक तुत्थभस्म को उन २ रोगनाशक औषधों के साथ मिलाकर निःशंक होकर प्रयोग करे ॥ १३० ॥

मृत तुत्थ का रोगों पर प्रयोग

तुत्थकोदय रसायन

समान भाग गन्धक मिलाकर भस्म किया हुआ (२ य विधि से भस्म किया हुआ) नीला थोथा एक भाग, कज्जली, एक भाग दोनों को मिलाकर नीबू के स्वरस में घोटें फिर त्रिकुटे के क्वाथ में पीसलें ॥ १३१ ॥ फिर दो रत्ती की गोली बनाकर रखे। इसे ही तुत्थकोदय रसायन कहा जाता है ॥ १३२ ॥ इस की एक गोली पान के स्वरस में मिलाकर दिन में दो बार खावें तो विषम उ्वर का नाश करती है ॥ १३३ ॥ तक्र के साथ सेवन

करें तो गर्भिणी के शूल को शान्त करती है। नीबू के स्वरस से सेवन करें तो शूल तथा गुल्म को नाश करती है ॥ १३४ ॥ हींग, सोंठ, इमली के चूर्ण तथा नीबू के स्वरस से मिलाकर दें, तो प्लीहा रोग को नाश करती है ॥ १३४ ॥ दूध मिश्री के साथ सेवन करावें तो शुक्रमेह को नाश करती है ॥ १३५ ॥ यदि स्वर्ण भस्म भी आठवां भाग ($\frac{1}{5}$ रत्ती या $\frac{1}{4}$ रत्ती स्वर्ण भस्म साथ में खावें) मिला कर इस गोली को खावें तो ६० दिन में कास तथा विड्ग्रहयुक्त राजयक्ष्मरोग को नष्ट कर देती है ॥ १३६ ॥

तुत्थक के सत्त्व निकालने का प्रथम प्रकार

निर्मल किया हुआ तुत्थ १६ तोले, सुहागा १६ तोले लें। दोनों को एकत्र कर नीबू के स्वरस में घोटें। फिर अन्धमूषा में बन्द करके तीक्ष्णाग्नि में रख धौकनी से वायु दें। इस प्रकार शीघ्र ही तुत्थ से ताम्रमय सत्त्व की प्राप्ति हो जाती है ॥ १३७ ॥ १.८ ॥

द्वितीय सत्त्वपातन प्रकार

तुत्थ चूर्ण ४ भाग, सुहागा १ भाग दानों को पीसकर करंज के तेल में डाल कर एक दिन रखें ॥ १३८ ॥ फिर अन्धमूषा में बन्द करके कोयलों के तीक्ष्ण आंच में रख दें। इस प्रकार से अत्यन्त शीघ्र ही ताम्रमय सत्त्व निकल आता है ॥ १४० ॥

तृतीय सत्त्वपातन प्रकार

तुत्थका चूर्ण १० तोला लेकर ५ तोला अत्यन्त गरम जल में डाल दें। घुलने पर लोहे के टुकड़े भी डाल दें। (कुछ देर के बाद) चूर्ण हुआ २ शुद्ध तांबा नीचे पात्र में जा गिरेगा। यही तुत्थ का सत्त्व है ॥ १४२ ॥ फिर ऊपर के जल को फेंक दें। नीचे

पात्र तल में पड़े हुए लाल रंग के तुत्थ सत्त्व को निकाल कर रखें । (तुत्थ का सत्त्व वास्तव में तांबा ही होता है) ॥

तुत्थ सत्त्व का मागण तथा गुण

निर्मल तुत्थ सत्त्व को ताम्र के समान ही भस्म करले । ताम्र के समान ही उसके गुण हैं तथा तांबे के समान ही उसका प्रयोग करना चाहिए ॥ १४४ ॥

अब कृत्रिम तुत्थ का निर्माण प्रकार लिखते हैं

शुद्ध तांबे के चूर्ण में गन्धकाम्ल धीरे २ डाले । जब ताम्र घुल जाये तो और अम्ल न डाले । फिर मन्द २ अग्नि से उसे पकावे ॥ १४५ ॥ जब जल सूख जावे तब नीचे उतार ले । अब इसमें अत्यन्त गरम जल थोड़ा सा डालकर मर्दन करलें और कुछ देर तक रख कर ठन्हा करें । जब जल शीतल हो जावे तो मोर के पंख के समान नीले रंग का तुत्थ कण २ हुआ २ मिलेगा । इसे निकाल लें और निश्चिंत होकर सर्वत्र प्रयोग करें ॥ १४७ ॥

अथ सिन्दूर के नाम

(नाग की उपघातु होने के कारण अब सिन्दूर का वर्णन करते हैं)

सिन्दूर, गिर सिन्दूर, माहलाभालभूषण, गणेश भूषण, शृंगार भूषण ॥ १४८ ॥ नागज, नागगर्भज, नागरेणुक, मङ्गल्य भालसौभाग्य ये सब नाम सिन्दूर के हैं ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

ग्राह्य सिन्दूर के लक्षण

अति सूक्ष्म कणों वाला, स्निग्ध, भारी, चमकदार रंग वाला

मृदुल, तथा स्वच्छ सिन्दूर उत्तम माना जाता है ॥ १५० ॥

सिन्दूर के गुण

सिन्दूर, जुद्ध कुष्ठ को नाश करता है, त्वचा के लिये हितकारी है, व्रण शोधक है, भग्न (अस्थि) को जोड़ने वाला है तथा व्रण रोपण करने वाला है ॥ १५१ ॥ पामा, विचिका, सिध्म, विसर्प तथा भूतों (जीवाणुओं) को विशेष करके नाश करने वाला है । रक्त के दोषों को नष्ट करने वाला है ॥ १५२ ॥

सिन्दूर का आमयिक प्रयोग

सिन्दूर को खाने के लिए क्यों कि कहीं भी उचित नहीं माना गया । इस लिये इसका बाह्य प्रयोग ही यहां थोड़ा लिखा जाता है ॥ १५३ ॥ सिन्दूर को घी के साथ मिलाकर लोचनों के वर्त्म पर लगावें तो शीघ्र ही खुजली तथा गुद्दाँजनी (Styes) को दूर करता है ॥ १५४ ॥ शहद, घी, गूगल, गुड़, तथा सिन्दूर सबको समान भाग लेकर पीसकर लेप करें तो पैर कमल के पत्तों के समान कोमल तथा सुन्दर हो जाते हैं ॥ १५५ ॥

प्रथम सिन्दूराद्य मलहर

शुद्ध सिन्धतैल तीन कर्ष (६ तोला) लें । सुहागे की खील आधा तोला लें । सिन्दूर आधा तोला लें ॥ १५६ ॥ सबको चिकने पत्थर के खरल में घोटकर मिलालें और कांच की शीशी में भर दें । इसे ही सिन्दूराद्यमलहर कहते हैं ॥ १५७ ॥

इसके गुण

यह सिन्दूराद्य मलहम पीप निकालने में उत्तम है, जीवाणुओं को नाश करती है (भगंदर में विशेष लाभ करती है) तथा त्वचा को जोड़ने तथा रोपण करती है ॥ १५८ ॥

द्वितीय सिन्दूराद्य मलहर

यहीं पर मुङ्गो के स्थान में इतनी ही यदि राल डाल दें तो यह भी सिन्दूराद्य मलहर ही कहाती है ॥ १५६ ॥

इस के गुण

यह सिन्दूराद्य मलहर पामा तथा खुजली को नाश करता है। अस्थिभंग को जोड़ता है। भूतनाशक तथा ब्रणरोपक है। ॥ १६० ॥ त्वचा के दोषों को शान्त करता है। फटे हुए अंगों को [विवाई आदि को] रोपण कर देता है। गुदा के मस्से, स्फोट, कुष्ठ तथा वीसर्प आदि रोगों को नाश करता है ॥ [अर्श के मस्से घटा देता है] ॥ १६१ ॥

सिन्दूराद्य तेल

सरसों का तेल ८० तोले ले। हल्दी तथा आक के पत्ते सम भाग लेकर उनका जल से कल्क बनाकर २० तोले ले ॥ १६२ ॥ सिन्दूर ८ तोला, तुस्थ ४ रत्ती ले। सब को एकत्र करके उष्ण किये हुये तेल में डालकर तेल पाक विधि से तेल पकालें। इसे सिन्दूराद्यतेल कहते हैं। इसे लगाने से पामा, विचर्चिका, स्फोट क्षत तथा कण्डू नष्ट होती हैं ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

अथ मृदारशृङ्ग के नाम

मृदारशृङ्ग, वोदार शृङ्ग, मुद्राशंख, मुद्रशंखक ये सब नाम मुर्दा संग के हैं ॥ १६५ ॥

मृदारशृङ्ग का स्वरूप

मृदारशृङ्ग [मुर्दासंग] पीलासा, दलों [पत्रों] वाला तथा दलों

रहित दोनों प्रकार का होता है । इसके अन्दर सीसा धातु भी होती है । छूने में यह खरखरा तथा भारी होता है ॥ १६६ ॥

मृदाशृङ्ग का शोधन

मुर्दासंग को हमामदस्ते में कूट ले । पत्थर का भाग त्याग दे । शेष भाग को अत्यन्त सूक्ष्म पीसे । फिर कपड़े में छान कर शुद्ध जल से १४ दिन तक घोटता रहे । फिर धूप में सुखा ले ॥ १६८ ॥ इस शुद्ध मुर्दासंग को क्षतों [जख्मों, घावों] पर बुरकाने के लिए खूब प्रयोग करे ॥ १६९ ॥ [यह Ido form की तरह उत्तम ब्रणशोधक तथा रोपक है]

मृदारशृङ्ग के गुण

मुर्दासंग शीत (स्पर्श में शीत) है । वात कफ नाश करने में उत्तम है । फिरगज ब्रण को दूर करता है, केशों के लिए हितकर तथा उत्तम ब्रण रोपक है ॥ १७० ॥ भग्न को जोड़ने वाला पामा तथा कण्डू आदि को नाश करता है । विशेषकर के संकोचक है तथा त्वचा के दोषों को शान्त करता है ॥ १७१ ॥

मृदारशृङ्ग का आमयिक प्रयोग

मृदारशृङ्ग ८ तोला, टङ्काम्ल दो तोला लें । दोनों का सूक्ष्म चूर्ण करलें । इसे यदि ब्रणों पर छिड़कें तो (ब्रणों को), फिरंग रोग को शीघ्र ही नाश करता है ॥ १७२ ॥

मृदारशृङ्गाब मलहर

सिक्थ तेल ८ तोला, पूर्वोक्त विधि से बनाया हुआ शुद्ध मुर्दासंग का चूर्ण एक तोला लें । एक शीशे के फलक (प्लेट) पर खूब मर्दन करके कांच कुप्पी में भर दें । इसे ही मृदारशृङ्गाब मलहर कहा जाता है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥

इस 'के गुण

यह मृदारशृङ्गाद्य मलहर त्वचा के लिए परमहितकारी है । भग्नसंधान करने वाली, पामा तथा कण्डू को नाश करने वाली, बिवाईयों को भरने वाली, व्रणों को शोधन तथा रोपण करने वाली, तथा विशेष करके गुदामय (मस्सों) को नाश करने वाली है ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ (यह मस्सों को कम करता है ।)

द्वितीय मृदारशृङ्गाद्य मलहर

अलसी के बीजों का तेल = तोला ले कर एक पित्तल के बरतन में डालकर तेज आंच पर रखें । उसमें मुर्दासंग का चूर्ण एक तोला डाल कर तब तक पकावें जब तक वह खूब गाढ़ा न हो जाये । फिर गाढ़ा होने पर उतार कर शीशी में डालकर डाट लगाकर रखलें । यह मृदार शृङ्गाद्य मलहर है ॥ १७६ ॥

इसके गुण

यह मृदारशृङ्गाद्य मलहर त्वचा को परम हितकर है । विशेष करके विविध व्रणों को रोपण करने वाली है ॥ १८० ॥ (यह Hard ointment बनेगी तथा चिपक जायेगी ।)

अथ खर्पर के नाम

(कम प्राप्त यशद के उपधातु खर्पर को लिखते हैं)

खर्पर, खर्परीयक, रसक तथा यशदकारण ये चार नाम खपरिया धातु के हैं ॥ १८१ ॥

खर्पर का स्वरूप

खर्पर अत्यन्त खर (खरखरा, कर्कश), (पत्रोंवाला) तथा

पत्रों से रहित होता है। मिट्टी के से रंग वाला तथा पीला सा होता है जो भारवान होता है वह अच्छा माना है ॥ १८२ ॥

खपर के दो भेद

खपरिया दो प्रकार का होता है सदल (पत्रों वाला) तथा निर्दल (बिना पत्रों का)। सदल को ददुर तथा निर्दल को कारवेल्ल भी कहते हैं ॥ १८३ ॥ ददुर नाम वाले (सदल) खपर को सत्त्व पातन के लिए प्रयुक्त करें। परन्तु औषधों में (खाने के काम के लिए) सर्वत्र ही कारवेल्ल (निर्दल) खपरिये को प्रयोग करें ॥ १८४ ॥

खपरिया का प्रथम शोधन प्रकार

खपरिया को खरल में डालकर लोहे की मूसली से कूटें। जो पत्थर का अंश टूट २ कर गिरे उसे निकाल कर बाहर फेंक दें ॥ १८५ ॥ पत्थर के अंश से रहित हुए २ खपरिया को खरल में रख नींबू के स्वरस से सात दिन तक घोटें ॥ १८६ ॥ फिर सुखाले तो पीले से रंग का बारीक चूर्ण हो जाता है। इस प्रकार अति शीघ्र ही खपरिया शुद्ध हो जाता है ॥ १८७ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

तेज अग्नि में खपरिया को तपावें। फिर नींबू के स्वरस में सात २ बार बुझावें। इस प्रकार यह शुद्ध हो जाता है ॥ १८८ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

तेज अग्नि में खपरिया को तपा २ कर तक्र या कांजी में सात बार बुझावें तो खपरिया शुद्ध हो जाता है ॥ १८९ ॥

खपरिया का प्रथम मारण प्रकार

शुद्ध खपरिया १६ तोला, शुद्ध पारा १६ तोला दोनों को खूब मर्दन करें ॥ १६० ॥ फिर इस सूक्ष्म चूर्ण को सम्पुट में बन्दकर सूखे अरने उपलों की (३० उपलों की) अग्नि में फूंक दें ॥ १६१ ॥ इसी प्रकार तीन बार पुट देने से सर्वथा भस्म हो जाती है। इस प्रकार मुलायम तथा सुन्दर पीले रंग की भस्म हो जाती है ॥ १६२ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

शुद्ध खपरिया एक भाग, शुद्ध हड़ताल एक भाग दोनों को पीसकर सम्पुट में रखकर पुट दें। इसी प्रकार तीनवार पुट दें तो सर्वथा भस्म हो जाती है ॥ १६३ ॥

खपरि भस्म के गुण

खपरिया भस्म शीत वीर्य है, कफ पित्त को नाश करने में श्रेष्ठ है। आंखों के लिए हितकारी है। सभी प्रमेहों को नाश करता है, रक्तप्रदर को नाश करता है ॥ १६४ ॥ रक्तपित्त अश्मरी, श्वास तथा मस्सों को नाश करता है। जीर्णज्वर तथा अतिसार को नाश करता है ॥ १६५ ॥ यह विशेष कर के योग वाही है त्रिदोष नाशक तथा विष नाशक है। यह विच चिका तथा कुण्ठ को नाश करता है तथा बल और वीर्य की वृद्धि करता है ॥ १६६ ॥

खपरिया की मात्रा बनाना

आधी रत्ती से दो रत्ती तक खपरि भस्म की मात्रा है जो खाने में दी जाती है। विविध रोगों को यही मात्रा नाश कर देती है ॥ १६७ ॥

खर्पर का आमयिक प्रयोग

खर्पर भस्म २ रत्ती को, गोखरु (१ तोला) के क्वाथ से सेवन करें तो मूत्रकृच्छ्र के रोगों को शीघ्र नाश कर देती है ॥ १६८ ॥ वंश लोचन का चूर्ण ३ माशा, खर्पर भस्म १ रत्ती से मिलाकर सेवन करें तो क्षयजन्य काम तथा श्वास को नाश करता है ॥ १६९ ॥ खर्पर भस्म आधी रत्ती कान्तलोह भस्म आधी रत्ती दोनों को मिला कर सेवन करें तों पाण्डु, सृजन तथा प्रदरादि रोग नाश होते हैं ॥ २०० ॥ रस सिन्दूर १ रत्ती खर्पर भस्म एक रत्ती लेकर दोनों के लगातार सेवन करने से जीर्णज्वर का अवश्य नाश होता है ॥ २०१ ॥ प्रवाल भस्म १ रत्ती, मरिचचूर्ण २ रत्ती, रस सिन्दूर १ रत्ती सफेद जीरे का चूर्ण २ रत्ती सबको मिलाकर एक रत्ती खपरियां भस्म से सेवन करें तो धातुगत ज्वर, अग्निमांश जीर्णज्वरादि को ऐसे नाश करता है जैसे मूर्ख अन्धकार को नाश करता है ॥ २०२ ॥ २०३ ॥

खर्पर का प्रथम सत्व पातन प्रकार

लाख, हरड, हल्दी, अलसी, गुड, राल, सुहागा इनको सम भाग लेकर इसमें खर्पर का चूर्ण मिलाकर गौ के दूध तथा घी में पकावे ॥ २०४ ॥ फिर गाढ़ा होने पर गोला बनाकर धूप में सुखावे । फिर वृन्ताक मूषा में रख कर तेज अग्नि से पकावे ॥ २०५ ॥ जब सब पिघल जावे तो भूमि में गढ़ा खोदकर इसे ढाल (गिरा) देवे । इस प्रकार यशद के सदृश (यशद ही) स्वच्छ सुन्दर सत्त्व निकल आता है ॥ २०६ ॥

खर्पर का द्वितीय सत्व पातन प्रकार

लाख, हरड, हल्दी, अलसी, गुड, राल, सुहागा सब एक २

भागलें । खपरिया मिलाकर पीसलें । फिर अन्ध मूषा में डाल कर लगातार तेज अग्नि देते जायें । तो यशद जैसे सुन्दर सत्व को शीघ्र छोड़ देता है ॥ २०८ ॥

खर्पर सत्व का मारण (गीतिका)

खर्पर से निकाला हुआ सत्त्व ८ तोला एक कड़ाही में डाले जो कि चूल्हे पर रखा हो और तीक्ष्ण अग्नि से तप रहा हो ॥ २०९ ॥ उन्ने कड़खी से हिलाता जाये, जब वह सत्त्व पिघल जाये, तो उसमें शुद्ध हड़ताल को थोड़ा २ (चुटकी २) डालता जाये । बार २ डालने से वह सत्त्व सर्वथा भस्म हो जायेगा । इस प्रकार इस सत्त्व भस्म को निःशंक प्रयोग करे ॥ २१० ॥ २११ ॥

खर्पर सत्व भस्म के गुण

खपरिये के सत की भस्म पाण्डु, मूजन तथा गुल्म को नाश करती है । कास श्वास तथा क्षय को नाश करती है । विषम ज्वर, रजःशूल, रक्त गुल्म, भयंकर श्वेत प्रदर, मधु मेह तथा हिचकी को विशेष करके नाश करती है ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

मृत खर्पर सत्व की मात्राआदि निरूपण

मृत खर्पर सत्त्व (सत्त्व भस्म) की मात्रा भी यशद भस्म के समान जानना तथा रोगों पर भी उस का प्रयोग ठीक यशद भस्म के समान ही जानना चाहिए ॥ २१४ ॥

अथ कान्त पाषाण के नाम

कान्त पाषाण, कान्तोपल, कान्तधूपत, लोह कर्षक तथा द्युर्दक ये सब नाम कान्त पाषाण के हैं ॥ २१५ ॥

कान्त पाषाण का शोधन

कान्त पाषाण को चूर्ण करके पोटली में बांधकर पहले नींबू के स्वरस में ४ पहर पकावे । फिर सुहांजने के स्वरस में ४ पहर (१२ घन्टे) लगातार तेज अग्नि पर दोलायंत्र द्वारा पकावे । इस प्रकार यह उत्तमता से शुद्ध हो जाता है ॥ २१७ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

कान्त पाषाण का चूर्ण अगस्त्य के पत्तों के स्वरस में भावित कर लें । फिर त्रिफला के क्वाथ में दोलायंत्र द्वारा स्वेदन करें तो अच्छी तरह शुद्ध हो जाता है ॥ २१८ ॥

कान्त पाषाण का मारण प्रकार

विशुद्ध कान्त पाषाण को गोमूत्र से खूब घोटें । फिर त्रिफला के क्वाथ में घोटें । फिर टिकिया बनाकर धूप में सुखालें । इन्हें सम्पुट में बन्द करके पुट दें । इसी प्रकार सातवार दोनों में घोट २ कर गज पुट दें तो भस्म हो जाता है ॥ २१९ ॥

मृत कान्त पाषाण के गुण

कान्त पाषाण की भस्म शीतल, बृंहण, बलदायक, वीर्य वर्धक है । त्वचा को हितकारी, मूर्च्छा तथा मोह को नाश करती है ॥ २२१ ॥ उ्वर नाशक, विष नाशक तथा बुढ़ापे को नाश करती है । रक्त को उत्पन्न करती है । हृदय की धड़कन को दूर करती है ॥ २२२ ॥ रज सम्बंधी दोष, वीर्य के दोष, भयंकर रक्तपित्त, नपुंसकता, खुजली, कामला, क्षय, त्वचा में ठहरा हुआ पित्त ॥ २२३ ॥ महा घोर कास तथा श्वास, नया प्रमेह इन सब रोगों को विशेष करके नाश करता है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ २२४ ॥

इसकी मात्रा

कान्त पाषाण भस्म की दो रस्ती पूर्णमात्रा है जो रोगों को नारा करती है ॥ २२५ ॥

कान्त पाषाण का प्रयोग

कान्त पाषाण भस्म लोहे की भस्म के समान ही गुण कारक है । यह उन सब रोगों में उन २ अनुपानों से ही दिया जाता है जिनमें कि लोह भस्म दी जाती है ॥ २२६ ॥

अथ कासीस के नाम

काशीश, कासीस, पुष्पकासीस, पांशुक, पांशुकासीस, खग नामके सभी पर्यायवाचक शब्द (पतंग, पक्षी आदि) ये सभी कसीस के नाम हैं ॥ २२७ ॥

कासीस के दो भेद

रसायन शास्त्रियों ने कसीस के दो भेद माने हैं । १—चूर्णकासीस तथा २—पुष्पकासीस ॥ २२८ ॥

इन दोनों का स्वरूप

चूर्ण कासीस श्वेतरंग का तथा कुछ पीला होता है । पुष्पकासीस स्वच्छ तथा हरे रंग का होता है ॥ २२९ ॥

चूर्णकासीस ही (exidise) प्राणवायु या ओषजन से मिलकर पुष्पकासीस बन जाता है ।

कासीस का शोधन

कासीस को भांगरे के स्वरस में तीन घंटे तक दोला यंत्र में स्वेदन करने से एकवार में ही उत्तम रूप से शुद्ध हो जाता है ॥ २३० ॥

कासीस के गुण

कासीस कसैले रस वाला है। विषक में उष्ण, स्पर्श में शीतल है (पहली अवस्था में शीतल है)। यह श्वित्र, विष वात और कफ के रोग, मूत्रकच्छ, कण्डू, पाण्डु, कृमि, ज्वर तथा स्त्रीहा को नाश करता है। यह ग्राही है नेत्रों के लिए अति हितकारी है। बालों को रंग देता है। रक्त को उत्पन्न करने में उत्तम है ॥ २३२ ॥ रजः प्रवर्त्तक है, बलदायक है। बाहर से प्रयोग करेंतो यह परम संकोच करने वाला है ॥ २३३ ॥

कासीस का निर्माण प्रकार

विशुद्ध लोहे के चूर्ण को एक कांच के पात्र में डालदे। उसमें सजल गंधकद्राव (Sulphuric Acid dilute) धीरे २ डाले ॥ २३४ ॥ इतना द्राव डाले जितने में लोहा गल जावे। क्षण में ही उसमें उष्णता उत्पन्न हो जायेगी तथा अत्यन्त भाग उठने लगेगा ॥ २३५ ॥ फिर सारकपत्र से छान लें। सारकपत्र में शेष रहे हुए मल को त्याग कर द्रव भाग को संभालकर रखें ॥ २३६ ॥ इस द्रव में तीव्र सुरा जो कि ज्वलरहित हो तथा साफ हो (Absolute Alcohol) समभाग मिला दें। सुरा डालने से कासीस तल में बैठ जायेगा ॥ २३७ ॥ फिर इस द्रव-भाग को नितार कर शेष चूर्ण को धूप में सुखालें। यह धूपमें सुखाया हुआ चूर्ण ही शुद्ध कासीस है ॥ २३८ ॥ इस कासीस

को दो भागलें, तीन भाग जल में डाले तो यह उस में घुल जाता है, ऐसा रसवैद्यों ने कहा है ॥ २३६ ॥

कासीस द्रव का निर्माण प्रकार

जल के २॥ तोले (१ औंस) अर्क में ५ रत्ती शुद्ध कासीस डालें ॥ २४० ॥ यह शीघ्र ही घुल जाता है । इसे कासीस द्रव कहते हैं । इसे बाहर से प्रयोग करने से गुदभ्रंश, विसर्प आदि विविधरोग नष्ट होता है ॥ २४१ ॥

कासीस की मात्रा निरूपण

आधी रत्ती से २ रत्ती तक कासीस की पूर्णमात्रा (Adult Dose) है ॥ २४२ ॥

कासीस का आमयिक प्रयोग

सरफोंका, एलवा (मुसव्वर) समभाग मिला कर शुद्ध कासीस को सेवन करें तो अति बड़ी हुई सीहा को भी नाश करता है ॥ २४३ ॥ सुहागा तथा एलवा से मिलाकर कासीस खाया जावे तो रजोरोध के कष्ट को दूर करता है ॥ २४४ ॥ कासीस को दारचीनी तथा एलवा के साथ मिला कर खाया जाये तो अल्परक्त होने से जो हृदय की धड़कन होती है, उसे दूर करता है ॥ २४५ ॥ कासीस द्रव में वस्त्र भिगोकर यदि विसर्प के शोथ पर रखें तो निश्चय ही सूजन दूर हो जाती है । ॥ २४६ ॥ कासीस और त्रिफला को मिलाकर जल से पीसलें । इसे ब्रणशोधों पर लेप करें तो शरीर का वर्ण सवर्ण हो जाता है ॥ २४७ ॥ कासीस, फिटकरी, हींग, देवदार इन सब को समभाग लेकर पीसकर जल से छोटी २ गोलियां बनालें । इस गोली को

कृमि दन्त (कीड़ा लगे हुए दांत) में रखें तो लाभ देता है ॥ २४८ ॥ एरण्ड बीज, नीम के बीज, रसौंत तथा कसीस समभाग मिलाकर सेवन करें तो शीघ्र ही नवीन विसर्प को नाश करता है ॥ २४९ ॥ कासीस १ रत्ती, कैथ के फलकी मज्जाके साथ सेवन करें तो हिचकी को दूर करता है ॥ २५० ॥ कासीस को सर्जिकाक्षर के साथ मिलाकर सेवन करें तो एक मास के प्रयोग से रक्त को अत्यन्त बढ़ाता है । यह carbonate of Iron हो जाता है । अम्लभाग नष्ट होकर फिर कब्ज भी नहीं करता है । (mineral acids) धातुओं के बने द्राव प्रायः काबिज होते हैं यथा गंधद्रवादि परन्तु काष्ठादि के बने द्राव (Acid) प्रायः काबिज नहीं होते जैसे अम्लरस आदि ।

धतूरे के बीज तथा रत्तियों के बीजों से मिलाकर कसीस का लेप किया जाये तो दो मास में पुराना श्वित्र भी नष्ट हो जाता है ॥ २५२ ॥ बावची के बीजों का चूर्ण, गेरू तथा कसीस इनसब को पीसकर दो मास लेप करें तो भयंकर श्वित्र भी अच्छा हो जाता है ॥ २५३ ॥ कासीस का द्रव यदि बस्ति द्वारा प्रयोग (Anema) किया जाये तो विशेषकर के गुदभ्रंश तथा अशों को दूर करता है ॥ २५४ ॥

कासीस का प्रथम मारण प्रकार

कासीस को कांजी से सात बार भावना देकर सूर्य की धूप में सुखा लें । फिर सम्पुट में बंद करके लघुपुट में भस्म कर लें । यह भस्म रक्त के समान लाल रंग की होती है ॥ २५५ ॥ इस भस्म को नींबू के रस में पीस लें । फिर टिकियां बनाकर सुखा कर लघुपुट में भस्म कर लें ॥ २५६ ॥ जब तक वह भस्म

अम्लरहित नहीं हो जाती तभी तक उसे बार २ पुट देते जावें । नीबू के स्वरस में पीसकर धूप में टिकियों को सुखाकर संपुट में बंद कर पुट देते चलें ॥ २५७ ॥ इस प्रकार कासीस की भस्म बन जाती है तथा सभी दोषों से रहित होती है । उसे निश्शंक होकर सब साध्य रोगों में प्रयोग करे ॥ २५८ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

थोहर के पत्रों के स्वरस से मर्दन करके कासीस को पुट दें । इस प्रकार बार २ करें जब तक वह कासीस अम्लरहित न हो जाये, अम्लरहित होने पर कासीस भस्म हो जाता है ॥ २५९ ॥

कासीस की भस्म क गुणादि निरूपण

कासीस की मात्रा तथा गुण लोहे की मात्रा तथा गुणों के सदृश होते हैं । विशेष करके कासीस को श्वित्र (श्वेतकुष्ठ) को नाश करने में अच्छा माना गया है ॥ २६० ॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रसतरंगिणी के भाषानुवाद में यह उपधात्वादि विज्ञानीय नाम का एकविंश तरङ्ग समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

अथ मिश्रलोहादि विज्ञानीय द्वाविंश तरङ्ग

पित्तल के नाम

पित्तल, पीतलोह, कपिलोह, रीतिका, आर तथा आरकूट ये सब नाम पित्तल के हैं ॥ १ ॥

पित्तल का निर्माण प्रकार

दो भाग ताम्र विधिपूर्वक शुद्ध किया हुआ लें। शुद्ध यशद एक भाग लें ॥ २ ॥ गारमूषा में दोनों को रखकर तेज अग्नि दें। जब पिघल जाये तो ढाल देवे ॥ ३ ॥ इस प्रकार से बनाये हुए पित्तल को रसकर्म में भस्म करने के लिये प्रयुक्त करें। इसी की भस्म को रसों में प्रयुक्त करे ॥ ४ ॥

ग्राह्य पित्तल का स्वरूप

वह पित्तल ग्राह्य तथा श्रेष्ठ होता है जिसे तीक्ष्ण अग्नि में तपाकर कांजी में सिंचन करें तो ताम्र के सदृश रंग वाला हो जाये ॥ ५ ॥

हेय पित्तल का स्वरूप

जो पित्तल अग्नि में तपाकर कांजी में बुझाने पर लोहे के समान काला हो जाय वह त्याज्य तथा निकृष्ट है ॥ ६ ॥

पित्तल शोधन का प्रथम प्रकार

पित्तल के अत्यन्त पतले पत्रे बनावें। एक कलीदार पात्र में इन्हें डालकर गोमूत्र से भर दें। फिर तेज अग्नि चार प्रहर (१२ घंटे) तक दें। इस प्रकार पित्तल पककर अच्छी प्रकार शुद्ध हो जाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

हल्दी के चूर्ण को संभालु के स्वरस में डाल लें। फिर पतले-पतले पित्तल के पत्रों को तीक्ष्णाग्नि में तपा २ कर इममें बुझावें (७ बार बुझावें) तो पित्तल शुद्ध हो जाता है ॥ ९ ॥

पित्तल मारण का प्रथम प्रकार

शुद्ध किये हुए सूक्ष्म २ पित्तल के पत्रों के सम भाग शुद्ध गंधक मिलाकर खरल में घोटें। फिर आक के दूध से मिलाकर मर्दन करें। फिर धूप में सुखाकर संपुट में बंद करके गाढ़ी कपड़मिट्टी या मिट्टी का लेप कर दें। फिर गजपुट में फूंक दें। इसी प्रकार तीन बार पुट दें। इस प्रकार पित्तल की भस्म काले कज्जल के रंग की तैयार हो जाती है ॥ १० ॥ ११ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

सूक्ष्म २ पित्तल के शुद्ध पत्रे ५ पल लें। शुद्ध हिंगुल तथा शुद्ध हड़ताल ५, ५ पल लें। घीकुमार के स्वरस में सब को एकत्र कर घोटें ॥ १२ ॥ सम्पुट में बंद करके गजपुट में फूंक दें। तीन बार इसी प्रकार पुट दें तो पित्तल भस्म हो जाता है। यह कज्जल के समान सुन्दर काले रंग की भस्म होती है। इस भस्म के सेवन से भ्रान्ति वमन आदि दोष नहीं होते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

तृतीय मारण प्रकार

सूक्ष्म २ पित्तल के पत्रे एक भाग, शुद्ध गंधक १ भाग, शुद्ध मनसिल १ भाग लें। सब को एकत्र कर घीकुमार के स्वरस में पीस लें। फिर धूप में सुखा लें। सम्पुट में बंद कर गजपुट में फूंक दें। इसी प्रकार तीन बार करें। यह कज्जल के समान काली भस्म बनेगी। इस पित्तल भस्म को निश्शंक होकर सर्वत्र प्रयोग करें ॥ १५ ॥ १६ ॥

मृत पित्तल के गुण

पित्तल की भस्म रूत तथा तिक्त रस वाली है, अति लेखन

नहीं होती है। कृमि, कुष्ठ, तथा पाण्डुरोग को नाश करती है ॥ १७ ॥

पित्तल का प्रयोग तथा मात्रा निरूपण

पित्तल की भस्म को ताम्र भस्म के समान प्रयोग करें।
आधी रत्ती से एक रत्ती तक इसकी मात्रा है ॥ १८ ॥

पित्तल रसायन

पित्तलभस्म, कांतभस्म, अभ्रक सत्व की भस्म, विडंगचूर्ण, त्रिकुटा चूर्ण प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें। तिल, अजवायन, चीता, शुद्ध भिलांवा, ढाक के बीजों का चूर्ण सब एक २ भाग लेकर सब को एकत्र पीसकर रखें। आधी रत्ती प्रतिदिन एक मास तक सेवन करें तो श्वेतकुष्ठ की भयंकर पीड़ा नष्ट होती है, शूल तथा कृमि नष्ट होते हैं। अग्नि को दीपन होता है तथा आम का पाचन होता है ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥

अथ कांस्य के नाम

कंसीय, कांस्यक, कांस्य, घोषपुष्प, घोषक, घोष वन्हिलोह ये सब नाम कांसी के हैं ॥ २१ ॥

कांसी का निर्माण प्रकार

विधि पूर्वक शुद्ध किया हुआ ताम्बा ४ भाग, शुद्ध वर्ग १ भाग दोनों को मिलाकर मूषा में डालकर तेज आंच दें ॥ २२ ॥ जब पिघल जाये तो उतार लें। यह कांसी बन गयी। इसमें से टकोरने पर उत्तम शब्द निकल सकता है। इस प्रकार से बनायी हुई कांसी को भस्म करने में प्रयुक्त करे ॥ २३ ॥

ग्राह्य कांस्य का स्वरूप

जो उत्तम शब्द कर सके, चमकदार हो, स्निग्ध, श्वेत,

मुलायम तथा निमल हो, जो अग्नि के ताप को अत्यन्त सह सके, जो चोटको सह सके, वही कांस्य ग्राह्य होता है ॥ २४ ॥

हेय कांस्य का स्वरूप

जो उज्ज्वल न हो, खर अर्थात् कर्कश हो, रूखा हो, जो अग्नि में तपाने से पीला हो जाये, जिस का वर्ण तांबे जैसा हो, जिस में चोट पड़े तो शब्द कम करे, ऐसा कांसा त्याज्य है ॥ २५ ॥

कांस्य शोधन का प्रथम प्रकार

छोटे २ पत्रे कर के कांस्य को अग्नि में तपावें और गऊ के मूत्र में बुझावें। इसी प्रकार सात बार तपा २ कर बुझाने से कांस्य शुद्ध हो जाता है ॥ २६ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

कांसी के सूक्ष्म पत्रों को नमक मिले हुए गोमूत्र में डालकर तीन घंटे तक तीक्ष्णाग्नि से पकावें तो यह सब दोषों से रहित हो जाता है ॥ २६ ॥

कांस्य मारण का प्रथम प्रकार

कांसी के सूक्ष्म पत्रों को समान भाग गंधक डालकर आक के दूध में पीसकर धूप में सुखालें ॥ २८ ॥ फिर सम्पुट में सन्धि बंद करके गजपुट में फूँक दें। इस प्रकार तीन पुट देने से कांसी भस्म हो जाती है ॥ २९ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

समभाग शुद्ध हिंगुल से कांसी के शुद्ध सूक्ष्म पत्रों को नीबू का स्वरस डाल २ कर घोट ले और धूप में सुखा ले। फिर गजपुट में भस्म करे। ऐसा तीन बार करने से कांसी की भस्म हो जाती है ॥ ३० ॥

तृतीय मारण प्रकार

शुद्ध कांसी, शुद्ध मनशिल, शुद्ध गंधक तीनों सम भाग मिलालें। फिर घी कुंवार के स्वरस में पीसलें। तीनवार पुट दें तो कज्जल के समान काली भस्म हो जाती है ॥ ३१ ॥

मृत कांस्य के गुण

कांसी की भस्म कसैले रस की तथा कटु रस की है। यह उष्ण है, लेखन कर्म में अच्छी है, नेत्रों को स्वच्छ करती है, रूक्ष, अर्थात् दस्तावर है। अत्यन्त विशद गुण वाली है ॥ ३२ ॥ कृमि, कुष्ठ, कफ, पित्त, वात इन सब रोगों को नाश करी है तथा अग्नि को दीपन करती है ॥ ३३ ॥

मृत कांस्य के प्रयोग आदि

कांस्य भस्म का प्रयोग तांबे की भस्म के समान होता है। आधी रत्ती से एक रत्ती तक इस की मात्रा मानी गयी है ॥ ३४ ॥

अथ अञ्जन के नाम

अंजन के दो भेद

मेचक तथा लोचक ये दो नाम अंजन के हैं स्रोतोज तथा सुवीरज ये दो इसके भेद हैं ॥ ३५ ॥

स्रोत अंजन के नाम

स्रोत अंजन, स्रोतोञ्ज, यामुनेय, यामुन, नीलाञ्जन तथा कपोताञ्जन ये सब नाम स्रोत अंजन के हैं ॥ ३६ ॥

सौवीरअञ्जन के नाम

सौवीराञ्जन, सौवीर, सुवीरज, कृष्णांजन, कालांजन ये सब नाम सौवीरांजन के हैं ॥ ३७ ॥

सात अंजन का स्वरूप

जो तोड़ने पर नीले कमल के समान हो, घिसने में गेरू के सदृश हो, बाम्बी की चोटी के सदृश ऊँचा नीचा हो, उसे ही विद्वानों ने स्रोतोञ्जन माना है (इसे अस्फहानी सुरमा भी कहते हैं) ॥ ३७ ॥

सौवीरांजन का स्वरूप

जो बाहर से धुंग के से रंग का हो, तोड़ने पर अति उज्ज्वल निकले घिसने में जो काली स्याही के रंगका हो, उसे ही सौवीराञ्जन कहते हैं । (इसकी खान भेलम नदी के तट कटांस राज तीर्थ के पास है । श्वेत सुरमा अंजन नहीं वह तो एक प्रकार का पत्थर ही है) ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

स्रोतोञ्जन तथा सौवीरांजन का शोधन

दोनों प्रकार के अंजनों को यत्न से पीसकर त्रिफला के क्वाथ में सात दिन तक खरल करे तो निस्सन्देह शुद्ध हो जाते हैं ॥ ४० ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

भांगरे के स्वरस में दोनों अंजन सात दिन घोटें तो शुद्ध हो जाते हैं ॥ ४१ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

त्रिफला, हल्दी, दारू हल्दी, भांगरा, इनमें से प्रत्येक के क्वाथ या स्वरसमें दोला यन्त्र द्वारा ३ घण्टे स्वेदन करने से दोनों अंजन शुद्ध हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

स्रोत अंजन के गुण

स्रोतोञ्जन शीतल है, कसैला है। यह अत्यन्त लेखन है। स्निग्ध, अति ग्राही (काविज) है कफ पित्त तथा विष को नाश करने वाला है ॥ ४३ ॥ यह रक्त पित्त तथा क्षय को नाश करता है, नेत्र रोगों को नाश करता है। हिचकी तथा वमन को शान्त करता है। नेत्र रोगों को नाश करने में परमोत्तम है (प्रथम वार की मूल पुस्तक में “नेत्रामथहरं परम्” पाठ छपा है, दूसरी वार स्तनवृद्धि करं परम्” पाठ छपा है अर्थात् स्तनों की वृद्धि करता है पर यह पाठ भूल से छपा है वस्तुतः मूल पुस्तक का पाठ ही ठीक है कि यह आंखों के रोगों के लिये उत्तम है ॥ ४४ ॥

सौवीराञ्जन के गुण

सौवीराञ्जन ग्राही, स्निग्ध, बर्फ के समान अत्यन्त शीत-वीर्य, रक्त पित्त को शान्त करने वाला, नेत्र रोगों को नाश करने में परमोत्तम है ॥ ४५ ॥ यह विष, हिचकी तथा रक्त प्रदर को नाश करता है। व्रणों को शोधन तथा रोपण करता है तथा रजः स्राव को रोकने में अत्यन्त लाभ करता है ॥ ४६ ॥

खाने के लिये दोनों अंजनों की मात्रा

आधी रत्ती से एक रत्ती तक अंजन को दो या तीन दिन तक ही खा सकते हैं। रक्तप्रदर रोग में दो या तीन दिन से अधिक काल तक इन दोनों ही अंजनों को खाने के लिये न प्रयोग करें। (अधिक खाने से सदा के लिये रज आना ही बन्द हो जाता है) ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥

पुष्पाञ्जन का परिचय

पीतल को पिघलाने के समय पीतल का भाग यशद भी पिघलते समय आकाशस्थ प्राण वायु (ओषजन या Oxygen) से मिलकर श्वेत रंग का चूर्ण बन जाता है ॥ ४६ ॥ उसी श्वेत रंग के चूर्ण को (Zinc oxide को) पुष्पाञ्जन कहते हैं। अथवा यशद को अग्नि में रख धौंकनी से आग दें। वह फूलकर श्वेत रंग का चूर्ण बन जाता है उसे भी पुष्पाञ्जन कहते हैं (Impure zinc oxide या zinc oxide ही पुष्पाञ्जन है) ॥ ५० ॥

पुष्पाञ्जन के गुण

पुष्पाञ्जन शीतल है, स्निग्ध है तथा पित्त को नाश करता है। नेत्रों के अभिषण्ड को नाश करता है तथा दाह को नाश करने में परम श्रेष्ठ है ॥ ५१ ॥ विचर्चिका आदि त्वचा के दोषों को शान्त करता है, ब्रणों को रोपण करता है। विशेषकर के पांचों प्रकार की हिचकियों को नाश करता है ॥ ५२ ॥

तीनों अंजनों का बाह्य प्रयोग

ये पूर्वलिखित तीनों अंजन और यशद को अग्नि में दग्ध करके बनाया हुआ पुष्पाञ्जन ये सभी नेत्रों के अभिषण्ड रोग को नाश करने में परमोत्तम हैं ॥ ५३ ॥

तिमिर हराञ्जन

शुद्ध सीसा १ तोला कड़छी में डाले और अंगीठी पर तेज अग्नि देकर पिघलावे। पिघलते ही एक तोला पारा डालकर अति शीघ्र ही दोनों को खरल में डाल कर देर तक पीसें ॥ ५५ ॥ जब बारीक चूर्ण हो जाये तो चार तोला शुद्ध सौवीर

अंजन डालकर सात दिन तक पीसैं ॥ ५६ ॥ फिर कपूर ३ माशे डालकर पीसैं। इसे शीशी में डाल डाढ़ से बंद करके रखैं। इसे लगाने से तिमिर रोग दूर होता है। इसे ही शार्ङ्ग धर ने प्रत्यञ्जन नामसे कहा है ॥ ५७ ॥ (इसे आंख के ब्रण Ulceration of the cornea में न लगावें)

तुहिनअंजन

शोरा आधा तोला, कपूर आधा तोलें, सोबीराअंजन आठ तोला डालकर देर तक पीसलें। शीशी में बंद कर के रखैं। इसे ही तुहिनअंजन कहते हैं। इसे लगावें तो आंखों की खुजली, दाह तथा जलादि का म्भाव निश्चय ही दूर होते हैं ॥ ५८-५९ ॥

अथ शिलाजीत के नाम

शिलाजतु, शैलेय, शिलाज, शैलधातुज, शिलामय, शिलास्वेद, शिलानिर्यास, अश्मज, अश्मजतुक, गिरिज, अद्रिज, अश्मोत्थ, अश्मलाक्षा, और गौरय ये सब नाम शिलाजीत के हैं ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥

शिलाजीत का परिचय

पर्वतराज हिमालय की शिलाएं सूर्य के संताप से सन्तप्त होकर अपना गाढ़ा सत निकाला करती हैं, उसे ही शिलाजतु कहते हैं ॥ ६२ ॥ पर्वतराज की शिलाओं का सार सूर्य के संताप से निकल कर सूख जाता है वही मूर्तिमान ठोसरस शिलाजीत कहाता है ॥ ६३ ॥

शिलाजीत के भेद

सौवर्ण, राजत, ताम्र तथा लौह नामसे शिलाजीत के चार

भेद हैं ॥ ६४ ॥

उन के रूप

जो जया (गुडहल) के फूल के समान लाल रंगकी हो वह सौवर्णशिलाजीत कहाती है । यह शीतल, मधुर, कड़वी, चरपरी तथा विपाक में भी चरपरी होती है ॥ ६५ ॥ जो श्वेत रंग की हो वह राजत शिलाजीत कहाती है । यह शीतल, कड़वी होती है तथा विपाक में मधुर होती है ॥ जो नीले से रंगकी हो वह ताम्र शिलाजीत कहाती है । यह कड़वी, उष्ण तथा तीक्ष्ण होती है ॥ ६६ ॥ जो काले रंग की होती हैं वह लोह शिलाजीत कहाती है । यह तिक्त लवण तथा कषययरस वाली होती है । विपाक में कटु (चरपरी) होती है । यह शीतल, भारी, स्निग्ध तथा सर्व श्रेष्ठ होती है ॥ ६७ ॥ सौवर्ण शिलाजीत वातपित्त नाशक है । राजत शिलाजीत कफपित्त नाशक है : ताम्र शिलाजीत कफ नाशक है । लौह शिलाजीत त्रिदोषहर है ॥ ६८ ॥ (सोने की शिलाओं से स्वर्णतपकरसरूप में जो शिलासारसे मिलकर बहता है वह सौवर्ण, चांदी वाली शिलाओं से राजत, तांबे वाली शिलाओं से ताम्र तथा लोहे वाली शिलाओं से लौहज शिलाजीत निकलता है]

शिलाजीत की शुद्धि

जब आकाश में बादलों के दिन न हों तब निवात (तेज वायु रहित) स्थान में, तीक्ष्ण गरमी के दिनों में शिलाजीत की शुद्धि करे ॥ ६९ ॥ लोहे के बने हुए संजे धुले हुए चार पात्रों को धूप में रखे ॥ ७० ॥ एक पात्र में शिलाजीत का सूक्ष्म चूर्ण डाल दे । उसमें तेज गरम दुगना पानी डाल देंगे । शिलाजीत से आधा त्रिफला का काढ़ा भी डाल दें । इन दोनों को डालकर तेज धूप

में तीन घंटे रख दें । फिर शिलाजीत को खूब मल २ कर धो लें तथा वस्त्र में से छान लें ॥ ७२ ॥ फिर पहले पात्र में ही डालकर तेज धूप में इसे रख दें । अब तेज धूप के लगने से शुद्ध मलाई के सदृश मुलायम गाढ़े काले रंग की मलाई पानी के ऊपर आ जायेगी । इस मलाई को उतार कर गरम जल तथा काढ़े से युक्त दूसरे पात्र में डाल देवे ! इस पर भी तप २ कर मलाई आ जायेगी । इस मलाई को उतार कर तीसरे पात्र में डाल देवे । जिसमें कि गरम २ जल और काढ़ा रखा हुआ हो । इसकी मलाई जल तथा क्वाथ को चौथे पात्र में डाल देवे । इसी प्रकार जब तक जल स्वच्छ निर्मल शेष न रह जावे तब तक ऐसा करता रहे ॥ ७६ ॥ इस प्रकार मैल पात्र के तले बैठ जायगी, पानी स्वच्छ रह जायगा, ऊपर मलाई आ जायगी । इस ऊपर की शुद्ध मलाई को पांचवें पात्र में इकट्ठा करता जाये । यही शुद्ध शिलाजीत है ॥ ७७ ॥ इस प्रकार से यह शिलाजीत सर्वथा शुद्ध हो जाती है । इस शुद्ध शिलाजीत को ही सर्वत्र निःशंक होकर प्रयोग करे ॥ ७८ ॥

प्रक्षेप योग्य क्वाथ का मान

शिलाजीत के समान क्वाथ्य द्रव्य हों, उन द्रव्यों में जल उन से आठ गुणा डालें । चौथाई जल शेष रहे तो छानकर शिलाजीत में डालें । इस प्रकार शिलाजीत को शुद्ध करने में क्वाथ बनाना चाहिये । (शिलाजीत १ सेर हो । त्रिफला १ सेर, जल ८ सेर पकाकर २ सेर जल शेष रखें । इस त्रिफला के क्वाथ को शिलाजीत में डालकर शुद्ध करें) ॥ ७९ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

यदि इसी प्रकार शिलाजीत में दुगना गोमूत्र डालकर उसी प्रकार मलाई निकालते जायें तो भी शिलाजीत शुद्ध हो जाती है ॥ ८० ॥

तृतीय शोधन प्रकार

पूर्वोक्त ढंग से ही शिलाजीत में भांगरे का स्वरस दुगना डालकर शिलाजीत अत्यन्त उत्तम शुद्ध की जाती है ॥ ८१ ॥

विशुद्ध शिलाजीत का परीक्षण

शिलाजीत को जलते हुए अंगारे पर डालें यदि उसमें से धुआँ न निकले और पककर वह लिंग के समान ऊपर की ओर को उठ खड़ी हो। स्वाद में चरपरी तथा कड़वी हो तो उसे ही शुद्ध शिलाजीत समझो ॥ ८२ ॥

अन्य परीक्षण

जल में डालने पर जिसमें से सूत से छूटने लगें। स्वाद भी जिसका चरपरा तथा कड़वा हो वह शिलाजीत शुद्ध होती है ॥ ८३ ॥

शिलाजीत के गुण

शिलाजीत कड़वे रस की, विपाक में चरपरी, विशेष करके मूत्र लाने वाली, योगवाही तथा रसायन है ॥ ८४ ॥

और भी

शुद्ध शिलाजीत बलदायक, शोथ नाशक, पाण्डु रोग नाशक तथा क्षय, श्वास, प्लीहा, ज्वर, अग्निमांश, अपस्मार, उन्माद, उदर रोग, गुदा के मस्से, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, वायु रोग, स्थूलता, उरःक्षत, हृदय शूल, इन सब रोगों को नाश करती

है ॥ ८५ ॥ प्रमेह रूपी गज के लिये सिंह है, प्रबल शूल के लिये कालाग्नि है । कृमियों को नाश करती है, बड़ी हुई पथरी को बज्रवत् नाश करती है । कुष्ठ, वमन, गुल्म, और प्रबल वातरक्त आदि रोगों को नाश करती है ॥ ८६ ॥

शिलाजीत की मात्रा

दो रत्ती से लेकर आठ रत्ती तक शिलाजीत की मात्रा है । इसे बल, कालादि देखकर उचित मात्रा में प्रयोग करें ॥ ८७ ॥

शिलाजीत का आसयिक प्रयोग

शुद्ध शिलाजीत दो रत्ती लेकर शहद से खावें तो शुक्र रोकने के कारण से हुए २ मूत्र कृच्छ्र को नाश करती है ॥ ८८ ॥ शिलाजीत को खांड तथा दशमूल का काढ़ा मिलाकर पीवें तो अण्ठीलिका, वातवस्ति तथा वातकुण्डलिका को दूर करती है ॥ ८९ ॥ बरुणादिगण के क्वाथ से शिलाजीत को सेवन करें तो मूत्राघात तथा अश्मरी को दूर करती है ॥ ९० ॥ (गिलोय, सोंठ, आंवला, असगंध, गोखरु ये पांचों द्रव्य अमृतादिकषाय में पड़ते हैं ।) अमृतादिक्वाथ से शिलाजीत खावें तो मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र दोनों शीघ्र ही नष्ट होते हैं ॥ ९१ ॥ शिलाजीत ३ रत्ती लेकर खांड से तथा आध रत्ती कपूर से मिलाकर खावें तो मूत्रातीत तथा मूत्रजठर रोग अच्छे होते हैं ॥ ९२ ॥ गोखरु के क्वाथ से शिलाजीत सेवन करें तो सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र अति शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ९३ ॥ काकोल्यादिगण (काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकडासिंही, बंशलोचन, पद्माश्व, पुण्डरीक-काष्ठ, ऋद्धि, वृद्धि, मुनक्का, जीवन्ती तथा मुलट्टी यह

काकोल्यादिगण है) की औषधों के क्वाथ से त्रिफला द्वारा शुद्ध किया हुआ शिलाजीत सेवन करें तो अत्यन्त वीर्यवर्धक है ॥ ६४ ॥ लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, घी, शहद, हरडचूर्ण तथा विडगचूर्ण के साथ सेवन की हुई शिलाजीत राजयक्ष्मा को नाश करती है ॥ ६५ ॥ वीरतरु आदिगण (वीरतरु, पिलावांसा, कालावांसा, दाभ, वन्दा, गुन्द्रावृण, नड़ा की जड़, कुश, काश की जड़, पाषाणमेद की जड़, अरणी, मोरटा, बसुक, बरिर, भल्लूक, कुरण्टक, नीलाकमल, ब्रह्मी, गोखरु इन्हें वीरतर्वादिगण कहते हैं) के क्वाथ से शिलाजीत सेवन की जाये तो मूत्रकृच्छ्रादि रोगों को नाश करती है ॥ ६६ ॥ खांड तथा दूध के साथ प्रातःकाल शिलाजीत २, ३ रत्ती सेवन करें तो विशेष करके प्रमेह रोग तथा उसके उपद्रवों को नाश करती है । ॥ ६७ ॥ शुद्ध शिलाजीत २ रत्ती, सूठ, पिप्पली तथा शुद्ध गूगल के सम भाग चूर्ण से मिलाकर सेवन की जाये तथा ऊपर से गोमूत्र पिया जाये तो महाघोर ऊरुस्तम्भ रोग को शीघ्र ही नाश करती है ॥ ६८ ॥ लोहभस्म १ रत्ती, शिलाजीत २ रत्ती, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती इन्हें मधु से मिलाकर सेवन करें तो अत्यन्त रक्तवर्धक है (“माक्षिक” का अर्थ केवल मधु भी है) । शिलाजीत २ रत्ती को अर्जुन के क्वाथ से पीवें तो एक मास के सेवन से हृदय रोग दूर हो जाता है ॥ १०० ॥ अरणी के स्वरस या क्वाथ से यदि शिलाजीत दो मास तक सेवन की जाये तो निश्चय ही स्थूलता नष्ट होती है ॥ १०१ ॥ सुश्रुतोक्त शालसारादिगण (शालसार, राजकर्ण, खैर, कदर, कालस्कन्ध, सुपारी, भोजपत्र, मेढासिंही, तिनिश, चन्दन, लालचंदन, शीशम, सिरस, विजैसार, धव, अर्जुन, ताड़, शाक, करंज, पूतिकरंज,

अश्वकर्ण, अग्रर, कालीयक, ये सब शालसारादिगण कहाता है। यह गण कुष्ठ, मेह, पाण्डु, कफ भेदनाशक है) के क्वाथ से शिलाजीत को भावित करें। फिर शालसारादिगण के क्वाथ से ही दो मास तक इसे सेवन करें ॥ १०२ ॥ तो पुराने मधुमेह को भी विशेष रूप से नाश करती है, पथरी तथा मूत्रशर्करा को भी नाश करती है ॥ १०३ ॥ पिप्पली, पापाणभेद और इलायची के चूर्ण के साथ शिलाजीत खाकर ऊपर से तण्डुलोदक पीवें तो प्रमेह को नाश करती है ॥ १०४ ॥ छोटी इलायची, पिप्पली, शिलाजीत इनको मिलाकर सेवन करें तो मूत्राघात तथा मूत्रकृच्छ्र को निश्चित नाश करती है ॥ १०५ ॥ शिलाजीत को पत्थर पर घिसकर उसमें कपूर मिलाकर सन्तोत्रण (ताजे कटे हुए जख्म आदि) को भरें तो उसे बिना पकाये ही यह भर देती है ॥ १०६ ॥ हल्दी के चूर्ण के साथ शिलाजीत सेवन की जाये और ऊपर से गोमूत्र पीवें तो कुम्भकामला रोग को नाश करती है ॥ १०७ ॥ लोहभस्म, स्वर्णभस्म, राल के रस के साथ भावित की हुई शिलाजीत १ रत्ती लगातार सेवन की जावे तो मसूरिकाज्वर, स्फोट (छाले, फुंसियां) तथा शोणकाय ज्वर को ऐसे नाश करती है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्षों को नाश करता है। (शोणकाय ज्वर में सारे शरीर का रंग एकदम लाल हो जाता है, इसे आजकल एलोपैथी में Scarlet Fever कहते हैं। वस्तुतः यह German Disease है। शिलाजीत को वातपित्तहर, अथवा मूत्रकारक द्रव्यों से प्रयोग करें तो Blood Pressure ब्लड प्रेशर के कारण हुए २ सब शिरो भ्रम, मन, देह, इन्द्रियादि की दुर्बलता, पक्षवधादि रोग नष्ट हो जाते हैं। शिलाजीत के सेवन के समय में तथा उसके बाद

भी इतने ही समय तक व्यायाम धूप, वायु, चित्तसन्ताप, गुरु, विदाही आदि पदार्थ, कुलथ, मकोय, कवृतर इन सबका सेवन त्याग देवे तथा माहेन्द्र, कुण का वा प्रास्रवण जल ही पीवे । यह वाग्भट की बात भी स्मरण रखनी चाहिये ।

अथ गैरिक क नाम

गैरिक, गैरेप, गिरिमृद, गिरिमृत्तिका, रक्तधातु, लोहधातु, गिरिमृद्भव ये सब नाम गेरू के हैं ॥ ११० ॥

गेरू क दो भेद

पाषाण गैरिक तथा स्वर्ण गैरिक नाम से गेरू के दो भेद होते हैं ॥ १११ ॥

इसका स्वरूप

स्वर्ण गैरिक स्निग्ध, मसृण (फिसलनदार) अति कोमल होता है । परन्तु पाषाण गैरिक रूखा, कठिन तथा अति लाल रंग का नहीं होता है ॥ ११२ ॥ स्वर्णगैरिक पाषाण गेरू से अधिक श्रेष्ठ है । इसलिये सर्वत्र ही स्वर्ण गैरिक को ही प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ११३ ॥

गेरू के शोधन का प्रथम प्रकार

खरल में सुवर्ण गेरू को चूर्ण करलें फिर गौ के दूध में भावना दें तो गेरू उत्तम रूप से शुद्ध हो जाता है ॥ ११४ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

गौ के घी में मन्दाग्नि पर यत्न से सुवर्ण गेरू को भून लें । इस प्रकार यह शीघ्र ही निस्सन्देह शुद्ध हो जाता है ॥ ११५ ॥

शुद्ध स्वर्ण गेरू के गुण

सुवर्ण गैरिक स्निग्ध, कसैले तथा मधुररस वाला, परम

शीतल, तापनाशक है। हिचकी तथा वमन को दूर कर देता है। रक्त पित्त, रक्तप्रदर, विथ, उदर कण्डू, ज्वर, अग्नि दग्धव्रण इन सबको नाश करता है। बलदायक व्रणों को रोपण करने वाला तथा नेत्रों के लिये हितकारी है ॥ ११६ ॥ ११८ ॥

गैरिक की मात्रा

२ रत्ती से ४ रत्ती तक स्वर्ण गैरिक की मात्रा प्रयोग करनी चाहिये ॥ ११६ ॥

गैरिक का रोगों पर प्रयोग

हल्दी, आमकी गुठली की गिरी, विडंग, श्वेत खैर (कथा) रसोंत इन सब को एक २ भाग लेकर एक भाग गेरू से मिलाकर सिलपर जल से पीसलें। इस लेप को लगायें तो योनि की खुजली दूर होती है ॥ १२० ॥ सेंधा नमक, मुलहंठी, हल्दी, गेरू इन चारों को मिलाकर लेप करें तो नेत्रों का अभिष्यन्द (आंख दुखना) दूर होता है ॥ १२१ ॥

सोंठ, अम्लतास, खड़िया मिट्टी, कांयफल की छाल, गेरू इन सब को कांसी के साथ पीसकर कर्ण मूल की सूजन पर लेप करें तो सूजन दूर होती है ॥ १२२ ॥ स्वर्ण गेरू २ रत्ती लेकर शहद से मिलाकर खावें तो शीत पित्त दूर होता है ॥ १२३ ॥ सुवर्ण गेरू को हल्की से समभाग मिलाकर जल से पीसकर लेप करें तो शीतपित्त, उदर दोनों को निश्चित नाश करता है ॥ १२४ ॥ गेरू २ रत्ती को श्वेत चंदन, खस, धनियां के क्वाथ के साथ मिलावें अथवा इलायची (बड़ी इलायचीलें) के चूर्ण के साथ अथवा केवल खांड के साथ मिलाकर खावें तो रक्त पित्त को नाश करता है ॥ १२५ ॥ चमेली की कली, लाख

रक्त चन्दन, सुवर्ण गेरू सबको पीसकर लगावें तो नये ब्रणशुक (आंग्रके शुक या फोले (Ulceration of the cornea) को नाश करता है ॥ १२६ ॥ सुवर्ण गेरू अकेला घी से मिलाकर लेप करें अथवा गेरू, तथा कसीस दोनों समभाग लेकर घी से मिलाकर लेप करें तो विसर्प रोगकी विसर्पता नष्ट होती है ॥ १२७ ॥ शुद्ध स्वर्ण गेरू को नारियल के तेल से पीसकर लगावें तो अग्निदग्ध ब्रण की पीड़ा को नाश करता है ॥ १२८ ॥ शुद्ध स्वर्ण गेरू तथा रस सिंदूर को मिलाकर सेवन करें तो जीर्ण ज्वर तथा पित्तज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १२९ ॥

गैरिकाद्यमलहर

शुद्ध स्वर्ण गेरू १ तोला लें, हल्दीचूर्ण १ तोला, सिंदूर १ माशा ॥ १३० ॥ निर्मल लिक्थ तेल ६ तोला लें। सब को यत्न से पीसकर कांच की शीशी में रखें ॥ १३१ ॥ इसे गैरिकाद्यमलहर कहते हैं। उसे लगावें तो खुजली और दाह दूर होते हैं तथा विविध ब्रणों का रोपण होता है ॥ १३२ ॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्य कृत रसतरङ्गिणी के भाषानुवाद में यह मिश्रलोहादि विज्ञानीय नाम का द्वाविंश (२२वां) तरङ्ग समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

अथ रत्नविज्ञानीय त्रयोविंश तरङ्ग

रत्न शब्द की निरुक्ति (अर्थ)

क्योंकि यह अत्यन्त रमणीय होता है अथवा इसमें लोगों का चित्त अत्यन्त रमता है, इसलिये वैशाकरणों ने इसे रत्न

कहा है ॥ १ ॥

नौ महारत्न

हीरा, माणिक, मोती, पुखराज, नीलम, तादर्य (पन्ना),
वैदूर्य (cat's eye), गोमेद (गुलमेदक) तथा मूंगा ये नौ
महारत्न हैं ॥ २ ॥

नवग्रहों के रत्न

सूर्यग्रह के लिये माणिक, चंद्र के लिये मोती, मंगल के लिये
मूंगा, बुध के लिये पन्ना, बृहस्पति के लिये पुखराज, शुक्र के
लिये वज्र (हीरा), शनि के लिये नीलम, राहू के लिये गोमेद,
केतु के लिये वैदूर्य मणि ये धारण करने चाहियें तथा इन २
ग्रहों के प्रकोप में ये रत्न ही दान करने चाहियें ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ हीरक के नाम

हीरक, हीर, अभेद्य, भिदुर, कुलिश, वज्रक, भार्गवप्रिय
तथा वज्र ये सब नाम हीरे के हैं ॥ ५ ॥

उत्तम हीरे के लक्षण

जो स्निग्ध, बिजली के समान चमकदार, (लसकदार)
स्वच्छ, जिस पर किसी पदार्थ से (सिवाय हीरे की लेखनी के),
लकीर न पड़ सके अन्य पदार्थों को जो काट दे, जो तीक्ष्ण
हो, छः कोण हों तथा आठ फले (८ पार्श्व) हों, ऐसा हीरा
उत्तम जाति का कहाता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

हेय हीरे का स्वरूप

जो गोल, मैला, नीला, राख के रंग जैसा, फटा हुआ,
खरखरा, कौए के पैर जैसी रेखाओं के चिन्ह वाला हो वह
हीरा त्याज्य होता है ॥ ७ ॥

हीरे का परीक्षण

जिस हीरे को कसौटी के पत्थर पर बार २ घिसें तो भी जो न घिसा जा सके (जिसका चिन्ह न पड़े); जो ज़रा सा कसने या घिसाने से अन्य पदार्थों को चीर देवे वह हीरा ही अच्छा है । (जैसे शीश को असली हीरे की अणी काट डालती है) ॥ ८ ॥

अशुद्ध हीरे के दोष

अशुद्ध हीरे की भस्म सेवन की जाये तो वह पार्श्ववेदना, कुष्ठ, ताप, तथा भ्रम आदि रोगों को तुरन्त उत्पन्न कर देती है ॥ ९ ॥

हीरक शोधन का प्रथम प्रकार

एक कपड़े की पोटली में हीरे को बांधकर दोलायंत्र में कोदों के क्वाथ में डालकर सात दिन तक पकावें । इस प्रकार स्वेदन करने से हीरा शीघ्र ही उत्तम प्रकार से शुद्ध हो जाता है ॥ १० ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

हीरे को पोटली में बांधकर कुलथी के क्वाथ में दोलायंत्र से तीन दिन पकावें तो विशेष शुद्ध हो जाता है ॥ ११ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

हीरे को तपा २ कर थोहर के दूध में एक सौ बार बुझावें तो निश्चय से शुद्ध हो जाता है ॥ १२ ॥

चतुर्थ शोधन प्रकार

हीरे को तेज अग्नि में तपा २ कर शुद्ध पारे में १०० बार बुझावें । इस प्रकार करने से हीरा शीघ्र ही चूर्ण हो जाता है ।

यह हमारा अनुभव किया हुआ प्रकार है जो परमोत्तम है ।
(जाली में हीरे को रखकर तपावें तो वह सुरक्षित रहेगा
॥ १३ ॥ १४ ॥

हीरेक मारण का प्रथम प्रकार

शुद्ध हीरे का यत्न पूर्वक चूर्ण कर ले । फिर शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गंधक, शुद्ध हिंगुल, माक्षिक भस्म प्रत्येक द्रव्य हीरे के समान भाग लें । सब को एकत्र कर बड़े बेर के स्वरस या क्वाथ से खूब पीस ले ॥ १५ ॥ फिर सात बार पिप्पल की छाल के क्वाथ में भावित करें और इसका गोला बना लें । फिर सम्पुट में बंद करके गजपुट द्वारा उपलों की आग में फूंक दें ॥ १६ ॥ जब तक हीरे की भस्म न हो जाये तब तक इन्हीं द्रव्यों को मिला २ कर गजपुट देता जाये । परन्तु द्वितीय पुट तथा उसके बाद के पुटों में स्वर्णमाक्षिक की भस्म न मिलावे । इस प्रकार से हीरा सर्वथा भस्म हो जाता है ॥ १७ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

शुद्ध हीरा एकभाग, पारेकी भस्म एकभाग, शुद्ध मनसिल १ भाग, शुद्ध गंधक १ भाग सब को एकत्र मर्दन करे । फिर सम्पुट में संधि बंद करके गजपुट में फूंक दें । तब तक इसी प्रकार पुट देते जावें जब तक हीरा भस्म नहीं हो जाता ॥ १८ ॥ प्रथम पुट के बाद किसी भी पुट में पारे की भस्म न डालें परन्तु मनसिल गंधक ही डालें । इस प्रकार १४ पुट दे तो हीरा निश्चित रूप से मर जाता है ॥ २० ॥ यह स्वयं अनुभव करके ही यहां लिखा गया है । इस प्रकार भस्म हुए २ हीरे को निःशंक होकर

प्रयोग करे ॥ २१ ॥ (इस हीरा भस्म में पारा भस्म भी मिला होगा ।) ॥

तृतीय मारण प्रकार

शुद्ध हीरा, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनसिल सबको समभाग लेकर न घिसने वाले पत्थर के खरल में पीसलें ॥ २२ ॥ फिर तीन वर्ष की उगी हुई पुरानी कपास की जड़ के स्वरस में ३ घंटे तक इसे खूब घोटें । फिर इसे धूप में ३ घंटे सुखावें ॥ २३ ॥ खूब सूख जाने के बाद सम्पुट में बंद करके महापुट में रखकर फूंक देंवें । इसी प्रकार १४ बार करने से १४ पुटों में हीरा भस्म हो जाता है ॥ २४ ॥

मृत हीरे के गुण

हीरे की उत्तम बनी हुई भस्म हृदय के लिये परम हितकारी, छहरसों वाली, योगवाही तथा सबसे उत्कृष्ट रसायन है ॥ २५ ॥ राजयक्ष्मा को शान्त करती है । मेह, मेद, पांडुशोथ, उदर रोग, त्रिदोष तथा विविध रोगों को नाश करनेके लिये परमोत्तम है ॥ २६ ॥ वृष्य है, अत्यन्त आयु वर्धक तथा आयु रक्षक है । नेत्र हितकर, बलदायक, अति वर्णकारक, मेध्य है तथा अमृत के समान गुणदायक है ॥ २७ ॥

मृतहीरक की मात्रा

१/३२ रत्ती से १/१६ रत्ती हीरे की भस्म को बलकाल आदि की अपेक्षा से प्रयोग करना चाहिये ॥ २८ ॥

हीरक की मात्रा बनाने की विधि

स्वच्छ खरल में एक रत्ती हीरेकी भस्म डालदे । उसमें ४ माशे रससिन्दूर डालदे ॥ २९ ॥ दोनों को अत्यन्त यत्न से पीस-

कर रखे। इसकी एक रत्ती से दो रत्ती तक की मात्रा दें ॥ ३० ॥

मृत हीरक का आमयिक प्रयोग

हीरा भस्म में रस सिन्दूर मिलाकर दूध की मलाई मिलाकर खावें तो यह शीघ्रही भयंकर ध्वजभंग रोग को नाश करती है ॥ ३१ ॥ हीरे में स्वर्ण भस्म तथा रस सिन्दूर मिलाकर खावें तो यह शीघ्र ही भयंकर राजयक्ष्मा रोग को नाश करता है ॥ ३२ ॥ मकरध्वज के साथ हीरा भस्म खावें तो सभी प्रकार के क्लैब्य (नपुं सकता) रोगों का विशेषकर के नाश करती है (यह अन्य अनेक रोगों को भी नाश करती है ॥ ३३ ॥

कन्दर्प कोकिलरस

मात्रा निर्माण विधि के अनुसार रस सिन्दूर मिला हुआ हीरा भस्म १ रत्ती ले। उस में कपूर १/२ रत्ती, मिश्री १ माशा तथा इलायची का चूर्ण २ रत्ती मिलाकर खूब औंटे हुए गाढ़ी मलाई वाले दूध के साथ निरंतर ६ मास तक सेवन करें तथा मीठे भोजन करें (नमक खट्टा, विदाही आदि पदार्थ न खावें) तो मनुष्य की क्लीबता दूर होकर नाना नारियों को प्रसन्न करने की सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है ॥ ३४ ॥ इस हीरे के सेवन करने वाला मनुष्य निर्मल मोती के समान सुन्दर रंगवाला, रूप से दूसरों को मोहित करने वाला कामदेव सदृश, भीमसेन के समान भोजन खाने वाला गरुड़ के समान दूर से देखने वाला, सिंह के समान, खुगठित अंगों वाला तथा मत्त, बृहस्पति के समान बुद्धिवाला हो जाता है ॥ ३५ ॥ इसे ही कन्दर्प कोकिलरस कहते हैं। इसे शरीर के बल बढ़ाने के लिये सदा यत्न से सेवन करना चाहिये ॥ ३६ ॥

हीरकरसायन

हीरा भस्म १/६ रत्ती, ताद्वय^१ भस्म(गाकृत्मत भस्म या मरकत-
मणि २/६ रत्ती, माणिक्यभस्म ३/६ रत्ती, पुखराज भस्म ४/६ रत्ती,
नीलम भस्म ५/६ रत्ती, वैदूर्यभस्म ६/६ रत्ती, गोमेद भस्म ७/६
रत्ती, मोती भस्म ८/६ रत्ती, मूंगा भस्म १ रत्ती ले^२ ॥ ३७ ॥ सब
मिलाकर ५ रत्ती ले^३ । वैक्रांत भस्म ४० रत्ती ले^४ ॥ ३८ ॥ स्वर्ण
माक्षिक भस्म २० रत्ती, रौप्य माक्षिक भस्म २० रत्ती ले^५ (दोनों
मिलाकर ४० रत्ती ले^६,) मम भाग पारे गंधक की कज्जली २५५
रत्ती ले^७ ॥ ३९ ॥ सब को एकत्र कर बकरी के दूध में पीस ले^८ ।
फिर बाँझकोड़े की जड़ के स्वरस से पीसे^९ । फिर कुक्कुटपुट
दे^{१०} । इसी प्रकार अरणोत्पत्तों में १६ बार कुक्कुटपुट दे^{११} ॥ ४० ॥
इसी रसायन को हीरक रसायन कहते हैं ॥ इस को सेवन करने
से गर्भिणी स्त्रियों के विविध रोग नाश होते हैं ॥ ४१ ॥ यह
हीरकादि रसायन अग्नि दीपन करने वाली तथा पाचन है । बल-
दायक, मेध्य, महिलाओं के सौभाग्य को बढ़ाने वाली है । योनि-
रोगनाशक है, पुरुषों के वीर्य दोष से सन्तानोत्पत्ति के
अभाव रूपी बन्ध्यत्व दोष को दूर करती है । तथा काकवन्ध्या
(जिसे एक बार पुत्र उत्पन्न होकर फिर सन्तान न हो वह
काकवन्ध्या) आदि अनेक प्रकार की बन्ध्या नारियों को भी पुत्र
रत्न उत्पन्न कराने वाली है ॥ ४२ ॥

अथ माणिक्य के नाम ।

माणिक्य, रङ्गमाणिक्य, पद्मराग, रविरत्न, शोणरत्न,
कुरुविन्द तथा लोहित ये माणिक के नाम हैं ॥ ४३ ॥ (इसे लाल,
याकृत, चुन्नी या Ruby कहते हैं ।)

जात्य माणिक्य का स्वरूप

जो लाल कमल पुष्प की पंखड़ी के समान लाल हो, रमणीक हो, अति चमकदार हो, गोल तथा लम्बाई दार हो, समतल हो वह उत्तममाणिक्य है ॥ ४४ ॥

त्याज्य माणिक्य का स्वरूप ।

जिसमें छाय न पड़ती हो, जो हल्का हो, जो धुंधला हो, जो कुरूप हो जो अति कर्कश (खरखरा या खुरदरा) हो, जो मैला चपटा, टेढ़ा हो वह माणिक्य त्याज्य होता है ॥ ४५ ॥

माणिक्य शोधन का प्रथम प्रकार ।

माणिक्य को दोलायन्त्र द्वारा निम्बू के स्वरस में तीन घण्टे स्वेदन करें तो शुद्ध हो जाता है ॥ ४६ ॥ अम्लवर्ग में कही हुई सब औषधियों में से किसी के स्वरस में भी दोला यन्त्र द्वारा स्वेदन करने से माणिक्य शुद्ध हो जाता है ॥ ४७ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार ।

एक शीशे के प्याले में (या मिट्टी के प्याले में) माणिक्य को डालकर उसमें निम्बू काम्ल तथा जल मिलाकर (सजल नींबू काम्ल Citric Acid) डालकर सुराप्रदीप (Spirit lamp पर पकालें) ॥ इस प्रकार से उत्तम रूप से माणिक्य शुद्ध हो जाता है ॥ ४८ ॥ यह विधि गुरुवर श्री कविराज नरेन्द्र नाथ जी मित्र ने आधिष्कार की थी जो हमने यहां वैद्यों के कल्याण के लिए प्रकाशित कर दी है ॥ ४९ ॥

माणिक्य मारणका प्रथम प्रकार

अत्यन्त शुद्ध किया हुआ माणिक्य बारीक चूर्ण कर लें । यह चूर्ण एक भाग लें । शुद्ध मनशिल १ भाग, शुद्ध हड़ताल १

भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग ले ॥ ५० ॥ सब को एकत्र नीम्बू के स्वरस में सात दिन घोट ले । फिर टिकियां बनाकर धूप में सुखा ले तथा सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दें । इसी प्रकार आठ बार करें आठ पुट देने के बाद माणिक्य की सफेद भस्म हो जाती है ॥ इसी प्रकार बडहल (डेऊ) के स्वरस में घोटे तो भी पुट देने से भस्म हो जाती है (नींबू की जगह बडहल का स्वरस ले शेष वैसे बिधि से ही पुट दें) ॥ ५१ ॥ ५२ । ५३ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

शुद्ध माणिक्य को चूर्ण करके उसमें समभाग शुद्ध गंधक शुद्ध मनसिल, शुद्ध हिंगुल मिलाकर नीम्बू के स्वरस से सात दिन तक पक्के पत्थर की स्तरल में घोट लें ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ फिर टिकियां बना कर सुखालें । सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूक दें । इसी प्रकार आठ बार पुट दें तो शीघ्र ही माणिक्य की उत्तम भस्म हो जाती है ॥ ५६ ॥

मृतमाणिक्य के गुण

माणिक्य भस्म मधुररसवाली, रसायन, मेधा जनक, अग्नि दीपक वृष्य, आयुवर्धक तथा वात पित्त नाश करने में परम श्रेष्ठ है ॥ ५७ ॥ यह कफ नाशक, स्निग्ध तथा क्षयरोग नाशक है । अत्यन्त वाजीकरण है तथा ध्वजभंग को नाश करती है ॥ ५८ ॥

माणिक्य भस्म की मात्रा

१/४ रत्ती से १/२ रत्ती तक माणिक्य भस्म की मात्रा है जो बल तथा काल को देख कर प्रयुक्त करनी चाहिये ॥ ५९ ॥

माणिक्य मिहिरोदय रसायन

माणिक्य (याकूत) भस्म, स्वर्ण भस्म, चांदीभस्म, मरकत

भस्म (पन्नाभस्म) सब एक २ भागलें । कस्तूरी दो भागलें । सब को एकत्र कर घीकुमारी के स्वरस से भावित करें ॥६०॥ इस की दो रत्ती की गोली बनाले । इसेही माणिक्य मिहिरोदयरस कहते हैं ॥ ६१ ॥ यह रमायन है, वृष्य है, बल्य है तथा अग्नि दीपक है । यह क्लैद्यनाशक तथा ध्वजभंग नाश करने में विशेष प्रभाव दिखाता है ॥६२॥ (यह दो चार दिन में ही उत्तम प्रभाव दिखाता है और ध्वजभंग में अपूर्व लाभदेता है)

अथ मौक्तिक के नाम

मुक्ता, मुक्ताफल, मौक्तिक, मौक्तिकेयक, शुक्तिज, शौक्तिकेय, शशिरत्न, शशिप्रिय (चन्द्ररत्न आदि चांद के नाम वाला रत्न) ये सभी नाम मोती के हैं ॥ ६३ ॥

जात्य मौक्तिक का स्वरूप

चांद के सदृश चमकने वाला, स्थूल (मोटा) अत्यन्त रमणीय, स्निग्ध, गोल, व्रण (दाग) रहित, निर्मल, जो तुला पर तोलने से भारी हो, उसे ही उत्तम मोती समझना चाहिये ॥६४॥ शालिचावलों के तुल (भूसी) में नमक मिश्रित गोमूत्र डालकर जिस मोती को रगड़ा जाये, तथा उसमें कुछ भी विकार न आये तो समझो यह असली मोती है बनावटी नहीं ॥६५॥

त्याज्य मोती के लक्षण

जो लंबा हो, एक ओर से कृश अर्थात् पतलाहो, रूखा हो, तीन किनारों वाला हो, काला हो, व्रण युक्त हो, चमकरहित हो, छोटे आकार का हो यह मोती त्यागने के योग्य है ॥ ६६ ॥

मोती शोधन का प्रथम प्रकार

दोला यंत्र में जयन्ती के स्वरस में मोतियों को तीन घंटे पकाने से वे शुद्ध होते हैं ॥ ६७ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

अगस्त्य पत्रों के स्वरस में दोलायंत्र से मोतियों को पोटली में बांधकर पकावें तो ३ घंटे में शुद्ध हो जाते हैं ॥ ६८ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

एक प्याले में चूने का पानी डालकर उसमें मोती डालकर सुराप्रदीप पर पकावें तो मोती शुद्ध हो जाते हैं ॥ ६९ ॥

मोती मारने का प्रथम प्रकार

शुद्ध मोतियों को गौ के दूध में पीसकर लघुपुट में फूंक दें। ऐसा तीन बार करें तो चांद सदृश श्वेत रंग की भस्म होती है ॥ ७० ॥

द्वितीय मारण प्रकार

गुलाब के अर्क में शुद्ध मोतियों को पीसकर तीन बार लघुपुट में फूंक दें तो उत्तम भस्म होती है ॥ ७१ ॥

मृत मोती के गुण

मोती की भस्म वृष्य, आयुवर्धक, मधुर, परमशीतल, अग्नि-दीपन, दाह शामक, नेत्रों तथा वर्ण के लिये हितकर है ॥ ७२ ॥ जीर्णज्वर, प्रमेह तथा शिशुओं के दन्तों के दूध ज्वर को नाश करती है। हड्डियों तथा दाँतों को बढ़ाती है। हृदय के लिये अति हितकारी तथा मेधावर्धक है ॥ ७३ ॥ मोती की भस्म अतिशीतल, क्षय नाशक, श्वास कास को नाश करने वाली तथा हड्डियों के सूखने (Bone Tuberculosis) को नाश करती है। विषों को नाश करती है। देह, वीर्य, बल तथा बुद्धि को बढ़ाती है ॥ ७४ ॥

मोती भस्म की मात्रा

१/४ से १ रत्ती तक बल काल को देखकर मोती भस्म प्रयोग करें ॥ ७५ ॥

मोती भस्म का रोगों पर प्रयोग

मोती भस्म को रससिंदूर से मिलाकर सेवन करें तो दन्तोद्भेदजनित बालकों का ज्वर शीघ्र ही नाश होता है ॥ ७६ ॥ प्रवाल भस्म १ भाग कज्जली २ भाग मोती भस्म १ भाग सब को एकत्र करके बिजौरे नीबू के स्वरस से पीसकर लघुपुट में भस्म करें ॥ ७७ ॥ इसे दो रत्ती की मात्रा में खावें तो १ मास खाने से भयंकर क्षय रोग का भी नाश करती है ॥ ७८ ॥ मूंगा भस्म तथा मोती भस्म मिलाकर खावें तो फेफड़े की पुरानी दुर्बलता को दूर करती है ॥ ७९ ॥ कुटकी चूर्ण तथा सुद्ध गेरू के चूर्ण से मिलाकर मोती भस्म सेवन करें तो शीघ्र ही अति भयंकर हिचकियां दूर हो जाती है ॥ ८० ॥ स्वर्ण भस्म, ताम्रभस्म, कान्त भस्म मोती भस्म इन सब को मिलाकर बिजौरे नीबू के स्वरस से खावें तो परम दारुण हिचकियां नाश होती हैं ॥ ८१ ॥

मुक्तापंचामृत रसायन

मोती भस्म ८ भाग, प्रवाल भस्म ४ भाग, वंग भस्म २ भाग, शंख भस्म १ भाग, सीप भस्म एक भाग लें ॥ ८२ ॥ इन सब को एकत्र पीस लें । फिर शतावर, विदारी कंद, धी कुंवार गन्ना, दूध, तथा हंसराज के स्वरसों में पृथक् २ पीसकर पाँच बार पुट (लघुपुट) दें ॥ ८३ ॥ फिर निकालकर शीशी में रखें । इसका नाम मुक्तापंचामृत रसायन है ॥ ८४ ॥ इसे दो रत्ती मात्रा में गाय के दूध से सेवन करें । दो मास लगातार सेवन

करें तो यह रसायन का फल करती है ॥ ८५ ॥ इसके सेवन करने से महाघोर जीर्ण ज्वर भयंकर राजयक्ष्मा तथा अनुपानों के भेद से सभी रोगों का नाश करती है ॥ ८६ ॥

अथ पुष्पराग के नाम

पुष्पराज, पुष्पराग, पीतरक्तह्वय, गुरुरत्न, पीतमणि, गुरु-वल्लभ ये सब पुष्पराज के नाम हैं ॥ ८७ ॥

जात्य पुष्पराग का लक्षण

जो स्निग्ध, समतायुक्त या समतल, अति कोमल, सुनहरी रंग का, परम स्वच्छ, निर्मल, गोल अंगवाला, जो कनेर के फूल के समान उज्ज्वल हो, वह पुष्पराग उत्तम माना गया है ॥ ८८ ॥ जो कसौटी पर घिसने से अपने रंग को अधिक प्रगट करता है, रत्नपरीक्षकों ने उसे ही उत्तम पुष्पराग माना है ॥ ८९ ॥

हेय पुष्पराग का लक्षण

जो कालासा, कान्ति हीन, कर्कश, दो अक्ष वाला, काले बिन्दुओं से युक्त, खांड के कणों की सी कान्तिवाला, उन्नत हुआ २ या झुका हुआ, परम सूखा पुष्पराज हो, उसे विद्वानों ने त्याज्य माना है ॥ ९१ ॥

पुष्पराग का शोधन

पुष्प राग को वस्त्र की पोटली में बांधकर दोलायंत्र में लटका दें। पात्रमें कुलथी का क्वाथ तथा कांजी भर दें। इसे ३ घंटे पकावें तो शुद्ध हो जाता है ॥ ९२ ॥

पुष्पराग का मारण

माणिक्य के मारने की दोनों विधियों के सदृश ही अति-

यत्न से पुष्पराग को भी भस्म करले ॥ ६२ ॥

पुष्पराग के गुण

पुष्पराज भस्म शीतल है, दीपन तथा परम पाचक है । कफ, वात, कुष्ठ तथा वमन नाशक है ॥ ६३ ॥ विष नाशक, दाह-शामक तथा गुदा के अर्श आदि रोगों को नाश करती है । मेघा आयु तथा सातों धातुओं को बढ़ाती (वृंहण) है ॥ ६४ ॥

पुष्पराग की मात्रा

चौथाई रत्ती से एक रत्ती तक पुष्पराग भस्म की मात्रा विचार कर प्रयोग करें ॥ ६५ ॥

अथ नील के नाम

नील, नीलोपल, नील, नीलरत्न मुनील, महानील, नीलाश्मा तथा शनिरत्न ये नीलम रत्न के नाम हैं ॥ ६६ ॥

उत्तम नील के लक्षण

जो स्वच्छ, एकसी वाया वाला, मलरहित, कोमल, अति चमकदार हो, स्निग्ध, भारी, जिस में से चमक फूट कर निकल रही हो ऐसा नीलम उत्तम माना गया है ॥ ६७ ॥

हेय नीलम के लक्षण

जिसका आधा भाग लाल हो (शेष काला हो), जिस में एक सी छाया न पड़े, जो रुखा, लघु अर्थात् हल्का तथा कोमल हो, ऐसा नीलम रत्न परीक्षकों ने त्याज्य माना है ॥ ६८ ॥

नीलम का शोधन

नील के स्वरस में दोलायंत्र में नीलमरत्न को लटकाकर तीन घंटे पकावें तो नीलम निश्चित शुद्ध हो जाता है ॥ ६९ ॥

नीलम का मारण

माणिक्य के सट्टश ही दोनों विधियों से नीलम की भस्म करलें ॥ १०० ॥

मृत नील के गुण

नीलम की भस्म वृष्य, बलदायक, उत्तम अग्निदीपक है। त्रिदोषों को नाश करती है, गुदा रोगों (अर्श) को नाश करती है तथा वर्ण को सुन्दर बनाती है ॥ १०१ ॥ कुष्ठादि को नाश करती है। आस, कास, विषमज्वर, कफ, पित्त तथा वायु को नाश करती है। यह त्वचा के लिये अत्यन्त हितकर है ॥ १०२ ॥

नील भस्म की मात्रा

१/८ रत्ती से १/२ रत्ती तक नीलम भस्म की मात्रा है। वैद्य को रोगी के बल तथा कालादि को देखकर इसकी मात्रा देनी चाहिये ॥ १०३ ॥

अथ मरकत के नाम

गारुत्मत, मरकत, तादर्य, गरुड़ के सभी नाम, बुधरत्न, रोहिणेय, हरिद्रत्न ये सब नाम मरकत (पन्ना या Emerald) के हैं ॥ १०४ ॥

जात्य मरकत का स्वरूप

जिसमें छाया दीख सके, स्वच्छ, भारी, स्निग्ध, कोमल तथा मसृण (ऐसा कोमल या चिकना जो हाथ फेरने से उस पर हाथ फिसलता हो), जिसमें कोई व्यंग या भाई न हो, जिसका रंग हरा हो, वह मरकत श्रेष्ठ है ॥ १०५ ॥

हेय मरकत का स्वरूप

जो रूखा हो, छाया रहित हो, टेढ़ा मेढ़ा हो, खरखरा हो तथा हल्का हो, जिसके पास रखने से मनुष्य को भय लगे, अति मैला हो, उस मरकत को त्याज्य समझो ॥ १०६ ॥

मरकत का शोधन

गौ के दूध में दोला यंत्र द्वारा मरकत को तीन घंटे पकावें तो निश्चित शुद्ध हो जाता है ॥ १०७ ॥

मरकत का मारण

माणिक्य की विधि से ही आठ बार पुट देने से पन्ने की निश्चित भस्म हो जाती है ॥ १०८ ॥

मरकत के गुण

मरकत (पन्ने) की भस्म बलदायक, अग्निवर्धक, ओज-वर्धक, तथा वृष्य है। यह विषनाशक, पाण्डु, तथा शोथ नाशक है। यह श्वास, वमन, अर्श, तथा सन्निपात (त्रिदोषों) को नाश करती है ॥ १०९ ॥ ११० ॥

मरकत की मात्रा

चौथाई रत्ती से १ रत्ती तक मरकत की मात्रा बलकाल को देव कर दें ॥ १११ ॥

अथ वैदूर्य के नाम

विदूर रत्न, वैदूर्य, केतुरत्न विदूरज, विडाल के सब नाम विडालाक्ष (अंग्रेजी में Cat's eye कहते हैं), वायज ये सब नाम वैदूर्य मणि के हैं ॥ ११२ ॥

जात्य वैदूर्य का स्वरूप

जो वैदूर्यमणि भारी, अति स्निग्ध, बिल्ली की आँखों जैसी, हिलते हुए श्वेत दुपट्टे के समान (लहर) दार हो वह उत्तम होती है ॥ ११३ ॥

हेय वैदूर्य का स्वरूप

जिसमें छाया न पड़े, जो लघु, रुक्ष भवदायक, चपटी, खर-खरी, काली तथा मिट्टी और पत्थर युक्त हो वह त्याज्य वैदूर्य है ॥ ११४ ॥

वैदूर्य का शोधन

त्रिफला के क्वाथ में दोलायंत्र द्वारा वैदूर्य मणि को तीन घंटे स्वेदन करें तो उत्तम प्रकार से शुद्ध हो जाता है ॥ ११५ ॥

वैदूर्य का मारण

वैदूर्य को भी माणिक्य मारने की दोनों विधियों से न बार पुट देकर भस्म कर सकते हैं ॥ ११६ ॥

मृत वैदूर्य के गुण

वैदूर्य भस्म मधुररस वाली है। यह परम शीतल, अग्नि दीपक, मल भेदन करने वाली, आयु, बल तथा मेधावर्धक है ॥ ११७ ॥ यह रक्तपित्त और पित्त के सभी रोगों को नाश करती है। आंखों के लिये हितकर तथा अत्यन्त बृहण है ॥ ११८ ॥ विशेष करके (यह संतान कारक भी है।)

वैदूर्य की मात्रा

१/८ रत्ती से १ रत्ती तक बल कालादि की अपेक्षा करके वैदूर्य की मात्रा दें ॥ ११९ ॥

अथ गो मेदक के नाम

गोमेदक, गोमेद, पिङ्गस्फटिक, राहुरत्न, तमोमणि ये नाम गोमेद (गुल मेदक) के हैं ॥ १२० ॥

जात्य गोमेद का स्वरूप

जो गौ के मूत्र के सदृश रूपवाली हो, मुस्निग्ध हो, जिसका

तल सम हो, जो स्वर्ण के सदृश कुछ लाल हो, दल रहित स्वच्छ तथा अतिभारी हो, जिसमें चमक हो, सुन्दर रूपवाली हो, ममृण हो ऐसी गोमेद उत्तम होती है ॥ १२१ ॥

हेय गोमेद का स्वरूप

जो त्रासप्रद, छाया रहित, चपटी, मैली, दल (पत्रों) वाली लघु अर्थात् हल्की तथा रूखी हो वह त्याज्य है ॥ १२२ ॥

गोमेद का शोधन

देलायंत्र द्वारा नीबू के स्वरस में तीन घंटे पकानेसे गोमेद शुद्ध होता है ॥ १२३ ॥

गोमेद का मारण

माणिक्य के समान गोमेद को भी ८ पुट देकर भस्म कर लें ॥ १२४ ॥

मृत गोमेद के गुण

गोमेद भस्म उष्ण है । यह रुचिदायक, दीपक तथा परम पाचन है त्वचा के दोषों को शान्त करती है, कफ पित्त को नाश करती है । बल दायक है तथा बुद्धि को विशेषकरके बढ़ाती है । पाण्डु तथा क्षय को विशेष करके नाश करती है ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

मृत गोमेद की मात्रा

१/४ रत्ती से १ रत्ती तक गोमेद की मात्रा है । बल, कालादि को देखकर इसे दें ॥ १२७ ॥

अथ प्रवाल के नाम

प्रवालक, प्रवाल, भौमरल, विद्रुम, अग्निजन्तु विशेषोत्थ समुद्र में रहने वाले विशेषजन्तु से उत्पन्न होने वाला है ये सभी नाम मृगे के हैं ॥ १२८ ॥

ग्राह्य विद्रुम का स्वरूप

जो मूंगा लाल हो, सिग्ध, गोल, ब्रणरहित, दीर्घ, मोटा भारी तथा दृढ़ हो उत्तम होता है ॥ १२६ ॥

हेय विद्रुम का लक्षण

जो श्वेत, ब्रणयुक्त, रूखा, सिरवाला, हल्का, धूँसा, काला, सूक्ष्म, अति चिकना हो वह मूंगा त्याज्य है ॥ १२७ ॥

विद्रुम का प्रथम शोधन प्रकार

दोलायंत्र द्वारा जयंती के पत्तों के स्वरस में ३ घंटे पकाने से मूंगा उत्तम शुद्ध होता है ॥ १२१ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

सज्जीक्षार को जल में घोल कर उसमें ३ घंटे मूंगा पकालें तो उत्तम शुद्ध होता है ॥ १२२ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

चौलाई के द्रवमें ३ घंटे मूंगा दोलायंत्र द्वारा पकाने से उत्तम शुद्ध होता है ॥ १२३ ॥

विद्रुम का प्रथम मारण प्रकार

शुद्ध मूंगे का बारीक चूर्ण करें। घीकुमारी के स्वरस से घोटकर टिकियां बनाकर सुखालें ॥ १२४ ॥ इन्हें सम्पुट में बन्द करके तीनवार पुट दें। इसी प्रकार घीकुमारी के साथ तीन पुट देने से ही मूंगे की चांद के सदृश श्वेतरंग की भस्म हो जाती है ॥ १२५ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

मूंगे को गौ के दूध में पीसकर टिकियां बनाकर पुट दें तो

सुन्दर भस्म होती है ॥ १३६ ॥ (तीन पुट दें)

तृतीय मारण प्रकार

जयन्ती के स्वरस से मूँगे को घोटकर टिकियां बनाकर पुट दें । तीन बार पुट देने से ही विद्रुम की सुन्दर भस्म हो जाती है ॥ १३७ ॥

चतुर्थ मारण प्रकार

शतावर के स्वरस में प्रवाल को पीसकर टिकियां बनाकर धूप में सुखालें । फिर संपुट में बन्द करके पुट दें तो अति सुन्दर भस्म हो जाती है ॥ १३८ ॥

विद्रुम (मूँगा) भस्म के गुण ।

मूँगा भस्म क्षार तथा मधुर रस वाली है । लघु तथा शीतल है । यह अग्नि दीपक, पाचन, विदोषनाशक, रक्तपित्त नाशक है विशेष करके कफवात नाशक है । यह दृष्टि रोग, क्षय जन्यकास, विष, भूतदोष इन सब को नाश करती है । यह अधिक पसीना आने को रोकती है तथा रात के पसीने को (क्षय में पसीना रात को छाती पर आता है) रोकती है । यह बीर्य तथा शरीर के रंग को खूब बढ़ाती है ॥ १३६—१४१ ॥

मूँगा भस्म की मात्रा

आधी रत्ती से दो रत्ती तक मूँगा भस्म की मात्रा है । काल तथा रोगी का बलाबल देखकर यह देनी चाहिए ॥ १४२ ॥

मूँगा भस्म का रोगों पर प्रयोग

मूँगा भस्म दो रत्ती को तण्डुलोदक (चावल के धोवन) से खावे तो कफ से होने वाले मूत्र कृच्छ्र को नाश करती है ॥

१४३ ॥ प्रवाल भस्म १ रत्ती, रस सिंदूर १ रत्ती, कुटकी, दाख, हरड़ इन के चूर्ण के साथ मिलाकर खावें तो विड् विघात (कब्ज का एक भेद, पृथक् २ पतला मल आना) को नाश करती है ॥ १४४ ॥ प्रवाल भस्म १ रत्ती, रस सिंदूर १ रत्ती, गोखरू के काढ़े से पीवें तो मूत्रसाद रोग को दूर करती है ॥ १४५ ॥ मूंगा भस्म २ रत्ती, शहद से खावें तो रात्री के पसीने को सर्वथा दूर करती है ॥ १४६ ॥ मूंगा भस्म १ रत्ती, रस सिंदूर १ रत्ती, दोनों को मिलाकर पुनर्नवा तथा गोखरू के काढ़े से सेवन करे तो शोथ (सूजन) को निश्चित नाश करती है ॥ १४७ ॥ रस सिंदूर १ रत्ती, मूंगा भस्म १ रत्ती, दोनों को शतावर तथा गोखरू के क्वाथ से दें तो मूत्र कृच्छ्र का नाश करती है ॥ १४८ ॥ यशद भस्म १ रत्ती, मूंगा भस्म १ रत्ती शहद के साथ दें (दिन में दो बार दें । मूंगा दो रत्ती भी डाल सकते हैं) । इस प्रकार तीन मास सेवन करें तो अनेक कारणों से उत्पन्न हुई हाथों में तथा पैरों में पसीने आने की बीमारी सर्वथा दूर हो जाती है ॥ १४९ ॥ अभ्रक भस्म आधी रत्ती, असली वंश लोचन १ माशा, मूंगा भस्म १ रत्ती लगातार सेवन करें तो (अन्य रोगों के साथ २) विशेष रूप से क्षय रोग की खाँसी को नाश करती है ॥ १५० ॥ अभ्रक भस्म, रस सिंदूर, मूंगा भस्म सब को सम भाग लेकर चूर्ण कर लें । इसको $\frac{1}{5}$ रत्ती मात्रा में सोंठ $\frac{1}{2}$ रत्ती तथा छोटी कठेली $\frac{1}{2}$ रत्ती मिलाकर शहद से चटावें तो शिशुओं की भयंकर खाँसी दूर होती है ॥ १५१ ॥ अभ्रक भस्म रस सिंदूर, मूंगा भस्म सब को एक २ रत्ती लें । कायफल का चूर्ण तथा भाङ्गी का चूर्ण ३, ३ रत्ती लें । सब को मिलाकर रखें । इसमें से $\frac{1}{2}$ रत्ती से एक रत्ती तक मधु से चटावें तो

शिशुओं के ज्वर तथा श्वास को शीघ्र नाश करती है ॥ १५२ ॥
मोती की सीप की भस्म, रस सिंदूर, वंश लोचन, मूंगा भस्म
सब को सम भाग लेकर (शहद आदि से) खावे तो श्वास
तथा कास को निश्चित नाश करती है ॥ १५३ ॥ (इसी प्रकार गौ
के दूध से मूंगे को सेवन करें तो छींकों को तथा सिर के दर्द
को शीघ्र ही नाश करता है)

अथ चुद्र रत्न गण

वैक्रांत, सूर्य कान्त, चन्द्र कान्त, नृपोपल पेरीजक, स्फटिक
ये छहों रत्न चुद्र रत्न कहे जाते हैं ॥ १५४ ॥

अथ वैक्रांत के नाम ।

वैक्रान्त, विक्रान्त, जीर्णवज्रक कुवज्र, चुद्रकुलिश, तथा चूर्ण-
वज्रक ये सब नाम वैक्रांत मणि (तुर्मली) के हैं ॥ १५५ ॥
(यह राजपूताना में बहुत होती हैं तथा सस्ती मिलती हैं)

वैक्रान्त शब्द का निर्वचन ।

सब रोगों को नाश करने के लिए वज्र अर्थात् हीरे के
समान क्यों कि यह विक्रम या विक्रांति रखती है, इसी लिए
इसका नाम वैक्रांत है ॥ १५६ ॥

ग्राह्य वैक्रान्त का स्वरूप

जिसकी आठधारे हों, आठ फल हों, श्वेत, काली, पीली तथा
लाल रंग की हो, मस्त्रण अर्थात् मुलायम चिकनी हो, भारी हो
छः कोणों वाली हो उसे उत्तम वैक्रांत समझो ॥ १५७ ॥
वैक्रांत के आठ भेद होते हैं वे क्रमशः लिखते हैं १ श्वेत, २
नीला, ३ लाल, ४ पीला, ५ जंगली कबूतर के रंग का, ६ गरुड़
जैसे हरे रंग का, कबूर अर्थात् चितकवरा तथा ७ काला ॥ १५८ ॥

वैक्रान्त शोधन का प्रथम प्रकार

एक वस्त्र की पोटली में वैक्रान्त को बाँधकर दोलायन्त्र द्वारा स्वेदन करे । नमक तथा सज्जी चार या जौवार मिलाकर किसी अम्ल (नींबू रस) रस से या कोदों के क्वाथ से या गोमूत्र से पहले पात्र को भर दें फिर वैक्रान्त को बीच में लटका नाच तेज आंच दें तो वैक्रान्त शुद्ध हो जाती है ॥ १६० ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

नमक तथा चार मिले हुए कुलथी के क्वाथ में वैक्रान्त को दोलायन्त्र द्वारा ३ घंटे पकावें तो वैक्रान्त शुद्ध हो जाती है ॥ १६१ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

पोटली में बधा हुआ वैक्रान्त केने के कंद के स्वरस में दोलायन्त्र द्वारा पकावें तो ३ घंटे में शुद्ध हो जाता है ॥ १६२ ॥

वैक्रान्त का प्रथम मारण प्रकार

शुद्ध गंधक १ भाग, शुद्ध हिंगुल एकभाग, शुद्ध वैक्रान्त १ भाग तीनों को नींबूके स्वरस में पीसकर गजपुट में फूंक दें । इस प्रकार ८ पुट दें तो वैक्रान्त भस्म हो जाती है ॥ १६३ ॥

द्वितीय मारण प्रकार

शुद्ध वैक्रान्त को यज्ञपूर्वक चूर्ण करें । यहचूर्ण १ भाग, शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गंधक ३ भाग सबको एकत्र नींबू के स्वरस में तीन घंटे घाटें । सूखने पर सम्पुट में बंद कर क. गजपुट में फूंक दें ॥ १६४-१६५ ॥ इसी प्रकार आठ पुट दें तो वैक्रान्त निश्चित भस्म हो जाता है । (तीन पुट के बाद पारा डालना बंद कर दें) ॥ १६६ ॥

वैक्रान्त के गुण

यह अनेकों महारोगों को नाश करने वाला है, परम मेध्य है, अग्नि दीपक तथा अत्यन्त रसायन है। त्रिदोषनाशक, अनेक प्रकारका योगवाही है। यह धन्त्र के समान गुण करता है ॥ १६७ ॥ वैक्रान्त भस्म त्वचा के लिये अति हितकारक है, राजयक्ष्मा को नाश करने वाला है, जरा शोथ आदि को नाश करता है तथा ज्वर और कुष्ठ को दूर करता है ॥ १६८ ॥ पाण्डुरोग उदररोग, श्वात, कास, प्रमेह, शोथ इनको नाश करता है। देह को दृढ़ करने में विशेष गुण करता है ॥ १६९ ॥

मृत वैक्रान्त की मात्रा

१/२४ रत्ती से १/१२ रत्ती तक वैक्रान्त भस्म को रोगी के बलाबल के अनुसार तथा काल के अनुसार प्रयोग करना चाहिये ॥ १७० ॥

मृत वैक्रान्त का आमयिक प्रयोग

प्रथम वैक्रान्त रसायन

वैक्रान्त भस्म ४ रत्ती, अभ्रक सत्त्व की भस्म एक तोला, पारा भस्म आधा तोला। सबको ग्वरल में डाल सीसल की जड़के स्वरस में घोटलें। फिर एक रत्ती की गोली बनालें ॥ १७१ ॥ ॥ १७२ ॥ इस की एक २ गोली घी तथा शहद से मिलाकर प्रति दिन खावें ॥ १७३ ॥ यह रसायन बलदायक, वीर्य वर्धक वर्ण कारक, वृंहण है। नपुंसकता नाश करने में इसके समान दूसरी कोई औषधी नहीं है ॥ १७४ ॥ जो रोग अन्य औषधियों से नहीं जाते वे इस रसायन के अभ्यास करने से निश्चित नष्ट हो जाते हैं ॥ १७५ ॥

द्वितीय वैक्रान्त रसायन

वैक्रान्त भस्म ८ रत्ती, चमक रहित स्वर्ण भस्म २ रत्ती, रस-
सिन्दूर २ तोला, सब को एकत्र कर सीमल के जड़ के स्वरस में
घोटलें और एक २ रत्ती गोली बनालें। इसे वैक्रान्त रसायन
कहते हैं ॥ १७६ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥ यदि इस रसायन को काली
मिरच के चूर्ण तथा पिप्पली के चूर्ण और घी मिलाकर दो मास
लगातार सेवन करें और पथ्य भी रखें ॥ १७६ ॥ तो जरा जनित
शोषरोग, भयंकर राजयक्ष्मा, ध्वजभंग, क्लैव्य, कास,
भयंकर श्वास, अर्श, अग्नि मांघ, ग्रहणी, पाण्डु, कामला, उरः-
क्षत आदि रोगों को निश्चित रूप से शीघ्र ही नाश करती है
॥ १८० ॥ १८१ ॥

अथ सूर्यकान्त के नाम

सूर्यकान्त, सूर्यसणि, सूर्योपल, दीप्तोपल, बन्धिगर्भ, ज्वल-
नोपल ये सब नाम सूर्यकान्तमणि के हैं ॥ १८२ ॥ (इसे अंग्रेजी
में Sun stone भी कहते हैं ।)

ग्राह्य सूर्यकान्त के लक्षण

जो निर्मल स्वच्छ हो, किसी प्रकार की तिनके आदि लकीरों
की छाया से रहित हो, सिग्ध हो, घिसने पर आकाश के समान
स्वच्छ निर्मल हो जाये, जो मसृण अर्थात् मुलायम तथा ब्रणादि
रहित हो वह सूर्यकान्तमणि उत्तम जाति की होती है ॥ १८३ ॥

सूर्यकान्तकी परीक्षा

जिसमें से सूर्य की किरणों के स्पर्श करने से अग्नि निकले,
वही सूर्यकान्त उत्तम होती है ॥ १८४ ॥

सूर्य कान्त के गुण

सूर्य कान्त मणि तथा उस की भस्म मेधा वर्धक, उष्ण तथा रसायन है तथा विशेष करके कफ बात नाशक है ॥ १८५ ॥
(इसकी पूजा करने से यह सूर्य देवता को प्रसन्न कर देती है
अर्थात् इससे सूर्य का काम भी ले सकते हैं)

सूर्य कान्त का मारण

१ भाग सूर्य कान्त मणि को पीसकर शुद्ध मनसिल तथा शुद्ध गन्धक एक २ भाग से मिलाकर पीसें तथा पुट दें। इस प्रकार सात पुट दें तो भस्म हो जाती है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १८६ ॥

अथ चन्द्रकान्त के नाम

चन्द्रकान्त, चन्द्रमणि, शशिकान्त, इन्दुकान्त ये सब नाम चन्द्रकान्त मणि (Moon stone) के हैं ॥ १८७ ॥

जात्य चन्द्र कान्त के लक्षण

जो निर्मल अति मृदुल अर्थात् कोमल, शीतल, पीले रंग का, स्निग्ध, परम विशद तथा परम पवित्र है। जो चांद की किरणों के स्पर्श करने से ही जल बहाने लगता है उसे ही उत्तम चन्द्रकान्त मणि कहते हैं ॥ १८८ ॥

चन्द्र कान्त के गुण

चन्द्रकान्त मणि तथा इसकी भस्म अति शीतल है, स्निग्ध है, परमपित्त नाशक है, रक्तपित्त को शान्त करती है तथा दाह को नाश करती है ॥ १८९ ॥

चन्द्र कान्त का मारण

चन्द्रकान्त १ भाग, शुद्ध मनसिल १ भाग, शुद्ध हिंगुल एक भागसब को पीसकर घीकुमार के रस से घोटें । इसको सम्पुट में रख पुट दें तो यह निस्संदेह भस्म हो जाता है ॥ १६० ॥ (कई पुट दें तो भस्म होगा) ।

अथ राजावर्त्त के नाम

राजावर्त्त, नृपावर्त्त, आवर्त्तमणि, नृपोपल, नीलाश्मा ये सब नाम राजावर्त्त (लाजवर्द) के हैं ॥ १६१ ॥

उत्तम राजावर्त्त के लक्षण

जो निर्मल, कोमल, मलरहित या निर्मल, स्निग्ध अर्थात् चिकना (स्निग्ध का असली भाव रुक्ष से उल्टा अर्थात् तर है) बादलों से रहित शरद ऋतु के आकाश जैसा निर्मल, अति नीला, काला भारी, मोर के कण्ठ के सदृश चमकदार हो वही राजावर्त्त मणि उत्तम मानी है ॥ १६२ ॥

राजावर्त्त का प्रथम प्रकार

राजावर्त्त को दोला यन्त्र द्वारा निम्बू के रस में गोमूत्र तथा क्षार (जौखार या सजीखार) डालकर तीन घंटे स्वेदन करें तो उत्तमरीति से शुद्ध हो जाता है ॥ १६३ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

निम्बूकाम्ल में जल तथा क्षार मिला कर दोलायंत्र द्वारा राजावर्त्त को ३ घण्टे स्वेदन करे तो शुद्ध हो जाता है ॥ १६४ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

सिरस के फूलों के स्वरस में दोला यंत्र द्वारा ३ घंटे स्वेदन करने से निस्सन्देह राजावर्त्त शुद्ध हो जाता है ॥ १६५ ॥

राजावर्त्त मारण प्रकार

शुद्ध लाजवर्द के चूर्ण को समभाग शुद्ध गंधक से मिलाकर ताजे नीबू के स्वरस से ३ दिन खूब घोटें ॥ १६६ ॥ फिर धूप में सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करें । सन्धि लेपन करके गज्जपुट में फूँक दें । इसी प्रकार आठ बार करने से राजावर्त्त मणि की भस्म हो जाती है ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

मृत राजावर्त्त के गुण

राजावर्त्त की भस्म चरपरी, कड़वे रसकी है । यह दीपन, शीतल, पित्त शामक है । पाण्डु, प्रमेह, ज्वर, शोष, मदात्यय, छर्दि तथा हिचकियों को नाश करती है । यह वृंहण तथा अति रसायन है ॥ २०० ॥

राजावर्त्त की भस्म का रोगों पर प्रयोग

राजावर्त्त १ भाग, चांदी भस्म १ भाग, स्वर्णमालिक भस्म १ भाग सब को पीसकर गौ के घी में पकालें । फिर उचित मात्रा में खाँड शहद तथा घी से मिलाकर सेवन करें तो सभी प्रकार के मदात्ययों को नाश करता है ॥ २०१ ॥ रससिंदूर १ भाग, ताम्र भस्म १ भाग, लाजवर्द १ भाग, सबको एकत्र कर मुलठी के चूर्ण, खाँड मधु तथा घी से मिलाकर सेवन करें तो सभी प्रकार के मदात्ययों का नाश होता है ॥ २०३ ॥ अभ्र सत्त्व को भस्म तथा (कान्ता) प्रियंगु के चूर्ण के साथ राजावर्त्त की भस्म शहद मिलाकर सेवन करें तो भयंकर प्रमेहादि को नाश करती है ॥ २०४ ॥ [मदात्यय से यकृत में फोड़ा हो जाया करता है तथा भूख नहीं लगती । यदि राजावर्त्त को ठीक समय

दें तो फिर (Absis of Liver) यकृत का फोड़ा नहीं होता है] ।

राजावर्त्त का सत्वपातन तथा मारण

मनसिल, घी तथा राजावर्त्त का चूर्ण मिलाकर एक लोहे के पात्र में डालें । उसमें भैंस का दूध डालकर पकावें ॥ २०५ ॥ सूखने पर फिर मित्रपंचक के साथ इसका गोला बनालें । फिर इस गोले को (एक कुठाली में डाल) खैर के कोयलों की तेज अग्नि में पकावें ॥ २०६ ॥ तो यह अपने सत्त्व को छोड़ देता है । फिर इस सत्त्व को कूटकर गंधक तथा नीबू के रस से धोद कर पुट देकर भस्म करलें ॥ २०७ ॥

अथ पेरोजक के नाम

पेरोजक, पेरोज, ये दो नाम फिरोजे के हैं । इसके दो भेद हैं १—भस्माङ्ग, २—हरित ॥ २०८ ॥

पेरोजक का शोधन मारण

पेरोज का शोधन तथा मारण राजावर्त्त के समान ही माना गया है २०९ ॥

मृत पेरोजक के गुण

फिरोजे की भस्म कसैली, मधुर, अग्नि दीपन, शूल तथा दूषी विष (Slow Poisons) को तथा चेतन तथा स्थावर विषों को नाश करती है ॥ २१० ॥ (यह सर्व विषों को नाश करता है यही विशेषता है) ।

अथ स्फटिक के नाम

स्फटिक, स्फाटिक, स्फटिकट्टशत्, स्फटिक, स्फटिकाश्मा, स्फटिकोपल, शालिपिष्ट, धौतशिल, शिवरत्न, शिवप्रिय, सितो-

पल, अमलमणि, ये सब नाम स्फटिक या विल्लौर के हैं ॥
(यह पत्थर कुल्लु के पहाड़ों में होता है ॥ २१२ ॥

जात्य स्फटिक का स्वरूप

जो शीतल हो, स्निग्ध हो, तुपरहित हो, नेत्रों को प्रिय लगे
जो घिसने पर भी पूर्ववत् स्वच्छ रहे, जिसमें स्वच्छ छाया पड़े,
जो अन्दर से शुद्ध हो, उसे ही उत्तम स्फटिक समझो ॥ २१३ ॥

स्फटिक का शोधन मारण

राजावर्त्त के समान स्फटिक का शोधन तथा मारण होता है
॥ २१४ ॥

स्फटिक भस्म के गुण

स्फटिक भस्म मधुर है, क्लदायक है, बर्फ के समान शीतल
है, रक्तपित्त को शान्त करती है तथा ज्वरआदि को शान्त करती
है ॥ २१५ ॥

श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार भिषगाचार्यकृत
रसतरङ्गिणी के भाषानुवाद में यह रत्नादि विज्ञानियों नाम त्रयो
विंशतरङ्ग समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

अथ विषोपविषादि विज्ञानीय नाम का

चतुर्विंशंतरङ्ग ।

विषपद का निर्वचन

क्योंकि इसको देखकर लोग विषाद (दुःख) को प्राप्त
होते हैं, इसी लिये इसे विष कहते हैं । अथवा यह मनुष्य को
मृत्यु के पाशों से जकड़ कर नष्ट कर डालता है इसलिये भी इसे

विष कहते हैं ॥ १ ॥

विष के नाम तथा उसके दो भेद ।

विष को विष, द्रवेड, गरल तथा काल कूट नामों से पुकारते हैं । यह विष स्थावर तथा जंगम दो प्रकार का होता है ॥२॥

स्थावर तथा जंगम विषों का स्वरूप ।

जो विष ग्वानों तथा औषधों के अन्दर होते हैं तथा वहाँ से निकाले जाते हैं उन्हें ही स्थावर विष कहते हैं । जो सर्पादि जन्तुओं से उत्पन्न होते हैं उन (प्राणियों से उत्पन्न होने वाले) विषों को जंगम विष कहते हैं ॥ ३ ॥

स्थावर विष के भेद

स्थानों के भेद से स्थावर विष दश प्रकार का रसायन शास्त्रियों ने माना है ॥ ४ ॥

स्थावर विष के अधिष्ठान

स्थावर विष की प्राप्ति के वे दस अधिष्ठान (स्थान) आगे लिखते हैं । १—कन्द, २—सार, ३—निर्यास, ४—पुष्प, ५—मूल, ६—फल, ७—पत्ते ८—त्वचा, ९—दूध, १०—ग्वानें ॥ (इन १० वस्तुओं से विष प्राप्त होता है) ॥ ५ ॥

अन्य प्रकार से स्थावर विष के दो भेद

स्थावर विष के दो भेद और भी हैं १—विष, २—उपविष इनमें से वत्सनाभ आदि तो विष कहाते हैं । दूसरे तिन्दुक [कुचला] आदि उपविष [विष जैसे अर्थात् विष तो न हों पर विष से कुछ ही कम प्रभाव वाले] कहाते हैं ॥ ६ ॥

विष के नौ भेद

हालाहल, कालकूट, शृङ्गक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, ब्रह्मपुत्र, हारिद्र तथा सक्तुक, वत्सनाभ ये नौ प्रकार के विष होते हैं। इनमें से रस बनाने तथा रसायन कर्म वत्सनाभ विष ही श्रेष्ठ माना जाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥ क्योंकि हालाहल से सक्तुक तक आठ विषों का रसशास्त्र में प्रयोग नहीं (अथवा नाम मात्र को ही कहीं) देखा जाता है। इसीलिये इस पुस्तक में हम उन विषों का स्वरूप नहीं लिखेंगे ॥ ६ ॥

वत्सनाभ के लुप का परिचय

वत्सनाभ का लुप (पौधा) दो हाथ ऊँचा होता है। उसके पत्ते संभालु के पत्तों के आकार जैसे होते हैं। उसके पास और कोई पेड़ वृद्धि नहीं पाता है। इनके फूल नीले होते हैं। इसकी जड़ का कंद भाग विष रूप होता है। इस कन्द को ही वत्सनाभ (बछड़े की नाभि के आकार का) कहते हैं। यह गढ़वाल, कश्मीर तथा नेपाल आदि (पर्वतीय) स्थानों में उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

वत्सनाभ का परिचय

जो कंद ५ उंगल से ७ उंगल तक लंबा हो, जो १ उंगल से २ ॥ उंगल तक व्यास (चौड़ाई) वाला हो ॥ १२ ॥ जो ऊपर

में नीचे की ओर क्रमशः स्थूल हुआ हो, श्वेत सा रंग हो, ऐसा (इस वत्सनाभक्षुप का) कंद बैद्यों ने वत्सनाभ कहा है ॥१३॥ जिसकी जड़ लम्बी हो, जिसका कंद स्थूल हो ऐसे वत्सनाभ विष के क्षुप को शीतकाल में अथवा वसन्त ऋतु में उखाड़ कर (जलआदि से धोकर) रखना चाहिये ।

इसे इन दिनों में इसीलिये उखाड़ते हैं क्योंकि इसके अन्दर पूर्ण वीर्य इन दिनों में ही होता है ॥ १४ ॥

वत्सनाभ के भेद

वत्सनाभ के तीन भेद हैं । १—काले से रंग का, २—कपिश रंग का अर्थात् भूरासा । ३—श्वेत (पाण्डु) रंग का । इन तीनों में भी काले की अपेक्षा भूरा, भूरे की अपेक्षा श्वेत क्रमशः गुणों में अधिक होता है ॥ १५ ॥

वत्सनाभ के नाम

वत्सनाभ, वत्सनाग, द्वेड, विष, अमृत ये नाम वत्सनाभ के हैं ॥ १६ ॥

ग्राह्य वत्सनाभ का स्वरूप

जो स्थूल (मोटा), स्निग्ध, भारी, तथा, फल के पक जाने के बाद ही उखाड़ा गया हो, कीड़ों आदि से जो खाया न गया हो, उस वत्सनाभ विष को ग्रहण करने योग्य समझो ॥ १७ ॥

वत्सनाभ के संशोधन का प्रयोजन

अशोधित विष दाह, मोह (मूर्च्छा), हृदय की गति को

रोकना (Heart Suffocation or fail होना) तथा मृत्यु तक कर देता है । इसलिये पहले इसे शुद्ध करना चाहिये ॥ १८ ॥

वत्सनाभ का प्रथम शोधन प्रकार

पूर्व लिखित गुणों से युक्त वत्सनाभ को लेकर चने के समान खण्ड २ करें ॥ १९ ॥ फिर पत्थर या मिट्टी के प्याले में इसे डालकर (ताजे) गोमूत्र से भर दें । (गोमूत्र इसके एक दो उंगल ऊपर तक रहे) । अब इस पात्र को तेज धूप में रख दें ॥ २० ॥ प्रतिदिन पुराना मूत्र फेंक कर नया गोमूत्र डालता जाय और तेज धूप में रखता रहे ॥ २१ ॥ इसी प्रकार तीन दिन करके (गोमूत्र को फेंककर) वत्सनाभ के ऊपर की त्वचा (खाल या छाल) को उतार फेंके । शेष शुद्ध भाग को (तेज धूप में) सुखाकर रख ले । इस प्रकार वत्सनाभ विष भली प्रकार से शुद्ध हो जाता है ॥ २२ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

वत्सनाभ विष के चने जितने टुकड़े करके एक कपड़े की पोटली में बांधकर गौ के दूध में दोलायंत्र द्वारा पका लें ॥ २३ ॥ ६ घंटे या ३ घंटे इस प्रकार स्वेदन करें । इस प्रकार विष सर्वथा निस्सन्देह शुद्ध हो जाता है ॥ २४ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

वत्सनाभ के टुकड़ों को पोटली में बांध कर बकरी के दूध में ३ घंटे स्वेदन करें तो शुद्ध हो जाता है ॥ २५ ॥

वत्सनाभ के गुण

शुद्धवत्सनाभविष कटु तिक्त और कषाय रसवाला है । उष्णवीर्य है । यह अत्यन्त योगवाही है तथा अति उत्तम

रसायन है ॥ २६ ॥ यह त्रिदोषनाशक है परन्तु विशेष करके वायु तथा कफ को नाश करता है। अग्निदीपन, शीत को दूर करने वाला, सातों धातुओं को बढ़ाने वाला (वृंहण) है तथा बल को बढ़ाने वाला है ॥ २७ ॥ अग्निमान्द्य प्लीहोदर, वात रक्त, काम, श्वास, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, कुष्ठ, पान्दु, ज्वर आसवात को नाश करता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ विशेष करके तिमिर तथा रात्र्यंध [अंधराता, रतौंधी] को दूर करता है अभिष्यन्द, नेत्रशोथ, भयंकर कर्णशोथ, कर्णशूल, शिरःशूल, गृध्रसी, कटिवेदना (कमर की दर्द) तथा चूहा, बिच्छु, तथा सर्प के विषों को तुरन्त नाश करता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

वत्सनाभ के विशेष गुण

यदि विधिपूर्वक (शुद्ध) विष को सेवन किया जाय तो प्राणदाता है। यदि उसे अविधिपूर्वक सेवन किया जाये तो वह प्राण हरण करने वाला है ॥ ३२ ॥ इसीलिये विषों की चिकित्सा को जानने वाला वैद्य रोगों के लक्षणों को अपनी सूक्ष्म बुद्धि से ठीक २ जानकर ही तब विष का प्रयोग करे ॥ ३३ ॥ विशेष करके विष वात वेदना को हरने में उत्तम है। मूत्रकारक, स्वेदजनक तथा शूल को नाश करने में श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ बढ़े हुए ताप को शान्त करता है, शोथ को नाश करता है, भिन्न २ कारणों से (ताप बढ़ने आदि कारणों से) बढ़ी हुई हृदय की गति (धड़कन) को शान्त करता है ॥ ३५ ॥ स्वेद लाने वाली अन्य औषधों की अपेक्षा यह विष ताप को शान्त करने में उत्तम है तथा अन्यत्र स्वेद लाने वाला भी नहीं है (क्योंकि अन्य औषध एक दम स्वेद लाती हैं परन्तु शोधित विष धीरे २ स्वेद लाता है) ॥ ३६ ॥ बढ़े हुए रक्त सञ्चार

(Blood Pressure ब्लड प्रैशर) को संयम में (कम) करने के लिये यह अमोघ अस्त्र है और सर्वोत्कृष्ट महौषध है ॥ ३७ ॥ रसशास्त्रों में विष का प्रयोग बार २ किया गया है और भारतवर्ष में अधिकता से यह चल पड़ा है ॥ ३८ ॥ इसीलिये पूर्वाचार्यों द्वारा कहा हुआ रक्तनिर्हरण (खून निकलवाना या शिरावेध करके खून निकालना) आदि आजकल कम दीग्वने में आता है ॥ ३९ ॥ शुद्ध विष को यदि उचित मात्रा से सेवन किया जाये तो हृदय की गति को कभी भी कम नहीं करता है (हृदयावसाद नहीं करता है) ॥ ३० ॥ इसी विष के सेवन करने से मस्तिष्क में हुए रक्त का संचय भी शीघ्र ही कम हो जाता है ॥ ४१ ॥ यह विष सेवन करने से पुष्पुसछद्दा की सूजन (फेफड़े की भिल्ली की सूजन अर्थात् Pleurisy) नष्ट होती है । पुष्पुस की सूजन (फेफड़े की सूजन अर्थात् (Pneumonia) भी नष्ट होती है । तथा उन सूजनों से होने वाले अन्य विविध ज्वरों के वेग भी नष्ट होते हैं ॥ ४२ ॥ हृदय के आवरण पर की सूजन (Pericarditis) को तथा आंतों के आवरण (की सूजन) के कारण होने वाले ज्वर (Peritonitis) को नाश करती है ॥ ४३ ॥ पुष्पुसछद्द की सूजन आदि (पूर्वकथित) रोगों के आरंभकाल में ही यदि शुद्ध विष का प्रयोग किया जाये तो यह उन रोगों को होने से रोक देता है, ऐसा कुछ वैद्यों का मत है ॥ ४४ ॥ यह विष प्रयोग किया हुआ गले की सूजन को, तुण्डिकेरी, गलशुण्डिका, तथा अन्य नये हुए २ कण्ठ रोगों को शीघ्र ही नाश करती है ॥ ४५ ॥ इसके सेवन से अभिघात (चोट आदि लगने) आदि के कारण हुआ २ अन्दर तथा बाहिर का रक्तस्राव भी शीघ्र ही कम हो जाता है ॥ ४६ ॥ इसके सेवन से ऐसा नया २ प्रतिश्याय (जुकाम) भी नष्ट हो जाता

है जिसमें दाह हो, झींकें आती हों, सिर में तीव्र पीड़ा हो तथा दोनों भवों में जलन हो ॥ ४७ ॥ इसके सेवन से ऐसी प्रवाहिका भी नष्ट हो जाती है, जिसमें कफ आता हो, अधिक रक्त निकलता हो अथवा आरंभकाल में थोड़ा रक्त निकलता हो तथा मल का वेग अधिक (बार २ मल आने की प्रवृत्ति) हो ॥ ४८ ॥ जो ऊर्ध्वजत्रुभाग में गरदन की ५वीं नाड़ी है (Fifth cranial Nerve अथवा Trigeminal Nerve नाम की गरदन की ५वीं नाड़ी है) उसके शूल को विशेष करके शीघ्र ही नाश करता है ॥ ४९ ॥ इसका सेवन ज्वरयुक्त उस ऊर्ध्वग रक्तपित्त को नाश करता है जिसमें आंत वेग से अथवा अल्प वेग से गाढ़ा २ गुलाबी से रंग का रक्त (मुंह नाक आदि से) निकलता है ॥ ५० ॥ इस विष को (ज्वर आदि रोगों में) तीन २ घंटे के बाद तब तक ही प्रयोग करना चाहिये जब तक कि शरीर के अंगों का तापमान १०० संख्या तक तापमापक यंत्र में (सौ दर्जे थर्मामीटर में) नहीं हो जाता है ॥ ५१ ॥ इस विष को यदि विधिपूर्वक उस ज्वर में प्रयोग करें जिसमें कि अन्तर्दाह हो शीघ्र २ प्रबल नाड़ी चल रही हो, प्यास लग रही हो, हृदय की गति अति तेज हो ॥ ५२ ॥ अजीर्ण तथा आध्मान (अफारा) हो रहा हो, पसीना न आता हो, अंगों का तापमान अत्यन्त (१०४, १०५, १०६, १०७ अंश तक) बढ़ गया हो ॥ ५३ ॥ खांसी, कांपना, शिरः शूल से हर क्षण कष्ट हो रहा हो, चित्त स्थिर न हो, बेचैनी हो, चित्त में लगातार व्याकुलता हो, भय लगता हो तथा उद्वेग (उचाट होना हर बात से घृणा होना तथा व्याकुल होना) हो ॥ ५४ ॥ वात वेदना से घिरा हो, मुख लाल (तमतमा रहा) हो, चमड़ा छूने से सूखा सा तथा गरम लगता हो, मूत्र गाढ़ा और लाल

(अथवा गाढ़ा लाल) आवें ॥ ५५ ॥ यह ज्वर विविध कारणों से हुआ हो, जिसमें पहले सरदी लगे फिर दाह लगे, तो यह उस ज्वर का शीघ्र ही निश्चय से नाश कर देता है ॥ ५६ ॥ विविध कारणों से हुए २ विविध स्थानों में होने वाले अनेक आकार वाले बड़े २ प्रबल शोथों (सूजनों) को भी यह विष नाश कर देता है ॥ ५७ ॥ यह अनेक प्रकार के कारणों से उत्पन्न हुई २ उस पीड़ा को भी निश्चित दूर कर देता है जो कि रात्रि के समय होती है तथा जिसे छूने से वह पीड़ा बढ़ जाती है और जिसे रोगी असह्य (सहन नहीं कर सकता है) समझ रहा होता है ॥ ५८ ॥ (वास्तव में तो) यह शुद्ध किया हुआ विष उन सब महारोगों (कुष्ठ आदि) को नाश कर देता है, यदि इसे उन २ रोगों की औषधों से मिलाकर संवन किया जावे; इसका कारण यह है कि यह विष योगवाही है अर्थात् जिस २ गुणवाली औषध से मिलेगा उसी के गुण को शीघ्र ही शरीर में फैला देगा ॥ ५९ ॥ जो रोग नाना प्रकार के रसों के प्रयोग से भी शान्त नहीं होते वे सब विष के प्रयोग से शान्त हो जाते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ ६० ॥

विष के प्रयोग का निषेध

बालक, अति वृद्ध, रोगिणी तथा गर्भणी स्त्री, अति क्षीण अंगों वाले मनुष्य, राजदमा के रोगी ॥ ६१ ॥ क्रोधी, भ्रान्त (जिसे चक्कर आते हों), विरोध करके हृदय की दुर्बलता वाले रोगी को, प्रायः करके (कहीं २ अत्यावश्यक हो तो देते भी हैं) वत्सनाभविष को प्रयोग में न लावे ॥ ६२ ॥ इन रोगियों में भी यदि अवश्य ही प्रयोग करना पड़े तो कुशल वैद्य को चाहिये की अति यत्न पूर्वक, अति थोड़ी मात्रा

में अत्यन्त थोड़े काल के लिये ही इसे प्रयुक्त करे ॥ ६३ ॥

विष को ठीक मात्रा में प्रयोग करने से फल की विशेषता

मात्रा से विष को दें तो अमृत हो जाता है। मात्रा से न दें तो शीघ्र ही प्राणों को हर लेता है ॥ ६४ ॥ इसलिये पहले रोगों का तथा रोगी मनुष्यों का बलाबल देखकर तथा देश और काल को देख कर ही विष की उचित मात्रा देनी चाहिये ॥ ६५ ॥

वत्सनाभविष की मात्रा ।

रस्ती के १६ वें भाग से लेकर रस्ती के आठवें (१/१६ से १/८ रस्ती) तक शुद्ध वत्सनाभविष की मात्रा है। परन्तु इसे मनुष्यों के बल तथा काल (शीत, उष्णदि) को देख कर ही प्रयोग करना चाहिये ॥ ६६ ॥

वत्सनाभविष का आमयिक प्रयोग

मृत्युञ्जय रस

शुद्ध वत्सनाभविष १ भाग, शुद्ध हिङ्गुल २ भाग इन दोनों को तीन दिन तक अदरक के स्वरस से पीसें। शुद्ध गंधक, पिप्पली चूर्ण, काली मिरच का चूर्ण, सुहागे की खील एक २ भाग लें। सबको एकत्रपीस कर जल में आधी रस्ती या चौथाई रस्ती भर की गोलियां बनालें ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ इसका नाम मृत्युञ्जयरस है यह वात ज्वर को नाश करता है तथा फेफड़े की सृजन (जो निमोनियां में हो जाती है) को नाश करता है ॥ ६९ ॥ प्रवाहिका को तथा विविध ज्वरों को नाश करता है। आध्मान तथा अजीर्ण से युक्त सन्निपात को दूर करता है ॥ ७० ॥

अदरक के रस से पीसना अन्य शास्त्रों में लिखा होने पर

भी अपना अनुभूत है तथा निमोनियां आदि पर लाभ देता है इसीलिये यह बात यहां लिखी है ।)

मृत्युंजयरस का आमयिक प्रयोग

जब मुंह का रंग लाल हो, ज्वर प्रबल (१०३ से अधिक अंश वाला) हो, श्वास उर्व्वग तथा कास कष्ट से हं रहे हों, ऐसे फुफ्फुसशोथ (निमोनिया) में प्रथम तथा दूसरे दिन इस मृत्युंजय रस को देना चाहिए ॥ ७१ ॥ इसी मृत्युंजयरस के लगातार सेवन से तीव्र ज्वर वेग सहित वृमि-रोग नष्ट होता है । यदि उसमें आध्मान तथा अजीर्ण हों तो वे भी दूर होते हैं ॥ ७२ ॥ विविध प्रकार की सूजन से हुए २ अथवा हृदय के आवरण की सूजन से हुए २ ज्वरों के आरंभ-काल में मृत्युंजय देने से सूजन और ज्वर नष्ट हो जाते हैं ॥ ७३ ॥ नये ज्वर, अजीर्ण तथा अपारा से युक्त तथा इनमें सन्निपात ज्वर को भी यह मृत्युंजय रस नींबू के स्वरस के साथ सेवन किया हुआ अवश्य शीघ्र नाश करता है ॥ ७४ ॥ मृत्युंजयरस को नींबू के रस के साथ सेवन करें तो गौरथ (शरीर का भारीपन) अरुचि, आमसहित या आमरहित विषम-ज्वर को नाश करता है ॥ मृत्युंजय रस को पिप्पली चूर्ण तथा मधु के साथ मिलाकर सेवन करें तो नवज्वर को तथा जीर्णज्वर को भी नाश करता है ॥ ७६ ॥ उस औपसर्गिकमेह (सूजाक या गनोरिया) को भी आरंभावस्था में यह रस नाश करता है जिसमें मूत्रेन्द्रिय का अगला भाग सूज गया हो लाल रंग का हो तथा दाह होता हो ॥ ७७ ॥ (खाने से शोथ अवश्य कम होगा पहले मधु से दें । बाद में चन्दन तेल आदि भी देते रहें ।)

हिङ्गुलेश्वर रस

शुद्ध विष २ तोला, शुद्ध हिङ्गुल २ तोला, पिप्पली का चूर्ण २ तोला लें। सब को जल से पीसकर डेढ़ यव भर की गोली बना लें ॥ ७८ ॥ इसे ही हिङ्गुलेश्वर रस कहते हैं। यह आम-वात को तथा वातज्वर को नाश करता है ॥ ७९ ॥

हिङ्गुलेश्वर रस का आमयिग प्रयोग

हिङ्गुलेश्वर रस को सेवन करने से तीव्र ज्वर, अंगमर्द (अंगडाइयाँ का आना तथा अंगों की पीड़ा होना), संधिशूल सहित आमवात का शीघ्र नाश होता है ॥ ८० ॥ इस रस के सेवन से वह भयंकर वातज्वर भी नष्ट होता है जिसमें शीत, कम्प, अंगमर्द, तथा शिरः पीड़ा होती हो ॥ ८१ ॥ इस रस के सेवन करने से नवज्वर, जीर्णज्वर, सविरामज्वर, (रुक २ कर फिर आने वाला ज्वर) ये सभी नष्ट होते हैं ॥ ८२ ॥

पञ्चामृत रस

शुद्ध विष १ तोला, शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक १ तोला, मिरच का चूर्ण ३ तोला, सुहागा ३ तोला लें ॥ ८३ ॥ सब को पीसकर जल में एक रत्ती की गोली बना लें। इसे पञ्चामृत रस कहते हैं ॥ ८४ ॥ विविध कारणों से होने वाले विविध स्थानों के शोथ को जिसमें ज्वर तथा अतिसार भी हो यह रस शीघ्र दूर करता है ॥ ८५ ॥ जलोदर, शिरः शूल, पीनस, गलग्रह, नासारोग, कण्ठरोग तथा कफ के रोगों को नाश करता है ॥ ८६ ॥

इसका आमयिक प्रयोग

यह पञ्चामृतरस पुनर्नवा के क्वाथ से या अदरक के स्वरस से सेवन करें तो विविध कारणों से होने वाले सर्वांगशोथ को

शीघ्र ही नाश करता है ॥ ८७ ॥ अदरक के स्वरस के साथ यह रस यदि सेवन किया जाये तो जैसे मेघ मे निकली हुई बिजली वृक्षों को नष्ट कर देती है उसी प्रकार से यह भी शिरः शूल को शीघ्र ही नाश कर देता है ॥ ८८ ॥

शिवताण्डव रस

शुद्ध विष १ तोला, रसमिन्दूर १ तोला, शुद्ध हड़ताल १ तोला, शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक १ तोला ॥ ८९ ॥ मिरच चूर्ण ४ तोला लें । पहले कज्जली बनाले फिर सब को मिलाकर अदरक के स्वरस से एक २ रत्ती की गोली बना लें । इसे ही शिवताण्डव रस कहते हैं ॥ ९१ ॥ इसे सेवन करने से वह सन्निपात भी नष्ट होता है जिसमें दांत भिच गये हों, सारा शरीर भीगा सा प्रतीत होता हों आँखों की पुतलियां चढ़ (अपने स्थान से हिल) गयी हों, अपने २ विषयों को इन्द्रियां ग्रहण न करती हों ॥ ९२ ॥

आनन्द भैरव रस

गौ के मूत्र से शुद्ध किया हुआ विष, पिप्पली चूर्ण, मिरच चूर्ण, मुहागा, शुद्ध हिंगुल प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लेकर जल से पीसकर आधी रत्ती की गोली बना लें ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ इससे प्रवाहिका शान्त होती है, पूयमेह (की केवल सूजन) को नाश करने में परमोत्तम है । ज्वरातीसार को नाश करने में यह रस उत्तम है । इसका नाम आनन्दभैरव है ॥ ९५ ॥

(पूयमेह या सूजाक वाले को दें तो लिंगेन्द्रिय की सूजन को ही नाश करेगा । शेष चिकित्सा चन्दन तैलादि से शीतल तथा

मूत्रकारक दवा से करनी चाहिये। इसी रस का प्रयोग प्रायः संप्रहणी आदि में श्री पंडितवर यागेश्वरजी वैद्य हरिद्वार वाले किया करते थे। इसी रस का दूसरा फारसी का नाम रखकर एक लाहौर के वैद्य इससे सेरों दूध घी पचाने का विज्ञापन देकर प्रसिद्ध हुए हैं।)

आनन्द भैरव का आमयिक प्रयोग

आनन्दभैरव सेवन करने से उस पूयमेह को (सूजाक को) शीघ्र ही लाभ होता है जिसमें शिशन का अगला भाग सूज गया हो तथा लाल हो गया हो, साथ ही उसमें दाह तथा खुजली होती हो ॥ ६६ ॥ ज्वर से होने वाला अतिसार और अतिसार से होने वाला ज्वर जिसका तापमान भी बहुत अधिक (१०३ से ऊपर) हो तथा जिसका वेग भी प्रबल हो, इस आनन्द भैरव के सेवन से दूर होता है ॥ ६७ ॥ कफ वात जनित प्रवाहिका में, जिसमें अजीर्ण, शूल (अथवा अजीर्ण जनित शूल), प्रबल ज्वर भी हों, उसके ज्वर की शान्ति के लिये इस आनन्दभैरवरस को जामुन के पत्तों के स्वरस आदि के साथ देना चाहिये ॥ ६८ ॥

जयावटी

शुद्ध विष, हल्दी, सोंठ, मिरच, पीपल, विडंग, नीमपत्र, मोथा इन सब का चूर्ण समान २ भाग लें। फिर जयन्ती की जड़ के चूर्ण को सब के समान ले लें ॥ ६९ ॥ इस सारे चूर्ण को घोटकर जल से दो रत्ती की गोली बना लें। इसे जयावटी कहते हैं ॥ १०० ॥ यह जयावटी विशेष करके प्रमेह, कास, पाण्डुरोग को नाश करती है। नवज्वर को नाश करने में अति उत्तम है तथा रक्तपित्त को नाश करती है ॥ १०१ ॥

जयावटी का रोगों पर प्रयोग

जयावटी चन्दन के क्वाथ से सेवन करें तो ज्वरयुक्त रक्तपित्त को तुरन्त ही दूर करती है ॥ १०२ ॥ जयावटी को खिरेंटी की जड़ के क्वाथ से सेवन करें तो जत्रुसंधि के ऊपर को गरदन की श्वी नाड़ी के शूल को नाश करती है ॥ १०३ ॥ जयावटी को मोथा, इन्द्र जौ, सोंठ, इनके क्वाथ से सेवन करें तो अतिदारुण ज्वरयुक्त ग्रहणी को आराम करती है ॥ १०४ ॥ जयावटी को पित्तपापड़े के क्वाथ से सेवन करें तो भयंकर पित्तज ज्वर को दूर करती है ॥ १०५ ॥

(नोट—जयावटी योगवाही है। यह अनुपान भेद से अनेकों अन्य रोगों को भी दूर करती है। अधिक विस्तार से अन्य ग्रन्थों में लिखा हुआ है ही, वहां देखें।)

कफकेतू रस

गोमूत्र से शुद्ध किया हुआ विष १ तोला, पिप्पली चूर्ण १ तोला, शंख भस्म १ तोला, सुहागा १ तोला (सब को एकत्र पीसकर अदरक के स्वरस से तीन दिन पीस लें। फिर यत्न से आधी रत्ती की गोली बनावें ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ इसका नाम कफकेतुरस है। यह प्रतिश्याय, खांसी, कण्ठरोग, गलग्रह, कर्णरोग, प्रतमक श्वास इन सब को नाश करने में विशेष प्रभाव रखती है ॥ १०८ ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

कफकेतुरस को अदरक के स्वरस तथा शहद से मिलाकर सेवन करें तो तीन दिन के सेवन से यह वातज तथा वात कफज

प्रतिश्याय (जुकाम) को दूर करता है । साथ ही उसमें होने वाली तीव्र तथा शीघ्र पीड़ा (क्षण २ नाक में कष्ट होना), अंगों की स्तब्धता (जकड़ा होना), खांसी, ज्वर होना आदि उपद्रवों तथा लक्षणों को भी शीघ्र शान्त करता है ॥ १११ ॥ इसी प्रकार सेवन करने से यह सन्निपात ज्वर में उत्पन्न हुए २ गलग्रह को तथा कान के व्रण के कारण होने वाले भयंकर ज्वर को भी नाश करता है ॥ ११२ ॥ नवज्वर और प्रतिश्याय को नाश करता है । प्रथमक श्वास को शीघ्र ही नाश करता है ॥ ११३ ॥

विष रसायन

गोमूत्र द्वारा शुद्ध किया हुआ वत्सनाभ विष १ तोला, रसलिन्दूर १ तोला, शुद्ध हिंगुल १ तोला, रजत भस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, परन्तु पारेगंधक से बनाई हुई (देखो १७ तरंग छटी मारण विधि) हो, लें । सोंठचूर्ण, मिरच चूर्ण, पीपली का चूर्ण मिलित ४ तोला, दारचीनी, तेजपात, इलायची तथा नागकेसर का मिलितचूर्ण ४ तोला, चीते का चूर्ण ४ तोला लें ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ सब को एकत्र करके जल से पीसकर दो रत्ती की गोलियां बना लें ॥ ११६ ॥ इसे ही विष रसायन कहते हैं । यह बलदायक, वर्णकारक, परमवृष्य, नानारोगनाशक है ॥ ११७ ॥ यदि इस रस को दो मास तक निरन्तर सेवन करें तो मनुष्य की दृष्टि दिव्य हो जाती है, शरीर की लंबाई निश्चित रूप से बढ़ जाती है ॥ ११८ ॥ अग्निदीप्त होती है, यकृत तथा सीहा दूर होती है । अजीर्ण, आनाह का नाश होता है तथा निश्चय ही शूलनाश होता है ॥ ११९ ॥ यदि जीवन सफल करना हो, ललनाओं से बिहार करना हो, यौवन की बहारें

लूटनी हों तो इस विष रसायन को सेवन करना चाहिये ॥१२०॥

अमृत रसायन

गोमूत्र से भावित किया हुआ विष २ तोला, आंवले के स्वरस में १०० बार पुट देकर भस्म किया हुआ कान्तलोह २ तोला, अभ्रकभस्म २ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ तोला, स्वर्ण सिन्दूर २ तोला, चांदीभस्म २ तोला, बंगभस्म २ तोला, कत्था चूर्ण ३ तोला, सोंठचूर्ण ३ तोला लें ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ सबको एकत्र करके धीकुमार के स्वरस से घोटकर दो २ रत्ती की गोलियां बनालें ॥ १२२ ॥ इसे ही अमृतरसायन कहते हैं । यह उत्तम रसायन नाना रोगों को शान्त करती है ॥ २१४ ॥ यह सुन्दर रसायन अग्निदीपन, तथा परमवृंहण है । बल को उत्पन्न करती है तथा रतिशक्ति को बढ़ाती है ॥ १२५ ॥ कास, आस, राजयक्ष्मा को नाश करने में श्रेष्ठ है । विशेष करके शुक्र के पतलेपन तथा क्लीवता (नपुंसकता) को नाश करती है ॥ १२६ ॥ अतीसार, ग्रहणी, अग्निमांद्य, कुष्ठ तथा त्वंचा के रोगों को नाश करने में परम श्रेष्ठ है ॥ १२७ ॥ अत्यन्त सन्तान देने वाली तथा ओज (Albumin एलब्यूमन) धातु को बढ़ाने में परमश्रेष्ठ है । धैर्य तथा स्मृति देने वाली है, नाना प्रकार के प्रमेहों को नाश करती है ॥ १२८ ॥ यौवन की बाटिका में रति के पुष्पों के चुनने की इच्छा से विहार करने वाले कामुक पुरुषों को यह रसायन सेवन करनी चाहिये ॥ १२९ ॥ इस दिव्य रसायन की दो रत्ती मात्रा को धी, खांड तथा शहद से मिलाकर एक वर्ष तक लगातार सेवन करें तो बुढ़ापे को दूर करती है, अति बड़े

हुण कफ को नाश करती है तथा प्रौढ़ा नारियों को प्रसन्न करने के योग्य पुरुष को बना देती है ॥ १३० ॥

अथ विष के प्रयोग

त्रिकुटचूर्ण तथा ताम्रभस्म के साथ विष को सेवन करें तो वातशूल तथा भयंकर गुल्म का नाश होता है ॥ १३१ ॥ मलट्टी, कमल की जड़ (भिस) लाग्व तथा खस के साथ विष को सेवन करें और ऊपर ताण्डुलोदक पीवें तो वह रक्तपित्त को नाश करने में परमोत्तम है ॥ १३२ ॥ वच, चन्दन, लोध, विष, सब को मिलाकर शहद से सेवन करें तो जीर्णज्वर को विशेष करके नाश करता है ॥ १३३ ॥ शतावर, विदारीकन्द, दाख, कौंच के बीज सब का चूर्ण ३ माशे विष १ रत्ती का आठवां भाग इनको मधु से मिलाकर चाटें तो वीर्य उत्पन्न करने में परम श्रेष्ठ है ॥ १३४ ॥ हल्दी, गोखरू, दाख इनके समभाग चूर्ण करके ६ माशे लें, विष १ रत्ती का आठवां भाग मिलाकर खायें, ऊपर से गोखरू का काड़ा पीवें तो मूत्रकृच्छ्र शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १३५ ॥ त्रायमाण मकोय की जड़, कत्था, अम्लतास इनके क्वाथ के साथ विष का सेवन किया जावे तो कुष्ठ का नाश होता है ॥ १३६ ॥ पापाणभेद, शिलाजीत, यवक्षार इनके चूर्ण को १ माशा लें, विष १/४ रत्ती मिलाकर सेवन करें तो अतिदारुण पथरी को भी नाश कर देता है ॥ १३७ ॥ सर्जीक्षार, त्रिकूटचूर्ण, शुद्ध विष मिलाकर सेवन करें तो यह गुल्मनाश करने में परम श्रेष्ठ है ॥ १३८ ॥ विडंग, अनार की जड़, सौंफ से युक्त शुद्ध विष को सेवन करें तो भयंकर कृमिरोग भी शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १३९ ॥ यवक्षार, सर्जी सुहागा, सरफोंका, पिप्पलामूल, विष सब को

मिलाकर उचित मात्रा में नित्य सेवन करें तो सीहा को नाश करता है ॥ १४० ॥

विष का बाह्य प्रयोग

शुद्ध विष १ भाग, खांड १ भाग, बिजौरे नीबू के स्वरस से पीसकर आंखों में लगायें तो नये काच (मोतियाबिंद) को दूर करता है ॥ १४१ ॥ हल्दी, दारु हल्दी, पिप्पली, विष, काला अंजन सबको समान भाग लेकर पीस लें और आंखों में लगायें तो नये २ मोतियाबिंद (काच) को अवश्य ही नाश कर देता है । (इससे दो सप्ताह में ही दिखाई देने लग जाता है ।) ॥ १४२ ॥ आंचले के स्वरस में २१ बार विष को भावित कर लें । इस विष को एक भाग, शुद्ध किया हुआ शंख का चूर्ण एक भाग लें । दोनों को पीसकर आंखों में अंजन करें तो भयंकर तिमिर रोग को नाश करता है । (तिमिर ही बिड़ कर काच या मोतियाबिंद बन जाया करता है) ॥ १४३ ॥

गौ के मूत्र में सात बार भावित किया हुआ विष १ भाग, पिप्पली चूर्ण एक भाग दोनों को आंखों में लगाने से काचरोग का नाश होता है ॥ १४४ ॥ अत्यन्त सूक्ष्म पिसे हुए हीरे का चूर्ण १ भाग, गोमूत्र में भावित विष १ भाग दोनों को नारी के दूध में पीसकर आंखों में लगायें तो काच का नाश होता है ॥ १४५ ॥ कनेर, करंज, आक, नीम के पत्ते, हल्दी, लाल-चंदन, मंजीठ, सतौना (सप्तपर्ण) की छाल, वच, चमेली के पत्ते, विष, हड़ताल, मर्नासल इन सबको समभाग लें पीस लें । इस लेप को कुष्ठ के त्रणों पर लेप लगायें तो उनको अच्छा करता है ॥ १४७ ॥ विष को अत्यन्त थोड़ी मात्रा में अदरक के

रस के साथ धिसकर कान में डालें तो कान में डालते ही कर्णशूल को तुरन्त नाश करता है ॥ १४८ ॥ भांगरे के स्वरस में विष को भावित कर लें, फिर उसे केले के कंद के स्वरस से मिलाकर यदि आंख में डालें तो उसे पुष्प (फोले) का नाश करता है जो बहुत पुराना न हो गया हो ॥ १४९ ॥ इसी भांगरे से भावित किये हुए विष को यदि भांगरे के स्वरस के साथ मिलाकर आंखों में लगावें तो रात्र्यंध (रतौंधी, अंधराता) को नाश करता है ।

यदि विष के लगाने के बाद आंखों में विष की तीक्ष्णता के कारण जलन आदि होती हो तो (दो तीन मिनिट के बाद) जल से आंखों को बार २ सींचे । इससे उसकी आंखों की जलन आदि दूर हो जायगी ॥ १५० ॥

विषप्रभा वक्तिका

हल्दी के स्वरस में पीसा हुआ विष १ तोला लें, भांगरे के स्वरस में शुद्ध की हुई मनसिल १ तोला लें । शंख को सूक्ष्मचूर्ण करके १ तोला लें । समुद्रफेन, सेंधालवण, पिप्पली, हरड़, लोध, हल्दी, बहेड़े की बीज की गिरी, करंजुम के बीज की गिरी, वृक्षाम्ल (या कोकम नाम की खटाई), कालीमिरच, मजीठ, लालचंदन, इन सब द्रव्यों के चूर्ण को पृथक् २ एक २ तोला लेकर एकत्र करें और बकरी के दूध से पीस लें ॥ १५३ ॥ इन की सुन्दर वक्तियां बनाले । इनका नाम विष प्रभावक्तिका है ॥ १५४ ॥ यह वक्ती जल से पीसकर आंखों में लगावें तो आंखों के शुक्लार्म, मांसपिल्ल आदि रोगों को शीघ्र नाश करती है ॥ १५५ ॥ सिरस के पत्तों तथा फूलों के साथ शुद्ध विष को सेवन करें तो चूहे के विष को विशेष करके नाश करता है

॥ १५६ ॥ केले के कंद के स्वरस से शुद्ध विष को घी से मिला कर बार २ खावें तथा लेप करें तो सांप के विष को नाश करता है ॥ १५६ ॥ यदि विष को अत्यल्प मात्रा में (१/१६ रत्ती मात्रा में) गौ की छाछ (तक्र) के साथ मिलाकर पिलावें तो चूहों के विष को नाश करता है ॥ १५८ ॥ विष को तिलों के तेल से मिलाकर घिसें। इस लेप को लगावें तो भयंकर बिच्छू की पीड़ा को नाश करता है ॥ १५९ ॥ आक के दूध से अत्यल्प मात्रा (१/१६ रत्ती मात्रा) में विष को पीसकर लेप करें तो सभी प्रकार की मकड़ियों के भयंकर विष को दूर करता है ॥ १६० ॥ कूठ, छोटी इलायची, बावची, जटामांसी, देवदार, तगर, विष, इनको सम भाग लेकर कूट पीसकर खावें भी तथा जल से लेप भी लगावें तो सभी प्रकार के विषों को दूर करता है ॥ १६१ ॥ प्रसिद्ध विष गर्भ तैल की यदि नित्य मालिश की जाये तो मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, पक्षाघात, अंगों का जकड़ा जाना, सर्वांगग्रह, पीठ, त्रिकसंधि के कम्प को नाश करता है तथा विशेष करके सभी वायु की पीड़ाओं को नाश करता है ॥ १६३ ॥

विष गर्भ तेल बनाने की विधि

धतूरे के पत्तों का स्वरस २० पल (२ सेर) ले। कांजी ८ प्रस्थ (१२ सेर १२ छटांक ४ तोला) लें। तिल का तेल भी ८ प्रस्थ लें। कल्कार्थ, कुष्ठ, वच, प्रत्येक १५ कोल (१५ तोला), हियावली, (अभावे चाक) मिर्च ६ शाण प्रत्येक (४॥ तोला) लें। विष ६ शाण (३ तोला ले), धतूरे के बीज तथा सेंधालवण प्रत्येक २७ शाण (१३॥ तोला) लें। तैल विधि से पाक कर लें। यह लघु विषगर्भ तेल कहाता है। इससे पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, पृष्ठकम्प, त्रिककम्प, शिरःकम्प,

सर्वांगग्रह आदि रोग नष्ट होते हैं। इससे भी अधिक गुणवाला महाविषगर्भ तैल है। वाताधिकार में देखें। एक विष तैल कुष्ठधिकार में भी है उसे सेवन करने से सब प्रकार के कुष्ठनाश होते हैं।

अथ उपविषों के नाम लिखते हैं

कुचला, अहिफेन (अफीम), जसालगोटा, धनूरे के बीज, भांग, रत्तियां, भिलांवा, आक का दूध, थोहर का दूध, लांगली, कनेर ये सब उपविष कहाते हैं ॥ १६५ ॥

अथ विषतिन्दुक कुचले के नाम

कुचेलक, कुचेल, कुचिला, कुचिल, विषतिन्दु, तिन्दु, तिन्दुक, विषतिन्दुक ॥ १६६ ॥ कारस्कर, रम्यफल, कुपाक, विषमुष्टिका, विषमुष्टि, कालकूट ये सब नाम कुचले के हैं ॥ १६७ ॥

विषतिन्दुक का परिचय

यह शिखीजातीय वृक्ष है। इसका काण्ड (तना) टेढ़ा तथा मोटा होता है। काण्ड की छाल राख के से रंग की होती है ॥ १६८ ॥ पत्ता प्रायः गोल होता है, चिकना होता है तथा अखण्डित अर्थात् बिना कटा होता है। पत्रवृन्त हरे रंग का, नसें उभरी हुई, तथा छोटा होता है ॥ १६९ ॥ फूल छोटे श्वेत तथा कुछ हरे से, कोमल होते हैं। फल नारंगी के से रंग का चिकना, सुन्दर तथा गोल होता है ॥ १७० ॥ फल के भीतर की मज्जा श्वेत, कोमल होती है। उसका बीज गोल तथा रोपंदार होता है। चिकित्सा में बीज का ही प्रयोग किया जाता है ॥ १७१ ॥ ये कुचले के पेड़ कोंकण, वंग, दक्षिण देश में विशेष करके होते हैं। कहीं २ अन्य देशों में भी पाये जाते हैं ॥ १७२ ॥

विष तिन्दुक का प्रथम शोधन प्रकार

कुचले के बीज कांजी में डालकर तीन दिन भिगो रखें। फिर बाहिर की त्वचा को प्रयत्न से उतार कर दूर करें ॥ १७३ ॥ शेष बीज को धूप में सुखाकर चूर्ण करले। इस प्रकार से कुचला सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥ १७४ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

कुचले के बीजों को तवे पर डाल, गौ के घी में तब तक मन्दाग्नि से भूनें जब तक बाहिर की त्वचा कुछ भूरी (लात) न हो जाये। इस प्रकार कुचला शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है ॥ १७५ ॥

तृतीय शोधन प्रकार

कुचले के बीज एक कपड़े की पोटली में बांधकर दोलायंत्र द्वारा गौ के दूध में तीन घंटे स्वेदन कर लें। इस प्रकार कुचला शुद्ध हो जाता है। इस शुद्ध हुए २ कुचले को निश्शंक होकर प्रयोग करें ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

विषतिन्दुक के गुण

विषतिन्दुक (कुचला) उष्णवीर्य है, कटुरसवाला, परम-अग्निदीपक है। उग्रवीर्य है, इसका सारतीक्ष्ण होता है, उत्तम कामोद्दीपक है ॥ १७६ ॥ यह अम्लपित्त को शान्त करता है, मूत्र लाता है तथा भूख बढ़ाता है। पाचन है कफनाशक तथा बल को बढ़ाने में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १८० ॥ मेदनाशक, रुचिकारक, कुत्ते के विष को नाश करने वाला, अत्यन्त ग्रहणी नाशक तथा उन्माद को नाश करने वाला है ॥ १८१ ॥ आध्मान को नाश करने में श्रेष्ठ है, अजीर्ण को दूर करता है, आमाशय

में उन्मत्त हुए २ शूल को नाश करता है तथा हृदय की निर्बलता को नाश करने में परम श्रेष्ठ है ॥ १८२ ॥ आस को शान्त करता है, पुण्ड्रिक की सृजन (निमोनिया) को दूर करता है । अर्धांग तथा अर्दित वात को नष्ट करता है, तथा नाड़ियों के बल को बढ़ाता है ॥ १८३ ॥ अशुद्ध सीसे के खाने से जो अर्धांगवान हो जाये अथवा अं । विशेष में वात हो जाये तो उसे भी यह कुचला नाश करता है । मदात्यय से होने वाले अर्धांग वात या एकांगवत को भी नाश करता है । परन्तु इसे ऐसे पक्षाघात रोग में नहीं देना चाहिये जिसमें मांसपेशियां सूख गयी हों, जो नया हो तथा पेशियां कठिन हो गयी हों और जिसमें स्पर्श का अनुभव प्रतीत न होता हो ॥ १८४ ॥ मदात्यय, नाड़ीशूल, अनिद्रा, बवासीर के मस्से इन सब रोगों को अत्यन्त नाश करता है ॥ १८५ ॥ राजयक्ष्मा के रोग में जो रात को पसीना आता है उसे यह कुचला दूर कर देता है । मानसिक थकान के कारण हुए २ अवसाद (शिथिलता) को यह दूर करता है ॥ १८६ ॥ अनिद्रा से हुए २ अजीर्ण को यह नाश करता है । दूध को पचाता है । अर्धावमेदक शिरः शूल को नाश करता है, श्रम को तथा खांसी को दूर करता है ॥ १८७ ॥

आगे कहे हुए रोगों में यदि लिखे हुए लक्षण मिलते हों तो इस शुद्ध कुचले को अति स्वल्पमात्रा में बार २ प्रयोग करना चाहिये ॥ १८८ ॥ रोगियों की विशेष २ कारणों से होने वाली निर्जन देश में रहने की इच्छा में तथा अत्यन्त क्रोधीपन में यदि कुचले का प्रयोग करें तो लाभ होता है ॥ १८९ ॥ खट्टे, कड़वे रसवाले डकारों को यह नाश करता है । श्रम के कारण हुई २ ऐसी मलबद्धता (कब्ज) को नाश करता है जिसमें

चित्त भी दुबल हो गया होता है ॥ १६१ ॥ भोजन खालेने के बाद उस नये या पुराने आध्मान को यह शीघ्र नाश करता है, जिसमें कि मुंह का स्वाद अत्यन्त खटा हो ॥ १६२ ॥ इसके सेवन से ऐसा अन्त्रशूल नष्ट होता है, जो अम्लपित्त से उत्पन्न हुआ हो, जिसमें चित्त का अवसाद हो तथा भयंकर अपारा रहता हो ॥ १६३ ॥ यह ऐसी मलवद्धता (कब्ज) को दूर करता है जिसमें बड़े कष्ट से थोड़ा २ मल निकलता है, परन्तु सलत्याग की हर घड़ी इच्छा रहती है तथा बार २ वेदना होती है ॥ १६४ ॥ यह ऐसे मूत्ररोध को दूर करता है जिसमें मूत्र करने की इच्छा तो बार २ होती है परन्तु मूत्र अत्यल्प निकलता है । मूत्र करते समय दाह तथा वेदना भी होती है ॥ १६५ ॥ कुचले को उस रजःस्राव में देने से शीघ्र लाभ होता है जो समय से पहले ही आजाता हो, जो पुराना हो गया हो तथा जिसमें रक्त अधिक मात्रा में निकलता हो ॥ १६६ ॥ इसे उस श्वेत प्रदर में भी देना चाहिये जिसमें कि वेदना (पीड़ा) होती हो तथा पीले रंग का दुर्गन्धित स्राव निकलता हो ॥ १६७ ॥ यह शुद्ध कुचला उस पीठ की तथा कमर की पीड़ा को शीघ्र दूर कर देता है जो रात को सोते हुए बढ़ जाती है ॥ १६८ ॥ यह कुचला उस नये प्रतिश्याय (जुकाम) को विशेष करके नाश करता है जिसमें दिन को तो नाक बहती हो पर रात को नाक न बहती हो ॥ १६९ ॥ यह कुचला उस पित्तजन्य श्वास को भी दूर करता है जो भोजन करने के पीछे उत्पन्न होकर कष्ट देता है । इस कुचले के सेवन से लगातार होने वाला आंख की बर्तों (पलकों) का फड़कना भी दूर होता है ॥ २०० ॥ यह कुचला उस भयंकर उदरामय (दस्तों) को भी नाश करता है जो रात के जागने से

उत्पन्न होता है तथा अति अधिक भोजन करने से उत्पन्न होता है, जिसमें प्रातःकाल दस्त अधिक आते हैं, पेट में शब्द होता है तथा प्यास लगती है ॥ २०१ ॥ जिसमें दस्त का रंग लाल होता है तथा कभी घन (गाढ़ा या कठोर) होता है कभी पानी की तरह पतला होता है ॥ २०२ ॥ यह कुचला उस गुदामय (ववासीर, अर्श) को भी दूर करता है जिसमें बार २ मलत्याग की इच्छा होती है पर मल बड़े कष्ट से थोड़ा २ बाहर निकलता है ॥ २०३ ॥

इन पूर्वलिखित रोगों में शुद्ध कुचले की मात्रा अत्यल्प रूप (१/१४ से १/१६ रत्ती तक के रूप) में ही देनी चाहिये ।

विष तिन्दुक की मात्रा

१/४ रत्ती से १ रत्ती तक शुद्ध कुचले की मात्रा अधिक से अधिक है ॥ २०४ ॥

विष तिन्दुक का आमयिक प्रयोग

नवजीवन रस

शुद्ध कुचला दो तोला, लोहभस्म दो तोला, रत्नसिन्दूर २ तोला, सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पीपल चूर्ण सब को सम भाग लेकर मिलित चार तोला लें । इन सब को अदरक के स्वरस में घोटकर एक २ रत्ती की गोलियां बना लें ॥ २०६ ॥ इसे नवजीवनरस कहते हैं । यह क्योंकि नया जीवन देता है इसीलिये इसे नवजीवन कहते हैं ॥ २०७ ॥ यह अग्निदीपन, पाचन है तथा बल को अत्यधिक बढ़ाता है ॥ ज्ञानवहा तथा चेष्टावहा नाड़ियों के बल को बढ़ाता है । रतिशक्ति को बढ़ाता है ॥ २०८ ॥ अन्त्रशूल को हरता है, आध्मान को नाश करता

है, मलबन्ध (कब्ज) को तथा अतीसार को, दोनों को नाश करता है ॥ २०६ ॥ सिर की अर्धावभेदक (आधासीसी) पीड़ा को नाश करता है, रक्त को अत्यन्त बढ़ाता है। शूल को दूर करता है तथा मानसिक परिश्रम से होने वाली (अवसाद) थकान को दूर कर देता है ॥ २१० ॥ (यह रस ताकत बढ़ाने के लिये उत्तम है ।)

अग्नि तुण्डी रस

शुद्ध विष १ तोला, श्वेत जीरे का चूर्ण १ तोला, हरड़ चूर्ण १ तोला, बहेड़ा चूर्ण १ तोला, आंवला चूर्ण १ तोला, शुद्ध पारा १ तोला, शुद्ध गंधक १ तोला, बिडंग चूर्ण १ तोला ॥ २११ ॥ सौचलनसक, सामुद्रलवण, सुहागा, सेंधालवण, सजीखार, जौखार, चीता, अजवायन इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें। पहले पारागंधक की कज्जली बना लें। फिर अन्य द्रव्य मिलालें। फिर सब के समान भाग शुद्ध कुचले का चूर्ण डालें। सब को एकत्र करके जम्बीरी नीबू के स्वरस से घोट लें ॥ २१२ ॥ फिर एक २ रत्ती की गोलियां बना लें। इसका नाम अग्नि तुण्डी-रस अति अग्निदीपन तथा परम पाचन है। अग्निमंदता को नाश करता है तथा ज्ञानबहा, और चेष्टाबहा नाड़ियों के बल को बढ़ाता है ॥ २१५ ॥ गुदामय (अर्श) तथा अतिसार को नाश करता है। कटि तथा पीठ की वातजपीड़ा को नाश करता है ॥ २१६ ॥

लक्ष्मी दिलास रस

शुद्ध कुचला ६ तोला, सुहागे की खील ६ तोला, मिरच चूर्ण ६ तोला, लोहभस्म ४ तोला, गंधक २ तोला, शुद्ध पारा १ तोला ।

सबको विधिपूर्वक (पहले वज्रली बना ले फिर अन्य पदार्थ डाले) मिलाकर घोट लें । इसमें अदरक का रस डालकर खरल करें ॥ २१८ ॥ शतावर, भुइआंवला, भांगरा इनके स्वरस से क्रमशः भावना देवे । फिर एक २ रत्ती की गोलियां बना लें ॥ २१९ ॥ यह लक्ष्मीविलासरस है । यह जवानी की लक्ष्मी को अत्यधिक मात्रा में देता है ॥ २२० ॥ जो रोग से निर्बल शरीर हो गये हैं, जो कृश तथा क्षीणवीर्य हैं, उनके देह को पुष्ट करता है तथा वीर्य को बढ़ाता है ॥ २२१ ॥ बल वर्ण को बढ़ाता है, वीर्यवर्धक है, अग्निमांद्य नाशक है, रक्तवर्धक तथा सौंदर्य को बढ़ाता है ॥ २२२ ॥

शूल निर्मूलन रस

सोंठचूर्ण, मिरचचूर्ण, पीपलीचूर्ण, शुद्धगंधक, मिरच चूर्ण, शंख भस्म, सेंधालवण, रंससिंदूर, जीराचूर्ण, अम्लवेत चूर्ण ॥ २२३ ॥ सब द्रव्य एक २ भाग लें । सब के मिले हुए चूर्ण से आधा भाग शुद्ध कुचले का चूर्ण लें । सब को चूर्ण कर अदरक के स्वरस से घोट लें ॥ २२४ ॥ एक २ रत्ती की गोलियां बनालें । यह रस शूलनिर्मूलन नाम से कहा जाता है ॥ २२५ ॥ यह दीपन, पाचन तथा अग्निमांद्य नाशक है । अतिसार, ग्रहणी तथा विपूची को नाश करता है ॥ २२६ ॥ बल, वर्णकारक, वृष्य, गुल्मरोग को नाश करने वाला है । इस रस को शूल के नाश करने में अनेक बार सफल होते देखा है ॥ २२७ ॥ (शूल नाश करने में यह अमोघास्त्र है । शूल चाहे किसी स्थान का हो)

सुप्तिवातारि रस

शुद्ध कुचला एककष (दो तोला) लें, समान भाग पारे तथा

गंधक से बनायी हुई कज्जली दो तोला लें ॥ २२८ ॥ सोंठचूर्ण, मिरचचूर्ण, तथा पीपली वा चूर्ण मिलित ४ तोला लें । सबको एकत्र घोट लें । फिर निगुण्डी के रस से सात बार भावना दें । फिर ढाक के बीजों के रस (या तेल) से सात बार भावना दें । फिर दो दो रत्ती की गोलियां बना लें । यह मुन्निवातारिरस अंगों के सो जाने अर्थात् स्पर्श शून्यता को नाश करता है ॥ २२६ ॥ २३० ॥

सारमेय विपापह योग

शुद्ध कुचले के बीज को प्रतिदिन सेवन करें । तो एक मास के निरन्तर प्रयोग से कुत्ते के विष को नाश कर देता है ॥ २३१ ॥ (इसे क्रम २ से बढ़ाकर खाने से लाभ होता है ।)

विपतिन्दुक का वाद्य प्रयोग

विपतिन्दुक तेल

कुचले के शुद्ध किये हुये बीज एक तोला, तिलों का तेल आठ तोला लें । दोनों को मिला कर तब तक पकावें जब तक इन का रंग लाल न होजाये यह सुन्दर विप तिन्दुक का तेल कहाता है ॥ २३३ ॥ इस विप तिन्दुक तेल को लगातार अंगों पर मालिश किया जाये तो पक्षाघातदि रोगों को निश्चित नाश करता है ॥ २३४ (इस तिले की मालिश म लिंगों के वक्रता, कृशता, शून्यता आदि दोष भी नाश हो जाते हैं ।)

अथ अहिफेन के नाम

अहिफेन, अफेन, निफेन, अहिफेनक, अफूक, फणिफेन, नागफेन ये सभी नाम अफीम के हैं ॥ २३५ ॥

अहिफेन (अफीम) का परीचय

खस्तिलो के फलों (पोस्तडोडे) को चाकू आदि से सायंकाल को चीरा देकर प्रातःकाल जो दूध सा निर्यास निकलता है उसे ही अफीम या अहिफेन कहते हैं ॥ २३६ ॥

खस्तिलों के निर्यास को निर्मल करना

(अफीम को शुद्ध करना)

पोस्त के निर्यास को शुद्ध जल में घोल कर वस्त्र से छान लें ॥२३७॥ फिर इस छाने हुये रस को गौ घे दूध सम भाग में डाल कर मन्दाग्नि से पकावें ॥२३८॥ पककर जब गाढ़ा होजाय तो उसे उतार ले । यही शुद्ध अफीम है । ॥२३९॥ (पहले गो दूध का छीटा देकर चांशनी की तरह मैल उतार दें फिर वह पकाकर गाढ़ा करें)

अफीम शोधन का प्रयोजन

जो अफीम बाजार में आज कल विकती है इसे अन्यद्रव्य मिला कर धतूरे के स्वरस आदि से भावना दी हुई होती है, इस लिये यह अच्छी नहीं होती ॥ २४० ॥ इस लिये पोस्तडोडों के दूध (या रस) को स्वयं निकाल कर स्वयं शुद्ध कर लेना ही उत्तम है ॥२४१॥ (धतूरा गुड़ रसौत आदि मिलावट करके बाजार में विकती है ।)

अहिफेन का शोधन

शुद्ध अफीम को अदरख के जलसे सातवार भावित करें तो अच्छी प्रकार से शुद्ध होजाती है ॥२४२॥

अहिफेन के गुण

अफीम अति कड़वी होती है । निद्रा लाने में उत्तम है । यह विशेष कर के ग्राही (काबिज या कब्ज करने वाली) है तथा

वेदना को नाश करने वाली है ॥२४३॥ सन्निपात को नाश करती है तथा धमन को दूर करती है । पुराने और नये अतिसार को दूर करती है ॥२४४॥ आमाशय में उत्पन्न हुए २ क्षतमांसाबुर्द की पीड़ा (Concer of Stormach) को शान्त करती है मद्यपान से होने वाली आमाशय की सूजन को भी दूर करती है ॥२४५॥ जब अपानवायु धिगड़कर खायें हुए अन्न को बाहर निकालने को बार बार चपलता से प्रवृत्त होती है तो उस को यह अफीम निश्चित शान्त करके उस की इस क्रिया की रोक देती है ॥२४६॥ विपूची की प्रथम अवस्था में जब अतिसार मात्र एक ही लक्षण हो रहा हो तो उसकी भयंकरता को यह अफीम दूर करके अतिसार तथा विपूची (हैजे) को शान्त कर देती है ॥२४६॥ अन्त्रिकज्वर (Typhoid टाईफाईड) नाम वाले सन्निपात को जिस में की अतिसार, प्रलाप तथा अनिद्रा के कारण बेचैनी होरही हो यह अफीम नाश करती है ॥२४८॥ यह प्रवाहिका, आंतों की शूल, मदात्यय, (अधिक दीमागी काम करने से होने वाली) उन्माद को नाश करती है ॥ २४९ ॥ रजः शूल, अस्थिभग्न की पीड़ा, नया २ आमवात तथा हड्डियों के स्थान भ्रष्ट होने की पीड़ा, को यह अफीम शान्त करती है ॥ २५० ॥ यह सूखी खांसी (केवल गले में सूखी खांसी से कष्ट हो तो दें) को गर्भस्राव को तथा राजयज्ञमा में होने वाले रात के पसीने को दूर करती है ॥२५१॥ हृदय धमनियों की गति को मन्द कर डालने के कारण ही यह आंतों से होने वाले रक्त स्राव को तथा फुफ्फुस से होने वाले रक्त स्राव को बंद कर देती है ॥२५२॥ वात की अधिकता के कारण, कफ जब निकलती हो, कन्ठ में खुजली होती हो, ऐसी बेगवती खांसी को यह शीघ्र नाश करती है ॥२५३॥

क्योंकि यह नाड़ियों की, धमनियों की तथा हृदय की स्वाभाविक गति को तथा बढ़ी हुई गति को शीघ्र ही मन्द कर देती है ॥२५४॥ इसी लिये वैद्य को चाहिये कि वह हृदय रोग (Heart Disease) वाले को सोच समझ कर ही सदा अफीम को देवे ॥२५५॥

अहिफेन का निषेध

बालक वृद्ध, मधुमेह वाला रोगी, टेढ़े हाथ पैर जिस में हो गये हों ऐसी विपूची (हैजे) में ऐसी कफ वाली खांसी में जिसमें कि कफ अधिक निकलता हो वृक्क (गुर्दे) सूजन में अहिफेन या अफीम को कभी प्रयोग न करो ॥२५६॥

(मधुमेह में दे तो यह बेहोशी करदेती है वृक्क शोथ में मूत्र बन्द करने से Urimea आदि रोग हो जाते हैं ।)

बाह्य प्रयोग में अहिफेन के गुण

अफीम को विशेष करके बाहर से लगावें तो फुफ्फुसछद (प्लुरिसी) की सूजन को तथा आंतों की फिल्ली की सूजन को नाश करती है ॥ २५८ ॥ यह बाहर के लेप से अनेक कारणों से उत्पन्न हुई २ अनेक स्थानों में रहने वाली तथा अनेक रूपों वाली पीड़ा को अवश्य ही दूर कर देती है ॥ २५९ ॥ इसे बाहर लेप करें तो अभिष्यन्द, कर्णशूल, कृमिदन्त में होने वाला शूल तथा आमवात को नाश करती है ॥ २६० ॥ गुदामय (अर्श) को, गुदा में होने वाले विदर (चीर, Fisher) को दूर करती है । व्रणों की पीड़ा को शांत करती है तथा नाड़ियों का अवसाद (सुन्न) करती है ॥ २६१ ॥

अहिफेन की मात्रा

१/४ रत्ती से लेकर एक रत्ती तक अफीम की मात्रा बल

कालादि का विचार पूर्ण युवा पुरुषों को दें। बालकों को १/४० रत्ती मात्रा दें ॥ २६२ ॥

अहिफेन का आमयिक प्रयोग

पिण्डग्वजूर के साथ अफीम १/४ आधी रत्ती दिन में चार बार तक देने से गर्भस्राव को निसन्देह रोक देती है ॥ २६३ ॥ आक की जड़ की छाल के चूर्ण के साथ अफीम सेवन (आक की जड़ की छाल का चूर्ण १ रत्ती, अफीम १/४ रत्ती) करें तो प्रवाहिका को शीघ्र ही नाश करती है ॥ २६४ ॥ बड़ी इलायची का चूर्ण लाख का चूर्ण दोनों १,१ मापा लें। इन के साथ १/४ रत्ती अफीम मिला कर जल से दें तो फेफड़ों से आने वाला भयंकर रक्त स्राव बन्द हो जाता है ॥ २६५ ॥ रसौत के साथ अफीम को सिल पर घिस कर आंखों में अंजन करें तो अभिष्यन्द रोग की पीड़ा शीघ्र ही दूर हो जाती है ॥ २६६ ॥

वेदनान्तकरस

शुद्ध की हुई अफीम ३ मासे लें, कपूर तीन मासा, पारपीक-यवानिका (खुरासानी अजवायन) ३ मासा, रससिन्दूर ६ मासा, लें। सबको एकत्र करके भांग के स्वरस में यत्न से पीसलें ॥ २६७ ॥ २६८ ॥ इसकी दो २ रत्ती की गोलियां बनाजें। इसका नाम वेदनान्तकरस है ॥ २६९ ॥ यह वेदनान्तक रस जल के साथ दें तो अनेक कारणों से उत्पन्न हुई २ अनेक स्थानों में होने वाली पीड़ाओं के विशेष करके नष्ट करता है ॥ २७० ॥

(इस गोली को निगलकर ऊपर सेगरस या ठण्डा जल रोग की अवस्थानुसार पीवें तो सिरदर्द आदि सभी प्रकार के दर्दों

जो आराम करती है। इसे Asprine के स्थान में दिया जाये तो हानि की जगह लाभ करेगी।)

निद्रोदयरस

शुद्ध अफीम ६ मासे, वंशलोचन ६ मासे, रस सिंदूर ६ मासे ॥ २७१ ॥ आंवले का चूर्ण १ तोला, सबको एकत्र पीसकर भांग के स्वरस में तीनवार भावित करलें ॥ २७२ ॥ इसकी दो रस्ती की गोलियां बनाले। इसे ही निद्रोदयरस कहते हैं ॥ २७३ ॥ अनेक प्रकार के रोगों से दुःखी हुए लोगों को इसे देकर क्यों कि दुःख पूर्वक सुला सकने हैं। इसलिये इस का नाम ठीक ही निद्रोदयरस है ॥ २७४ ॥

(इस रस के देने से नींद आ ही जाती है। इसलिये इसे प्लेपैथी के Sleeping Dose या Morphia की जगह देना चाहिये। इससे पित्तभी नहीं बढ़ता है।)

सिन्दूरभूषणरस

शुद्ध अफीम ६ मासे, स्वर्ण भस्म ६ मासे, कर्पूर ६ मामेलें ॥ २७५ ॥ उत्तम रससिंदूर २ तोला लें, छोटी इलायची के बीज १ तोला, तवाशीर १ तोला लें ॥ २७६ ॥ इन्हें मिलाकर पीसलें और मोथा के क्वाथ से खूब घोटकर दो रस्ती की गोलियां बनालें। इसका नाम सिंदूरभूषणरस है इसे सेवन करने से अतिसार नष्ट होजाते हैं। यह सब प्रकार के अतिसारों की सहोपध है ॥ २७७ ॥ २७८ ॥

हर्षोदयावटी

शुद्ध अफीम १ तोला, कस्तूरी ३ मासा, कपूर ३ मासे ॥ २७९ ॥ काली मिरच का चूर्ण १ तोला, रससिन्दूर १ तोला, जायफल

का चूर्ण ६ मासे, जावित्री का चूर्ण ६ मासे, असली कश्मीरी केसर ६ मासे, शुद्ध हिंगुल ६ मासे लें ॥ २८० ॥ सबको पीसकर भांग के स्वरस से तीन भावना देवें ॥ २८१ ॥ फिर दो २ रत्ती की गोली बना लें। इसे हर्षोदयावटी कहते हैं ॥ २८२ ॥ यह वटी सेवन करने से बल, वर्ण तथा अग्निदीपन करती है। प्रमदाश्रों के मद को नाश करती है। विशेष करके यह वीर्य स्तम्भ करती है ॥ २८३ ॥ पान की बीड़ी में रखकर इसे १ मास तक यदि खाते रहें तो अत्यन्त बल को देती है ॥ २८४ ॥ इसे सेवन करके ऊपर से भैंस के कढ़े हुए खूब मलाई वाले गरम दूध को सेवन करें तथा प्रतिदिन उड़द की पीठी के पक्कान्त सेवन करें तो काम्पदेव के गर्व से मस्त हुई २ उन्नत आंखों वाली विलासिनियों से घायल हुए २ युवाश्रों को क्यों कि यह (उत्तेजित करके) हर्ष देती है इसी लिये इसका हर्षोदयावटी नाम सार्थक ही है ॥ २८६ ॥ (यही श्री कविराज मित्रा जी की स्वकल्पित रस हैं जो ऊपर लिखे हैं ।)

अहिफेनासव

शुद्ध अफीम ३ तोला, मृतसंजीवनी सुरा ५० तोला लें ॥ २८७ ॥ दोनों को एक शशी में बंदकर शीशे की डाट लगा दें ॥ २८८ ॥ फिर सात दिन तक शीशी को सुरक्षित स्थान में पड़ा रहने दें। इस कोही अहिफेनासव कहते हैं ॥ २८९ ॥

यदि मृतसंजीवनी सुरा न मिले तो Rectifid Spirit रेक्टीफाईड स्पिरिट ५० तोला लें। यदि इसमें धतूरे का रस भी मिला दें तो सूजन आदि को नाश भी करेगी

इस के गुण

विविध कारणों से उत्पन्न हुए २ अतीसरों को यह अहि-

फेनासव नाश करता है। यह कान की पीड़ा, दांत की पीड़ा, अस्थिभंग तथा अस्थिचुत से होने वाली, तथा अनेक कारणों से होने वाली पीड़ा को अति शीघ्र दूर करता है ॥ २६१ ॥ रसायनाचार्यों ने अनेक कारणों से उत्पन्न हुई २ वेदनाओं को शान्त करने के लिये इसे महौषध माना है ॥ २६२ ॥

इसकी मात्रा

५ बूंद से १५ बूंद तक अहिफेनासव की मात्रा को रोगी का बल तथा काल देखकर प्रयोग करे ॥ २६३ ॥

अहिफेनासव का आमयिक प्रयोग

इस अफेनासव को उचित मात्रा में विधि पूर्वक सेवन किया जावे तो अनेक कारणों से उत्पन्न हुए २ नये या पुराने भयंकर अतिसार रोग को तथा उस विपूची (हैजे) को जिसमें अभी केवल दस्त ही आरहे हों, यह शीघ्र ही ऐसे दूर कर देता है जैसे सूर्य अन्धकार को दूर कर देता है ॥ २६४ ॥ २६५ ॥ विन्दुक्षेपक यंत्र (Dropper) द्वारा इसे अल्पमात्रा में (३, ४ बूंदें) कान में डालें तो कर्णशूल नष्ट हो जाता है ॥ २६६ ॥ अहिफेनासव में रुई का फाहा भिगोकर कृमिदन्त (कीड़े से खाये हुए दांत) में रख दें तो शीघ्र ही दांत की वेदना को दूर कर देता है ॥ २६७ ॥

मङ्गलोदयावटी

शुद्ध अफीम १ माषा, उत्तम कपूर ७ माषा लें। दोनों को जल में पीसकर एक २ रत्ती की गोलियां बनालें ॥ २६८ ॥ २६९ ॥ इसका नाम मङ्गलोदया वटी है। यह प्रलाप आदि को दूर करने के लिये परम हितकारी मानी जाती है ॥ ३०० ॥

ज्वर या संनिपातादि में प्रज्ञाप करने में यह उत्तम है पर तभीमें जब कब्ज न हो। यह बटी स्वप्नदोष पर दें तो लाभ करती है।

वेदनान्तक मलहर

शुद्ध सिक्थतेल ६ तोला, शुद्ध अफीम ६ सापा ॥ ३०१ ॥ सिंदूर ६ सापा लें। सबको खरल में पीसलें ॥ ३०२ ॥ फिर कांच की शीशी में रख मुंह बंद करके। इस का नाम वेदनान्तक-मलहर है ॥ ३०३ ॥ गुदा के मस्सों पर लगायें तो शीघ्र ही वेदना को नाश करता है तथा गुदा के अन्दर होने वाले विदर (Fissure, चीर या जख्म) की भी अति भयंकर पीड़ा को दूर करता है ॥ ३०४ ॥ यह गुदा के मस्सों को तथा गुदाके विदर को नाश करता है, इसीलिये इसे वेदनान्तकमलहर नाम से पुकारा जाता है ॥ ३०५ ॥

अथ जयपाल के नाम

(जमालगोटे के नाम)

जयपाल, जेपाल, रेचक, सारक, विभेदन, मलद्रावी ये सब नाम जमालगोटे के हैं ॥ ३०६ ॥

जमालगोटे का परिचय

न तो बहुत ऊँचा, न बहुत छोटा दन्ती की जाति का एक पेड़ होता है जो आजकल पंजाब में विशेष करके पाया जाता है। यह सिंहलद्वीप तथा अन्य द्वीपों में भी होता है। इसी के बीजों को वैद्य जयपाल (जमालगोटा) कहते हैं ॥ यद्यपि इसका बीज दन्ती के बीजों से अति छोटा होता है तो भी इससे मल को भेदन करने की तीव्र शक्ति होती है ॥ ३०६ ॥

जमालगोटे का प्रथम शोधन प्रकार

जमालगोटे के नये बीजों को लेकर बाहर की छाल उतार कर उनके दो २ दल कर लें ॥ ३१० ॥ बीच में की हरे रंग की छोटी सी जीभ को निकाल कर फेंक दे। शेष बीजों को कपड़े की पोटली में बाँधकर दोलायंत्र द्वारा गौ के दूध में ३ घंटे तक स्वेदन करें। उस दूध को फेंककर फिर नये दूध में स्वेदन करें। ऐसे तीन बार गौ के दूध में तीन २ घंटे स्वेदन करें तो जमालगोटा शुद्ध हो जाता है ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥ (जमालगोटे के तेल को दूर करने के लिये ३ बार गौ के दूध में स्वेदन कहा है।)

द्वितीय शोधन प्रकार

त्वचा तथा जीभ से रहित जमालगोटे के बीजों को ८ भाग लें और सुहागा एक भाग लें। दोनों एक पोटली में बाँधकर दोलायंत्र द्वारा गौ के दूध में ६ घंटे स्वेदन करें। इस प्रकार जमालगोटा उत्तमता से शुद्ध हो जाता है ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥ (सुहागा रूखा होने से तेल को चूस जायेगा, इसलिये डाला जाता है। दूध में ६ घंटे स्वेदन करना भी सुहागे के कारण पर्याप्त है।)

तृतीय शोधन प्रकार

त्वचा तथा जीभ से रहित जमालगोटों को पोटली में बाँधकर दोलायंत्र द्वारा गौ के दूध में ३ घंटे स्वेदन करें ॥ ३१५ ॥ फिर खरल में पीसकर नये ठीकरोँ पर (घड़े के बड़े २ टुकड़े जो कोरे हों उनपर) लेप कर दें। फिर कुछ घंटों के बाद जब वे तेलरहित होकर चूर्ण सा बनकर उतरने लगें तो संभाल कर उतार लें ॥ ३१६ ॥ अथवा दो २ मसीशोपकों (स्याहीचूसों)

के मध्य में रख दें । इस प्रकार से तेल से रहित हुआ २ जमाल-गोटा शुद्ध हो जाता है ॥ ३१७ ॥

जयपाल के गुण

जमालगोटा कड़वे रस वाला, परम विरेचन करने वाला, जलोदर को नाश करने वाला तथा नये ज्वर को दूर करने वाला है ॥ ३१८ ॥ यह कृमिरोग, कुष्ठरोग, वातकफ को नाश करता है । वमन को लाने वाला है, पित्त को उत्पन्न करता है तथा बिच्छू आदि के बिष को नाश करता है ॥ ३१९ ॥

जमालगोटे की मात्रा

१/८ रत्ती से १/४ रत्ती तक शुद्ध जमालगोटे की मात्रा है । परन्तु इसे अकेला न दें, अन्यान्य औषधों के साथ मिलाकर दें ॥ ३२० ॥ (अकेला देने से दाह, शूल आदि उपद्रवों को करता है, तब दही खांड पिलावे तो शान्ति होती है) ।

जमालगोटे का रोगों पर प्रयोग

इच्छा भेदी रस

सुहागा, मरिचचूर्ण, शुद्ध पारा, गंधक, सोंठचूर्ण इन सबको एक २ तोला लें ॥ ३२१ ॥ शुद्ध जमालगोटे के बीज ३ तोला लें । पहले पारागंधक की कज्जली करें । फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पीस लें । इसकी डेढ़ रत्ती तथा दो रत्ती की गोलियां बना लें ॥ ३२२ ॥ इसी का नाम इच्छाभेदी रस है ॥ ३२३ ॥ डेढ़ रत्ती की एक गांवा शीतल जल से दें । जो नागरिक या नगरवासी हो जिसका कि कोष्ठ मृदु होता है, उसे खांड (के शर्बत) से दें ॥ ३२४ ॥ जो ऐसे शूरवीर हों जिनका कि कोष्ठ कठोर हो अथवा गांव के बलवान लोग (कठोर कोष्ठ वाले)

हों तो दो रत्ती वाली गोली को खांड मिलाकर दें ॥ ३२५ ॥ इस गोली को व्याकर शीतल जल जितनी बार पीवेंगे उतनी बार दस्त आवेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है (गोली १ बार शीतल जल १ गिलास से निगल लें । १ दस्त आने के बाद फिर शीतल जल पीवें, फिर दस्त आयेगा । इसी प्रकार जब २ शीतल जल पीवेंगे दस्त आते जायेंगे) ॥ ३२६ ॥ जब दस्त बंद करने की इच्छा हो तो गरम २ जल पर्याप्त मात्रा में दस्त होने के बाद पीवें तो दस्त बन्द हो जायेंगे । ३ घंटे बाद पथ्य में चावलों का भात दही की तक्र के साथ खिलावें (यह आवश्यक है) ॥ ३२७ ॥ जब दस्त शान्त होजावें तो तीन घण्टे तक (कम से कम) शीतल जल न पीवें, नहीं तो फिर दस्त होने लगते हैं ॥ ३२८ ॥

जलोदरारिस

उत्तम ताम्रभस्म, पिप्पलीचूर्ण, शुद्धपारा, शुद्धगंधक, मिरचचूर्ण, हल्दीचूर्ण इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें ॥ ३२९ ॥ नये शुद्ध जमाल गोटे के बीज दो तोला लें । पहले कञ्जली बनाकर फिर सब द्रव्यों को मिला कर त्रिवी (निशोथ) के क्वाथ से तीन बार भावित करलें ॥ ३३० ॥ इस की एक २ रत्ती की गोली बनालें । यह जलोदरारिस कहाता है ॥ ३३१ ॥ यह रस रेचन करने वाला तथा जलोदर का नाश करता है । जब दस्तों को रोकना हो तो दही चावलों का भात खाने को दें ॥ ३३२ ॥

ज्वरारिस

शुद्ध हिंगुल, पिप्पलीचूर्ण, सोंठचूर्ण, मिरचचूर्ण, सोंठचूर्ण, सुहागे की खील, शुद्ध वत्सनाभ आंवलाचूर्ण प्रत्येक एक २ तोला

लें ॥३३३॥ शुद्ध किये हुए ताजे जमालगोटे के बीज ८ तोला लें। सबको विधिपूर्वक पीसकर अदरक के स्वरस से एक रत्ती की गोली बनालें ॥ ३३४ ॥ इसका नाम ज्वरारिरस है। यह विशेष करके नये ज्वर को नाश करता है ॥ ३३५ ॥

अञ्जन भैरव रस

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, पिप्पली चूर्ण, मुहागा खील, प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला (भाग) लें। शुद्ध जमालगोटे के बीज दो तोला लें। ३३६ ॥ सबको विधिपूर्वक पीसकर एकत्र करें और नींबू के स्वरस में यत्न से घोट लें। फिर छाया में सुखाकर कांच की शीशी में रख दें। इसी रस को अञ्जन भैरव कहते हैं। अंजन लगाने से ही यह भयंकर सन्निपात को भी दूर करता है ॥ ३३८ ॥

वृश्चिक विषहर प्रलेप.

जल में जमालगोटे के बीज को (अशुद्ध ही चाहे हो) पीस कर जहां बिच्छू ने काटा हो वहां पर ही लेप कर दें तो उसके विष को विशेष करके यह नाश करता है ॥ ३३६ ॥ (काटी हुई जगह पर ही यत्न से लेप करें अन्यत्र न करें। भिड़ आदि का दंश भी इसके लेप से दूर हो जाता है।)

जमालगोटे वाले योगों का निषेध

बालक, वृद्ध, कृश, क्षीण, गर्भिणी स्त्री, गुदामय (बवासीर), प्रवाहिका, आमाशय की सूजन, पक्काशय की सूजन ॥ ३४० ॥ गुदभ्रंश, अंत्रशोथ युक्त बद्धगुदोदर, अंत्रछदशोथ (आंतों की फिल्ली की सूजन) इन सब में जमालगोटे के योग न दें ॥ ३४१ ॥

अथ धतूरे के नाम

धत्तूर, कितब, उन्मत्त, धूर्त, कनक, स्वर्ण आदि सुवर्ण के सभी नाम, शठ, कण्टकफल, शिबशेखर ये सब नाम धतूरे के हैं ॥ ३४२ ॥

धतूरे का परिचय

धतूरे का लुप होता है, फल पर कांटे होते हैं ! यह सर्वत्र मिलता है। इसके फूल तथा रंगों (अथवा फूलों के रंग) के कई भेद हैं ॥ ३४३ ॥ सभी प्रकार के धतूरों के गुण समान हैं। विशेष करके सब धतूरों में से कृष्ण फूल वाला धतूरा अधिक गुणवाला होता है ॥ ३४४ ॥ धतूरे के पत्ते, जड़, फल, बीज तथा कोमल पत्तों का स्वरस वैद्य विशेष करके प्रयोग में लाते हैं ॥ ३४५ ॥ (धतूरे के पत्तों तथा फूलों के आकार तथा रंग से कई भेद हैं। श्वेत फूलों वाला धतूरा भी कई प्रकार का होता है। काले फूलों वाला धतूरा भी कई प्रकार का होता है। हमने एक फूल वाला, दो फूल वाला, तीन फूल वाला, चार फूल वाला तथा पांच फूल वाला काला धतूरा पहाड़ों में देखा है। इनमें एक ही काले फूल के अन्दर दो तीन चार तथा पाँच २ फूल खिले देखे हैं। काले फूल वाले धतूरे के बीज भूरे श्वेत रंग के होते हैं जो बैंगन के बीज जैसे होते हैं। श्वेत रंग के धतूरों के बीज काले रंग के, किसी २ के श्वेत रंग के भी होते हैं जो तिलों के समान होते हैं ॥ विद्याघर ॥)

धतूरे के बीजों का प्रथम शोधन प्रकार

धतूरे के बीजों को एक कपड़े की पोटली में बांधकर गौ के

दूध में दोलायंत्र द्वारा स्वेदन करें। तीन घंटे स्वेदन करके गरम जल से धो लें। फिर मुँहासे सर्वत्र निःशंक हो कर प्रयोग करें ॥ ३४७ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

नये धतूरे के बीजों को पोटली में बांधकर गौ के मूत्र में एक पहर (तीन घंटे) तक दोलायंत्र द्वारा स्वेदन करें। फिर उतार कर उन्हें खरल में पीसकर वस्त्र से छान लें। इस प्रकार शुद्ध हुए २ बीजों को निःशंक होकर सर्वत्र प्रयोग करें ॥ ३४८ ॥

धतूरे के गुण

धतूरा कटु रस (चरणरे रस) वाला, उष्णवीर्य, शोथनाशक है। यह कृमि, कुष्ठ को नाश करता है। विशेष करके उवरो को नाश करता है ॥ ३५० ॥ त्वचा के दोषों को अत्यन्त नाश करता है तथा खुजली को नाश करता है। साथ ही यह सेवन करने से भ्रम को तथा मोह (मूर्च्छा) को उत्पन्न करता है ॥ ३५१ ॥

धतूरे के विशिष्ट गुण

धतूरा श्वास को शान्त करता है, कफ को सुखाने में परमोत्तम है। आक्षेप तथा उन्माद को हरता है, वीर्य को स्तम्भन करता है तथा हर्ष बढ़ाता है ॥ ३५२ ॥ आंखों के अभिष्यन्द रोग को नाश करता है तथा कान की दर्द को दूर करता है वेदना वाले अर्बुद (Cancer) को नाश करता है, लसीकाग्रन्थियों (Glands गण्डों, गलशुण्डी आदि) के शोथ को नाश करता है ॥ ३५३ ॥ कृमिदन्त की पीड़ा को दूर करता है, आमवात की पीड़ा को नाश करता है। स्तनों की सूजन को नाश करता है तथा प्रलाप को बंद करता है ॥ ३५४ ॥ भूतों को

(भूतज उन्माद) को नाश करता है तथा पागल कुत्ते के विष को नाश करता है । कसर की दर्द को नाश करता है तथा नारियों के कामोन्माद (Nymphomania) को नाश करता है ॥३५५॥

नीचे लिखे हुए रोगों में धतूरे को अत्यल्पमात्रा (१/१६ से १/८ रत्ती तक की) सात्रा में विशेष करके प्रयोग करें तो लाभ होता है ऐसा उत्तम वैद्यों का मत है ॥ ३५६ ॥

विविध स्थानों में हुई २ सूजन के कारण जो अनेक प्रकार की पीड़ा होती है उसे धतूरा विशेष करके नाश करता है ॥३५७॥ जो प्रसूति ज्वर से उत्पन्न हुए हों अथवा सन्निपात ज्वर से उत्पन्न हुए हों, जिनमें अत्यन्त दुर्गन्ध युक्त पीले से रंग का वा काले रंग का मल निकलता हो ॥ ३५८ ॥ विशेष करके पानी के सदृश पतला मल निकलता हो, ऐसे सब अतिसारों को धतूरा नाश कर देता है । कण्ठशुण्डा (टॉसिल Tonsils) को जिसमें कि अत्यन्त पीड़ा होती है, धतूरा शीघ्र ही नाश कर देता है ॥ ३५९ ॥ मसूरिका (चेचक, शोतला) के आरंभ में जब छाले पूरे नहीं निकले हों तब उनके कारण रोगी को आक्षेप तथा प्रलाप होते हैं, उन्हें धतूरा निश्चित नाश कर देता है ॥ ३६० ॥ विसर्प से, ज्वर से या सन्निपात से उत्पन्न हुए २ प्रलाप आदि उपद्रवों को धतूरा विशेष करके नाश करता है ॥ ३६१ ॥ सन्निपात से उत्पन्न हुई २ रोगी की शय्या से उठकर भाग जाने की चेष्टा को यह धतूरा शीघ्र ही नाश कर देता है ॥ ३६२ ॥ प्रसूत हो जाने के पीछे या सन्निपात ज्वर में मूत्र की उत्पत्ति नहीं होती (कम होती है) उससे मूत्ररोध हो जाता है, ऐसे मूत्ररोध को धतूरा दूर करता है ॥ ३६३ ॥ नाड़ियों की दुर्बलता के कारण से उत्पन्न हुए २, जिसमें छाती सिकुड़ती

हो, और ऊँचे स्वर से शब्द होता हो, ऐसे तमक श्वास को धतूरा दूर करता है ॥ ३६४ ॥ गरदन से ऊपर की ऊर्ध्वजत्रुसन्धि में होने वाले कफज, कफपित्तज, तथा कफवातज रोगों को धतूरा विशेष करके नाश करता है ॥ ३६५ ॥ ग्रन्थि ज्वर (प्लेग Bubonic Plague) से उत्पन्न हुई २ काँछ (बगल), वक्षण तथा कण्ठ की गांठों की सूजन को तथा उनके साथ रहने वाले ज्वर को यह धतूरा नाश करता है ॥ ३६६ ॥

धतूरे की मात्रा

१/४ रत्ती से १/२ रत्ती तक शुद्ध किये हुए धतूरे के बीजों के चूर्ण को एक मात्रा में प्रयोग कर सकते हैं ॥ ३६७ ॥ आधी रत्ती से डेढ़ रत्ती तक धतूरे के पत्तों का चूर्ण १ मात्रा में वैद्य प्रयोग कर सकते हैं ॥ ३६८ ॥

धतूरे का रोगों पर प्रयोग

धतूरे की जड़ वा पत्तों को जल से पीसकर कोसा करके टकोर करें तो ब्रध्नशोथ (बद की सूजन) को नाश करता है ॥ ३६९ ॥ धतूरे के पत्तों के स्वरस में अफीम तथा रसौत को पीसकर लेप करने से भयंकर नेत्राभिष्यन्द रोग विशेष करके दूर होता है ॥ ३७० ॥ धतूरे के पत्तों का स्वरस कोसा २ थोड़ी मात्रा में (३, ४ बूंद तक) कानों में डालने से कर्शशूल को शीघ्र ही निश्चित नाश करता है। (नेत्र की पीड़ा लाली भी आप ही नष्ट हो जायेगी। कान में डालने से दोनों प्रभाव पड़ेंगे। अनुभूत है) ॥ ३७१ ॥ धतूरे के बीजों को पीसकर बटिका (बत्ती या गोली) बनाकर कीड़े से खाये हुए दांत के छिद्र में रख दें, इससे दांत की भयंकर पीड़ा दूर हो जाती है ॥ ३७२ ॥

धतूरे के पत्ते, हल्दी तथा अफीम सहित जल से पीसकर यदि लेप करें तो स्तनों की सूजन की पीड़ा को शीघ्र ही नाश करता है (Tincture Iodine सदृश है) ॥ ३७३ ॥ धतूरे के पत्तों के कल्क से सरसों के तेल को तैलपाक विधि से पकाएँ तो पेशियों में होने वाली वायु को इस तेल की मालिश से शीघ्र लाभ होता है ॥ ३७४ ॥ यही तेल मालिश करने से कटिवात और संधिवात की पीड़ाओं को तथा जूँप और लीखों को सिर पर मलने से नाश करता है ॥ ३७५ ॥ धतूरे के फल का चूर्ण काकोदुम्बरिका (जंगली अंजीर, कैम्बरी या फीगु पहाड़ी नाम) की जड़ की छाल के साथ तण्डुलोदक (चावलों के धोवन) से सेवन करने से कुत्ते के काटे का विष दूर होता है ॥ ३७६ ॥ आक का दूध, काले धतूरे के पत्तों का स्वरस गुड़ मिलाकर सेवन करें तो कुत्ते के काटे हुए विष को शीघ्र दूर कर देता है ॥ ३७७ ॥ धतूरे के पत्ते, अफीम के साथ जल में पीसकर लेप करें तो सभी प्रकार की सूजनों की पीड़ा को (Tincture Iodine टिचर आयोडीन की तरह) दूर करते हैं ॥ ३७८ ॥

प्रलापान्तकरस

शुद्ध धतूरे के बीज नौ माशा लें। शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक ६,६ माशे लें ॥ ३७९ ॥ सोंठ, मिरच, पीपल का मिलित चूर्ण एक तोला लें, सुहागे की खील एक तोला लें। पहले पारागंधक की कज्जली बनाएं फिर अन्य द्रव्य मिलाकर पीस लें। इसमें नींबू के स्वरस को डालकर खूब पीसें। अब इसकी एक २ रत्ती की गोलियां बना लें। इसका नाम प्रलापान्तकरस है ॥ ३८१ ॥ विशेष करके इसके सेवन से प्रलाप का नाश होता है। यह रस दीपन, पाचन तथा अग्निमांश को नाश करता है ॥ ३८२ ॥

(यह कब्ज हो तो भी प्रलाप को शान्त करता है ।)

उन्माद गजांकुश

धतूरे के शुद्ध किये हुए बीज, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, वंगभस्म, चांदी भस्म, इन सब को एक २ भाग लेकर विधिपूर्वक घोट लें ॥ ३८३ ॥ फिर घीकुमार के रस से मर्दन करके एक २ रत्ती की गोलियां बना लें ॥ ३८४ ॥ इसे उन्मादगजांकुश रस कहते हैं । यह ज्वरों को नाश करता है तथा विशेष करके उन्माद को (ज्वरसहित उन्माद को भी) नाश करता है ॥ ३८५ ॥ (इस रस को दूध या शतावर आदि के स्वरस से दें तो Violent mania मारने पीटने वाले उन्माद रोगी की पीड़ा को शान्त करता है ।)

ग्रन्थिशोथ निवारिका वत्तिका

धतूरे का एक फल लें, कुचला १ संख्या लें, काला जीरा १ तोला लें ॥ ३८६ ॥ मुसब्बर (एलवा) तथा मोचरस भी एक २ तोला लें । सब को पीसकर थोहर के पत्तों के स्वरस से घोटकर तीन २ माशे की बत्तियों बना लें । ये बत्तियां लेप करने से ग्रन्थिक ज्वर (व्यूबोनिक प्लेग) में होने वाले ग्रन्थिशोथ को नाश करती हैं ॥ ३८८ ॥ जल से एक बत्ती को शिला पर घिस लें और गांठ की सूजन पर लेप लगायें तो गांठों की भयंकर सूजन को शीघ्र ही नाश करती है ॥ ३८९ ॥ दिन में दो या तीन बार इस बत्ती को जल में घिसकर लेप करना चाहिये ॥ ३९० ॥

अथ भङ्गा के नाम (भांग के नाम)

भङ्गा, भङ्गी, मातुलानी, मादिनी, मादिका, मातुली, विजया,

तन्द्राकारिणी तथा बहुवादिनीभ्ये। सब नाम भांग के हैं ॥ ३६१ ॥

भांग का परिचय

भांग के लुप होते हैं जो सर्वत्र सुलभ होते हैं । इसीलिये उसका परिचय यहां विस्तार से नहीं दिया है ॥ ३६२ ॥ रसचिकित्सक वैद्य भांग के पत्तों का स्वरस, पत्ते तथा बीज औषधों में विशेष करके प्रयोग किया करते हैं ॥ ३६३ ॥

भांग का प्रथम शोधन प्रकार

भांग के सूखे पत्ते हों तो उन्हें जल में भिगो दे । फिर निचोड़ कर पत्तों को सुखा लें । फिर उन पत्तों को गौ के घी में भून लें । भूनते समय मन्द २ आग्न दें ॥ ३६४ ॥ जब अच्छी प्रकार भुन जाये तो शीघ्र ही आग पर से उतार ले । इस प्रकार से शुद्ध हुई २ भांग को सर्वत्र प्रयोग करे ॥ ३६५ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

सूखी हुई भांग की पत्तियों को लेकर बबूल की छाल के काढ़े में मध्यम आंच पर आधी घड़ी स्वेदन कर लें ॥ ३६६ ॥ जब ठीक पसीज जाये तो उसे धूप में सुखा लें । इस प्रकार से शुद्ध हुई २ भांग उत्तम शुद्ध हुई मानी जाती है ॥ ३६७ ॥ इस प्रकार से शुद्ध की हुई भांग को पीसकर कामोद्दीपन करने वाले योगों में विशेष करके मिलाकर गौ के दूध के साथ सेवन किया जाता है ॥ ३६८ ॥

भांग के गुण

भांग तिक्तसवाली, कटु, तीक्ष्ण, प्राही, कफनाशक, अग्नि-

दीपनी, पाचनी, पित्तकारक तथा मद (मस्ती, नशा) करने वाली है ॥३६६॥

भांग के विशेष गुण

भांग भूय को बढ़ाती है तथा ध्वजभंग को नाश करने में परमोत्तम है। स्वप्न मेह को नाश करती है तथा वीर्य को स्तम्भन करती है ॥४००॥ निद्रा लाती है कामदेव को उद्वापन करती है। प्रलाप तथा धनुः स्तम्भ रोग को नाश करती है ॥४०१॥ आंतों के शूल, वृक्क (गुर्दा) के शूल, पित्तशोषज (पित्ताशय की पथरी के) शूल को नाश करती है, आमाशय को बल देती है ॥४०२॥ अजीर्ण से उत्पन्न हुण २ अतिसार को नाश करती है, अजीर्ण को नाश करती है। उन्माद को हरती तथा वृक्कशोथ (गुर्दों की सूजन) को पीड़ा को नाश करती है ॥४०३॥ मूत्र लाने वाली, रक्त मिले हुण मूत्रस्राव को रोकने वाली, विचित्र आनन्द देने वाले स्वप्नों को लाने वाली है ॥४०४॥ अर्श की पीड़ा को दूर करती है तथा कुष्ठ २ ज्वरों को भी नाश करती है। व्रण मेह में होने वाली मूत्रेन्द्रिय की पीड़ा को नाश करती है ॥४०५॥ नाड़ियों की दुर्बलता से होने वाला तथा आक्षेप से होने वाला रजःशूल इसके प्रयोग से ऐसे दूर होता है जैसे सूर्य से अन्धकार ॥४०६॥ यह आमाशय में होने वाले शूल को नाश करती है तथा राजयक्ष्मा की कास को दूर करने में परमोत्तम है। वस्ति प्रदेश के आक्षेप को (फड़फड़ाहट) को दूर करती है तथा आक्षेप सहित तमकश्वास को नाश करती है ॥४०७॥ जिसमें भयंकर आक्षेप (हाथ पैरोंदि पटके जाते हों) से मुक्त, अतिकष्ट देने वाली, संक्रामक (फैलाने वाली) ग्वांसी को विशेष करके यह भांग नाश करती है ॥४०८॥ जब नारियों की प्रौढ़ अवस्था भी

धीत चुकती है (लगभग ५० साल की आयु में) उस समय रजःस्राव बंद हो जाता है, उसके रुकने से नारियों को मिर में दर्द होती है, ऐसी अवस्था में भांग देने से उनकी वह भयंकर मिर दर्द दूर हो जाती है ॥४०६॥ गर्भस्राव से होने वाली मासिक रजःस्राव में होने वाली अथवा रक्तप्रदर से होने वाली बढ़ी हुई रक्तस्रुति को यही भांग बंद करती है ॥४१०॥ जहां पर मनुष्य अपनी बात को कहता २ पहली बात को भूल जाय, ऐसी मानसिक, दुर्बलता को यह भांग शीघ्र ही नाश कर देती है ॥४११॥ जब अनेक प्रकार के अन्न खाने पर भी न पचें, ऐसे अजीर्ण रोग को, अरुचि को तथा भूख बंद होने को यह सेवन की हुई भांग ठीक कर देती है ॥४१२॥ जब अर्धावभेदक (आधासीसी) रोग की पीड़ा से युक्त कांच रोग (दर्दकूल से होने वाला आंग्व का मोतियाविन्द) हो गया हो तो भांग के सेवन से वह भी दूर हो जाता है अथवा होने नहीं पाता। यह संकोच करने वाली है। आंग्वों की दृष्टि शक्ति तथा कानों की श्रवण शक्ति को यह बढ़ाती है ॥४१३॥

भांग की मात्रा

२ रत्ती से ४ रत्ती तक बलकालादि देखकर शुद्ध भांग की मात्रा है। इसे ही प्रयोग करना चाहिये ॥४१४॥

भांग का रोगों पर प्रयोग

ताज्जी या सूखी भांग को बकरी के दूध में पीसकर पैरों के तलवों पर लेप कर दें तो शीघ्र ही नींद लाती है ॥४१५॥ भांग को जल से शिला पर पीस कर कोसा करके टकोर करें तो अर्श की पीड़ा को (मस्सों की दर्द को) दूर करती है ॥४१६॥ भांग

का धुआं विधिपूर्वक पीवें अथवा इसे विधि से खावें तो अक्षीप युक्त तमक श्वास तथा संक्रामक कास को (Wnooping Cough) को नाश करती है ॥४१॥

मदनोदय मोदक

जावित्री, जायफल, जटामांसी, लौंग, कपूर, केसर, छोट्टी इलायची, दारचनी, सोंठ, भिरच, पीपल, बंगभस्म, श्वेत जीरा, अभ्ररुभस्म, लोहभस्म, रसतिन्दूर इनमें से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ तोला लें। शतावर, गोखरू, दाख, काकड़ासिही, ग्विरेंटी, कौंच के बीज, कुठ, विधारे के बीज, इनमें से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण चार २ तोला लें ॥४२॥ शुद्ध की हुई भांग का चूर्ण सारे सम्मिलित किये हुए चूर्ण से आधा (२४ तोला) लें। सारे सम्मिलित चूर्ण से दुगुनी (१४४ तोला) गन्ने की खांड (बूरा) डाल दें ॥४२१॥ इन सबको मोदक (लड्डू) बनाने की विधि से (खांड की चाशनी बना, उसमें सब चूर्ण डाल कर या सूखी खांड डाल कर ही) लड्डू अर्थात् मोदक बनालें। ये मोदक ३ माशे से आरम्भ करके ६ माशे तक के बनावें ॥४२२॥ इनका नाम मदनोदय मोदक है। यह मदन अर्थात् कामदेव को विशेष उद्दीपन करने वाले हैं ॥४२३॥ खांड तथा इलायची के साथ मिला हुआ खूब कड़ा हुआ दूध इनके पीछे (अनुपान में) पीना चाहिये। तो ये सातों धातुओं को बृंहण करते हैं ॥४२४॥ इन मोदकों को लगातार ३ मास सेवन करने से मनुष्य कामदेव के समान रूपवान् हो जाता है तथा कामदेव जैसा कामातुर हो जाता है तथा भीमसैन सदृश ग्हापराक्रमी हो जाता है। इन मोदकों को सेवन करने वाले पुरुष कामदेव के मद से मस्त नेत्रों वाली नवयौवन से मतवाली प्रमदाओं को सदा

प्रसन्न कर सकता है तथा उसका ध्वज (शिशन) कभी नीचे पतित नहीं होता वह उत्तेजित ही रहता है ॥४२६॥

त्रैलोक्य विजया वटी

भांग का शत (यंत्र विज्ञानीय नाम के चतुर्थ तरंग में कहे हुए वाष्पस्वेदन यंत्र विधि से भांग का सूत्र निकाल लें) एक भाग लें। वंशतोचन (तत्राशीर) ३ भाग लें ॥४२७॥ जल में पीसकर एक रत्ती की गोली बनालें ॥ ४२८ ॥ इसे त्रैलोक्य विजयावटी कहते हैं। इसके सेवन से प्रलाप, उन्माद की शांति होती है, वृक्कों के शूल की शान्ति होती है ॥ ४२९ ॥ रजःशूल नष्ट होता है, राजयक्ष्मा की खांसी दूर होती है, अतिसार का तथा स्वप्नमेह का नाश होता है ॥ ४३० ॥

त्रैलोक्य संमोहनरस

शुद्ध की हुई भांग १२ तोला लें। शुद्ध हिंगुल, रस सिन्दूर, घनसार (कपूर), लौंग ॥ ४३१ ॥ अभ्रकभस्म, शंखभस्म, प्रथक् २ सब द्रव्य एक २ तोला लें। गोखरू चूर्ण, कौंच के बीजों का चूर्ण, काकड़ासिंही का चूर्ण प्रथक् २ दो २ तोला लें। सबको एकत्र पीसकर भांग के स्वरस में भावना दें। सूख जाने पर शतावर के स्वरस में भावना दें। फिर तीन २ रत्ती की गोलियां बना लें ॥ ४३४ ॥ क्योंकि यह रस कामदेव को अपने कटाक्षपातों से संमोहन करने वाली सुन्दरियों को भी सम्मोहित कर लेता है, इसीलिये इसका नाम “त्रैलोक्य संमोहन रस” है ॥ ४३५ ॥ यह नारियों को वश में करने वाला, रुचि बढ़ाने वाला, क्लैव्य (नपुंसकता) नाश करने में परम श्रेष्ठ है। हर्ष तथा उत्साह को बढ़ाने वाला है, धैर्य तथा स्मरण शक्ति को बढ़ाता है। वीर्य का अत्यन्त स्तम्भन करता है। पुत्र रूपी सन्तान को देने वाला, संभोग सुख को तथा संभोग की

इच्छा को बढ़ाने वाला, सब प्रकार से सुख देने वाला है। कामांजनों को यह त्रैलोक्य संमोहमनरस अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ४३६ ॥

अथ गुञ्जा के नाम

गुञ्जा (रत्ती) के नाम

गुञ्जा, रक्ता, रक्तिका, ताम्रिका, कृष्णचूडिका, उच्चटा, शीतपाकी, भिल्लभूपणिका, अरुणा ॥ ४३७ ॥ चूड़ामणि, ताम्रिका, शखण्डी, कृष्णाला, काकण्ती तथा काम्भोजी ये सब नाम रत्ती के हैं ॥ ४३८ ॥

गुञ्जा का परिचय

इसकी जड़ तथा पत्ते मीठे होते हैं, देखने में सुन्दर लता होती है, शीत काल में इसके बीज पकते हैं, इसके फलों के ऊपर का भाग काले रंग का (शेष भाग लाल दूसरी जाति का शेष भाग श्वेत) होता है, इसे प्रायः सब जानते हैं ॥ ४३९ ॥ इसके पत्ते पत्तों का रस, इसकी जड़ इसके बीज सब प्रयोग में लाये जाते हैं। इसके बीजों को ही वैद्यों ने उपविष माना है ॥ ४४० ॥

गुञ्जा के बीजों के शोधन का प्रयोग

रत्तियों के अशुद्ध बीजों को यदि अधिक मात्रा में सेवन करें तो ये वमन भी लाते हैं तथा तीव्र विरेचन कराते हैं। ॥ ४४१ ॥ इसके सेवन से विषूची (हैजे) के से लक्षणों वाली सब विषक्रिया हो जाती है, इसलिये दोषों की निवृत्ति के लिये इन को शोधन करना चाहिये ॥ ४४२ ॥

गुञ्जा बीजों का प्रथम शोधन प्रकार

नये रत्तियाँ के बीजों (रत्तियों) को प्रयत्न से चूर्ण करलें।

दोतह वाले वस्त्र की पोटली के अन्दर रखकर पोटली का मुंह बंद कर दें ॥ ४४३ ॥ फिर गौ के दूध में दोलायंत्र द्वारा ६ घंटे स्वेदन कर लें। इस प्रकार ये उत्तमता से शुद्ध हो जाते हैं ॥ ४४४ ॥

द्वितीय शोधनप्रकार

गुञ्जा के बीजों को पोटली में बांधकर कांजी में तीन घंटे स्वेदन करें तो उत्तमता से शुद्ध हो जाते हैं ॥ ४४५ ॥

गुञ्जा बीजों (रत्ती) के गुण

शुद्ध किये हुए रत्तियों के बीज कामदेव को अत्यन्त उद्दीपन करने वाले हैं। उरुस्तम्भ को हरने वाले हैं तथा बल को अत्यन्त बढ़ाने वाले हैं ॥ ४४६ ॥

गुञ्जा के पत्तों के गुण

गुञ्जा के पत्ते शोथ को दूर करते हैं, आम बात को नाश करते हैं तथा पीड़ाओं को नाश करने (वेदनाहर) में उत्तम होते हैं ॥ ४४७ ॥ गुञ्जा के पत्तों का स्वरस मधुर तथा चरपरेरस का होता है। यह स्वरभंग को शान्त करता है, शोथ को नाश करता है तथा वेदना को दूर करता है ॥ ४४८ ॥

गुञ्जा मूल के गुण

गुञ्जा की जड़ (रत्तियों की बेल की जड़) अत्यन्त मधुर रस वाली होती है कफ को निकालने में परम श्रेष्ठ होती है। वात, पित्त को नाश करती है, वृष्णा तथा सूजन को नाश करती है ॥ ४४९ ॥ स्वरभेद, वमन, मूत्रकृच्छ्र का नाश करती है तथा बल और वर्ण को अत्यन्त बढ़ाती है ॥ ४५० ॥ कास को नाश

करती है, विष को नाश करती है। वीर्य को उत्पन्न करती है। तथा यह वृष्य है। व्रणों को नाश करने में विशेष प्रभाव दिग्वाती है ॥४५१॥ गुञ्जामूल (रस्ती की जड़) विशेष करके मुलट्टी के गुणों वाली होती है। इसीलिये आजकल मुलट्टी के अभाव में इसे प्रयोग किया जाता है ॥ ४५२ ॥

शुद्ध गुञ्जाबीजों की मात्रा

शुद्ध गुञ्जाबीजों को १/२ आधो रस्ती से डेढ़ १॥ रस्ती तक एक मात्रा में प्रयोग कर सकते हैं ॥ ४५३ ॥

गुञ्जा का आमयिक प्रयोग

गुञ्जाबीजों को शिलापर जल से पीसकर लेप करें तो यह उत्पिष्ट (पिसी, चिकली) हुई सन्धि की भयंकर शोथ और वेदना को नाश करता है ॥ ४५४ ॥ इसी से इन्द्रलुग (शिर कागंज), पक्षवध, भयंकर गृध्रमी, घोर अववाहुक रोग भी उन २ स्थानों पर लेप लगाने से अच्छे होते हैं ॥ ४५५ ॥ गुञ्जा के बीजों को शिला पर चीते और जल के साथ मिलाकर पीस लें। इस लेप को लगाने से विशंषकर के श्वित्रकुष्ठ को आराम हो जाता है ॥ ४५६ ॥

प्रथम गुञ्जाघतेल

रस्तियों को शिलापर जल से पीसकर कल्क बनालें। यह कल्क एक पाव भर लेलें। तिलों का तेल १ सेर लें। भांगरे का स्वरस ४ सेर लें। सब को एकत्र कर विधिपूर्वक तेल पकालें ॥ ४५७॥४५८ ॥ इस तेल की मालिश से कण्डू, कुष्ठादि रोग, सिरका दारुणक (सिकड़ीजम कर खाल फट जाना) रोग तथा विविध बात वेदनाओं का नाश होता है ॥ ४५९ ॥

द्वितीय गुञ्जादि तेल

रत्तियों तथा रत्तियों की जड़, दोनों को एक २ छटांक लेकर जलसे शिलापर पीसकर कल्क कर लें। तिलों का तेल आधा सेर लें। जल एक सेर डालें। सबको मिलाकर विधिपूर्वक तेल बनालें। इसकी मालिश से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ ४२० ॥

गरण्डतेल के साथ रत्तियों के पत्तों को पीसलें फिर कोसा करके टकोर करें तो ये वेदना हरने में परमोत्तम हैं ॥ ४६१ ॥ गुञ्जा के पत्तों के स्वरस में पकाया हुआ तेल, मालिश करने से शोथ को नाश करता है तथा वेदना को हरने में परमोत्तम हैं ॥ ४६२ ॥ गुञ्जा के नये पत्तों या पुराने सूखे हुए पत्तों का चूर्ण करके (पान में खाकर गले में चूसे) तो म्वर भेद को निस्सन्देह आराम होता है ॥ ४६३ ॥

गुञ्जा जीवन रस

शुद्ध किये हुए रत्तियों के बीज डेढ़ तोला लें, रसमिंदूर डेढ़ तोला लें। (बबूल के क्वाथ में) शुद्ध की हुई भाँग को ६ तोला लें। सब को पीसकर दो २ रत्ती की गोलियां बनालें ॥ ४६४ ॥ इस रस का नाम गुञ्जा जीवन है। यह बल को उत्पन्न करता है तथा कामदेव को अत्यन्त उद्दीपन करता है ॥ ४६६ ॥ (इसी रसको एक आयुर्वेदिक फार्मैसी वाले ताकत बढ़ाने को देते हैं।)

गुञ्जाभद्ररस

शुद्ध किये हुए गुञ्जा के बीज ६ तोला। जयन्ती की जड़

की छाल या पत्ते ६ तोला, नीम के बीज ६ तोला ॥ ४६७ ॥
 शुद्ध पारा तीन तोला, शुद्ध गंधक १२ तोले लें। पहले पारा गंधक
 की कज्जली करें। फिर शेष द्रव्यों को मिलाकर पीस लें ॥ ४६८ ॥
 फिर मकोय का स्वरस, भांग, घतूरा तथा नींबू के स्वरस से क्रमशः
 भावनाएं देकर दो २ रत्ती की गोलियां बना लें ॥ ४६९ ॥
 यह गुञ्जामद्रस है। जो महाघोर ऊरुस्तम्भ रोग को विशेष
 करके नाश करता है ॥ ४७० ॥

अथ भल्लातक के नाम

भल्लातक, भल्लांत, तपन, अरुणकर, अग्निक (अग्नि),
 कृमिघ्न, वातारि ये सब भिलावे के नाम हैं ॥ ४७१ ॥

भिलावे का परिचय

भिलावां शाखि जाति का पेड़ है यह पर्वतों पर अधिकता
 से उत्पन्न होता है। इस का फल प्रयोग में आता है ॥ ४७२ ॥

ग्रहण करने योग्य भिलावें का स्वरस

पके हुए भिलावों को जल में डालें। जो डूब जायें उन्हें ही
 ग्रहण करना चाहिये उन को लेकर शुद्ध कर लें ॥ ४७३ ॥

भिलावें शोधन का प्रयोजन

भिलावें का स्वरस थोड़ासाभी यदि त्वचा पर गिर जाये तो
 भयंकर दाह तथा अतिदारुण ब्रण को उत्पन्न कर देता है ॥ ४७४ ॥
 तीव्रदाह के सहित सूजन भी शीघ्र ही उत्पन्न कर देता है। यह
 रस यदि मुख में डालें तो वहां घोर वीसर्प उत्पन्न कर देता
 है ॥ इसलिये इन उपद्रवों की शान्ति के लिए भिलावें के फलों

को शोधन करना चाहिये। शोधन करते समय भी अत्यन्त सावधानता रखनी चाहिये ॥ ४७६ ॥

भिलावें का प्रथम शोधन

भिलावें के फलों को पक्की ईंटों के चूर्ण के साथ मिलाकर एक अति मोटे कपड़े की थैली में डालकर धीरे २ मसलें ॥ ४७७ ॥ जब इसके (दाह शोथ व्रणादि करने वाले भयंकर) तेल को कई घंटे के बाद वह ईंटों का चूर्ण चूमने तो पोटली में से भिलावों को (चिमटे से) चुन २ कर निकाल लें। फिर अत्यन्त गरम जल से इनको बार २ धोकर तेल तथा त्वचा से शुद्ध कर लें।

हार्थों में नारियल का तेल खूब चुपड़ कर तब भिलावें के शोधन को आरम्भ करें। पोटली का कपड़ा बहुत मोटा हो जो बोरी टाट या जीन का हो। उसकी भी तीन चार तह करके पोटली बनावें तो हार्थों को इसके तेल लगने की सभावना न रहेगी। लगेगा भी तो कष्ट न होगा ॥ ४७८ ॥

द्वितीय शोधन प्रकार

दोलायंत्र में नारियल का जल डालकर उसमें दोलायंत्र द्वारा भिलावों को स्वेदन करें। इस प्रकार (३ से ६ घंटे तक) स्वेदन कर लेने से (भिलावें को टुकड़े २ करके) सर्वथा शुद्ध हो जाते हैं ॥ ४७९ ॥

भल्लातक के गुण

भिलावें चरपरे तथा कड़वे रस वाले हैं। ये अत्यन्त उष्ण होते हैं। कृमियों को नाश करते हैं। रसायन, बलकारक,

गुल्म, अर्श तथा ग्रहणी को नाश करते हैं ॥ ४८० ॥ कुष्ठ को नाश करते हैं, कफ वात तथा उदर रोगों को नाश करते हैं । विवन्ध, आध्मान, शूल तथा श्वास आदि रोगों को नाश करते हैं ॥ ४८१ ॥

भिलावें की मात्रा

१ रत्ती से ३ रत्ती तक बल, काल (शीत उष्ण ऋतु तथा रोगी की पित्त प्रकृति आदि) को देखकर ही भिलावें की मात्रा प्रयोग करनी चाहिये ॥ ४८२ ॥

भिलावें का रोगों पर प्रयोग

हरड़, तिल, गुड, भिलावां सबको समान २ भाग लेकर सेवन करें तो प्लीहा, पाण्डु, ज्वर, श्वास तथा कास का नाश होता है ॥ ४-३ ॥

भल्लातक रसायन

सोंठ, विडंग, लोहभस्म, शुद्ध भिलावें इन सब के चूर्ण को पृथक् २ समभाग लेकर शहद तथा घी से मिलाकर तीन माम तक सेवन करावें तो रक्त वृद्धि भी करता है तथा बल भी अत्यन्त बढ़ाता है । निश्चित रूप से नवयौवन तथा लावण्य को उत्पन्न कर देता है ॥ ४८५ ॥ इसे ही भल्लातक रसायन (वाग्भट के रसायन प्रकरण में देखो) कहते हैं । इसे रक्त की कमी को दूर करने के लिये सदा सेवन करना चाहिये ॥ ४८६ ॥

स्वर्ग वासी श्री पूज्य कविराज नरेन्द्र नाथ जी मित्र को एकबार लाहौर में एक रोगिणी वेश्या के अत्यन्त आग्रह पूर्वक

बुलाने से विवश हो कर उसकी चिकित्सा के लिये उसके घर पर जाना पड़ा। रोगिणी की कही जानेवाली माता ६० वर्ष से ऊपरकी वृद्धा थी। परन्तु उसका लावण्य नवयुवतियों जैसा ही दीखता था। श्री मित्रा जी ने उसका ऐसा अपूर्व लावण्य तथा स्थिरयौवनता का कारण पूछा तो उस वृद्धाने कहा कि, “महाराज, आपतो स्वयं हकीम हैं। आपको मैं क्या बयान करूं, तो भी जब आप जानना ही चाहते हैं तो मैं आपको वह नुसखा बतला देती हूं जिससे कि मेरा सौन्दर्य तथा यौवन इस ६० सालकी अवस्था में भी पूर्ववत् स्थिर है। तब उसने यही योग “भिलांवा, सोंठ, विडंग, लोहे की भस्म, घी, शहद उन्हें लिख दिया।” श्री मित्राजी ने आकर रसायन प्रकरण देखते र इस नुसखे को वाग्भट के रसायन प्रकरण में खोज निकाला। मुझे अपना अत्यन्त प्रिय शिष्य जानकर यह सारी घटना एकान्त के समय सुनायी थी। जो मैंने यहां प्रसंगवश लिखनी अत्यन्त उचित समझकर लिखदी है। वाग्भट उत्तर स्थान, रसायनाध्याय के २५२ संख्या के एक अति उत्तम श्लोक में इसे यों लिखा है “विडंग, भल्लातक नागराणि, ये ऽश्नन्ति सर्पिर्मधुसंयुतानि। जरानदी रोगतरंगिणी ते, लावण्ययुक्ताः पुरुषास्तरन्ति। अष्टांग हृदय उत्तर स्थान, रसायनाध्याय २५२ श्लोक ॥

अर्थात्—विडंग, भिलांवे, सोंठ, घी तथा, शहद को मिलाकर जो वृद्ध मनुष्य (नर या नारी) सेवन करते हैं वे जरा (बुढ़ापे) की नदी को जिस में कि रोगों की तरंगें उठती रहती हैं, तैरकर निर्विघ्न पार हो जाते हैं और उनका लावण्य (सौन्दर्य तथा यौवन) स्थिर रहता है ॥

रसतरङ्गिणी के लेखक श्री पं० सदानन्द शर्मा ने श्री पूज्य मित्र जी की सम्मति से इसी में लोहभस्म और मिलादी है। रक्त को शीघ्र बढ़ाने में यह योग अद्वितीय है। इसकी मात्रा लोह मिलाकर केवल चार रत्ती दें। प्रातः सांय दो काल भोजन के पश्चात् देने में भी हर्ज नहीं। घी दूध अधिक मात्रा में सेवन करें। तेल की मालिश करें तो और भी अच्छा है ॥ ४८६ ॥

मिलावे के विष से दाह, खुजली आदि हो जाती है। ऐसी अवस्था में नारियल का जल पीना, नारियल का तेल लगाना तथा, तिलों का सेवन उत्तम है। असाध्य खुजली आदि हों तो रक्त शोधक अनन्तमूल, हरीतकी, लाल चन्दन, खस, पित्त पापड़ा, चिरायता, गिलोय आदि का शीत कषाय मधुमिलाकर या बिना मधु मिलाये प्रातः सांय पीना सद्यः फलदायक है। यह बात अनेकशः अनुभूत है। विद्याधर।

अथ करवीर के नाम

करवीर, हयारि, हयमार, अश्वमारक, अश्वान्तक, अश्वहा, अश्वघ्न, चण्डातक ये नाम कनेर के हैं। (नामों से ही पता लगता है कि कनेर के सेवन से घोड़ा मर जाता है।) ॥ ४८७ ॥ करवीर (कनेर) फूलों के भेद से तीन प्रकार का होता है। १—श्वेतफूलका, २—लालफूल (गुलाबी तथा लाल दो भेद ये भी समर्थ) का, ३—पीले फूल का ॥ ४८८ ॥

कनेर का परिचय

करवीर या कनेर का पेड़ (पौधा) सर्वत्र मिल जाता है। इसकी जड़ को ही वैद्यों ने उपविष माना है ॥ ४८९ ॥ कनेर की जड़ की छाल, या जड़ का स्वरस सेवन करें तो मोह (मूर्छा),

दाह तथा शिरोभ्रमादि विशेष करके उत्पन्न कर देती है ॥४६०॥
कनेर की जड़ बाहर के लेप आदि के लिये प्रयोग की जाती है ।
इसको अन्दर खाने के लिये प्रयोग करना कहीं लिखाहुआ नहीं
देखा गया है ॥ ४६१ ॥

करवीर का बाह्य प्रयोग

कनेर की जड़ को जल से पीसकर लेप करें तो उपदंश के
त्रणों को नाश करती है ॥ ४६२ ॥ कनेर के पत्तों का स्वरस
आंखों में डालने से अभिष्यन्द को तथा आंखों से जल बहने
को विशेष करके दूर करता है ॥ ४६३ ॥

करवीराद्य तैल

तिलों का तेल १ सेर लें । कनेर की जड़ का क्वाथ ४ सेर,
गौमूत्र ४ सेर लें । विडंग तथा चीता दोनों को पृथक् २ दो २
छटांक लेकर कल्क करके विधिपूर्वक तेल पकालें । इसे
करवीराद्य तैल कहते हैं । इसकी मालिश से त्वचा के विविध
रोग दूर होते हैं ॥ ४६४ ॥

नोट—कनेर की जड़ की छाल १ तोला, कनेर के फूल
१ तोला, अफीम ३ माशा, असगंध १ तोला, धतूरे के बीज
१ तोला । सब को पीसकर जल से घोटकर गोली बना लेवें ।
इसे जल से घिसकर लिंग पर लेप करें तो ध्वजभंग को नाश
करती है, ऐसा प्रसिद्ध है ।)

अथ लाङ्गली के नाम

लाङ्गली, हलिनी, सीरी, विशल्या, कलिकारिका । अग्नि-
जिह्वा, स्वर्ण पुष्पा, दीप्ता, नक्तेन्दु, पुष्पिका ॥ ४६६ ॥ विशज्-

ज्वाला, वन्दिशिखा, लाङ्गल्या, गभपातिनी, हली, लाङ्गलिनी ये सब नाम कलिहारी के हैं ॥ ४६७ ॥

लाङ्गली का परिचय

लांगली मुनहरी (लाल से) फूलवाली, मुमनोहरलता (लूप होता है उसे लता प्राय कह सकते हैं) होती है । (विशेष करके) इसकी जड़ हल जैसी होती है । इनके पुष्प रात के समय चन्द्रमा के समान खिलते हैं ॥ ४६८ ॥ लांगली की जड़ को ती उपविष माना जाता है । यह जड़ ही योगों में प्रयोग की जाती है ॥ ४६९ ॥

लाङ्गली के अन्दर प्रयोग करने के दोष

मूखी वा गोली कलिहारी (लांगली) को थोड़ी मात्रा में भी अन्दर खावें तो भयंकर दाह, मोह, अतीसार तथा शिरोभ्रम को कर देती है ॥ ५०० ॥

लाङ्गली के गुण

कलिहारी चरपरे (कटु) रसवाली, उष्ण, कफ तथा वातनाशक है । यह दस्तावर (मरा) प्रसव के बाद प्रसूता का जेर को निकाल देने वाली है । इसके प्रयोग करते ही तुरन्त बच्चा बाहर हो जाता है ॥ ५०१ ॥ यह विशेष करके शोथ को नाश करती है तथा ब्रणों को नाश कर देती है । कुष्ठ तथा कृमियों को नाश करने में विशेष करके परमोत्तम है ॥ ५०२ ॥ अन्दर खाने के लिये लांगली को कभी न दें । केवल पूर्वलिखित रोगों में बाहर लेप के लिये ही इसका प्रयोग करें ।

लाङ्गली के बाहर के प्रयोग

लांगली की जड़ को जल से धोलें । फिर जल से पीसकर

नाभि तथा योनि में लेप कर दें तो सन्तान तुरन्त प्रसव हो जाती है ॥ ५०४ ॥ लांगली की जड़ को जल से पीसकर हाथ पैरों के तलवों पर मल दें तो अपरा अर्थात् जेर को शीघ्र ही बाहर निकाल देती है, इसमें तनिक भी संदेह न करें। (बाद में हाथ पैरों को धोकर इसे तुरन्त ही उतार दें, नहीं तो गर्भाशय भी बाहर आने लगता है। अनुवादक) ॥ ५०५ ॥ लांगली की जड़ का रस कृमिवाते कान में डालने से कान के अन्दर घुसे हुए शतपदी (कानखजूरे) आदि सब कृमियों को नष्ट कर देता है ॥ ५०६ ॥ लांगली की जड़ का स्वरस, सूर्यभक्ता (हुरहुर) के स्वरस के साथ मिलावें। उसमें त्रिकटुका चूर्ण डालकर बख्ख में से छानकर कीड़े वाले कान में डालेंतो शीघ्र ही कान के अन्दर गये हुए कीड़ों को, कीड़ियां को तथा कर्ण जलौका कानसलाई (कान खजूरे) को तथा अन्यान्य कीड़ों को मार देता है ॥ ५०७ ॥ ॥ ५०८ ॥ चील पक्षी की बसा, गोह प्राणी की बसा (चर्वी) इन दोनों को समान २ भाग लें। तिलों का तेल चर्वी के बराबर दो भाग लेकर गर्म करें। इस सारस्नेह में तुलसी का स्वरस तथा लांगली की जड़ का स्वरस चौगुना २ भाग मिलाकर अग्नि पर पकावें। इस तेल की मालिश से कर्णपाली का उन्मन्द्य रोग (कर्णपाली को बलपूर्वक खींच कर बढ़ाने समय हुई २ खुजली युक्त सूजन) विशेष करके (तथा ऐसे अन्य दोष) नष्ट हो जाते हैं ॥ ५०९ ॥

अथ अर्कक्षीर के नाम

आक के दूध के नाम

अर्कक्षीर, रविक्षीर, सूर्यक्षीर, अर्कदुग्ध, सूर्यदुग्ध, रविदुग्ध ये सब नाम आक के दूध के हैं ॥ ५१० ॥

अर्कक्षीर के गुण

आक का दूध स्निग्ध, कड़वे रस वाला, उष्ण, कुष्ठ तथा गुल्म का नाशक, अत्यन्त उदर रोग नाशक, अत्यन्त विरेचक तथा वान्तिकारक है ॥ ५११ ॥ गुदाके मस्सों को शान्त करता तथा कृमिदन्त की पीड़ा को नाश करता है। यदि त्वचा पर इसका लेप करें तो यह विशेषकर के चार कर्म को करता है ॥ ५१२ ॥

आक के दूध का बाह्य प्रयोग

शहद तथा आक का दूध समभाग मिलाकर थोड़ी रुई के फाहे को उसमें भिगोकर कीड़े से खाये हुये दांत के छिद्र में उसे भर दें तो कृमिदन्त की पीड़ा को नाश करता है ॥ ५१३ ॥ आक का दूध एक भाग, शहद ३ भाग मिला कर यदि लेप करें तो मुख के क्षत (जख्मों) को शीघ्र ही आराम कर देता है इसमें संशय नहीं ॥ ५१४ ॥ हल्दी, निरस के बीज, आक का दूध सबको मिलाकर गुदा में बवासीर के मस्सों पर लगायें तो उन्हें निस्सदेह गिरा देता है फिर वे चाहे कितने ही पुराने क्यों न हों। पर यह योग पीड़ा करता है ॥ ५१५ ॥

स्तुहीक्षीर के नाम

स्तुहीक्षीर, सुधाक्षीर, सेट्टण्डक्षीर, स्तुहीदुग्ध, सुधादुग्ध. स्तुगदुग्ध ये सब नाम थोहर के दूध के हैं ॥ ५१६ ॥

थोहर के दूध का शोधन

थोहर का दूध १६ तोला लेकर दो तोला इसली के पत्तों के बख्ख से छाने हुए स्वरस में डाल दें और धूप में रखकर सुखालें

॥ ५१७ ॥ जब मारा रस सूख जाये तो थोहर के दूध को लेलें ।
फिर इस दूध को सब योगों में डाल सकते हैं ॥ ५१८ ॥

थोहर के दूध के गुण

थोहर का दूध वात नाशक है । यह गुल्म, उदररोग, विष
आध्मान, गुदाके मस्से, इन सब को नाश करता है । परम
विरेचन करने वाला है । आंघ में डाल दें तो पुष्प (फोला)
उत्पन्न कर देता है । यह विशेषकर के चारकर्म को करने में श्रेष्ठ
है ॥ ५२० ॥

इसका रोगों पर प्रयोग

थोहर का दूध, हल्दी, तोरी, सेंधा लवण इन सब को एकत्र
कर गोमूत्र से पीसकर लेपकर दें तो गुदा के मस्सों को गिरा देता
है ॥ ५२१ ॥

क्षारवर्तिका

दारु हल्दी का चूर्ण १ तोला लेकर जलसे १५ दिन घोटते
रहें । फिर धूप में सुखालें ॥ ५२२ ॥ फिर दारु हल्दी का यह चूर्ण
१ भाग, थोहर का दूध १ भाग, आक का दूध १ भाग तीनों को
ग्वरल में मिलाकर ग्वू पीसें ॥ ५२३ ॥ जब बत्ती बनाने के योग्य
हो जाये तो एप्रणिका (Probe) के आकार की पतली २
लम्बी २ बत्तियां बनालें ॥ ५२४ ॥ इन्हें क्षारवर्त्ती कहा जाता है ।
इसे ब्रण में प्रविष्ट करा दें तो यह भगंदर के घोर ब्रण तथा
महाघोर नाड़ी ब्रणों में (नासूरों) को विशुद्ध कर देती है (तथा
उस ब्रण को भर देती है) ॥ ५२५ ॥ अति प्रयत्न से इस बत्ती
को भगन्दर तथा नाड़ी ब्रण के अन्दर भरना चाहिये । भरने
के बाद शीघ्र ही यह उन ब्रणों को शुद्ध कर देती है ॥ ५२६ ॥

चारसूत्र

हल्दी का चूर्ण वस्त्र में से छान लें। उसमें समभाग खोहर का दूध मिला दें। फिर उस में रुई का छोटा सा फाहा भिगोकर अतिदृढ़ धागों पर उसे मलें। फिर छाया में धागों को सुखालें। इसी प्रकार इन धागों को सातवार दूधमें भिगोकर छाया में सुखाकर रख लें ॥ ५२८ ॥ इन्हें भी चारसूत्र कहते हैं यह गुदा में होने वाले बवासीर के मस्सों को नाश करने के लिये अमोघ अस्त्र है ॥ ५२९ ॥ भगन्दर को काटने के लिये भी यह उपयोग किया जाता है। परन्तु इस चारसूत्र को अत्यन्त सावधानता से ही प्रयोग करना चाहिये ॥ ५३० ॥

मस्सों को चिमटी से खेंच कर इस चारसूत्र से जड़ से बांध देने चाहिये। कसकर बांधने से धीरे धीरे कट कट के गिर जाते हैं। दो दिन बाद इन्हें कसता रहे। भगंदर में इसी चारसूत्र को प्रवेश करे और उधर गुदा में पणिका (Probe) को अन्दर डालकर चारसूत्र को गुदा से बाहर निकाल लें। एक सिरा चारसूत्र का भगंदर के ब्रण के बाहर लटकता रहे दूसरा गुदा के बाहर लटकता रहे, इन दोनों सिरों को कसकर बांध दें। इस प्रकार भगंदर का ब्रण क्रमशः शुद्ध होकर धीरे २ अच्छा हो जाता है। चारसूत्र को कसते जाया करें। धीरे २ ब्रण से गुदा तक का सारा भाग चारसूत्र से कट कर शुद्ध होकर इस ब्रण का नाश कर २ के स्वयं ही भरता जायेगा। इस प्रकार भगंदर सदा के लिये अच्छा हो जायेगा।

अथ कृष्ण सर्प विष के नाम

कृष्ण सर्प विष, गरल, दाद, जङ्गमविष ये सभी नाम काले सांप के विष के हैं ॥ ५३१ ॥

कृष्ण सर्प विष लेने की विधि

एक सीपी को ताड़के पत्ते या खजूर के पत्ते से सब ओर से ढक दें। फिर नीचे एक लंबी लकड़ी या बांस बांध दें ॥ ५३२ ॥

इस लकड़ी को सांप के मुख के पास इस तरह से बार २ लेजाये, जिस तरह से कि काला सांप क्रोध से उस ताड़ पत्र को काटे ॥ ५३३ ॥ इस प्रकार उसे ऐसे ढंग से अनेक बार सांप के आगे रखे जिससे सांप अनेक बार काट २ कर अपना विष उस पर छोड़े। इन प्रकार सीपी में संचित हुए २ सर्प विष को इकट्ठा करते ॥ ५३४ ॥ बार २ काले सांप को वैद्य क्रोध दिलाकर सावधान होकर उस विष को लेता जावे ॥ ५३५ ॥

कृष्ण सर्प विष का शोधन

तेल से चुपड़ी हुई सीपी के अन्दर सांप के विष को डालकर (पहले सीपी को सरसों के तेल से चुपड़कर ताड़ पत्र से ढक कर सांप का विष सीपी में ग्रहण करना उचित है) उसमें विष से चौथाई भाग सरसों का तेल डालकर धूप में सुखावे ॥ ५३६ ॥ धूप में सुखाने से वह पीले रंग का हो जाता है। इस प्रकार काले सांप का विष उत्तमता से शुद्ध हो जाता है ॥ ५३७ ॥

कृष्ण सर्प विष के गुण

कृष्ण सांप का विष तीक्ष्ण होता है, महा उष्ण वीर्य तथा अत्यन्त भयंकर होता है। पित्त को प्रकुपित कर देता है तथा अत्यन्त दाह को उत्पन्न कर देता है ॥ ५३८ ॥ मृत्यु काल के समीप आने पर जो मनुष्य की संज्ञा लोप (वेहोशी) हो जाती है, उसे यह दूर कर देता है। कष्ट से आस आने को आराम

करता है तथा कफ को सुखा देता है ॥ ५३६ ॥ हृदय की दुर्बलता से उत्पन्न हुआ महा भयंकर लक्ष्णों वाला इन्द्रियों में हो जाने वाला अवसाद (अति थकान या अति सन्न हो जिसमें प्राणी निश्चेष्ट हो जाये) इस विष के प्रयोग से शीघ्र ही निश्चित दूर हो जाता है ॥ ५४० ॥ ऐसी विपूचिका को भी यह सर्प विष नाश कर देता है, जिसमें नाड़ी चलनी बंद होने लगती है, हाथ पैर ठण्डे हो जाते हैं तथा श्वास लेने में कष्ट होता है ॥ ५४१ ॥ इसी प्रकार के (नाड़ीक्षीणता, हाथ पैर का शीत होना, श्वास कष्ट) लक्ष्णों वाले सन्निपात को भी कृष्णसर्प का विष नाश करता है। यह विष शीताङ्गसन्निपात को नाश करता है तथा हृदय को परम उत्तेजना देने वाला है ॥ ५४२ ॥ गात्रों के ठण्डे हो जाने पर, श्वास का कष्ट बढ़जाने पर, नाड़ी की गति नष्ट हो जाने पर इत्यादि सन्निपात जैसे लक्ष्णों के हो जाने पर ॥ ५४३ ॥ अथवा इन लक्ष्णों वाले किसी भी नये प्राण घाती रोगों के हो जाने पर जिनमें कि विविध प्रकार के कुचले के प्रयोग काम न करते हों ॥ ५४४ ॥ जिनमें कि कस्तूरी भैरव आदि कस्तूरी के प्रयोग सफल न होकर निष्फल हो जायें। जिनमें कि मृतसंजीवनी सुरा निष्फल हो जाये ॥ ५४५ ॥ ऐसे महा असाध्य अवस्था में कृष्णसर्प के विष को योगों में मिलाकर सदा सावधानता से वैद्य प्रयोग करें ॥ ५४६ ॥

कृष्ण सर्प विष का निषेध

बालक, वृद्ध, राजयक्ष्मा के रोगी, संन्यास रोगी, मूर्छारोगी जीर्ण ज्वर वाले क्षीण रोगी को ॥ ५४७ ॥ पुराने रोगों से क्षीण रोगी, रक्त पित्त के रोगी तथा क्षीण रोगी को सांप का विष नहीं देनी चाहिये ॥ ५४८ ॥

कृष्ण सर्प विष का आमयिक प्रयोग

सूचिका भरणरस

शुद्ध किया हुआ कृष्णसर्प का विष २ मापा, शुद्ध पारा २ मापा, नाग भस्म २ मापा, शुद्ध गंधक २ मापा, शुद्ध मीठा-तेलिया (वत्सनाभविष) २ मापा लें। पहले कज्जली बनालें। फिर सबको एकत्र मिलाकर बकरे, मोर, सुअर तथा मछली के पित्तों से पीसैं। फिर अदरक के स्वरस से ३ घंटे तक अतियत्न से घोट लें ॥ ५५० ॥ फिर छोटी सरसों के सदृश गोलियां बनालें। इसे सूचिका भरणरस कहते हैं ॥ ५५१ ॥ सन्निपात से दुःखी हुए २ लोगों पर अनुग्रह करने की इच्छा से महात्मा भैरव ने इस रस का प्रथम २ आविष्कार किया था ॥ ५५२ ॥ इसकी गोलियां बनाने वाला सेवक या वैद्य अपने नख कटवाले तथा ब्रणयुक्त हाथों वाला न होना चाहिये ॥ ५५३ ॥ बटी बनाने के बाद एक सलाई से नखों के अन्दर तक गये हुए रस के अंश को निकालकर बाहर करदे। फिर बार २ साबुन मल कर जल से हाथों को धोलें ॥ ५५४ ॥

इस रस के गुण

यह सूचिकाभरणरस सन्निपात को नाश करता है। विषसूचिका को नाश करता है तथा कष्ट से आने वाले श्वास को नष्ट करता है ॥ ५५५ ॥ काले सांप के विष को जहां २ प्रयोग करने के लिये कह आये हैं, इस सूचिका भरणरस को भी वहां २ प्रयोग कर सकते हैं ॥ ५५६ ॥ इस रस को अदरक के रसके साथ देना चाहिये। यदि इस रसके देनेके बाद आध घण्टे तक रोगी का मुंह लाल न हो जाये, आंख लाल न हो जायें, तीव्र ताप न चढ़ जाये, तो दूसरी गोली फिर अदरक के रस से

दें । पथ्य के लिये दही तथा चावलों का भात दें ॥ ५५८ ॥ अब भी रोगी का मुंह लाल, आंखें लाल, तथा तीव्र ताप चढ़ जाये, तब शीतल जल से रोगी को स्नान कराये ॥ ५५९ ॥ शीतल जल से वस्त्र को भिगो कर बार २ मस्तक पर लपेटे, जिससे पीड़ा तथा दाह न हो सके ॥ ५६० ॥ कृष्णसर्प विष के द्वारा तीव्र ताप हो जाना आदि जो चिन्ह हैं, उनके रोगी में प्रकट हो जाने पर फिर दुबारा इस रस को प्रयुक्त न करे ॥ ५६१ ॥ रसायन शास्त्रियों ने कृष्ण सर्प विष के प्रयोग से बने हुए सब रसों में यही विधि चिकित्सा करने की बतलायी है ॥ ५६२ ॥

द्वितीय सूचीकाभरणरस

शुद्ध वत्सनाभ विष, कृष्ण सर्प विष, शुद्ध संखिया प्रत्येक एक २ माशा लें । शुद्ध हिंगुल २ माशा लें ॥ ५६३ ॥ पूर्वोक्त लिखित पांचों पित्तों से पीसकर सरसों के सदृश गोलियां बनालें । इन्हें सावधान होकर सदा प्रयुक्त करें । इसका नाम भी सूचीकाभरणरस है । पूर्व रस में कहे हुए सब रोगों में उसी विधि से इसे दें ॥ ५६४ ॥ तो यह पूर्वोक्त सभी गुण करती है ॥ ५६५ ॥

विसूचीध्वंसनरस

शुद्ध काले सांप का विष, शुद्ध वत्सनाभविष, शुद्धपारा, शुद्धगंधक, सुहागाखील, सोंठचूर्ण, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक एक २ माशा लें ॥ ५६६ ॥ शुद्ध हिंगुल ७ माशा लें । पहले कञ्जली बनायें फिर अन्य द्रव्य मिलाकर नीबू के स्वरस में सब को घोटें ॥ ५६७ ॥ फिर श्वेत सरसों के बराबर गोली बनालें । यह विसूचीध्वंसनरस कहाता है ॥ ५६८ ॥ इससे क्योंकि विषूची (हैजा) दूर होता है इसलिये इसे विषूचीध्वंसनरस

रुहते हैं। जब हाथ पैर ठंडे हो जाते हैं ऐसे भयंकर लक्षणों में इसे दें तो यह सुख देता है ॥ ५६६ ॥ सूचिकाभरणरस में रुही हुई सब विधि से ही इस रस को भी प्रयोग करना चाहिये ॥ ५७० ॥

मृतसंजीवनरस

शुद्ध कृष्ण सर्प का विष, शुद्ध वत्सनाभविष, सुवर्ण माक्षिकभस्म, सुहागे की खील, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध हड़ताल, एक २ माशा लें ॥ ५७१ ॥ पहले कञ्जली बनायें फिर सब औषध मिलाकर खरल करें। फिर बकरे, मोर सूअर तथा मछली की पित्त से सबको क्रमशः भावना दें। फिर छोटी सरसों के समान गोलियां बनालें ॥ ५७२ ॥ क्योंकि ये गोलियां मरने वाले रोगियों को जीवन देती हैं, इसीलिये इसका नाम मृतसंजीवन रस है ॥ ५७३ ॥ यह गोली श्वास, प्रलाप, बहरापन, मूकपन, अंगों का ठंडा हो जाना इत्यादि मरने वाले रोगों के सब लक्षणों को शीघ्र ही नाश करके जीवन दे देती है ॥ ५७४ ॥

अथ रक्तचित्रक शोधनम्

लालचीते का शोधन

लालचीते की जड़को चूने के जल में भिगो दें। फिर धूप में सुखालें। इस प्रकार लालचीता शुद्ध हो जाता है ॥ ५७५ ॥

विधारे के बीजों की शुद्धि

गौ के दूध में दोलायंत्र द्वारा ३ घंटे पकाने से विधारे के बीज शुद्ध होते हैं ॥ ५७६ ॥

नींबू के बीजों का शोधन

अपामार्ग के काढ़े में दोलायंत्र द्वारा नींबू के बीजों को तीन

घंटे स्वेदन करें तो शुद्ध हो जाते हैं ॥ ५७७ ॥

हींग की शुद्धि

समान भाग घी में हींग डालकर कड़ख्की को आग पर रखे । पक कर फूलने पर हींग शुद्ध हो जाती है ॥ ५७८ ॥

गुग्गुलु का शोधन

चार भाग गौ के दूध में १ भाग गुग्गुलु को डालकर मन्दाग्नि से पकावें । फिर वस्त्र से छान कर मलको निकाल दे । शेष छाने हुए दूध के शीतल हो जाने पर दुग्ध पात्र के तल में पड़ी हुई गुग्गुलु को निकाल लें । यह सब दोषों से रहित, शुद्ध गुग्गुलु है । (वस्त्र की पोटली में भी गुग्गुलु बांध कर दूध में पका सकते हैं तब मैल वस्त्र की पोटली में ही रह जायेगी । गुग्गुलु का भाग दूध में घुल जायेगा । वस्तुतः गुग्गुलु एक वृक्ष का गोंद है) ॥ ५७९ ॥ ॥ ५८० ॥

ग्रन्थ की समाप्ति का काल

श्रीविक्रमादित्य राजा के संवत् १६८० में चैत्रमास कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को यह ग्रन्थ रचा गया था, ॥ ५८१ ॥ जब तक सूर्य इस पृथ्वी पर चमकता रहेगा, जब तक चन्द्रमा आकाश को उज्ज्वल करता रहेगा तब तक इस शास्त्र के पढ़ने वाले श्रेष्ठ वैद्यगण भी मुक्त सदानन्द की रची हुई इस रसतरङ्गिणी नामकी पुस्तक को पढ़ते रहेंगे ॥ ५८२ ॥

इति श्री कविराज विद्याधर विद्यालंकार आयुर्वेद शास्त्री भिषगाचार्य सोलन निवासी कृत रसतरङ्गिणी के भाषानुवाद में यह विषोप विषादि विज्ञानीय नाम का चतुर्विंश (२४वां) तरङ्ग समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

✽ समाप्तम् ✽

(परिशिष्ट)

श्री नरेन्द्रनाथ मित्र के प्रयोग

श्रीयुत नरेन्द्रनाथ जी मित्र अपने रोगियों के विशेष २ रोगों पर जो २ विशेष २ औषध प्रयोग किया करते थे उनको सर्वजनहित के लिये यहां लिखना उचित समझता हूं। वैद्य और विद्यार्थी इनसे लाभ उठा सकते हैं। मित्र जी स्वयं रससिद्ध वैद्य थे। उनका कथन था कि रससिद्ध वैद्यों का प्रातः नाम स्मरण करने से वैद्य को सिद्धि प्राप्त होती है। एक बार “नाक कट जाने पर पुराने वैद्य लोग क्या उपाय करते थे” यह प्रश्न किसी अंग्रेज एलोपैथ ने समाचार पत्र में छपवाया था। मित्रा जी भी उसी चिन्ता में मग्न रहते थे कि रात क स्वप्न में उन्हें धन्वन्तरी जी ने एक श्लोक कहा कि “इस तरह नाक कट जाने पर उसे सीते हैं और घ्रण को ठीक कर देते हैं।” वह श्लोक उठ कर रात को ही उन्होंने लिख लिया। प्रातःकाल सुश्रुत में ढूँढने लगे तो सचमुच वही श्लोक अक्षर २ वहां लिखा मिला। इसी प्रकार ध्यान करते २ वे रोग का निदान और चिकित्सा कभी २ ऐसी करते थे कि योरोपीय डाक्टर भी चकित रह जाते थे। उनके प्रयोग यहां नीचे लिखते हैं।

१—आंत उलझने पर

एक डाक्टर के ५ वर्ष के बालक की आंतों में उलझन पड़

गयी ! डाक्टरों और सिविलसर्जन ने आप्रेशन करने की सलाह दी । लड़का दर्द से छटपटा रहा था । पिता भी आप्रेशन से घबराते थे । मित्र जी को भी बुलाया गया । उन्होंने पेट पर “बिन्दुघृत” मलवाया । थोड़ी देर में टट्टी आई । आंतें स्वयं ही ठीक होकर लड़का बच गया ।

२—बी० कोलाई पर

आंतों के यक्ष्मा या बी० कोलाई (B. Coli) पर वे प्रायः स्वर्णघटित सर्वाङ्ग सुन्दर रस दिन में दो बार दिया करते थे और खाने को दही का मठा । श्री जयचंद्र जी विद्यालंकार प्रसिद्ध इतिहासज्ञ की पत्नी को इसी उपाय से उन्होंने रोग मुक्त किया था ।

३—राजयक्ष्मा में

फेफड़े के यक्ष्मा में लघुमृगांकरस या मृगांकरस चावल के भात तथा तित्तर मांसयूष से देते थे ।

४—नृपुंसकता में

चन्द्रोदय मकरध्वजरस, बृहच्छागलाघृत खिलाते थे । अण्डे खिलाते थे ।

५—लिम्बवर्धनार्थ

चक्रदत्तोक्त सरसों के तेल में भिंसाये, बृहती आदि पकाकर मर्दनार्थ देते थे ।

[३]

६—सूजाक में

यवक्षार, रससिंदूर शीतल चीनी के साथ देते थे। उत्तर-
चस्ति भी रसतरंगिणी में कही हुई विधि से देते थे।

७—आध्मान में

योगरत्नाकर का चोपचीन्यादि चूर्ण प्रयोग करते थे।

८—वाताधिक्य में

कृष्ण चतुर्मुखरस सौंफ के अर्क से प्रायः देते थे।

९—गुल्म में

वंगभस्म टंकणभस्म का प्रयोग करते थे।

१०—प्रमेह में

मुक्ता शुक्ति या लौहभस्म प्रायः दोषानुसार देते थे।

११—ग्रहणी में

जीर्ण ग्रहणी में स्वर्ण घटित योग देते थे।

१२—भगंदर में

भगन्दर की चिकित्सा बंगाल के सुश्रुत संप्रदाय वालों से
उन्होंने सीखी थी। वे ब्रण में क्षार सूत्र डालकर ब्रण को भर
देते थे। रोगी अच्छा हो जाता था।

१३—अर्श पर

बड़ी हरीतकी का चूर्ण खाने को तथा मुर्दासंग या सिंदूर

शतधौत मक्खन में मिलाकर लगाने को देते थे ।

१४—प्लीहा में

प्लीहारि रस का प्रयोग करते थे ।

१५—रक्तपित्त में

कच्ची पीपल की लाख को जल में भिगोकर यह पिलाते थे ।

१६—वातरक्त में

गुडूची तैल का प्रयोग करते थे ।

१७—परिणामशूल तथा पित्तजपथरी पर

नारीकेल लवण में नौसादर तथा यवचार मिलाकर देते थे ।

१८—कुष्ठ में

“पंचातितकघृतगुग्गुलु” देते थे ।

१९—प्रदर में

वंग, मुक्ताशक्ति, राल, लोहभस्म मिलाकर देते थे ।

२०—रक्तदुष्टि में

शुद्ध गंधक मुक्ताशक्ति से मिलाकर देते थे ।

२१—जुकाम में

सीसक के घोलका तुंबा नासिका में लगाते थे ।

२२—अनिद्रा में

स्वर्णमाक्षिक भस्म दिया करते थे ।

इत्यादि उनके प्रयोग प्रसिद्ध थे जो वे रोगियों को देकर लाभ पहुंचाते थे ।

—विद्याधर

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वति जी के प्रयोग

१—अभ्रकभस्म विधि

प्रथम कृष्ण वज्राभक को शुद्ध करके धान्याभ्रक बनाले । फिर बथुआ या बाथू (वास्तूक) के पत्तों के स्वरस में डालकर १०, १५ दिन मिट्टी के पात्र में पड़ा रहने दे । फिर टिकियां बनाकर धूप में सुखा कर सम्पुट कर गजपुट में फूंक देवे । ऐसा ८, १० बार करने से ही लालरंग की निश्चन्द्र अभ्रकमः हो जाती है । इसे विविध रोगों में प्रयोग करे ।

२—दन्त मंजन

माजूफल, मुरैठी, पपरिया कत्था, रूमीमस्तगी, नीला थोथा सब आधा २ पाव ले । नीला थोथा को अग्नि पर फुलाकर थोड़ा सा जल कड़ाही में रखकर बुझालें और बुझाकर शीघ्र निकाल कर पांचों चाजें अलग पीसलें । उन पांचों के बराबर आककी जड़ की छाल अर्थात् पृथ्वी में से खोदकर धो डाले जिससे मिट्टी कंकड़ न रहें । छाल को छोटी २ काटके जिसमें नीला थोथा बुझाया है, उसमें छहों चीजें डालके लोहे की

कड़ाही में लोहे की मूसली से कूटे। जब महीने हो जावे तब निर्वात स्थान में पीसे जब तक अंजन के समान न हो जावे पीसता जावे। फिर शीशी में भरले। दांतुन करके पीछे अंगुली से दांत और मसूढ़ों पर लगावे- इससे दांत पुष्ट रहेंगे, न हिलेंगे, न गिरेंगे न पीड़ा होगी।

स्वामी दयानन्द जी के ३१ मार्च १८८० ईस्वी सन के पत्र से उद्धृत। दोनों योग ही स्वासुभूत हैं अपूर्व गुणदायक हैं।



रोगानुसार रसतरंगिणी में

लिखी हुई रस औषधादि की सूची

(१) नव ज्वर तथा विषमज्वरों में (Fever, Malaria)

अभ्रकभस्म, हड़तालभस्म, शंखविषोदयरस, चंडेश्वररस, दुग्धपाषाण, गोदन्तभस्म, कज्जली, स्फटिकभस्म, मृत्युंजयरस, हिंगुलेश्वररस, जयावटी, कफकेतु, तुल्यकोदयरसायन, खर्पर, मुक्तापंचामृतरसायन, ज्वरारिरस आदि २।

(२) सन्निपात ज्वरों में (Typhoid etc)

सिद्धदरदामृत, शंखविषोदयरस, मृगशृंगभस्म, शिवताण्डवरस, सूचिकाभरणरस (दोनों), मृतसंजीवनरस, मंगलोदयावटी, अंजनभैरवरस, प्रलापान्तकरस, आदि २।

(३) जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा में (Pthisis)

मनः शिलीयमाणिक्यरस, अभ्रककल्प, सिद्धमकरध्वज, सुवर्णमंडल, सुवर्णभस्म, वैक्रान्तभस्म, हीरकभस्म, मुक्तापंचामृतरस, आन्तशोषान्तकरस, आदि २।

(४) अतीसार तथा विसूची में (Diarrhoea Cholera)

खटिका, गंधद्रावक, हिंगुल, रसपुष्प, सर्वांगसुन्दर, सुधालवण, अहिफेन, अहिफेनासव; सिद्धरभूषणरस, विसूचीविध्वंसनरस, आदि २।

(५) ज्वरातीसार में

सिद्धहिंगुलेश्वर, आनन्द भैरवरस आदि २।

(६) ग्रहणी में (Sprue)

रसपर्पटी, हिंगुलीय माणिक्यरस, कासीसद्रव आदि २।

(७) अर्श में (Piles)

अपामार्गक्षार, मृदारशृंगाद्यमलहर, कासीसद्रव वेदनान्तक-
मलहर, स्नुहीक्षीर, चारसूत्र, चार वर्तिका आदि २ ।

(८) अग्निमांदाजीर्ण में (Dyspepsia)

शंखद्रावक, शंखद्राव, सोरक, चिञ्चुआक्षार, रोमक, अग्नि
तुण्डीरस, कांस्यभस्म, भंगा आदि २ ।

(९) क्रिमि में (Worms)

रसकपूर, भूतघ्नचक्रिका, कज्जली, पित्तलभस्म, ताम्र
आदि २ ।

(१०) पाण्डुरोग में (Anaemia & Jaundice)

खर्परसत्त्वभस्म, मण्डूर, लौहभस्म आदि २ ।

(११) रक्तपित्त में (Haemoptysis)

लौहभस्म, मुक्तभस्म प्रवालभस्म, जयावटी, गैरिक
आदि २ ।

(१२) कासरवातकफ में

मनःशिला, शुद्धसंखिया, टंकण, कफकेतु, गुंजापत्र,
गुञ्जामूल, सूर्यावर्त्तरस आदि २ ।

(१३) हिक्का में (Hiccough)

पुष्पाञ्जन, मनःशिला आदि २ ।

(१४) स्वरभेद में (Hoarseness)

गुञ्जामूल, गुञ्जापत्र आदि २ ।

(१५) अरुचि में (Anorexia)

सैधवलवण, शंखद्रावक, गंधकाम्ल, शंख आदि २ ।

(१६) छर्दि में (Vomiting)

प्रवाल, गेरू, चन्द्रकान्त आदि २ ।

(१७) तृष्णा में (Thirst)

प्रवाल, चन्द्रकान्त, रजतभस्म, ताम्रभस्म आदि २ ।

(१८) मूच्छा में (Cynopy)

तुत्थक नस्य आदि २ ।

(१९) मदात्यय में (Alcoholism)

राजावर्त भस्म आदि २ ।

(२०) दाह में (Burning)

दुग्धपाषाण, गौरिकाद्यमलहर, चन्द्रकान्त, प्रवाल आदि २ ।

(२१) उन्मादअपस्मार में (Insanity Epilepsy)

स्वर्णलवण, उन्मादगजाङ्गूश, स्वर्णभस्म, आदि २ ।

(२२) वात व्याधि में (Nervous Disease)

सिद्धदरदामृत, सामुद्रलवण, सुप्तिवातारिरस, विषतिन्दुक तैल, त्र्यम्बकेश्वर, यशदभस्म आदि २ ।

(२३) आमवात में (Acute Rheumatism)

हिगुलेश्वर, वत्सनाभ, आनन्दभैरव, शंख आदि २ ।

(२४) वातरक्त कुष्ठो में (Leprosy)

हड़ताल, तालकोदयमलहर, रसमाणिक्य, गंधककल्प, शुद्धगंधक, दद्रुविद्रावण मलहर, गंधकाद्यमलहर, नीलमभस्म, सिन्दुर, सिंदूराद्य मलहर, सिंदूराद्यतेल, मृदारशृंग, कासीसद्रव, पित्तलभस्म, पित्तलरसायन, भल्लातक, तुत्थामृत मलहर आदि २ ।

(२५) ऊरुस्तम्भ में (Paraplegia, Carbuncle of thigh)

गुब्जाभद्ररस आदि २ ।

(२६) शूल में (Colic and Neuralgia)

दुग्धपाषाण, नारिकेललवण, शंबूकभस्म, वराटभस्म, अर्कलवण, शूलनिर्मूलनरस, वेदनान्तकरस, अहिफेनासव, वेदनान्तकमलहर, भंगा, ताम्रभस्म, शूलेभकेशीरस आदि २ ।

(२७) गुल्म में (Abdominal Tumour)

जलशुक्ति, शंखद्राव, शंखकल्प, सर्जिच्चार, अपामार्गच्चार, स्नुहीच्चार, पलाशच्चार, विडलवण आदि २ ।

(२८) हृद्रोग में (Heart Trouble, Angina Pectoris, Cordialgia)

मृगशृंग, मुक्ताभस्म, हृदयार्णवरस आदि २ ।

(२९) मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी में

(Dysuria, Strangury Stone of calculus)

यवच्चार, निम्बुकाम्लीययवज, सोरक, तिलच्चार, प्रवाल आदि २ ।

(३०) वृक्कशोथ में (Kidney disease)

निम्बुकाम्लीय यवज आदि २ ।

(३१) प्रमेह में

(Spermatorrhoea Gonorrhoea Polyuria)

रजतभस्म, वंगभस्म, सुवर्णवंग, सुवर्णवंगपंचकरसायन, सीसकभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, लौहभस्म, शुक्तिभस्म, आदि २ ।

(३२) मधुमेह में (Diabetes)

सजल सोरकद्रावक, सुवर्णलवण, खर्परसत्वभस्म, शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिकभस्म, तारमाक्षिकभस्म आदि २ ।

(३३) स्थौल्य या मेदरोग में (Obesity)

तुत्थभस्म, ताम्र आदि २ ।

(३४) उदररोगों में (Ovarian Tumour Asitis, Dropsy)

शंख, शंखद्राव, सौवर्चल, पंचमृतरस, जलोदरारिस आदि २ ।

(३५) यकृत प्लीहा में (Liver & Spleen)

शंखद्रावक, शुक्तिभस्म, अर्कक्षार, स्नुहीक्षार, अर्कलवण, सजललवण द्रावक आदि २ ।

(३६) शोथ फुफ्फुस शोथ में (Inflammation)

टंकणाम्ल, नवसादर, धतूरा, यशदामृतद्रव, मण्डूरभस्म नवसादरसत्त्व आदि २ ।

(३७) वृद्धि व्रध्नप्लेग में (Hypertrophy, Bubo)

धतूरा, प्रथिशोथनिवारिका बर्त्तिका आदि २ ।

(३८) गण्डमाला, गण्ड, ग्रन्थि, अबुद में

(Bronchocele, Scrofula, enlargement of Lymphatic Glands, Goitre, Tumour)

प्रन्थिशोथनिवारिकावर्त्तिका, द्वितीय गुञ्जादितैल, कफकेतु, त्रिरेखावर्त्ति, आदि २ ।

(३९) सामान्यव्रण अग्निदग्ध में (Wounds, boils,)

टंकणामृतमलहर, मृदारशृंगाद्यमलहर (द्वितीय), करवीर, करवीराद्यतैल, सजल आरनालीय सीसकद्रव, गंधकाम्लीय यशद, तुत्थक, तुत्थकसत्त्व, टंकणाम्लमलहर, यशामृतमलहर, आदि २ ।

(४०) नाडीत्रण, भगंदर में (Sinus, Fistula in Ano)

सोरकद्रव, करवीराद्यतैल, क्षारवर्त्तिका, रविताण्डवरस, तुत्थकादिवर्त्ति, तुत्थकाद्यमलहर, आदि २ ।

(४१) उपदंश, फिरंग में (Syphilis, Soft Chancre)

हिंगुलाद्यमलहर, मुग्धरस, चन्दनादिवटी, रसपुष्पमलहर, रसकपूर, रसपुष्पाद्यमलहर, रसकपूरद्रव, तुत्थामृतावटी, कज्जिलिकोदयमलहर, सुवर्णलवण, करवीर आदि २ ।

(४२) वीसप, विस्फोट में (Erysipelas, boils)

स्फटिका, गंधकतैल, सोरकाम्लीय रजत आदि २ ।

(४३) अम्लपित्त में (Acidity and Biliousness)

नौसादरसत्त्व, लौहाभस्म आदि २ ।

(४४) पित्तरोग में (Bile)

चांदीभस्म, वैडूर्यभस्म, चन्द्रकान्त, स्फटिकभस्म, प्रवालभस्म, आदि २ ।

(४५) शीतपित्त में (Urticaria evanida)

गैरिकाद्यमलहर आदि २ ।

(४६) बुद्धिवर्धकों में

गोमेदभस्म, सूयकान्तभस्म, सुवर्णभस्म आदि २ ।

(४७) स्वेदाधिक्य में (Perspiration)

प्रवालभस्म, यशदभस्म आदि २ ।

(४८) दारुणकरोग में

शुब्जादितैल आदि २ ।

(४६) कर्णरोग में (Ear Disease)

कफकेतु, समुद्रफेन, वराटक आदि २ ।

(५०) अक्षिरोग में (Eyedisease)

त्रिरेखावर्त्ती, अर्जुनहरशंख, शंखवर्त्ती, गंधककल्प, गंधक कल्प प्रथम, टङ्कणाम्लद्रव, सोतोञ्जन, सौवीराञ्जन, तिमि-
रहर अंजन, तुहिनांजन, सोरकाम्लीयरजत, यशदामृतद्रव,
तुत्थकोदयावटी, शिखिध्रीवादिवर्त्ती, आदि २ ।

(५१) दन्तरोग, मुखरोग में (Dental Mouth)

तुत्थ, अर्कक्षीर, गैरिक, स्कटिका आदि २ ।

(५२) शिरोरोग में (Headache)

नवजीवनरस आदि २ ।

(५३) ग्रहबाधा में

नवरत्नधारण करना आदि २ ।

(५४) स्त्री रोगों में (Uterine Diseases)

कासीस, कासीसद्रव, सोरकाम्लीयरजत, लांगली, बंग,
स्वर्ण, ताम्र आदि २ ।

(५५) सन्तान हीनता में (Obes)

हीरकरसायन, बंगभस्म, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म आदि २ ।

(५६) प्रदर असृग्दर (Menorrhagia)

सोरकाम्लीयरजत, वंगभस्म, प्रवालभस्म, सुवर्णवंग,
प्रदरान्तकलौह, सीसकभस्म आदि २ ।

(५७) बाल रोग में (Disease of Children)

चूर्णोदक, मुग्धरस, निम्बुकाम्लीय सर्जिका आदि २ ।

(५८) विषरोग में (Poisoning)

सुवर्ण, मरकत, पेरोजक, वत्सनाभ, विषप्रभावटिका (मूषिकाविष में), विषतिन्दुक [कुत्ते के विष में], जयपाल (विच्छु के विष में), वृश्चिक विष हर प्रलेप, नवसादर वाचंद्रव, भूनाग सत्त्वभस्म, ताम्र आदि २ ।

(५९) अनिद्रा में (Sleeplessness)

भांग, अहिफेन, सुवर्ण माक्षिक निद्रोदयरस आदि २ ।

(६०) विरेचनार्थ में (Purgetive)

इच्छाभेदी रस आदि २

(६१) स्तम्भनार्थ में (Retention)

मदनोदयमोदक, त्रैलोक्यसम्मोहन रस, गुञ्जा बीज आदि २ ।

(६२) सीसे के विकार में (Lead Poison)

गन्धक चूर्ण आदि २ ।

(६३) रसायन, वाजीकरण, वृष्य में (Reguvination)

दशमगन्धककल्प, पारदभस्म, रससिंदूर, सिद्धमकरध्वज, गन्धककल्प, रजतदल, सुवर्णलवण, पुष्पराग, मरकत, वैडूर्यभस्म, वैक्रान्तरसायन, विषरसायन, अमृतरसायन, लक्ष्मीविलासरस, गुञ्जाजीवनरस, भल्लातकरसायन, करबीरादितैल, हर्षोदयावटी, कान्तपाषाण भस्म, हीरकभस्म, कन्दर्पकोकिलरस, हीरकरसायन, माणिक्यमिहिरोदयरस आदि २ ।

नोट—ये योग यद्यपि अनेक रोगों को नाश करते हैं तो भी एक २ मुख्य रोग को नाश करने के कारण यहां लिखे हैं । प्रायः सभी रोगों को नाश करने के योग इस ग्रन्थ में मिलते हैं ।

पुस्तक की सूची

अ	अभ्रकमत्त्व का शोधन	४३
अग्नितुण्डीरस—	४३८ अभ्रकसत्त्वकापिण्डीकरण	१४३
अङ्गारकोष्ठिका—	२२ अभ्रक के दो कल्प	१४५
अङ्गारधानिका—	२१ अभ्रक का मारक गण	१३७
अञ्जनभैरवरस—	४५२ अभ्रकसेवी को वर्जनीय	१४६
अञ्जन का वर्णन—	३७० अमूर्च्छित अमृत पारा खाने पर गन्धक खावें	१०३
अधः पातनयंत्र—	४६ अमृतरसायन—	४२८
अधः सैकत(बालुका) यन्त्र ७६	अमृतीकरण—	१६
अनुपान का लक्षण...	८३ अम्लपंचक दोनों	६
अनुवादक का वक्तव्य....	१ अम्लवर्ग	८
अन्तर्धूममूर्च्छनाकास्वरूप	५६ अर्धक्षार वर्णन	२१६
अन्त्र शोषान्तक रस	२६६ अर्कक्षीर (आककादूध)	४७५
अपामार्ग क्षार वर्णन....	२१८ अर्क लवण	२२६
अपुनर्भव का लक्षण ...	१६ अर्जुनहर शंखचूर्ण	१८२
अभ्रभस्मकाअमृतीकरण	१३८ अविशुद्ध पारे की हेयता	३७
अभ्रभस्म का लालबनाना	१३८ आठों संस्कार (पारे के)	४३
अभ्रक वर्णन....	१२६ अहिफेन (अफीम) वर्णन	४४०
अभ्रकभस्म के प्रयोग	१४० अहिफेन का निर्मल करना	४४१
अभ्रक का सत्त्वपातन	१४२ अहिफेन का निषेध	४४३
अभ्रकसत्त्व का मारण	१४४ अहिफेनासव	४४६

	कञ्जली का समस्त विषय	७०
आ	कञ्जलिकोदयमलहर	७३
आनन्द भैरव रस...	४२४ कञ्जली स्वरूप....	१०
आरनालीय सीसक....	३०० कन्दर्पकोकिलरस	३८८
आरनालीयक सीसद्रव....	३०१ कपोत पुट....	२५
आवाप लक्षण....	१३ कफकेतु रस....	४२६
	कफनाशकगण(लोहेका)	३२१
इ	करवीर (कनेर)....	४७२
इच्छा भेदी रस...	४५० करवीर का परिचय....	४७२
	करवीराद्य तैल....	४७३
उ	काञ्जिकाम्लकान्तिर्माणप्रकार	३०२
उत्थापन स्वरूप....	४७ कान्त पाषाण वर्णन	३५६
उत्थापन के प्रकार....	४७ कासीसद्रवकान्तिर्माणप्रकार	३६३
उन्मादगजाकुश...	४५८ कासीस	३६१
उपल के नाम...	२६ कासीस का मारण	३६४
उपविषों के नाम...	४३३ कासीसकान्तिर्माणप्रकार	३६२
उलूखल यन्त्र...	३४ कांस्य वर्णन	३६८
	कुक्कुट पुट	२४
ऊ	कूष्माण्डादिगण	१०३
ऊर्ध्वपातन के प्रकार....	४८ कृत्रिम हिंगुल बनाना	१२२
ऊर्ध्वपातन यंत्र	२७ कृष्ण सर्प का विष....	४७६
	कृत्रिम हडताल का बनाना	१४८
क	कृष्णसर्प के विष की प्राप्ति	४७६
ककराष्टक वर्णन	१०० कृष्णसर्पविष का निषेध	४८०
कच्छप यंत्र का स्वरूप	२८ कोष्ठिका....	२२

क्षारत्रिक	७ गन्धक वर्णन	१०४
क्षारद्वय	७ गन्धक शोधन	१०५
क्षारोंकी निर्माण विधि	२१७ गन्धक के कल्प....	११२
क्षारपञ्चक....	८ गन्धक की गन्ध नाशकरना	१०८
क्षारवर्तिका...	४७७ गन्धक का तैल....	११६
क्षारशून्यता का परीक्षण	२८३ गन्धकद्रावक वर्णन	११८
क्षारसूत्र....	४७८ गन्धकाद्यमलहर....	१११
क्षारों के गुण....	२१७ गन्धकाम्लीययशदद्रव....	३१२
क्षारों की मात्रा....	२१७ गन्धकाम्लीययशद...	३११
क्षाराष्टक....	८ गारमूषा ..	२०
क्षीरत्रय....	१० गुग्गुलु का शोधन....	४८४
क्षुद्ररत्नगण....	४०४ गुञ्जा (रत्ति) वर्णन	४६४
क्षुद्रशंख वर्णन	१८६ गुञ्जा जीवनरस	४६७
क्षेत्रीकरण की विधि	६६ गुञ्जाद्यतैल	४६६
ख	गुञ्जाभद्ररस	४६७
	गुञ्जा का परिचय	४६४
खटिका का वर्णन	१७४ गैरिक का वर्णन	३८१
खर्पर वर्णन	३५५ गैरिकाद्यमलहर	३८३
खर्पर का सत्त्वपातन	३४८ गोदन्ती का वर्णन	१७८
खर्पर का सत्त्व मारण	३५६ गोमेद का वर्णन	३६६
खल्वयंत्र....	३३ गोर्वरपुट....	२५
खल्वयंत्र का प्रयोजन	३३ गोर्वर....	८
ग	गोस्तनी मूषा....	२०
	ग्रन्थसमाप्ति का समय	४८४
गजपुट....	२४ ग्रन्थिशोधनिवारिका वर्तिका	४५८

घ

ट

घोष से आकृष्टत्वम्.... १४ टङ्कण का वर्णन २०४

घ

टङ्कणामृतमलहर २०६

टङ्कणाम्ल २०७

चण्डेश्वररस १६६ टङ्कणाम्ल द्रव २०६

चन्दना दिवाटिका , ५० टङ्कणाम्लमलहर २०८

चन्द्रकान्त का वर्णन ४७८

चिञ्चाक्षार १२३

ड

चूर्ण (चूने) का वर्णन १७५ डमरुकाख्ययन्त्र ३२

चूर्णादिक बनाना १७६

ढ

५३

ज

ढालन

.... १२

जङ्गमविषका स्वरूप ४१३

त

जयपाल (जमालगोटा) ४४८

जयपाल युक्त योगों का तलस्थ रससिन्दूर बनाना.... ७६

निषेध

... ४५२ ताडन

... १३

जयपाल का परिचय ... ४४८ ताम्रभस्म का अमृती

जयावटी ४२५ करण २६७

जलशुक्ति १८६ ताम्र वर्णन २६३

जलोदरारि रस ४५१ तालक वर्णन १४७

जारणास्वरूप ५४ तालक के विकार में

ज्वरारि रस ४५१ औषध १५६

तालक का सत्वपातन १५८

तालकोदय मलहर	 १५६	अयम्बकेश्वर रस	 २७६
तिरमिहर अञ्जन	 ३७३		
तिर्यक्पातन यन्त्र	 ५०	द	
तिर्यक्पातन	 ५०	दद्रुविद्रावण मलहर	 १११
तिलक्षार	 २१६	दर्विका यन्त्र	 ३१
तीनों पातन	 ४८	दीपनस्वरूप	 ५३
तुत्थक द्रव बनाना	 ३४२	दीपन के प्रकार	 ५३
तुत्थक	 ३४१	दुग्धपाषाण	 १७०
तुत्थमारण	 ३४८	दुग्ध वर्ग	 १०
तुत्थशोधन	 ३४६	दोलायन्त्रलक्षण	 २६
तुत्थकका सत्वपातन	 ३५०	द्रावक गण	 १२
तुत्थकादिवर्ति	 ३४४	द्रोणी रूप खल्व	 ३४
तुत्थकाद्य मलहर	 ३४५		
तुत्थकोदय रसायन	 ३४६	ध	
तुत्थकोदयावटी	 ३४३	धनूरा वर्णन	 ४५६
तुत्थकोदया वर्ति	 ३४४	धतूरे का परिचय	 ४५६
तुत्थ का निर्माणप्रकार	 ३५१	धन्वन्तरी काभाग	 १७
तुत्थामृत मलहर	 ३४५	धातु का निर्वचन	 २३२
तुत्थामृतावटी	 ३४७	धातुसत्व का लक्षण	 ११
तुहिनाञ्जन	 ३७४	धातुओंकी नामगणना....	२३२
तैलवर्ग	 १०	धातुओं का सामान्य	
त्रिरेखावर्तिका	 १८१	शोधन प्रकार	 २३२
त्रैलाक्य विजया बटी	 ४६१	धातुओं का सामान्य	
त्रैलोक्य संमोहन रस	 ४६१	मारण प्रकार	 २३३

धान्याभ्रक

१३३

पं

न	पञ्चगव्य	 १०
श्रीनरेन्द्रनाथमित्रकेप्रयोगर(परि०)	पञ्चतिक्तक	 ६
नवरत्न	३८४ पञ्चमृत्तिका	 ६
नवग्रहों के रत्न	 ३८४ पञ्चामृत	 १०
नवजीवन रस	 ४३७ पञ्चामृतरस	 ४२३
नवसार वर्णन	 २१० परिचारक लक्षण	 ५
नौसादरका सत्त्वपातन	 २१२ परिभाषा लक्षण	 ७
नवसादरीय वाष्पद्रव	 २६० परिभाषा विज्ञानफल	 ७
नाडिका यन्त्र	 ३२ परिशिष्ट	 १
नारिकेललवण	 २२५ परिस्त्रुत सलिल	 १६
निद्रोदय रस	 ४४५ पर्पटी स्वरूप	 १३
निम्बुके बीज शोधन	 ४८२ पंलाशक्षार	 २२१
निम्बुकाम्ल बनाना	 ६७ पाताल कौष्टिका	 २२
निम्बुकाम्लीय यवज	 १६६ पाताल यन्त्र	 ३३
निम्बुकाम्लीय सर्जिका	 २०२ पारद वर्णन	 ३६
मियामकगण(पारेका)	 ५२ पारद मारण का विषय	 ६०
नियामन स्वरूप	 ५१ पारदविकार चिकित्सा	 १०२
नियामन प्रकार	 ५१ पारद का साधारण	
निरुत्थलक्षण	 १६ शोधन	 ४०
निरुत्थीकृत लोहे का	पारद शोधन के प्रकार	 ४०
परीक्षण	... ३२५ पारद शोधनकी आवश्यकता	३६
निर्वापलक्षण	... १३ पारद सेवन विधि	
नीलमका वर्णन	... ३६६ (रसायन में)	 ६६

पारद का अधः पातन	४६	पुटयन्त्र	३१
पारद के आठों संस्कार	४३	पुटलक्षण	२३
पास्द के उत्थापनप्रकार	४७	पुष्पसाग वर्णन ...	३६५
पारद के ऊर्ध्व पातन प्रकार ४८		पुष्पाञ्जनका परिचय....	३७३
पारद का तिर्यक पातन	५०	पैरोजक का वर्णन	४११
पारद का दीपन प्रकार ...	४२	प्रदरान्तक लोह	३२६
पारद का नियामन प्रकार...	५१	प्रलापान्तक रस ...	४५७
पारद के स्वाभाविक दोष ..	३७	प्रवाल वर्णन	४००
पारद के बोधन प्रकार	५०		
पारद के मर्दन प्रकार	४५	ब	
पारद के मुर्च्छन प्रकार	४६	बंकनाल	१४
पारद के सप्त कंचुक ...	३८	वृत्तौषधसत्त्वलक्षण	११
पारद के स्वेदन प्रकार	४४	बालुकापुट	२५
पारका नियामक गण	५२	विडूलवण	२२७
पालिका यन्त्र	३२	विडूलवण को बनाने	
पित्तनाशक गण		की विधि	२२७
(लोहेका)....	३२०	विना मान कहे पुट देना....	२५
पित्तल वर्णन	३६५	बोधन लक्षण	५०
पित्तल रसायन	३६८	बोधन के प्रकार	५०
पिधान	१८		
पिष्टिका	११	भ	
पुटप्रयोजन	२३	भङ्ग (भांग) वर्णन	४५८
पुटका मान न कहा		भङ्ग का परिचय	४५६
हो तो पुट देना ...	२५	भल्लातक (भांलावां) ...	४६८

भल्लातक रसायन	...	४७०	मनःशिलीय माणिक्य रस	१६२
भल्लातककापरिचय		४६८	मयूर पक्षिका सतनिकालना	२७८
भस्म यन्त्र		२८	मरकत वर्णन	३६७
भाण्डपुट		२५	मर्दन का स्वरूप	४५
भावना के योग्य द्रव			मर्दन के प्रकार	४५
परिमाण		१५	मल्लकी मारणविधि	 १६६
भावना का लक्षण		१४	मल्लमूषा	 २०
भूतधन चक्रिका		६७	महापुट	 २४
भूधरपुट		२५	महामूषा	 २०
भूधर यन्त्र		२६	महारत्न	 ३८४
भूनागसत्त्व बनाना	...	२७७	मानपरिभाषा	 १६
भूमिका		१७	माणिक्य का वर्णन	 ३८६

म

			माणिक्यमिहिरोदधरसाधन-३६१	
			मारकगण (पारेका)	 ६१
मकरध्वज		८७	मारण का लक्षण	 ६०
मंगलोदया वटी		४४७	मित्र पञ्चक	 १३
मण्डूर वर्णन		३३०	मुक्ता पञ्चामृत रसायन	 ३६४
मदनोदयमोदक		४६२	मुग्धरस का वर्णन	 ५६
मधुरत्रिक		६	मूत्राष्टक	 ८
मनसिल का निर्माण		१६३	मूर्च्छना का स्वरूप	 ५५
मनसिला का वर्णन	...	१५६	मूर्च्छना के दो भेद	 ५५
मनशिल कासत्व			मूर्च्छन का सामान्य स्वरूप	 ४६
पातन		१६३	मूषा के नाम	 १८
मनशिलके विकारपरदवाई	१६३		मूपानिर्माणके योग्यमृत्तिका-१६	

मूषाभ्यायनक ...	२१ रजत का वर्णन	२४७
मृगशृङ्ग का वर्णन....	१६३ रजत माक्षिक....	३३६
मृत ताल की परीक्षा	१५४ रजतमाक्षिककासत्त्वपातन	३४१
मृत पारद के गुण	६४ रजतमारण....	२५०
मृत पारद के लक्षण....	६० रत्नपद का निर्वचन....	३८३
मृत लोह....	१५ रविताण्डव रस....	२७५
मृत सञ्जीवन रस....	४८२ रस कर्पूर निर्माणविधि	-६४
मृत्युञ्जय रस....	४२१ रस कर्पूर के गुण	६५
मृदङ्गयन्त्र	२६ रस कर्पूर गुटिका....	६७
मृदारशृङ्गाय	३५३ रस कर्पूर द्रव बनाना....	६८
मृदारशृङ्गाय मल्हमें....	३५४ रसतरङ्गिणी का परिचय....	२
मौक्तिक का वर्णन....	३६२ रसपङ्क का लक्षण ...	११
	रसपपेटिका का वर्णन	७३
य	रसपुष्प का वर्णन	५८
यन्त्र लक्षण....	२६ रस पुष्पमलहर	६२
यवक्षार का वर्णन ..	१६६ रस पुष्पाद्यमलहर....	६२
यशद का वर्णन....	३०४ रसपूजन (पारे का पूजन)"	३६
यशदामृतद्रव....	३१३ रसभक्षणकाल....	१००
यशदामृत मलहर...	३१० रसमाणिक्य....	१५६
योग मूषा ...	१६ रसविकार में सुखाचार....	१०२
	रस वैद्य की प्रशंसा....	३
र	रसशाला	३
रक्तचित्रक का शोधन....	४८२ रसशाला के उपकरण द्रव्य....	४
रजतदल....	२५० रसशाला का कर्म विभाग....	४

रसशास्त्राचार्य का स्वरूप...	५	लाङ्गलिका का परिचय....	४७४
रससिद्ध वैद्यों के नाम....	५	लावकपुट....	२५
रससिन्दूरका वर्णन....	७८	लौहका निरुत्थीकरण....	३२४
रस सिन्दूर के गुण....	८१	लौह का वर्णन....	३१४
रस सिन्दूर का प्रयोग....	८३	लौह के मारकगण में	
रससेवनमें अपथ्य	१०१	विशेषकथन....	३२१
रस सेवन में पथ्य....	१०१	लौहमारक गण....	३२०
रस का साधारण शोधन	४०	लौह मारण में भानुपाकादि	
रसायन सेवन में अपथ्य....	१०१	का विधान....	३१७
रसायनादि में पारद की			
सेवन विधि....	६६	व	
रसायनोचित रस....	१००	वङ्ग का वर्णन....	२७६
राजावर्त्त का वर्णन....	४०६	वङ्ग को उष्ण या शीत बनाने	
राजावर्त्त का सत्त्वपातन....	४११	का कारण	२८५
रोगानुसार औषध सूची अंत में		वज्रद्रावणिका मूषा....	२०
रोमकलवण....	२२६	वज्रमूषा....	१६
		वत्सनाभ वर्णन	४१४
ल		वत्सनाभ जुवका परिचय	४१४
लक्ष्मी विलास रस....	४३८	वत्सनाभ का परिचय....	४१४
लवणत्रिक....	७	वराटक का वर्णन	१६०
लवणद्रावक....	२३०	वर्त्तुल खल्व....	३४
लवणपञ्चक...	७	बन्हिमृत्सना का लक्षण....	६१
लवणयन्त्र....	३१	बन्हि शीत का लक्षण....	१४
लाङ्गलिका (कलिहारी)	४७३	वातहरण....	३२०

वागहपुट	२४ वेदनान्तक मलहर....	४४८
वारितर लक्षण....	१५ वेदनान्तक रस—	४४४
वालुका पुट....	२५ वैदूर्य का वर्णन—	३६८
वालुकायन्त्र....	३० वैक्रान्त का वर्णन—	४०४
वाष्प स्वेदन यन्त्र	३१ वैक्रान्त रसायन (दोनों)—	४०६
विशुद्ध अविशुद्ध पारे		
का स्वरूप	३६ श	
विश्वासघातक वैद्य	१७ शङ्ख का वर्णन—	१८०
विष गर्भ तेल	४३२ शंखकल्प—	१८३
विषतिन्दुक तैल.....	४४० शंखद्रावक—	१८४
विषतिन्दुक वर्णन	४३३ शंख का मारना	१८२
विषतिन्दुक (कुचले) का	शंखवर्त्ति...	१८२
परिचय....	४३३ शंखविष का वर्णन—	१६४
विषपद का निर्वचन....	४१२ शंखविष की मात्रा बनाने	
विषप्रभा वर्त्तिका....	४३१ की विधि—	१६६
विषप्रयोग का निषेध....	४२० शंख विषोदय रस—	१६८
विष के प्रयोग....	४२६ शिखिग्रीवादि वर्त्ति—	३४५
विष रसायन....	४२७ शिलाजतु का वर्णन—	३७४
विष के नौ भेद....	४१४ शिवताण्डवरस—	४२४
विसूचीध्वंसनरस....	४८२ शिष्य का स्वरूप—	६
वृद्धदारक (विधाराबीज)	शिष्य कौनसा उपनयन के	
शोधन....	४८२ अयोग्य है....	६
वृन्ताक मूषा....	२१ शुक्ति का वर्णन....	१८७
वृश्चिकविष हर प्रलेप....	४५२ शुद्धावर्त्त का लक्षण—	१३

शुद्ध गन्धक के गुण— १०८

शुद्ध गंधक की मात्रा तथा

स

प्रयोग—	१०६	सगन्धा मूर्च्छना के दो भेद—	५६
शूल निर्मूलन रस....	४३८	सजल गन्धकद्राव—	१६८
शूलेभ केसरी रस—	२७७	सजल लवणद्रावक—	२३१
शोधन का लक्षण—	१५	सजल शंखद्रावक—	१८६
शोधन का समय—	३६	सजल सोरकद्रावक—	२१६
शोधन के लिये पारे का		सजल आरनालीयक	
परिमाण	३६	सीसद्रव	३०२
शोधित हिंगुल के गुण....	१२३	सत्त्वों की विशेषता ...	१४१
श्री सिद्धदरदामृत—	१२६	सन्धि लेपन	१६
श्री सिद्ध मकरध्वज—	८८	सप्त कञ्चुकों का परिचय--	३८
श्री सिद्ध हिंगुलेश्वर—	१२८	समर्पण—	१६

ष

समुद्रफेन का वर्णन.... १६४

समुद्रफेन का उत्पत्ति

षड् (छह) गुण गन्धक	स्थान	१६६
जारण के दो प्रकार—	५४ सर्जिचार वर्णन....	२०१
षडगुण गंधक जारण का	सर्वांगसुन्दर रस....	८६
प्रयोजन....	५४ सहपान का लक्षण....	८३
षड गुण गंधक जीर्ण	संखिया का मारना....	१६६
रसराज के गुण—	५५ सामान्य पुट क्रम....	२१
षड गुण गंधक जीर्ण	सामान्य मूषा....	१६
रससिन्दूर	८१ सामुद्रलवण....	२२६
	सारमेयविषनाशकयोग....	४४०

सिक्थ तैल विधि....	६३	सूय पुट का लक्षण .	२३
सिक्थ तैल का लक्षण....	१२	सूर्यावर्त्तरस....	२७६
सिन्दूर भूषण रस....	४४५	सैन्धवलवणवर्णन	२२४
सिन्दूर....	३५१	सैन्धव की मुख्यता....	७
सिन्दूराद्य तैल....	३५३	सोरक का वर्णन....	२१२
सिन्दूराद्य दो मल्हमें	३५२	सोरकद्रावक....	२१५
सीसक का विषय	२६२	सोरकाम्लीय रजतद्रव....	२६१
सीसक सेवन के विकारों में		सोरकाम्लीय रजत....	२५७
उपाय....	३०४	सोरकाम्लीयरजतकेगुण....	२६१
सुधालवण....	१०८	सौवर्चल लवण....	२२८
सुप्तिवातारिरस....	४४०	सौवर्चल लवण का	
सुराष्ट्रजा का वर्णन....	१७१	निर्माण....	२२६
सुवर्ण का वर्णन—	२३३	सौवीरांजन....	३७०
सुवर्ण (घिसाहुआ)	२३६	स्थाली यन्त्र....	२६
सुवर्ण मण्डल (वर्क)	२३६	स्थावरविष के भेद....	४१३
सुवर्णमाक्षिक वर्णन	३३२	स्थावरविषकेअधिष्ठान...	४१३
सुवर्णमाक्षिकका सत्त्वपातन	३३७	स्थावरविषकीद्विविधता —	४१३
सुवर्ण का मारण—	२३८	स्थावरतथा जगम विषों	
सुवर्णलवण....	२३७	कास्वरूप —	४१३
सुवर्णवंग पञ्चकरसायन	२६१	स्तुही क्षार—	२२१
सूचिकाभरणरस(प्रथम)	४८१	स्तुहीक्षीर(थोहरकादूध)	४७६
सूचिकाभरणरस(द्वितीय)	४८२	स्फटिक वर्णन—	४११
सूचीपत्र	अन्त में	स्फुटिकारि का वर्णन	१७१
सूर्यकान्त का वर्णन	४०७	सुवर्णवङ्ग बनाना	२८७

स्वर्गवासीनरेन्द्रनाथमित्र—	निर्माण प्रकार....	४३
स्वर्ण बंग बनाना	२८७ हिंगुल का शोधन....	१२३
स्वेदन का लक्षण—	४४ हीरक वर्णन—	३८४
स्वेदन के प्रकार—	४४ हीरक रसायन...	३८६
स्वाङ्गशीत का लक्षण —	१४ हींग की शुद्धि—	४८४
ह	हृदयार्णव रस—	२७५

हर्षोदया बटी—	४४५	परिशिष्ट की सूची
हिंगुल का वर्णन—	१२१	श्री नरेन्द्रनाथ मित्र के
हिंगुलाकृष्ट रस—	११	प्रयोग १ से ४
हिंगुलाद्यमलहर —	१२४	श्री स्वामीदयानन्दजी के
हिंगुलसे रससिन्दूरबनाना	१२५	प्रयोग ५ से ६
हिंगुलामृत मलहर—	१२५	रोगानुसार औषधें १ से ८
हिंगुलीय माणिक्यरस—	१२७	पुस्तक की सूची १ से १४
हिंगुलेश्वर रस—	४२३	रस तरंगिणी की
३हिंगुलोत्थ पारद का....	तरंग सूची	१५

॥ शुभम् ॥



रसतरंगिणी की तरंग सूची

	पृष्ठ
अथ रसशाला विज्ञानीय प्रथम तरंग	 १
‘परिभाषा विज्ञानिय द्वितीय तरंग	 १०
‘मूषा विज्ञानीय तृतीय तरंग	 १८
‘यंत्र विज्ञानीय चतुर्थ तरंग	 २६
‘पारद के अष्ट संस्कार विज्ञानीय पंचम तरंग	 ३६
‘मृच्छना विज्ञानीय छठा तरंग	 ५५
‘पारद मारण विज्ञानीय सप्तम तरंग	 ६०
‘गंधक विज्ञानीय अष्टम तरंग	 १०४
‘हिंगुल विज्ञानीय नवम तरंग	 १२१
‘अभुक विज्ञानीय दशम तरंग	 १२६
‘तालकादि विज्ञानीय एकादश तरंग	 १४७
‘शंखादि विज्ञानीय द्वादश तरंग	 १६०
‘क्षारत्रिक विज्ञानीय त्रयोदश तरंग	 १६६
‘क्षारविशेषादि विज्ञानीय चतुर्दश तरंग	 २१०
‘सुर्वण विज्ञानीय पंचदश तरंग	 २३२
‘रजत विज्ञानीय षोडश तरंग	 २४७
‘ताम्र विज्ञानीय सप्तदश तरंग	 २६३
‘वंग विज्ञानीय अष्टादश तरंग	 २७६
‘सीसकादि विज्ञानीय एकीनवदश तरंग	 २८२
‘लोहादि विज्ञानीय विंश तरंग	 ३१४
‘उपधात्वादी विज्ञानीय एक विंश तरंग	 ३३२
‘मिश्र लोहादि विज्ञानीय द्वाविंश तरंग	 ३६५
‘रत्न विज्ञानीय त्रयोविंश तरंग	 ३८३
‘विषौषविषादी विज्ञानीय चतुर्विंश तरंग	 ४१२

